अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य

एकोनविंश काण्ड ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, साहित्य-वाचस्पति गीतालङ्कार

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

★

संवत् २ १ शक १८८१ सन १९५

प्रकाशक :

वसन्त श्रीपाद सातवळेकर बी ए
स्वाध्याय मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय मंडल (पारडी)
पारडी [जि सूरत]

*

शक १ ८२ संवत् २ १७ ई स १९६

*

प्रथम बार

*

मुद्रक :

वसन्त श्रीपाद सातवळेकर बी. ए.,
भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय-मंडल (पारडी)
पारडी (जि सूरत)

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

उन्नीसवां काण्ड

अथर्ववेदके १८ वें काण्डमें पितृमेध या अन्त्येष्टि कर्म होनेके पश्चात् यहां अठारहवें काण्डकी समाप्तिके साथ ही वास्तविक अथर्ववेद समाप्त होता है। पिप्पलाद संहिता अथर्ववेदकी अठारहवें काण्डसे ही समाप्ति होती है। बीसवां काण्ड तो ऋग्वेदके इन्द्र सूक्तोंका ही संग्रह है और उन्नीसवां काण्ड कुछ फुटकर रहे अथर्ववेदके सूक्तोंका संग्रह दीखता है। वास्तवमें अथर्ववेद अठारहवें काण्डसे ही समाप्त होना चाहिये था।

यजुर्वेद वाजसनेयी संहितामें ३९ वें अध्यायमें अन्त्येष्टि कर्म होते ही यजुर्वेदका कर्म काण्ड समाप्त हुआ है। ४० वां अध्याय ब्रह्मविद्या प्रकरणका अध्याय है और वह पराविद्या है। ३९ वें अध्यायतक अपराविद्या समाप्त होनेपर ४० वें अध्यायमें पराविद्या आ गयी यह ठीक ही है। परन्तु अथर्ववेदमें वैसा नहीं है।

अथर्ववेदके उन्नीसवें काण्डमें सूक्तक्रम ऐसा है—

१ यज्ञः २ आपः ३ जातवेदाः ४ आकूतिः ५ जगतो राजा, ६ जगद्बीज पुरुषः ७-८ नक्षत्राणि ९-११ शान्तिः १२ उषा १३ एकवीरः १४-१६ अभयं १७-१८ सुरक्षा १९ शर्म २० सुरक्षा २१ छन्दांसि २२ ब्रह्म २३ अथर्वाणः २४ राष्ट्रं २५ अश्वः २६ हिरण्यधारणं २७ सुरक्षा २८-३० दर्भमणिः ३१ औदुम्बरमणिः ३२-३३ दर्भः, ३४-३५ जङ्गिडमणिः ३६ शतवारोमणिः ३७ बलप्राप्ति ३८ यक्ष्मनाशनं ३९ कुष्ठनाशनम् ४० मेधा ४१ राष्ट्रं बलं ओजश्च ४२ ब्रह्मयज्ञ ४३ ब्रह्म ४४ भेषजम् ४५ आञ्जनम् ४६ अस्तृतमणिः ४७-५० रात्रिः ५१ आत्मा ५२ काम ५३-५४ काल ५५ रायस्पोषप्राप्तिः ५६-५७ दुःस्वप्ननाशनम् ५८-५९ यज्ञ ६० अंगानि ६१ पूर्णायु ६२ सर्वप्रियत्वम् ६३ आयुर्वर्धनं ६४ दीर्घायुष्यम् ६५ जातवेद ६६ असुरक्षयणम् ६७ दीर्घायुत्वम् ६८ वेदोक्तं कर्म ६९ आपः ७० पूर्णायुः ७१ वेदमाता ७२ परमात्मा।

यह अथर्ववेदके उन्नीसवें काण्डमें सूक्तक्रम है। यह विषयवार नहीं है। इसका विषयवार संग्रह किया जाय तो ऐसा बनेगा—

यज्ञ—
: १ यज्ञः ५८-५९ यज्ञः ४२ ब्रह्मयज्ञः

आपः—
: २ ६९ आपः

सुरक्षा—
: १४-१६ अभयं १७-१८ १९ २० २७ सुरक्षा ६६ असुरक्षयणम्

शान्तिः—
: ९-११ शान्तिः

दीर्घायु—
: ६१ पूर्णायुः, ६३ आयुर्वर्धनं ६४ दीर्घायुष्यं ६७ दीर्घायुष्यं ७० पूर्णायुः

मणिधारण—
: २६ हिरण्यधारण २८-३० दर्भमणि ३२-३३ दर्भः ३१ औदुम्बरमणिः ३४-३५ जङ्गिडमणिः ३६ शतवारोमणिः ४६ अस्तृतमणिः, ४५ आञ्जनम्

रोगनाशनं—
: ३८ यक्ष्मनाशनं ३९ कुष्ठनाशन ५६-५७ दुःस्वप्न नाशनं ४४ भेषजम्

राष्ट्रम्—
: २४ राष्ट्रं ४१ राष्ट्रं बल ओज ६६ असुरक्षयणं ५ जगतो राजा १३ एकवीरः ३७ बलप्राप्तिः ५५ रायस्पोषप्राप्तिः

ईश्वरः—

१ जातवेदाः ५ जगतो राजा ६ [illegible] पुरुषः, २३ ४३ ब्रह्म ५१ आत्मा ७२ परमात्मा

मेधा—

४ मेधा २ वाचा ११ धर्म

कालः—

१२ उषा ४७ ५ रात्रिः ५३-४ कालः ७ ८ नक्षत्राणि

वेद—

२१ छन्दांसि २३ अथर्वाणः ६८ वेदोंका क्रम, ७१ वेदमाता

सर्वप्रियत्व—

६२ सर्वप्रियत्वं

अंगानि—

६ अंगानि ४ आकूति।

इस तरह वर्गीकरण किया जाय तो एक तत्त्व विचारके सूक्त एक स्थानपर मिल सकते हैं और एक स्थानपर एक विषयके सूक्त मिलनेसे अर्थ भी ठीक तरह हो सकता है। अध्ययन भी शीघ्र हो सकता है।

यह केवल उन्नीसवें काण्डके विषयमें ही है ऐसी बात नहीं पर अथर्ववेदके १३ से १८ तथा २० वां काण्ड ये सब काण्ड छोड दिये जाय तो बाकीके कांडोंके सूक्तोंको विषयवार ही बांटना चाहिये। यह अत्यंत आवश्यक बात है। पाठक इसका अधिक विचार करें॥

१९ वें काण्डके सुभाषित

अभय

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां (१९।१४।१)— इस कल्याणके अंततक मैं पहुंचा हूं।

शिवे मे द्यावापृथिवी अभूतां— मेरे लिये द्यावा-पृथिवी कल्याण करनेवाले हों।

असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु— दिशा उपदिशाएं मेरे लिये शत्रुरहित हों।

न वै त्वा द्विष्मः— हम तेरा द्वेष नहीं करते।

अभयं नो अस्तु— हमारे लिये अभय हो।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि (१९।१५।१)— हे इन्द्र! जहांसे हमें भय होता है वहांसे हमारे लिये निर्भयता कर।

त्वं न ऊतिभिः वि द्विषो वि मृधो जहि— तू अपनी रक्षाके सामर्थ्योंसे हमारे द्वेषियों और शत्रुओंका नाश कर।

वयं अनुराधं इन्द्रं हवामहे (१९।१५।२)— हम अनुकूल सिद्धि देनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

अनुराध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा— हम द्विपादों और चतुष्पादोंसे अनुकूलता प्राप्त करें।

मा नः सेना अररुषीरुप गुः— अनुदार सेनाएं हमारे पास न आ जांय।

विषूचीरिन्द्र द्रुहो विनाशय— हे इन्द्र! शत्रुसेनाओंको चारों ओरसे विनष्ट कर।

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः (१९।१५।३)— इन्द्र रक्षक शत्रुनाशक पुष्टिकारक और श्रेष्ठ है।

स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात् स पुरस्तान्नो अस्तु— वह हमारा दूरसे मध्यसे पीछेसे आगेसे रक्षक हो।

उरुं लोकमनु नेषि विद्वान् (१९।१५।४)— तू जानता हुआ हमें विशाल कार्यस्थानमें ले जाता है।

स्वर्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति— जहां आत्मज्योति और निर्भयता है।

उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू— तुझ समर्थके बाहू बडे उग्र हैं।

उप क्षयेम शरणा बृहन्ता— हम तेरे बडे आश्रयमें रहेंगे।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षं (१९।१५।५)— अन्तरिक्ष हमें निर्भय करे।

अभयं द्यावापृथिवी उभे इमे— ये दोनों द्यावापृथिवी हमें निर्भय करें।

अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु— पीछेसे आगेसे ऊपरसे नीचेसे हमें अभय हो।

अभयं मित्रादभयममित्रात् (१९।१५।६)— मित्रसे और अमित्रसे हमें अभय हो।

अभयं ज्ञातादभयं पुरोयः— जाने हुएसे और जो सामने है उससे अभय हो।

अभयं नक्तमभयं दिवा नः (१९।१५।६)— रात्रीमें तथा दिनमें अभय हो।

सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु— सब दिशाएं मेरे मित्र हों।

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम्‌ (१९।१६।१)- आगेसे और पीछेसे हमें शत्रुरहित अभय हो ।

दिवो मादित्या रक्षन्तु (१९।१६।२)— द्युलोकसे आदित्य मेरी रक्षा करें ।

भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म— भूतोंको बनानेवाले सब ओरसे मेरा कवच बनें ।

स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे (१९।१७।१-१)— वह मेरा रक्षण करे वह मेरा पालन करे उसके पास मैं अपने आपको देता हूं ।

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात्‌ (१९।१८।१-१)— वसुमान्‌ अग्निको वे प्राप्त हों जो पापी पूर्व दिशासे हमें दास बनाते हैं । इस तरह सब दिशाओंके विषयमें है ।

सा मा शर्म च वर्म च यच्छतु (१९।१९।१-११)— वह आपको सुख और सुरक्षा देवे ।

अप न्यधुः पौरुषेयं वधम्‌ (१९।२०।१)— पुरुषसे प्राप्त होनेवाला वध दूर हो ।

पूषास्मान्‌ परिपातु मृत्योः— पूषा हमें मृत्युसे रक्षा करें ।

तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु (१९।२०।२)— वे कवच मेरे लिये बहुत हों ।

इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान्पातु विश्वतः (१९।२०।३)- इन्द्रने जो कवच किया है वह हमें चारों ओरसे सुरक्षित रखे ।

वर्म मे द्यावापृथिवी (१९।२०।४)— द्यावा पृथिवी मेरा कवच बनें ।

मा मा प्रापत्प्रतीचिका— मुझे विरोधी प्राप्त न हो ।

वृषा त्वा पातु वाजिभिः (१९।२७।१)— बलवान्‌ बलवालोंके साथ तेरी रक्षा करे ।

गोप्तॄन्‌ कल्पयामि ते (१९।२७।४)— तेरे लिये मैं रक्षक करता हूं ।

मा प्राणं मायिनो दभन्‌ (१९।२७।५)— कपटी शत्रु मेरे प्राणको न दबावें ।

आयुष्कृतां जीव (१९।२७।८)- आयु बढानेवालोंकी आयुसे जीवित रह ।

आयुष्मान्‌ जीव मा मृथाः— दीर्घायु होकर जीवित रह मत मर जा ।

•

प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम्‌— आत्मवालोंके प्राणसे जीवित रह मृत्युके वशमें न जा ।

यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद्वीर्याणि— जो सुवर्ण है उससे यह बल बनाता है ।

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम्‌ (१९।२७।१४)- आगेसे और पीछेसे हमारे लिये निःशत्रुता तथा अभय हो ।

पच तां मणि हरसा (१९।६५।१)— उसको अपने तेजसे सुरक्षित रख ।

अबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा— न डरता हुआ अपने तेजसे दूर चल ।

उषा

अया देवहितं वाजं सनेम (१९।१२।१)— इस उषासे देवोंका हित करनेवाला बल प्राप्त करेंगे ।

मदेम शतहिमाः सुवीराः— उत्तम वीर बनकर सौ हिम काल आनन्दसे रहेंगे ।

अपनी शक्ति

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्तु (१९।५८।१)— कान आंख और प्राण हमारा विच्छिन्न न हो ।

अच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः— हम आयुष्य और तेजसे अविच्छिन्न रहें ।

प्राणः अस्मान्‌ उपह्वयताम्‌ (१९।५८।२)— प्राण हमारा आदर करे ।

उप वयं प्राणं ह्वयामहे— हम प्राणोंका आदर करें ।

वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम (१९।५८।३)— तेज प्राप्त करके पृथिवीपर संचार करेंगे ।

ईश्वर

रयिमस्मासु धेहि (१९।३१।३)— धन हमें दे ।

यतो भयमभयं तन्नो अस्तु (१९।३।४)— जहांसे भय है वहांसे हमें निर्भयता हो ।

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति (१९।५।१)— जो कुछ विविध रूपवाला इस पृथिवीपर है उसका तथा स्थावर जंगम सबका इन्द्र ही राजा है ।

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्‌ । स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्‌ (१९।६।१)-

हमारी बाहुओं जांघों और पांवोंवाला एक पुरुष है वह पृथिवीके चारों ओर व्यापक दशांगुल विश्वसे बाहर भी है।

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। उतामृतत्वस्येश्वरः (१९।६।४)— जो भूतकालमें हुआ जो वर्तमान कालमें है, और जो भविष्यमें होगा वह सब पुरुष ही है वही अमृतत्वका अधिपति है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत्। मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत (१९।६।६)- ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र उसके सिर बाहु पेट और पांव हैं।

अयुतोऽहं अयुतो म आत्मा (१९।५१।१)— मैं पूर्ण हूं, मेरा आत्मा पूर्ण है।

अयुतं मे चक्षुः अयुतं मे श्रोत्रं— मेरा आंख और कान पूर्ण है।

अयुतो मे प्राणो अयुतो मेऽपानः— मेरा प्राण और अपान पूर्ण है।

अयुतो मे व्यानो अयुतोऽहं सर्वः— मेरा व्यान पूर्ण है मैं सब पूर्ण हूं।

वेद

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् (१९।७२।१)— जिस पेटीसे हमने वेद बाहर निकाले उस पेटीमें हम फिर उनको रखते हैं।

कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण— मन्त्रोंके वीर्यसे इष्ट कर्म किया।

तेन मा देवास्तपसावतेह— उस तपसे सब देव मेरी रक्षा करें।

ब्रह्म

ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि (१९।२२।२१)— ज्ञानके श्रेष्ठत्वसे पराक्रम करनेकी शक्ति बढती है।

उद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे (१९।६८।१)— वेदको पढकर हम कर्म करते हैं।

आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् (१९।७१।१)— आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति धन ज्ञानका वर्चस मुझे दे और ब्रह्मलोकको जा।

सर्वप्रियत्व

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये (१९।६२।१)— मुझे देवोंमें प्रिय कर, राजाओंमें मुझे प्रिय कर सबके मैं प्रिय बनूं शूद्र और आर्योंमें मैं प्रिय बनूं।

अंगानि

अरिष्टानि मे सर्वा आत्मानिभृष्टः (१९।६०।२)— मेरे सब अंग अटूट हों मेरा आत्मा पराजयमुक्त हो।

काम

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् (१९।५२।१)— प्रारंभमें काम उत्पन्न हुआ वह मनका पहिला वीर्य था।

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते (१९।५२।२)— हे काम! तू साम(र्थ्य)के साथ मनमें रहता है, तू व्यापक पराक्रमी और मित्रवत् आचरण करनेवालेके साथ मित्र बन कर रहता है।

त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि (१९।५२।२)— तू उग्रवीर युद्धोंमें शत्रुको पराजित करनेवाला यजमानके लिये सामर्थ्य और शक्ति दे।

शर्म (सुख)

प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः, तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु (१९।१९।११)— प्रजापालक प्रजाओंके साथ उन्नत हुआ उस नगरीमें मैं तुमें ले जाता हूं उसमें जाओ उसमें प्रवेश करो वह आपको सुख और संरक्षण देवे।

काल

कालो भूमिमसृजत (१९।५३।५)— कालने भूमि बनायी है।

कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः (१९।५३।७)- योग्य काल आनेपर सब प्रजा आनन्दित होती है।

कालो ह सर्वस्येश्वरः (१९।५३।८)— काल सबका स्वामी है।

कालः प्रजा असृजत (१९।५३।१)— काल प्रजाको उत्पन्न करता है।

नक्षत्राणि

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे (१९।८।२)— अठाइस नक्षत्र मेरे लिये कल्याणकारी और शुभ हों। और मेरे साथ उत्तम सहयोग करें।

ममैतानि शिवानि सन्तु (१९।८।१)— मेरे लिये ये नक्षत्र कल्याण करनेवाले हों।

स्वस्ति नो अस्तु अभयं नो अस्तु (१९।८।७)— हमारा कल्याण हो हमारा अभय हो।

कवच

वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि (१९।५८।४)— कवच बहुत और बडे सीओ।

अयं वाम देवहितं सनेम (१९।१२।१)— इससे देवोंका हित करनेवाला बल हम प्राप्त करें।

कीले

पुरः कृणुध्वं आयसीरधृष्टाः (१९।५८।४)— अमर लोहेके कीलेके शत्रुके अधीन न होनेवाले बनाओ।

मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तं (१९।५८।४)— तुम्हारे बर्तन न चूवें उनको सुदृढ बनाओ।

गोशाला

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः (१९।५८।४)— गोशाला बनाओ और वह तुम्हारे मानवोंका दूध पीनेका स्थान हो।

जल

ता अपः शिवाः (१९।२।५)— वह जल कल्याण करने वाला है।

अपोऽयक्ष्मं करणीः— जल रोग दूर करनेवाला है।

यथैव तृप्यते मयः, तास्त आ दत्त भेषजीः— जिससे सुख होगा वैसा यह जल तुम्हें आपधी रूप बनेगा।

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपः (१९।२।३)— वैद्योंके लिये यह जल अधिक रोग नाश करनेवाला होता है।

जीवा स्थ (१९।६९।१)— जल जीवन देनेवाला है।

उपजीवा स्थ— करीब करीब जीवन देनेवाला जल है।

संजीवाः स्थ— सम्यक्तया जीवन देनेवाला जल है।

जीवला स्थ— जीवन शक्तिसे युक्त जल है।

जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्— हम जीवेंगे पूर्ण आयु तक जीवित रहेंगे।

पुष्टि

औदुम्बरो वृषा मणिः स मा सृजतु पुष्ट्या (१९।३१।१)- औदुम्बर मणि बलवान है वह मुझे पुष्टि देवे।

औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे (१९।३१।३)- औदुम्बर मणिके तेजसे धाता मुझे पुष्टि देवे।

पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् (१९।३१।५)— पशुओंसे दूध और औषधियोंका रस ज्ञानपति सविताने मुझे दिया है।

तेजोऽसि तेजो मयि धारय (१९।३१।१२)— तू तेज है मुझमें तेज धारण कर।

रयिरसि रयिं मे धेहि— तू धन है मुझे धन दे।

पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समंग्धि (१९।३१।११)— तू पुष्टि है मुझे पुष्ट कर।

रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् (१९।३१।१४)— सब वीर पुत्रोंके साथ धन हमें दे।

मेधा

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम (१९।४०।१)— जो मेरे मनमें और वाणीमें दोष है तथा क्रोधी पुरुषके पास गयी है (उससे यह दोष हुआ है)।

विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः— सब देवोंकी सहायतासे बृहस्पति उस दोषको दूर करे।

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्रमथिष्टन (१९।४०।२)— हमारी मेधाको तथा ज्ञानको जल विनष्ट न करे।

अहं सुमेधा वर्चस्वी— मैं उत्तम बुद्धिवान् और तेजस्वी बनूं।

मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः (१९।४०।३)— मेरी मेधा दीक्षा और जो तप है उसका नाश न हो।

शिवा नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः— यह जल हमारी आयुके लिये कल्याणकारी हो जल मातायें हमें सुख दें।

दीर्घ आयु

सर्वमायुरशीय (१९।६१।१)— मैं पूर्ण आयुको प्राप्त करूं।

आयुः प्राणं प्रजां वर्धय (१९।६३।१)— मेरी आयु प्राण और प्रजाको बढा।

आयुरस्मासु धेहि (१९।६४।४)— हमें आयुष्य दे।

जीवेम शरदः शतं (१९।६७।२)— हम सौ वर्ष जीवें।

भूयसीः शरदः शतात् (१९।६७।८)— सौ वर्षोंसे भी अधिक जीवें।

जीव्यासमहं— (१९।७०।१)— मैं जीवित रहूं।

सर्वमायुर्जीव्यासं— संपूर्ण आयु तक जीवित रहूं।

जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति (१९।२६।१)— जो [शरीर पर सुवर्णको] धारण करता है उसको वृद्ध अवस्थाके पश्चात् मृत्यु होता है।

आयुष्मान् भवति यो बिभर्ति (१९।२६।२)— जो सुवर्ण धारण करता है वह दीर्घायु होता है।

आयुषे त्वा वर्चसे त्वा ओजसे च बलाय च (१९।२६।१)— दीर्घायु, तेज सामर्थ्य और बलके लिये (सुवर्णका) धारण करता हूं।

तत्त आयुष्यं भुवत् तत्ते वर्चस्यं भुवत् (१९।२६।४)- यह सुवर्ण तुम आयु बढानेवाला हो तेज बढानेवाला हो।

इदं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे (१९।२८।१)— इस मणिको तेरे शरीर पर दीर्घायु और तेजके लिये बांधता हूं।

तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः (१९।२ ।४)- सब देव उस तुझे वृद्धावस्था तक भरण-पोषणके लिये देते हैं।

त्वया सहस्रकाण्डेन आयुः प्रवर्धयामहे (१९।३२।३)— तुझ सहस्र काण्डवालेके द्वारा हम अपनी आयु बढाते हैं।

देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः (१९।३३।१)— दिव्य मणि हमें दीर्घ आयु देवे।

यज्ञ*

इमं यज्ञं गिरः वर्धयन्तु (१९।१।१) — इस यज्ञका वर्णन हमारी वाणियां करें।

[illegible]

रूपं रूपं वयो वयः संरभ्य एनं परिष्वजे (१९।१।३)— रूप और वयके अनुसार इस यज्ञको हम सुरक्षित रखते हैं।

यज्ञमिमं चतस्रः प्रदिशः वर्धयन्तु (१९। ।३)— इस यज्ञको चारों दिशाएं बढावें।

नमसा सदेवाः (१९।५८।१)— एक विचारवाले दिव्य भावनासे यज्ञ करें।

यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च (१९।५८।५)— यज्ञकी यह आंख तथा मुख्य मुख है।

वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि— वाणी कान और मनसे हवन करता हूं।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा (१९।५८।५)— इस यज्ञका विश्वकर्माने विस्तार किया।

देवा यन्तु सुमनस्यमानाः— उत्तम प्रसन्न मनवाले देव इस यज्ञके पास आवें।

इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य (१९।५८।६)— इस यज्ञके प्रति पत्नीके साथ आओ।

त्वं व्रतपा असि (१९।५९।१)— तू व्रतका पालक है।

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां (१९।५९।२)— यदि हमने आप विद्वानोंके व्रत तोडे हैं।

अग्निष्टद् विश्वादा पृणातु— अग्नि वह दोष दूर करे।

आ देवानामपि पन्थामगन्म (१९।५९।३)— हम देवोंके मार्गपर आ गये हैं।

यच्छक्नवाम तदनु प्रवोढुम्— और समर्थ हुए तो उस यज्ञ मार्गको आगे बढावेंगे।

सोऽध्वरान् स ऋतून् कल्पयाति— वह अहिंसक कर्मोंको और ऋतुओंको वह बनाता है।

ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं (१९।४२।२)— ज्ञान ही यज्ञमें मुख्य तत्त्व है।

अंहोमुचे प्र भरे मनीषां (१९।४२।३)— पापसे छुडानेवालेकी प्रशंसा करते हैं।

सुत्राम्णे सुमतिं आवृणानः— उत्तम रक्षा करनेवालेके विषयमें उत्तम बुद्धि धारण करते हैं।

सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः (१९।४२।४)— यजमानकी कामनाएं सत्य हों।

रात्री

अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि (१९।४७।२)— न विनष्ट होते हुए हम हे बडी अंधेरी रात्रि! हम पार होंगे।

तमिमां अद्य पायुभिः नु पाहि (१९।४७।५)— उन रक्षकोंसे हमारा रक्षण हो।

रक्षा माकिः (१९।४७।६)— हमारी रक्षा कर।

मा नो अघशंस ईशत— पापी हमारे ऊपर स्वामित्व न करे।

मा नो दुःशंस ईशत— दुष्ट कीर्तिवाला हमपर स्वामित्व न करे।

परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः (१९।४७।७)— बडे मार्गसे चोर और डाकू दौड जाय।

परेणामायुरेतु— पापी दूरसे भाग जाय।

त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि (१९।४७।९)— हे रात्री! तेरे अन्दर हम रहेंगे सोयेंगे तू जागती रह।

त्वं रात्रि पाहि नः (१९।४८।२)— हे रात्रि! तू हमारी रक्षा कर।

गोपाय नो विभावरि (१९।४८।४)— हे तेजस्विनी रात्रि! हमारी रक्षा कर।

सा नो वित्तेऽधि जागृहि— वह तू हमारे धनके लिये जागती रह।

अस्मा आयस्व नर्याणि जाता (१९।४९।२)— हमारी रक्षा कर मानवोंका हित करनेके लिये तू उत्पन्न हुई है।

असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसः (१९।४९।६)— सर्व वीरोंसे और सर्व धनोंसे युक्त हम हों।

यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः। रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् (१९।४९।९)— जो आज पापी शत्रु आता है रात्री उसका गला और सिर काटे।

प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत्। यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति (१९।४९।१०)— पांवोंसे और हाथोंसे तोड दे जो पापी हमारे समीप आ जाय वह पीसा जाकर भाग जाय।

रात्रिं रात्रिं अरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयं (१९।५०।३)— प्रत्येक रात्रीमें विनष्ट न होते हुए हम अपने शरीरसे सुरक्षित रहेंगे।

गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः— गंभीर जलको जैसे पापी न पार हो वैसे शि। नौकाके [लोग पार नहीं होते।]

इषा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति (१९।५०।४)— हे रात्रि! जो हमपर बाधा करता है उसको गिरा दे।

राष्ट्र

तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन (१९।२४।१)— हे ब्रह्मणस्पते। उस शक्तिसे उसको राष्ट्रके लिये धारण कर।

आयुषे महे क्षत्राय धत्तन (१९।२४।२)— दीर्घायु तथा बडे क्षात्रबलके लिये धारण करो।

एनं जरसे नयात्— इसको वृद्धावस्थातक ले चलो।

वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः (१९।२४।४)— तेजसे इसको जराके पश्चात् मृत्यु आजाय, इसको दीर्घायु करो।

जरां गच्छ (१९।२४।५)— वृद्धावस्थाको प्राप्त हो।

भवा गृष्टीनामभिशस्तिपा उ— प्रजाओंको विनाशसे बचानेवाला हो।

शतं च जीव शरदः पुरूचीः वसूनि चारुर्वि भजासि जीवन् (१९।२४।६)— अति दीर्घ ऐसे सौ वर्ष जीवित रह और जीवित रहनेपर धनोंको बांट।

हिरण्यवर्णो अजरः सुवीरो जरामृत्युः प्रजया सं विशस्व (१९।२४।८)— सुवर्ण जैसा रंगवाला जरारहित उत्तम वीर जराके पश्चात् मृत्युवाला होकर अपनी प्रजाके साथ रहकर आराम कर।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपसेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उप सं नमन्तु (१९।४१।१)— जनताका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषियोंने पहिले तप किया और दीक्षा ली। उससे राष्ट्र बल और ओज हुआ इस लिये सब ज्ञानी इस राष्ट्रके सामने झुक जांय।

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति। तांस्ते रन्धयामि हरसा (१९।६६।१)— जो असुर लोहेके जाल और लोहेके पाश लेकर संचार करते हैं उनको मैं विनष्ट करता हूं।

सहस्रऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन्याहि वज्रः— हजार नोकवाला वज्र शत्रुओंको मारे और हमारा रक्षण करे।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् (१९।१३।२)— त्वरावान तीक्ष्ण बैलके समान भयंकर शत्रुको मारनेवाला मनुष्योंको हिलानेवाला वीर है।

संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्— ललकारनेवाला पलक भी न झपकनेवाला अद्वितीय वीर सौ सेनाओंको जीतता है।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः (१९।१३।५)— अपने और शत्रुके बलको जाननेवाला, युद्धमें स्थिर रहनेवाला बडा वीर साहसी बलिष्ठ उग्र शूर और शत्रुका पराजय करनेवाला है।

अभिवीरो अभिषत्वा सहोजित्— विशेष वीर सत्त्ववान् बल बलसे शत्रुको जीतनेवाला शूर होता है।

इम वीरमनु हर्षध्वमुग्रम् (१९।१३।६)— इस उग्रवीरका हर्ष बढाओ।

ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा (१९।१३।६)— ग्रामका विजेता गौओंको जीतनेवाला वज्रबाहु विजयी और अपनी शक्तिसे शत्रुको मारनेवाला वीर है।

दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु (१९।१३।७)— जो हिलानेके लिये अशक्य शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है वह युद्धोंमें हमारी सेनाकी रक्षा करे।

रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः (१९।१३।८)— राक्षसोंको मारनेवाला शत्रुको बाधा पहुंचाता है।

प्रभञ्जन् शत्रून् प्रमृणन्नमित्रान् अस्माकमेध्यविता तनूनाम् (१९।१३।८)— शत्रुका नाश करता हुआ अमित्रोंका वध करके हमारे शरीरोंका रक्षक हो।

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु (१९।१३।११)— हमारे वीर ऊंचे हो जांय।

अस्मान् देवासोऽवता हवेषु- देव युद्धोंमें हमारी रक्षा करें।

वर्चो आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् (१९।३७।२)— मेरे शरीरमें तेज सामर्थ्य पराक्रम शक्ति और बल स्थापन कर।

ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा। अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय (१९।३७।३)— अन्न बल सामर्थ्य शत्रुका पराजय राष्ट्रसेवा और सौ वर्षकी आयुके लिये तुझे मैं पहनता हूं।

सभ्य! सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः (१९।५५।५)— हे सभ्य! मेरी सभाका रक्षण कर और सभ्य सभासद हैं वे भी सभाकी रक्षा करें।

रोगनाशन

न तं यक्ष्मा अरुन्धते (१९।३८।१)— रोग उसको रोकता नहीं।

विष्वञ्चस्तस्माद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते (१९।३८।२) जैसे मृग और घोडे भाग जाते हैं वैसे रोग उससे भाग जाते हैं।

तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः (१९।३९।१) सब रोगोंका नाश कर, यातना देनेवालोंका नाश कर।

स कुष्ठो विश्वभेषजः (१९।३९।५)— वह कुष्ठ सब औषधि युक्त है।

एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि (१९।५७।१)- इस तरह सब दुष्ट स्वप्न अप्रियके पास ले जाते हैं।

स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः (१९।५७।२)- जो मेरेमें पाप है वह द्वेष करनेवालेके पास भेजते हैं।

आयुषोऽसि प्रतरणं (१९।४४।१)— तू आयुष्यका बढानेवाला है।

प्राण प्राणं त्रायस्व (१९।४४।४)— हे प्राण! प्राणकी रक्षा कर।

निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च— हे दुर्गति! दुर्गतिके पाशोंसे हमें छोड।

मुञ्च न पर्यंहसः (१९।४४।८)— पापसे हमें बचाओ।

शत्रुनाश

इमं मे सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः (१९।२८।१)— यह दर्भमणि शत्रुको दबानेवाला और द्वेष करनेवालोंके हृदयको तपानेवाला है।

द्विषतस्तापयन् हृदः शत्रूणां तापयन् मनः (१९।२८।२)- द्वेष करनेवालोंके हृदयोंको ताप देता है, और शत्रुओंके मनको तपाता है।

दुर्हार्दः सर्वांस्त्वं दर्भ घर्म इवाभीन्त्संतापयन्— दुष्ट हृदयवाले सब शत्रुओंको हे दर्भ! गर्मीके समान ताप दे।

दर्भ इवाभितपन् दर्भ द्विषतः (१९।२८।१)— दर्भके समान, हे दर्भ ! द्वेष करनेवालोंको तपा ।

हृदः सपत्नानां भिन्धि— शत्रुओंके हृदयोंको तोड ।

भिन्धि दर्भ सपत्नानां हृदयं द्विषतां मणे (१९।२८।४) हे दर्भमणे ! शत्रुओं और द्वेष करनेवालोंके हृदय तोड दे ।

शिरः एषां विपातय— इन दुष्टोंका सिर गिरा दे ।

भिन्धि दर्भ सपत्नान् (१९।२८।५)— हे दर्भ ! शत्रुओंको तोड दे ।

भिन्धि मे पृतनायतः— मुझपर सैन्य भेजनेवालेको तोड दे ।

भिन्धि मे सर्वान् दुर्हार्दः— सब दुष्ट हृदयवालोंको तोड दे ।

भिन्धि मे द्विषतो मणे— हे मणे ! द्वेष करनेवालोंको तोड दे । ऐसे ही ६-९ मंत्रमें वाक्य हैं । ऐसे ही १९।२९ में वाक्य हैं ।

तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नान् जहि वीर्यैः (१९।३०।१) इस शक्तिसे इसको कवचवाला करके अपने वीर्योंसे शत्रुका पराभूत कर ।

त्वं राष्ट्राणि रक्षसि (१९।३०।३)— तू राष्ट्रोंका रक्षण करता है ।

मणिं क्षत्रस्य वर्धनम् (१९।३०।४)— यह मणि क्षात्रतेजको बढाता है ।

तनूपानं कृण्वामि ते— मैं तेरे शरीरका रक्षक (इस मणिको) बनाता हूं ।

त्वमसि सहमानः अहमस्मि सहस्वान् (१९।३२।५)— तू साहस युक्त हो मैं साहस करनेवाला हूं ।

उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान् सहिषीमहि— हम दोनों बलवान् होकर शत्रुओंका पराभव करेंगे ।

सहस्व नो अभिमातिं सहस्व नो पृतनायतः (१९।३२।६)— हमारे शत्रुका और हमपर सैन्य भेजनेवालेका पराभव कर ।

सहस्व सर्वान् दुर्हार्दः— सब दुष्ट हृदयवालोंका पराभव कर ।

सुहार्दो मे बहून् कृधि— उत्तम हृदयवाले मेरे बहुत मित्र कर ।

स नोऽयं दर्भः परिपातु विश्वतः (१९।३२।९)— यह दर्भमणि हमारी सब ओरसे रक्षा करे ।

तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः— उससे हमपर आनेवाले सैन्यका पराभव करूंगा ।

स नोऽयं मणिः परिपातु विश्वतः (१९।३३।१)— वह यह मणि हमारी चारों ओरसे रक्षा करे ।

नुदस्व सपत्नानधरांश्च कृणु (१९।३३।२)— शत्रुओंको दूर कर और उनको नीचे कर ।

त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् (१९।३३।३)— तू हमसे पापोंको दूर करके हमें पवित्र करो ।

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः (१९।३३।४)— यह मणि वीर राजा राक्षसोंका वध करनेवाला शत्रुका पराभव करनेवाला और सब जनोंका हित करता है ।

ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं बध्नामि जरसे स्वस्तये— यह देवोंका उग्र बल है उसको तेरे शरीरपर बांधता हूं । इससे तू वृद्धावस्थातक कल्याण प्राप्त करके जीयोगे ।

दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि (१९।३३।५)— दर्भमणिसे तू अनेक पराक्रम करेगा ।

दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः— दर्भमणि धारण करनेसे तू अपनी शक्ति बढनेके कारण दुःखी न होगे ।

सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः— सूर्यके समान चारों दिशाओंमें प्रकाशित होता रहे ।

सर्वं रक्षतु जंगिडः (१९।३४।१)— जंगिडमणि सबकी रक्षा करे ।

अथा अरातिं दूषणः (१९।३४।४)— जंगिडमणि शत्रुका विनाश करता है ।

जंगिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्— जंगिडमणि हमारी दीर्घ आयुष्य करे ।

स जंगिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः (१९।३४।५)— यह जंगिडमणिका महिमा सब ओरसे हमारी रक्षा करे ।

जंगिडः परिपाणः सुमंगलः (१९।३४।७)— जंगिडमणि चारों ओरसे रक्षा करनेवाला और कल्याण करनेवाला है ।

अमीवाः सर्वाश्चातयन् जहि रक्षांसि ओषधे (१९।३४।९)— सब रोग दूर कर तथा सब राक्षसोंका नाश कर हे औषधे !

स नो रक्षतु जंगिडः (१९।३५।१)— जंगिडमणि हमारी रक्षा करे ।

परिपाणमरातिहम्— यह जंगिडमणि सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला तथा शत्रुको दूर करनेवाला है।

परिपाणोऽसि जंगिडः (१९।३५।२)— तू जंगिडमणि रक्षक हो।

शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान् रक्षांसि तेजसा (१९।३६।१)— शतवारमणि यक्ष्मरोग और राक्षसोंका तेजसे नाश करता है।

वर्चसा सह मणिर्दुर्णाम चातनः— तेजके साथ यह मणि दुष्ट नामवाले रोगोंको दूर करता है।

शतं वीरानजनयत्— सौ वीरोंको जन्म देता है।

शतं यक्ष्मानपावपत्— सैकडों रोगोंको दूर करता है।

दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वाव रक्षांसि धूनुते— दुष्ट नामवाले सब रोगोंको नष्ट करके सब राक्षसोंको कँपाता है।

तत्ते बध्नामि आयुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु (१९।४६।१)— अस्तृतमणि तेरे शरीरपर दीर्घायु तेज ओज बलके लिये बांधता हूं, वह तेरी रक्षा करे।

अस्मिन्मण्यावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते (१९।४६।५)— इस अस्तृतमणिमें सौ वीर्य हैं और हजार प्राण शक्तियां हैं।

दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन (१९।४५।१)— हे अञ्जन! दुष्ट हृदयवालोंकी पसलियां तोड।

आञ्जन दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते (१९।४५।३)— यह अञ्जन दिशा-उपदिशाएं तेरे लिये कल्याण करनेवाली करे।

सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु (१९।४५।४)— इस अञ्जनके तेरे लिये सब दिशाएं निर्भय हों।

शान्ति

शान्ता नः सन्त्वोषधीः (१९।९।१)— सब औषधियां हमें शान्ति देनेवाली हों।

शं नो अस्तु कृताकृतम् (१९।९।२)— किया और न किया सब हमें शान्ति देनेवाला हो।

यदेव ससृजे घोरं तदेव शान्तिरस्तु नः (१९।९।३)— जिससे भयंकर परिणाम होता है वह हमें शान्ति देवे।

इन्द्रो मे शर्म यच्छतु (१९।९।१२)— इन्द्र मुझे सुख देवे।

ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु — ब्रह्मा मुझे सुख देवे।

सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु (१९।९।१२)— सब देव मुझे सुख देवें।

शं मे अस्तु अभयं मे अस्तु (१९।९।१३)— सुख हो, निर्भयता मुझे प्राप्त हो।

सर्वमेव शमस्तु नः (१९।९।१४)— सब मुझे सुख देनेवाला हो।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः (१९।१०।९)— हमारी प्रजाके लिये पर्जन्य सुख देवे।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु (१९।११।१)— सत्यके पालक हमें सुख देनेवाले हों।

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः (१९।११।५)— तुम सदा हमें कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो।

सर्वप्रिय

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च (१९।३२।८)— हे दर्भ! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रोंमें मैं प्रिय बनूं ऐसा कर।

इस तरह इस काण्डमें सुभाषित हैं। कई सूक्तोंमें सुभाषित अधिक हैं। समान सुभाषितके वाक्य होनेसे उनमेंसे एक ही वाक्य लिया है। पाठक बाकी अन्य सुभाषित स्वयं देखें।

पाठक इस काण्डका अच्छी तरह अध्ययन करके लाभ उठावें।

अनुवादकर्ता

श्री. दा. सातवलेकर

अध्यक्ष, स्वाध्याय मण्डल

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

उन्नीसवां काण्ड ।

विषय क्रमणिका

॥ उन्नीसवां काण्ड समाप्त ॥

[illegible]

15 [illegible]

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

एकोनविंश काण्डम्।

(१) यज्ञः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — यज्ञः, चन्द्रमाश्च।)

सं सं स्र॑वन्तु न॒द्यः१ सं वाताः॒ सं प॑त॒त्रिणः॑।
य॒ज्ञमि॒मं व॑र्धयता गिरः संस्रा॒व्ये॑ण ह॒विषा॑ जुहोमि ॥ १ ॥
इ॒मं होमा॑ य॒ज्ञम॑वते॒मं सं॑स्रावणा उ॒त।
य॒ज्ञमि॒मं व॑र्धयता गिरः संस्रा॒व्ये॑ण ह॒विषा॑ जुहोमि ॥ २ ॥
रू॒पंरू॑पं वयो॑वयः सं॒रभ्यै॑नं॒ परि॑ ष्वजे।
य॒ज्ञमि॒मं चत॑स्रः प्र॒दिशो॑ वर्धयन्तु संस्रा॒व्ये॑ण ह॒विषा॑ जुहोमि ॥ ३ ॥ (१)

---

(१) यज्ञः।

अर्थ— (नद्यः सं सं स्रवन्तु) नदियां बहती रहें (वाताः सं) वायु बहते रहें, (पतत्रिणः सं) पक्षी उडते रहें। (इमं यज्ञं गिरः वर्धयत) इस यज्ञको हमारी वाणियां बढावें। (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) सुखको प्रवाहित करनेवाले हविसे मैं हवन करता हूं ॥ १ ॥

मनुष्योंकी वाणियां यज्ञका नाम समाजमें या राष्ट्रमें बढावें। इससे सबका कल्याण होगा। जैसा नदियोंका प्रवाह चलता या वायु चलता रहा तो मनुष्योंका सुख बढता है उसी तरह यज्ञ होते रहे तो मनुष्योंका कल्याण होता रहता है। यज्ञमें (१) विद्वानोंका सत्कार (देवपूजा) (२) संगतिकरण अर्थात् एकता और (३) दान अर्थात् दीनोंकी सहायता ये तीन कर्मोंके भाव मुख्य हैं। इससे राष्ट्रका कल्याण होता है।

हे (होमाः) यज्ञो! (इमं यज्ञं अवत) इस यज्ञकी रक्षा करो। हे (संस्रावणाः) प्रवाहो! (उत इमं) और इस यज्ञकी सुरक्षा करो। हमारी वाणियां इस यज्ञका संवर्धन करें। मैं सुखको प्रवाहित करनेवाले हविसे हवन करता हूं ॥ २ ॥

सब यज्ञकी सुरक्षा करें क्योंकि यज्ञसे सबका कल्याण होता है।

(रूपं रूपं वयोवयः) प्रत्येक रूप और प्रत्येक आयुके अनुसार (संरभ्य) देखकर (एनं परिष्वजे) इस यज्ञ कर्ताको चारों ओरसे सुरक्षित रखता हूं॥ (इमं यज्ञं चतस्रः प्रदिशः वर्धयन्तु) इस यज्ञको चारों दिशाएं संवर्धित करें। मैं सुखको बढानेवाले हविसे हवन करता हूं ॥ ३ ॥

रूप और आयुके अनुसार यजमानको सुरक्षित रखता हूं। चारों दिशाओंमें रहनेवाले लोग यज्ञ करनेकी इच्छा जनतामें बढावें।

(२) आपः ।

(ऋषिः — सिन्धुद्वीपः । देवता — आपः ।)

शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः । शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः ॥ १ ॥
शं त आपो धन्वन्याः शं ते सन्त्वनूप्याः । शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः ॥ २ ॥
अनभ्रयः खनमाना विप्रा गम्भीरे अपसः । भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि ॥ ३ ॥
अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् । अपामह प्रणेजनेऽश्वा भवथ वाजिनः ॥ ४ ॥
ता अपः शिवा अपोऽयक्ष्मंकरणीरपः । यथैव तृप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजीः ॥ ५ ॥(८)

(३) जातवेदाः ।

(ऋषिः — अथर्वाङ्गिराः । देवता — अग्निः ।)

दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षाद्वनस्पतिभ्यो अध्योषधीभ्यः ।
यत्रयत्र विभृतो जातवेदास्तत स्तुतो जुषमाणो न एहि ॥ १ ॥

---

(२) आपः ।

अर्थ— (हैमवतीः आपः ते शं) हिमवान पर्वतसे आनेवाले जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायी हों । (उत्स्याः ते शं उ सन्तु) स्रोतोंसे बहनेवाले जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायी हों (सनिष्यदा आपः ते शं) वेगसे आनेवाले प्रवाह तुझे सुखदायक हों (वर्ष्याः ते शं उ सन्तु) वर्षासे आये जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायक हों ॥ १ ॥

(धन्वन्या आपः ते शं) मरुस्थलमें होनेवाले जलप्रवाह तुझे आनंद देनेवाले हों । (अनूप्याः ते शं सन्तु) देशमें बहनेवाले जलप्रवाह तेरे लिये सुखदायी हों (खनित्रिमाः आपः ते शं) खोदकर प्राप्त किये जल तेरे लिये सुखकारक हों । (याः कुम्भेभिः आभृताः शं) जो जल घडोंमें भरकर रखा है वह तुझे सुखकारक हो ॥ २ ॥

(अनभ्रयः खनमानाः) कुदालके बिना खोदे हुए (गम्भीरे अपसः) गंभीर जलके द्वारा (विप्राः) ज्ञानीयोंके समीप (आपः) जल (भिषग्भ्यः भिषक्तराः) वैद्योंके लिये अधिक रोगनाशक होते हैं । इन जलोंके विषयमें (अच्छा वदामसि) हम उत्तम बोलते हैं ॥ ३ ॥

जलचिकित्सा जो जानते हैं वे जलका उपयोग करके रोग दूर करते हैं । इसलिये जलके विषयमें हम उत्तम ही बोलते हैं ।

(दिव्यानां अपां अह) आकाशसे बरसनेवाले जल (स्रोतस्यानां अपां) स्रोतोंसे निकलनेवाले जलोंके विषयमें (अपां प्रणेजने) इन जलोंके प्रयोगके विषयमें (अश्वाः वाजिनः भवथ) घोडे अधिक बलवान् होते हैं ॥ ४ ॥

जलका योग्य उपयोग और प्रयोग करनेसे घोडे अधिक बलवान् होते हैं । मनुष्य भी जलप्रयोगसे नीरोग और बलिष्ठ होते हैं ।

(ताः आपः शिवाः) वह जल कल्याण करनेवाला है । (आपः अयक्ष्म-करणीः अपः) वह जल रोगोंको दूर करनेवाला है । (यथा एव मयः तृप्यते) जिस तरह सुख बढ सकता है, (ताः ते भेषजीः आ दत्त) वे जल तेरे लिये रोग दूर करनेवाले हैं उनका स्वीकार करो ॥ ५ ॥

जलचिकित्सासे रोग दूर होते हैं । इसलिये मनुष्य जलोंसे योग्य प्रयोग द्वारा आरोग्य प्राप्त करे ।

(३) जातवेदाः ।

(दिवः) द्युलोकसे (पृथिव्याः) पृथिवीसे (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्षसे (वनस्पतिभ्यः ओषधिभ्यः) वनस्पतियों और ओषधियोंसे (यत्र यत्र जातवेदाः विभृतः) जहां जहां अग्नि भरा रहता है (ततः स्तुतः) वहांसे प्रशंसित होकर (जुषाणः) सबका प्रेमी होकर (नः एहि) हमारे समीप आवे ॥ १ ॥

इन सब स्थानोंमें अग्नि है, द्युलोकमें सूर्य अन्तरिक्षमें विद्युत पृथ्वीपर आगके रूपमें औषधिवनस्पतियोंमें अनेक रूपसे अग्नि रहता है । वह हमारा सहायक बने ।

यस्ते॑ अ॒प्सु म॑हि॒मा यो वने॑षु॒ य ओष॑धीषु प॒शुष्व॒प्स्व१॒॑न्तः ।
अग्ने॒ सर्वा॑स्त॒न्व१॒॑: सं र॑भस्व॒ ताभि॑र्न॒ एहि॑ द्रविणो॒दा अज॑स्रः ॥ २ ॥
यस्ते॑ दे॒वेषु॑ महि॒मा स्व॒र्गो या ते॑ त॒नूः पि॒तृष्वा॑वि॒वेश॑ ।
पु॒ष्टिर्या ते॑ मनु॒ष्ये॑षु पप्र॒थेऽग्ने॒ तया॑ र॒यिम॒स्मासु॑ धेहि ॥ ३ ॥
श्रु॒त्कर्णा॑य क॒वये॒ वेद्या॑य॒ वचो॑भिर्वा॒कैरुप॑ यामि रा॒तिम् ।
यतो॑ भ॒यमभ॑यं॒ तन्नो॑ अ॒स्त्वव॑ दे॒वानां॑ यज॒ हेडो॑ अग्ने ॥ ४ ॥ (१२)

(४) आकूतिः ।

(ऋषिः — अथर्वाङ्गिराः । देवता — अग्निः ।)

यामाहु॑तिं प्रथ॒माम॑थ॒र्वा या जा॒ता या ह॒व्यमकृ॑णोज्जा॒तवे॑दाः ।
तां त॑ ए॒तां प्र॑थ॒मो जो॑हवीमि॒ ताभि॑ष्टु॒प्तो व॑हतु ह॒व्यम॒ग्निर॒ग्नये॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥

अर्थ— हे अग्ने! (यः ते अप्सु महिमा) जो तेरा जलोंमें महिमा है, (यः वनेषु) जो वनोंमें (यः ओषधीषु पशुषु अप्सु अन्तः) जो औषधियों पशुओं और जलोंमें है, (सर्वाः तन्वः संरभस्व) तुम्हारे वे सब शरीर उत्तम रीतिसे एकत्रित करके (ताभिः नः एहि) उनके साथ हमारे पास आओ और हमारे लिये (द्रविणोदाः अजस्रः) धन देनेवाला अविनाशी हो ॥ २ ॥

(यः ते देवेषु स्वर्गः महिमा) जो तेरा देवोंमें सुखदायी महिमा है (या ते तनूः पितृषु आविवेश) जो तेरा शरीर पितरोंमें पालकोंमें रहा है (या ते पुष्टिः मनुष्येषु पप्रथे) जो तेरी पोषक शक्ति मानवोंमें फैली है हे अग्ने! (तया अस्मासु रयिं धेहि) उससे हमारे अन्दर धन स्थापन कर ॥ ३ ॥

(श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय) सुननेवाले कान जिसके हैं जो कवि और जानने योग्य है उसके पास (वचोभिः वाकैः) वचनों और वाक्योंसे (रातिं उप यामि) दान मांगता हूं । (यतः भयं) जहांसे भय होना संभव हो (तत् नः अभयं अस्तु) वहांसे हमें अभय हो । हे अग्ने । (देवानां हेडः यज) देवोंके क्रोधको शान्त कर ॥ ४ ॥

भावार्थ — प्रार्थना करनेवालोंका कहना सुनना योग्य है । कविः-ज्ञानी । वेद्यः- जानने योग्य । उपासक अपने भाषणसे दान मांगता है । जहांसे भयकी संभावना हो वहांसे निर्भयता प्राप्त हो । जहांसे भय दूर हो । देवोंका क्रोध अपने ऊपर न हो ऐसा अपना आचरण रखना चाहिये ।

(४) आकूतिः ।

(अथर्वा) अथर्वाने (यां प्रथमां आहुतिं) जिस प्रथम आहुतिका (अकृणोत्) हवन किया (या जाता) जो आहुती बनी और (जातवेदाः या हव्यं अकृणोत्) जातवेद अग्निने जिसका हवन किया (तां एतां प्रथमः ते जोहवीमि) उसको मैं पहिले तेरे लिये हवन करता हूं (ताभिः स्तुतः अग्निः हव्यं वहतु) उनसे प्रशंसित हुआ अग्नि हवन किये हुएको ले जाय ऐसे (अग्नये स्वाहा) अग्निके लिये समर्पण करता हूं ॥ १ ॥

अथर्वाने प्रथम अग्नि उत्पन्न करके उसमें प्रथम आहुति दी । अग्निने उसको पहिला हव्य करके स्वीकार किया । यहांसे यज्ञ शुरू हुआ ।

अग्निर्जाता अथर्वणा । ऋ. १०।२१।५। अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने । वा. य. ११।३२ यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते । ऋ. १।८३।५ अथर्वाने अग्नि प्रथम उत्पन्न किया जिससे यज्ञ शुरू हुआ ।

*

आकूतिं देवीं सुभगां पुरो दधे चित्तस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
यामाशामेमि केवली सा मे अस्तु विदेयमेनां मनसि प्रविष्टाम् ॥ २ ॥
आकूत्या नो बृहस्पत आकूत्या न उपा गहि ।
अथो भगस्य नो धेह्यथो नः सुहवो भव ॥ ३ ॥
बृहस्पतिर्म आकूतिमाङ्गिरसः प्रति जानातु वाचमेताम् ।
यस्य देवा देवताः संबभूवुः स सुप्रणीताः कामो अन्वेत्वस्मान् ॥ ४ ॥ (११)

(५) जगतो राजा ।

(ऋषिः — अथर्वाङ्गिराः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ १ ॥ (१२)

अर्थ— (सुभगां आकूतिं देवीं) सौभाग्यवाली इच्छा देवीको (पुरः दधे) आगे धर देता हूं। वह (चित्तस्य माता) चित्तकी माता (नः सुहवा अस्तु) हमारे लिये सुगमतासे बुलाने योग्य हो। (यां आशां केवली एमि) जिस दिशामें मैं उस कामनाकी ओर जाता हूं (सा मे अस्तु) वह मेरी हो। (एनां मनसि प्रविष्टां विदेयं) इसको मनमें प्रविष्ट हुई प्राप्त करूं ॥ २ ॥

मनकी इच्छा यह मुख्य है। उससे सब कर्म शुरू होते हैं। इसलिये यह मनकी इच्छा मुख्य है जिससे चित्त कार्य करने लगता है। जिस उत्तम कार्य करनेकी इच्छा मैं करता हूं वह सिद्ध हो जाय।

हे बृहस्पते! (आकूत्या आकूत्या नः नः उपागहि) प्रबल इच्छा शक्तिके साथ तू हमारे पास आ। (अथो भगस्य नः धेहि) और भाग्य हमें दे। (अथो नः सुहवः भव) और सुगम रीतिसे बुलाने योग्य हो ॥ ३ ॥

ज्ञानीके पास प्रबल इच्छा हो जिससे भाग्य प्राप्त होगा।

(आंगिरसः बृहस्पतिः) आंगिरस कुलका बृहस्पति (मे आकूतिं एतां वाचं) मेरी इस प्रबल इच्छावाली वाणीको (प्रति जानातु) जाने। (यस्य देवा देवताः सं बभूवुः) जिसके साथ देव और देवता रहते हैं, (स सुप्रणीताः कामः) वह उत्तमरीतिसे प्रयोगमें लाया काम (अस्मान् अन्वेतु) हमारे समीप आ जावे ॥ ४ ॥

प्रबल इच्छासे प्रेरित हुई वाणी शक्तिवाली होती है। उसके साथ दिव्य शक्तियां रहती हैं ऐसी इच्छा हमारी सफल होती रहे।

(५) जगतो राजा ।

(इन्द्रः) इन्द्र, प्रभु (जगतः चर्षणीनां) पशु, पक्षि आदि जंगमोंका मनुष्योंका (अधि क्षमि विषुरूपं यत् अस्ति) पृथिवी पर जो भी अनेक रंगरूपवाले पदार्थ हैं उन सबका (राजा) एक अद्वितीय राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) वहांसे वह दाताको अनेक प्रकारके धन देता है। (उपस्तुतः चित्) उसकी स्तुति करनेपर (अर्वाक् राधः चोदत्) वह इधर धन भेजता है ॥ १ ॥

स्थावर जंगमका एक अद्वितीय राजा परमेश्वर ही है। जो भी यहां वस्तुमात्र है उसपर उसीका अधिकार है। वह दाताको धन देता है। स्तुति करनेवालेके पास वह धन भेजता है। उसके गुणोंको जाननेसे मनुष्य धन्य होता है।

(१) जगदीश पुरुष ।

(ऋषिः — नारायणः । देवता — पुरुषः ।)

सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत्पादस्येहाभवत्पुनः । तथा व्यक्रामद्विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २ ॥
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत्सह ॥ ४ ॥
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्य किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ ५ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६ ॥

---

(१) जगदीशः पुरुषः ।

अर्थ— (सहस्र-बाहुः) हजारों बाहुवाला (सहस्र-अक्षः) हजारों आंखोंवाला (सहस्रपात्) हजारों पांववाला एक (पुरुषः) पुरुष है (सः भूमिं विश्वतः वृत्वा) वह भूमिको चारों ओरसे घेर कर (दशांगुलं अत्यतिष्ठत्) दस अंगुल विश्वको व्याप कर रहा है ॥ १ ॥

हजारों मनुष्योंके बाहु, आंख, पांव आदि अवयव जिसके अवयव हैं ऐसा मानवसमाजरूपी विराट् पुरुष पृथिवीके चारों ओर है । सब मानवोंके सब अवयव इसके अवयव हैं । दस अंगुल रूप विश्वको घेर कर वह रहा है । पृथिवीके चारों ओर जो मानवसमाज है वह मिलकर एक पुरुष है ।

(त्रिभिः पद्भिः द्यां अरोहत्) तीन अंशोंसे द्युलोक पर चढा है और (अस्य पात् इह पुनः अभवत्) इसका एक अंश यहां पुनः पुनः होता है । (तथा विष्वङ् अशन-अनशन अनु व्यक्रामत्) तथा चारों ओर खानेवाले और न खानेवाले चेतन और जड इनमें व्याप रहा है ॥ २ ॥

इसके तीन अंश द्युलोकको व्याप रहे हैं और एक अंश यहां जड और चेतन रूपमें दीख रहा है । यहां यह वारंवार बनता है ।

(तावन्तः अस्य महिमानः) इसके इतने महिमा हैं । वह (ततः ज्यायान् च पूरुषः) पुरुष तो उससे बडा है । (अस्य पादः विश्वा भूतानि) इसका एक अंश ये सब भूत हैं और (अस्य त्रिपाद् दिवि अमृतं) इसके तीन अंश द्युलोकमें अमर हैं ॥ ३ ॥

(यद् भूतं यत् च भाव्यं) जो बना है और जो बनेगा (इदं सर्वं पुरुष एव) यह सब पुरुष ही है । (उत अमृतत्वस्य ईश्वरः) और वह अमरत्वका स्वामी है (यत् अन्येन सह अभवत्) जो दूसरे-अन्यके-साथ रहता है ॥ ४ ॥

जो भूतकालमें हुआ और जो भविष्यमें होगा वह सब यह पुरुष ही है । वह अमरत्वका स्वामी है जो सबके साथ रहता है ।

(यत् पुरुषं व्यदधुः) जो विद्वान् इस पुरुषका वर्णन करते हैं उन्होंने इसकी (कतिधा व्यकल्पयन्) कितने प्रकारसे कल्पना की है ? (अस्य मुखं किं) इसका मुख कौन है (किं बाहू) इसके बाहू कौन हैं (किं ऊरू) जांघें कौन हैं और (पादा उच्येते) पांव कौन कहे जाते हैं ॥ ५ ॥

पुरुष रूप जिसका वर्णन किया जाता है उसके मुख, बाहू, उदर और पांव कौन हैं ?

(अस्य मुखं ब्राह्मणः) इस पुरुषका मुख ब्राह्मण ज्ञानी है (राजन्यः बाहू अभवत्) क्षत्रिय इसके बाहू हुए हैं (मध्यं तत् अस्य यत् वैश्यः) इसका मध्यभाग वैश्य है (पद्भ्यां शूद्रः अजायत) पांवसे निम्न शूद्र हुआ है ॥ ६ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये इस पुरुषके मुख, बाहू, मध्यभाग और पांव हैं अर्थात् चार वर्ण ये इस पुरुषके चार अंग हैं ।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ७ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥ ८ ॥

विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ९ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १० ॥

तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रशः। तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ १३ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्। पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४ ॥

अर्थ— (मनसः चन्द्रमाः जातः) उसके मनसे चन्द्रमा हुआ है, (चक्षोः सूर्यः अजायत) आंखसे सूर्य हुआ। (मुखात् इन्द्रः च अग्निः च) उसके मुखसे इन्द्र और अग्नि हुए हैं। (प्राणात् वायुः अजायत) उस पुरुषके प्राणसे वायु हुआ है ॥ ७ ॥

उस पुरुषके (नाभ्याः अन्तरिक्षं आसीत्) नाभीसे अन्तरिक्ष हुआ (शीर्ष्णः द्यौः सं अवर्तत) सिरसे द्युलोक हुआ। (पद्भ्यां भूमिः) पांवोंसे भूमि हुई (दिशः श्रोत्रात्) कानसे दिशाएं (तथा लोकान् अकल्पयन्) और इस प्रकार अन्य लोकोंकी कल्पना– प्रजापतिके शरीरके अंगोंपर– की गई है ॥ ८ ॥

(अग्रे विराट् समभवत्) प्रथम विराट् उत्पन्न हुआ (विराजः अधि पूरुषः) विराट्के ऊपर अधिष्ठाता पुरुष हुआ। (सः जातः अति अरिच्यत) वह उत्पन्न होते ही फैल गया (भूमिं अथो पश्चात् पुरः) प्रथम भूमिपर और पश्चात् नाना शरीरोंमें फैल गया ॥ ९ ॥

(यत् पुरुषेण हविषा) जब पुरुषरूप हविसे (देवाः यज्ञं अतन्वत) देवोंने यज्ञ किया (वसन्तः अस्य आज्यं आसीत्) वसन्त ऋतु इसका घी था (ग्रीष्मः इध्मः) ग्रीष्म ऋतु काष्ठ था और (शरत् हविः) शरद ऋतु हवि था ॥ १० ॥

देवोंके यज्ञमें इन ऋतुओंमें होनेवाले पदार्थ ही यज्ञकी सामग्री थी।

(तं अग्रशः जातं) उस प्रथम उत्पन्न हुए (यज्ञं पुरुषं) यज्ञीय पुरुषको (प्रावृषा प्रौक्षन्) वृष्टिके जलसे सिंचन किया (तेन) उससे (साध्याः वसवः च ये देवाः) साध्य और वसु आदि जो देव हैं वे (अयजन्त) यज्ञ करते रहे ॥ ११ ॥

(तस्मात् अश्वाः अजायन्त) उससे घोडे उत्पन्न हुए (ये च के च उभयादतः) जिनके दोनों ओर दांत होते हैं। (गावः जज्ञिरे तस्मात्) उससे गौवें उत्पन्न हुईं (तस्मात् अजावयः जाताः) उससे बकरियां और भेडियां उत्पन्न हुईं ॥ १२ ॥

(तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) उस सर्वस्वकी आहुति देनेके यज्ञसे (ऋचः सामानि जज्ञिरे) ऋचाएं और साम गान उत्पन्न हुए। (तस्मात् छन्दः ह जज्ञिरे) उस यज्ञसे छन्द अर्थात् अथर्ववेद उत्पन्न हुआ (तस्मात् यजुः अजायत) उस यज्ञसे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ ॥ १३ ॥

(तस्मात् सर्वहुतः यज्ञात्) उस सर्व हवन करनेके यज्ञसे (पृषत् आज्यं संभृतं) दही और घी उत्पन्न हुआ। (तान् वायव्यान् पशून्) उन वायव्य पशुओंसे (आरण्याः ग्राम्याः च ये) आरण्य पशु और ग्राम्य पशु ऐसे पशु उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः। देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः। राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥१६॥ (११)

(७) नक्षत्राणि।

(ऋषिः — गार्ग्यः। देवता — नक्षत्राणि।)

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ १ ॥
सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥

अर्थ — (देवाः यत् यज्ञं तन्वानाः) देव जो यज्ञ कर रहे थे (अस्य सप्त परिधयः आसन्) उस यज्ञके सात परिधि थे (त्रिः सप्त समिधः कृताः) तीन गुणा सात समिधाएं की थी और (पुरुषं पशुं अबध्नन्) परमेश्वररूपी पुरुषको ध्यानके लिये चित्तमें बांधा था। उस पर ध्यान वे लगाते थे ॥ १५ ॥

(बृहतः देवस्य) बडे देवके अर्थात् (सोमस्य राज्ञः) सोम राजाके (मूर्ध्नः) सिरसे (सप्ततीः सप्त) सत्तर बार सात (अंशवः) किरणें (अजायन्त) उत्पन्न हुए (जातस्य पुरुषात् अधि) जब वह पुरुष उत्पन्न हुआ ॥ १६ ॥

ये किरण सूक्ष्म अंशरूप तत्त्व हैं जिनसे यह सृष्टी बनी है। बडा देव सोम राजा—सर्वाधार शान्त प्रभु है। जिससे ये तत्त्व प्रगट होकर सब सृष्टि बनी है।

सब मानव समाज जो इस पृथिवी पर चारों ओर है वह सब मानव समाज इस पुरुषका शरीर है। हजारों मुख हजारों बाहु हजारों उदर और हजारों पांव इस पुरुषके हैं यह वर्णन इस तरह देखना और समझना चाहिये।

(७) नक्षत्राणि।

(चित्राणि) चित्रविचित्र (साकं दिवि रोचनानि) साथ साथ द्युलोकमें प्रकाशित होनेवाले (सरीसृपाणि) सदा गतिशील (भुवने जवानि) भुवनमें वेगवान् (अ-हानि) विनष्ट न होनेवाले नक्षत्रोंको (तुर्मिशं सुमतिं इच्छमानः) तथा अग्निप्रकाशक उत्तम बुद्धिकी इच्छा करता हुआ मैं (गीर्भिः नाकं सपर्यामि) वाणी वाणियोंसे सुखपूर्ण स्वर्गलोककी प्रशंसा गाता हूं ॥ १ ॥

हे अग्ने! (कृत्तिका रोहिणी सुहवं च अस्तु) कृत्तिका और रोहिणी ये नक्षत्र मेरे लिये सुखसे भावना करने योग्य हों। (मृगशिरः भद्रं) मृगशिर नक्षत्र कल्याण करनेवाला हो (आर्द्रा शं) आर्द्रा नक्षत्र शान्ति देनेवाला हो। (पुनर्वसू सूनृता) पुनर्वसु नक्षत्र उत्तम वाक्शक्ति देनेवाला हो (पुष्यः चारु) पुष्य नक्षत्र मेरे लिये उत्तम हो। (आश्लेषा भानुः) आश्लेषा प्रकाश देवे (मघा मे अयनं) मघा नक्षत्र मेरे लिये प्रगति करनेवाला हो ॥ २ ॥

(पूर्वा फल्गुन्यौ पुण्यं) पूर्वा फाल्गुनीके दो नक्षत्र पुण्यकारक हों (अत्र हस्तः चित्रा शिवा) यहां हस्त और चित्रा कल्याणकारी हों। (स्वाति मे सुखः अस्तु) स्वाती नक्षत्र मेरे लिये सुखकारी हो (राधे विशाखे) हे राधे और विशाखे! तुम दोनों (सुहवा) उत्तम भावना करने योग्य हो। (अनुराधा ज्येष्ठा मूलं अ-रिष्टं) अनुराधा ज्येष्ठा और मूल ये नक्षत्र विनाशक न हों ॥ ३ ॥

अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥ (१८)

(८) नक्षत्राणि।

(ऋषिः— गार्ग्यः। देवता— नक्षत्राणि ब्रह्मणस्पतिः।)

यानि नक्षत्राणि दिव्य१न्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥ १ ॥
अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे।
योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ २ ॥
स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु।
सुहवमग्ने स्वस्त्य१मर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥ ३ ॥
अनुहवं परिहवं परिवादं परिक्षवम्। सर्वैर्मे रिक्तकुम्भान्परा तान्त्सवितः सुव ॥ ४ ॥

अर्थ — (पूर्वा अषाढा मे अन्नं रासतां) पूर्वा अषाढा नक्षत्र मुझे अन्न देवे। (उत्तरा देवी ऊर्जं आ वहन्तु) उत्तरा अषाढा नक्षत्र उत्तम बल देवे। (अभिजित् मे पुण्यं रासतां एव) अभिजित नक्षत्र मुझे पुण्य देवे। (श्रवणः श्रविष्ठाः सुपुष्टिं कुर्वतां) श्रवण और श्रविष्ठा मुझे उत्तम पुष्टि देवें ॥ ४ ॥

(महत् शतभिषक्) बडा शतभिषक् नक्षत्र (मे वरीयः आ) मेरे लिये धन देवे। (द्वया प्रोष्ठपदा मे सुशर्म आ) दोनों प्रोष्ठपदा नक्षत्र मुझे उत्तम सुख देवे। (रेवती अश्वयुजौ च) रेवती और अश्वयुज नक्षत्र (मे भगं आ) मेरे लिए धन देवें और (भरण्यः मे रयिं आ वहन्तु) भरणी नक्षत्र मेरे लिये ऐश्वर्य ले आवें ॥ ५ ॥

(८) नक्षत्राणि।

(यानि नक्षत्राणि) जो नक्षत्र (दिवि अन्तरिक्षे) द्युलोकमें अन्तरिक्षमें (अप्सु भूमौ) जलोंमें भूमीपर (यानि नगेषु दिक्षु) जो पर्वतोंपर तथा दिशाओंमें हैं। (चन्द्रमा यानि प्रकल्पयन् एति) चन्द्रमा जिनका भोग करता हुआ जाता है। (सर्वाणि एतानि मम शिवानि सन्तु) सब ये नक्षत्र मेरे लिये कल्याणकारी हों ॥ १ ॥

(अष्टाविंशानि) अठाईस नक्षत्र (शिवानि शग्मानि) कल्याण और सुखदायी हों। (मे सह योगं भजन्तु) मेरे साथ योग प्राप्त करें। (योगं प्र पद्ये) लाभ प्राप्त हो (क्षेमं प्र पद्ये) क्षेम प्राप्त हो। (क्षेमं च प्र पद्ये योगं च) क्षेम और योग प्राप्त हो। (अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु) दिन और रात्रीके लिये मैं नमन करता हूं ॥ २ ॥

(मे सु स्वस्तितं) मेरे लिये सायंकाल कल्याण करनेवाला हो (सुप्रातः) सुखदायी प्रातःकाल हो (सुसायं) सायंकाल सुखदायी हो। (सुदिवं) दिन सुखदायी हो (सुमृगं) पशु सुखकारक हों (सुशकुनं मे अस्तु) पक्षी सुख दायी हों। हे अग्ने! (सुहवं स्वस्ति) प्रार्थना सुखदायक हो। (अमर्त्यं गत्वा) अमरत्वको प्राप्त होकर तू (पुनः अभिनन्दन्) पुनः सबको प्रसन्न करता हुआ (आ अय) आओ ॥ ३ ॥

हे (सवितः) सविता सर्व प्रेरक प्रभो! (अनुहवं) स्पर्धा (परिहवं) घमंड (परिवादं) निंदा (परिक्षवं) घृणा या छींक आदि (सर्वैः मे रिक्तकुंभान्) सबके साथ मेरे खाली घडे (तान् परा सुव) इन सबको दूर कर ॥ ४ ॥

अपपाप परिक्षव पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।
शिवा ते पाप नासिकां पुण्यगश्चाभि मेहताम् ॥५॥
इमा या ब्रह्मणस्पते विषूचीर्वात ईरते। सध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा मह्यं शिवतमास्कृधि ॥६॥
स्वस्ति नो अस्त्वभयं नो अस्तु नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ७ ॥ (४५)

(९) शान्तिः।

(ऋषिः — ब्रह्मा (शन्तातिः?)। देवता — शान्तिः बहुदैवत्यम्।)

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥ १ ॥
शान्तानि पूर्वरूपाणि शान्तं नो अस्तु कृताकृतम्।
शान्तं भूतं च भव्यं च सर्वमेव शमस्तु नः ॥ २ ॥
इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता। ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ ३ ॥
इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्। येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ ४ ॥

अर्थ — (अपपाप परिक्षव) पाप और छींक दूर हों। (पुण्यं क्षवं भक्षीमहि) पुण्यकारक अन्न हम भक्षण करेंगे। हे पाप! (शिवा पुण्यगः च) कल्याण करनेवाली और पुण्य मार्गसे जानेवाली (ते नासिकां अभि मेहतां) तेरी नाक पर मूत्र करें। तेरा अपमान करें ॥ ५ ॥

शिवा — कल्याण करनेवाली आज्ञा।

हे (ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञानपते! (इमाः याः विषूचीः) इन नाना विभागोंमें (वातः ईरते) वायु चलता है हे इन्द्र! (ताः सध्रीचीः कृत्वा) उनको योग्य मार्गसे चलनेवाले करके (मह्यं शिवतमाः कृधि) मेरे लिये सुखदायी कर ॥ ६ ॥

(नः स्वस्ति अस्तु) हमारा कल्याण हो (नः अभयं अस्तु) हमें निर्भयता प्राप्त हो। (अहोरात्राभ्यां नमः अस्तु) दिन रात्रीके लिये नमस्कार हो ॥ ७ ॥

(९) शान्तिः।

(द्यौः शान्ता) द्युलोक शान्ति देवे। (पृथिवी शान्ता) पृथिवी शान्ति देवे। (इदं उरु अन्तरिक्षं शान्तं) यह बडा अन्तरिक्ष शान्तिकारक हो। (उदन्वतीः आपः शान्ताः) बहनेवाले जल शान्ति देवें। (ओषधीः नः शान्ताः सन्तु) औषधियां हमारे लिये शान्ति देनेवाली हों ॥ १ ॥

(पूर्वरूपाणि शान्तानि) पूर्व लक्षण सब शान्ति देवें। (नः कृत अकृतं शान्तं अस्तु) हमने किये या न किये कार्य हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों। (भूतं भव्यं च शान्तं) भूत और भविष्य शान्तिकारक हों (सर्वं एव नः शं अस्तु) सब हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों ॥ २ ॥

(इयं या परमेष्ठिनी) यह जो परमस्थानमें स्थित (ब्रह्मसंशिता वाक् देवी) ज्ञानसे तेजस्वी बनी वाचा देवी है (यया घोरं एव ससृजे) जिससे भयंकर कार्य होते हैं (तया एव नः शान्तिः अस्तु) उससे हमें शान्ति प्राप्त हो ॥ ३ ॥

(इदं यत् परमेष्ठिनं) यह जो परमस्थानमें स्थित (वां ब्रह्मसंशितं मनः) आप दोनोंका ज्ञानसे तेजस्वी बना मन है जिससे घोर परिणाम होता है वह हमारे लिये शान्ति देवे ॥ ४ ॥

इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनःषष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि।
यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥ ५ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विष्णुः शं प्रजापतिः।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो भवत्वर्यमा ॥ ६ ॥
शं नो मित्रः शं वरुणः शं विवस्वाँछमन्तकः।
उत्पाताः पार्थिवान्तरिक्षाः शं नो दिविचरा ग्रहाः ॥ ७ ॥
शं नो भूमिर्वेप्यमाना शमुल्का निर्हतं च यत्।
शं गावो लोहितक्षीराः शं भूमिरव तीर्यतीः ॥ ८ ॥
नक्षत्रमुल्काभिहतं शमस्तु नः शं नोऽभिचाराः शमु सन्तु कृत्याः।
शं नो निखाता वल्गाः शमुल्का देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु ॥ ९ ॥
शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा।
शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥ १० ॥
शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः।
शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ॥ ११ ॥

अर्थ— (इमानि यानि पञ्च इन्द्रियाणि) जो ये हमारे पांच इन्द्रिय हैं, (मनःषष्ठानि) मन जिनमें छठा है (ब्रह्मणा संशितानि मे हृदि) ज्ञानसे तेजस्वी बने मेरे हृदयमें रहते हैं। जिनसे भयंकर कर्म होते हैं उनसे हमें शान्ति प्राप्त हो ॥ ५ ॥

मित्र हमारे लिये सुखदायी हो, वरुण हमें सुखदायक हो, विष्णु और प्रजापति हमें सुखदायी हों, इन्द्र, बृहस्पति और अर्यमा हमें शान्ति देनेवाला हो ॥ ६ ॥

मित्र हमारे लिये शान्ति दे। वरुण हमें शान्ति दे (विवस्वान् अन्तकः शं) विवस्वान् हमें शान्ति दे और अन्त करनेवाला देव हमें शान्ति दे। (पार्थिवाः आन्तरिक्षाः उत्पाताः) पृथिवी और अन्तरिक्षमें होनेवाले उत्पात और (दिविचराः ग्रहाः नः शं) द्युलोकमें संचार करनेवाले ग्रह हमें शान्ति देवें ॥ ७ ॥

(वेप्यमाना भूमिः नः शं) भूकम्प होनेवाली भूमि हमें शान्ति दे (उल्का शं) उल्का शान्ति देवे (यत् निर्हतं) जो पृथिवीपर गिरा है वह भी शान्तिकारक हो। (लोहित-क्षीराः गावः शं) रक्तके समान दूध देनेवाली गौवें भी हमें शान्ति देवें। (अवतीर्यती भूमिः शं) फट जानेवाली भूमि भी शान्ति देनेवाली हो ॥ ८ ॥

(उल्काभिहतं नक्षत्रं नः शं अस्तु) उल्कासे पीडित हुआ नक्षत्र हमें शान्ति देवे। (अभिचाराः नः शं) शत्रुका आक्रमण भी हमें शान्ति देनेवाला हो (कृत्याः शं उ सन्तु) घातक क्रियाएं भी शान्ति देनेवाली हों। (निखाताः नः शं) गडे हमारे लिये शान्ति दें। (वल्गाः शं) हिंसाके कार्य हमें शान्ति दें। (देशोपसर्गाः उल्का नः उ शं भवन्तु) देशमें उपसर्ग पहुंचानेवाले उल्का आदि हमें शान्ति दें ॥ ९ ॥

(चान्द्रमसाः ग्रहाः नः शं) चंद्रमा संबंधी ग्रह हमें शान्ति देवें। (राहुणा आदित्यः शं) राहुके साथ सूर्य हमें शान्ति देवे। (धूमकेतुः मृत्युः नः शं) धूमकेतु मृत्यु हमें शान्ति देनेवाला हो (तिग्मतेजसः रुद्राः शं) तीक्ष्ण तेजवाले रुद्र हमें शान्ति देवें ॥ १० ॥

(रुद्राः शं) रुद्र हमें शान्ति दें। (वसवः शं) वसु हमें शान्ति दें। (आदित्याः शं) आदित्य हमें शान्ति दें। (अग्नयः शं) अग्नि हमें शान्ति दें। (देवाः महर्षयः नः शं) देव और महर्षि हमें शान्ति दें। (देवाः शं) देव हमें शान्ति दें। (बृहस्पतिः शं) बृहस्पति हमें शान्ति दे ॥ ११ ॥

ब्रह्म प्रजापतिर्धाता लोका वेदाः सप्तऋषयोऽग्नयः।
तैर्मे कृतं स्वस्त्ययनमिन्द्रो मे शर्म यच्छतु ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु।
विश्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु सर्वे मे देवाः शर्म यच्छन्तु ॥१२॥
यानि कानि चिच्छान्तानि लोके सप्तऋषयो विदुः।
सर्वाणि शं भवन्तु मे शं मे अस्त्वभयं मे अस्तु ॥१३॥
पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः
शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः।
ताभिः शान्तिभिः सर्वशान्तिभिः शमयामोऽहं यदिह घोरं यदिह क्रूरं
यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ १४॥ (५१)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

अर्थ— ब्रह्म, प्रजापति, धाता (लोकाः) सब लोक (वेदाः) ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद ये चार वेद सप्त ऋषि अग्नि (तैः मे स्वस्त्ययनं कृतं) इन सबने मेरा स्वस्त्ययन अर्थात् सुखदायक मार्ग किया है। (इन्द्रः मे शर्म यच्छतु) इन्द्र मुझे सुख देवे। (ब्रह्मा मे शर्म यच्छतु) ब्रह्मा मुझे सुख देवे। (विश्वे देवाः मे शर्म यच्छन्तु) सब देव मुझे सुख देवें। (सर्वे देवाः मे शर्म यच्छन्तु) सब देव मुझे सुख देवें॥ १२॥

(यानि कानि चित् शान्तानि) जो कुछ शान्तिदायक हैं ऐसा (लोके सप्तऋषयः विदुः) लोकमें सप्त ऋषि जानते हैं (सर्वाणि मे शं भवन्तु) वे सब मेरे लिये सुखशान्तिदायक हों (मे शं अस्तु) मेरे लिये शान्ति हो (मे अभयं अस्तु) मेरे लिये निर्भयता हो॥ १३॥

पृथिवी शान्ति देवे अन्तरिक्ष शान्ति देवे द्युलोक शान्ति देवे (आपः) जल शान्ति देवे (ओषधयः वनस्पतयः) औषधि-वनस्पतियां शान्ति देवें सब देव शान्ति दें (सर्वे देवाः मे शान्तिः) सब देव मेरे लिये शान्ति देवें। (शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः) शान्तियोंके साथ शान्ति सभी शान्ति हो। (ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः अहं शमयाम) उन शान्ति पूर्ण सब शान्तियोंसे हम शान्तिको प्राप्त हों। (यत् इह घोरं) जो यहां घोर है (यत् इह क्रूरं) जो यहां क्रूर है (यत् इह पापं) जो यहां पापमय है (तत् शान्तं) वह शान्त हो (तत् शिवं) वह कल्याणकारी हो। (नः सर्वं एव शं अस्तु) हमें सब शान्तिदायक हो॥ १४॥

॥ यहां प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

(१०) शान्तिः ।

(ऋषिः — वसिष्ठः । देवता — बहुदैवत्यम् ।)

शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॒पूष॑णा॒ वाज॑सातौ ॥ १ ॥
शं नो॒ भगः॒ शमु॑ नः॒ शंसो॑ अस्तु॒ शं नः॒ पुरं॑धिः॒ शमु॑ सन्तु॒ रायः॑ ।
शं नः॑ स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंसः॒ शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥ २ ॥
शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभिः॑ ।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रिः॒ शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥ ३ ॥
शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥ ४ ॥
शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु ।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥ ५ ॥

---

(१०) शान्तिः ।

अर्थ— (इन्द्र-अग्नी अवोभिः नः शं भवतां) इन्द्र और अग्नि अपने रक्षणके साधनोंके साथ हमारे लिये शान्तिदायक हों। (रात-हव्या इन्द्र-वरुणा नः शं) अन्नका दान करनेवाले इन्द्र और वरुण हमारे लिये शान्तिदायक हों। (इन्द्रा-सोमा सुविताय शं योः) इन्द्र और सोम सुखके लिये हमें शान्ति दें और भयको दूर करें। (इन्द्रा-पूषणा वाजसातौ नः शं) इन्द्र और पूषा अन्नके दानके समय हमें शान्ति देवें ॥ १ ॥

(भगः नः शं) भग देव हमें शान्ति दे (शंसः नः शं उ अस्तु) प्रशंसनीय देव हमें शान्ति दे। (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें शान्ति देवे। (रायः शं उ सन्तु) ऐश्वर्य हमें शान्तिदायक हों। (सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं) उत्तम नियमयुक्त सत्यका प्रशंसक हमें शान्ति देवे। (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) बहुत प्रसिद्ध अर्यमा हमें शान्ति देवे ॥ २ ॥

(धाता नः शं) धारणकर्ता देव हमें शान्ति देवे (धर्ता नः शं उ अस्तु) आश्रयदाता हमें शान्ति देवे। (स्वधाभिः उरूची नः शं भवतु) अपने धारक शक्तियोंके साथ यह फैली हुई पृथिवी हमें शान्ति देनेवाली हो। (बृहती रोदसी शं) बडी द्यु और अन्तरिक्ष हमारे लिये शान्त हों। (अद्रिः नः शं) पहाड हमारे लिये शान्ति देवे। (देवानां सुहवानि नः शं सन्तु) देवोंकी प्रार्थनाएं हमें सुखदायक हों ॥ ३ ॥

(ज्योतिः अनीकः अग्निः नः शं अस्तु) तेजस्वी प्रदीप्त मुखवाला अग्नि हमें शान्ति देनेवाला हो। (मित्रा-वरुणा नः शं) मित्र और वरुण हमें सुखदायी हों (अश्विना शं) अश्विनौ हमें शान्ति दें। (सुकृतां सुकृतानि नः शं) अच्छे कर्म करनेवालोंके अच्छे कर्म हमारे लिए सुखदायी हों (इषिरः वातः नः शं अभि वातु) गतिमान वायु हमारे लिये शान्तिदायक बहे ॥ ४ ॥

(पूर्वहूतौ द्यावापृथिवी नः शं) प्रथम प्रार्थनामें द्यु और पृथिवी हमें शान्ति देनेवाली हों। (अन्तरिक्षं नः दृशये शं अस्तु) अन्तरिक्ष हमारे देखनेके लिये शान्तिदायक हो। (वनिनः ओषधीः नः शं भवन्तु) सेवन करनेयोग्य औषधियां हमारे लिये शान्तिदायक हों। (जिष्णुः रजसः पतिः नः शं अस्तु) जयशील लोकोंका पालक हमारे लिये शान्ति देनेवाला हो ॥ ५ ॥

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥ ६ ॥

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥

शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नो भवन्तु प्रदिशश्चतस्रः ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥ (५१)

अर्थ— (वसुभिः देवः इन्द्रः नः शं अस्तु) वसुओंके साथ इन्द्र देव हमारे लिये शान्तिदाता हो। (आदित्येभिः सुशंसः वरुणः शं) आदित्योंके साथ प्रशंसनीय वरुण हमें शान्ति देवे। (रुद्रेभिः जलाषः रुद्रः नः शं) रुद्रोंके साथ जलरूपी रुद्र हमें शान्ति देवे। (ग्नाभिः त्वष्टा इह नः शं शृणोतु) पत्नियोंके साथ त्वष्टा यहां हमें शान्तिसे सुने ॥ ६ ॥

(सोमः नः शं भवतु) सोम हमारे लिये शान्तिदायक हो। (ब्रह्म नः शं) ब्रह्म हमारे लिये शान्ति देवे (ग्रावाणः नः शं) पत्थर हमारे लिये शान्ति दें। (यज्ञाः नः शं सन्तु) यज्ञ हमारे लिये शान्ति दें। (स्वरूणां मितयः नः शं) यूपोंकी स्थितियां हमारे लिये शान्ति दें। (प्रस्वः नः शं) उत्पन्न होनेवाले पदार्थ हमें शान्ति दें। (वेदिः शं अस्तु) वेदि हमें शान्ति देवे ॥ ७ ॥

(उरुचक्षाः सूर्यः नः शं उदेतु) विशेष प्रकाशवाला सूर्य हमारे लिये शान्ति देता हुआ उदित हो। (चतस्रः प्रदिशः नः शं भवन्तु) चारों दिशाएं हमारे लिये सुखदायिनी हों। (ध्रुवयः पर्वताः नः शं भवन्तु) स्थिर पर्वत हमें शान्ति दें। (सिन्धवः नः शं) नदियां हमें सुखदायी हों (आपः उ शं सन्तु) जल हमारे लिये शान्ति देवे ॥ ८ ॥

(अदितिः व्रतेभिः नः शं भवतु) पृथिवी अपने अनेक व्रतोंसे हमें शान्ति देनेवाली हो। (स्वर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम गतिवाले वायु हमारे लिये शान्ति दें। (विष्णुः नः शं) विष्णु हमें शान्ति देवे (पूषा नः शं अस्तु) पूषा हमें शान्ति देवे। (भवित्रं नः शं अस्तु) उत्पत्ति स्थान हमें शान्ति देनेवाला हो (वायुः शं उ अस्तु) वायु शान्ति देनेवाला हो ॥ ९ ॥

(त्रायमाणः सविता देवः नः शं) रक्षण करनेवाला सविता देव हमें शान्ति देवे। (विभातीः उषसः नः शं भवन्तु) तेजस्वी उषाएं हमें शान्तिदायक हों। (पर्जन्यः नः प्रजाभ्यः शं भवतु) पर्जन्य हमारी प्रजाओंके लिये शान्ति देनेवाला हो (शंभुः क्षेत्रस्य पतिः नः शं अस्तु) सुखदायक क्षेत्रका पति हमें शान्ति देनेवाला हो ॥ १० ॥

(११) शान्तिः।

(ऋषिः — वसिष्ठः। देवता — बहुदैवत्यम्।)

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥
शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ २ ॥
शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शमहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ ३ ॥
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तामिदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ४ ॥
ये देवानामृत्विजो यज्ञियासो मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥ (७५)

---

(११) शान्तिः।

अर्थ— (सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु) सत्यके पालक हमें शान्ति देनेवाले हों। (अर्वन्तः नः शं) घोडे हमें शान्ति दें (गावः शं उ सन्तु) गौवें शान्तिदायक हों। (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) उत्तम काम करनेवाले कुशल कारीगर हमें शान्तिदायक हों। (पितरः हवेषु नः शं भवन्तु) पितर प्रार्थनाके समय हमें शान्ति देनेवाले हों ॥ १ ॥

(विश्वदेवाः देवाः नः शं भवन्तु) सर्व देव हमें शान्ति देनेवाले हों। (धीभिः सह सरस्वती शं अस्तु) बुद्धियोंके साथ सरस्वती हमें शान्ति देनेवाली हो। (अभिषाचः शं) चारों ओरसे आनेवाले सुखदायक हों (रातिषाचः शं उ) दान देनेके लिये आनेवाले शान्तिदायक हों (दिव्याः नः शं) द्युलोकमें रहनेवाले हमें शान्ति दें (पार्थिवाः अप्याः नः शं) पृथिवीपर होनेवाले जलमें होनेवाले हमें शान्ति देनेवाले हों ॥ २ ॥

(अजः एकपाद् देवः नः शं अस्तु) अजन्मा एकपाद् देव हमें शान्ति देवे। (बुध्न्यः अहिः शं) जडमें रहनेवाला अहि शान्ति देवे। (समुद्रः शं) समुद्र शान्ति देवे (पेरुः अपां नपात् नः शं अस्तु) दुःखोंसे पार करनेवाला जलोंको न गिरानेवाला देव हमें शान्ति देवे। (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवोंके द्वारा सुरक्षित पृथिवी हमें शान्ति देनेवाली हो ॥ ३ ॥

(इदं नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म) यह नवीन किया स्तोत्र आदित्य रुद्र और वसु सेवन करें। (दिव्याः पार्थिवासः) जो द्युलोकमें जो पृथ्वीपर (गोजाताः) जो गौओंमें उत्पन्न और (उत ये यज्ञियाः) जो यज्ञके लिये योग्य हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें ॥ ४ ॥

(ये देवानां यज्ञियासः ऋत्विजः) जो देवोंके यज्ञके योग्य ऋत्विज हैं (मनोः अमृताः ऋतज्ञाः यजत्राः) मननशीलके अमर सत्यज्ञानी याजक हैं (ते अद्य नः उरुगायं रासन्तां) वे आज हमें विस्तृत यश देवें। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणोंके साथ सदा हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥

हे मित्र और वरुण! हे अग्ने! (तत् अस्तु) वह सब हमें शान्तिदायक हो। (शं योः अस्मभ्यं इदं शस्तं अस्तु) सुख शान्ति और दुःख दूर होना यह सब हमारे लिये प्रशस्त रीतिसे प्राप्त हो। (गाधं उत प्रतिष्ठां अशीमहि) ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा हमें प्राप्त हो। (बृहते सादनाय दिवे नमः) बडे आश्रय स्थानरूप द्युलोकके लिये नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

(१२) शान्तिः ।

(ऋषिः — वसिष्ठः । देवता — उषा ।)

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥ (७१)

(१३) एकवीरः ।

(ऋषिः — अप्रतिरथः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ वृषाणौ चित्रा इमा वृषभौ पारयिष्णू ।
तौ योक्षे प्रथमो योग आगते याभ्यां जितमसुराणां स्वर्यत् ॥ १ ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥ २ ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुनाऽयोध्येन दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३ ॥

---

(१२) उषा ।

अर्थ— (उषा) उषा (सुजातता) उत्तम रीतिसे उत्पन्न होनेके कारण (वर्तनिं सं वर्तयति) मार्गको सम्यक् रीतिसे बताती है और (स्वसुः तमः अप) अपनी बहिन रात्रीके अन्धकारको दूर करती है । (अया देवहितं वाजं सनेम) इस उषासे हम देवोंके लिये हितकारक बल प्राप्त करेंगे । (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर संतानोंसे युक्त होकर सौ हिमऋतुतक आनन्द प्रसन्न रहेंगे ।

(१३) एकवीरः ।

(इन्द्रस्य बाहू) इन्द्रके बाहू (स्थविरौ वृषाणौ) स्थिर और बलवान् (चित्रा इमा वृषभौ) विलक्षण तथा दुःखोंसे पार करनेवाले (योगे आगते) समय आनेपर (प्रथमः तौ योक्षे) पहिले मैं उनको जोडता हूं । (याभ्यां जितं यत् असुराणां स्वः) जिनकी सहायतासे जीता किया जो प्राप्त अर्पण करनेवालोंका जो धर्म है ॥ १ ॥

इन्द्र (आशुः) शीघ्र कार्य करनेवाला (शिशानः) तीक्ष्ण (वृषभः न भीमः) बैलके समान भयंकर (घनाघनः) शत्रुको मारनेवाला (चर्षणीनां क्षोभणः) मनुष्योंमें हलचल करनेवाला (संक्रन्दनः अनिमिषः) गर्जना करनेवाला और आंखोंकी पलकें भी न लगनेवाला अर्थात् सतत कार्यकर्ता (एकवीरः इन्द्रः) अद्वितीय वीर इन्द्रने (साकं शतं सेनाः अजयत्) साथ सैकडों शत्रुसेनाओंको जीत लिया ॥ २ ॥

(संक्रन्दनेन) गर्जना करनेवाले (अनिमिषेण जिष्णुना) निमेषरहित जयशील (अयोध्येन) युद्ध करनेके लिये जिसके साथ असम्भव है, (दुश्च्यवनेन धृष्णुना) स्थानभ्रष्ट करनेके लिये असाध्य और शत्रुओंका धर्षण करनेवाले (इषुहस्तेन वृष्णा) बाण हाथमें धरनेवाले बलवान् (इन्द्रेण) इन्द्रकी सहायतासे हे (युधः नरः) युद्ध करनेवाले वीर नेताओ ! (तत् जयत) उस अभिमानियोंको जीतो । (तत् सहध्वं) उस शत्रुको पराजित करो ॥ ३ ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ४ ॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिषत्वा सहोजिज्जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोविदम् ॥ ५ ॥

इमं वीरमनु हर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ।
ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ॥ ६ ॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदाय उग्रः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयोध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ७ ॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जञ्छत्रून्प्रमृणन्नमित्रानस्माकमेध्यविता तनूनाम् ॥ ८ ॥

इन्द्र एषां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्तु मध्ये ॥ ९ ॥

अर्थ— (स इषु हस्तैः) वह बाण हाथमें धरनेवाले वीरोंके साथ (सः निषङ्गिभिः) वह तर्कशवाले वीरोंके साथ रहनेवाला (वशी) वशमें रखनेवाला (युधः संस्रष्टा सः) युद्धोंको करनेवाला (गणेन इन्द्रः) समूहोंके साथ वह इन्द्र (संसृष्टजित्) सेनाओंको जीतनेवाला (सोमपाः) सोमरस पीनेवाला (बाहुशर्धी) बाहुबलसे युक्त (उग्रधन्वा) भयंकर धनुष्य धरनेवाला (प्रतिहिताभिः अस्ता) शत्रुसेनाके मेले बाणोंको तितर बितर करनेवाला वीर है ॥ ४ ॥

(बलविज्ञायः) बलसे और शत्रुके बलको जाननेवाला (स्थविरः) युद्धमें स्थिर रहनेवाला (प्रवीरः) उत्तम वीर (सहस्वान्) बलवान् (वाजी) शक्तिमान् (सहमानः उग्रः) शत्रुको दबानेवाला उग्र वीर (अभिवीरः) जिसके चारों ओर वीर रहते हैं (अभि-सत्वा) चारों ओर बलवान् वीरोंसे युक्त (सहोजित्) बलसे शत्रुको जीतनेवाला तू है। हे इन्द्र! हे (गो विदम्) भूमिको अपने वशमें रखनेवाले वीर! (जैत्रं रथं आ तिष्ठ) विजयी रथपर बैठ ॥ ५ ॥

हे (सखायः) मित्रो! (इमं उग्रं वीरं इन्द्रं) इस उग्रवीर इन्द्रको (अनु हर्षध्वं) आनन्दित करो और (अनु सं रभध्वं) इसके अनुकूल प्रयत्न करो। यह (ग्रामजितं) शत्रुके ग्रामोंको जीतनेवाला (गोजितं) गौओंको जीतनेवाला (वज्रबाहुं) वज्रके समान बाहुवाला (अज्म जयन्तं) युद्ध जीतनेवाला (ओजसा प्रमृणन्तं) और बलसे शत्रुको कुचलनेवाला है ॥ ६ ॥

(गोत्राणि सहसा अभि गाहमानः) गोरक्षक वीरोंको अपने बलसे प्रेरनेवाला (अ-दायः) शत्रुपर दया न करनेवाला; (उग्रः शतमन्युः) उग्रवीर सैकडों उत्साहोंसे युक्त (दुश्च्यवनः) स्थानभ्रष्ट करनेके लिये अशक्य (पृतनाषाड्) शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला (अयोध्यः इन्द्रः) जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है ऐसा यह इन्द्र (युत्सु अस्माकं सेनाः प्र अवतु) युद्धोंमें हमारी सेनाओंका रक्षण करे ॥ ७ ॥

हे बृहस्पते! (अमित्रान् अपबाधमानः) शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाला (रक्षो हा) राक्षसोंका नाश करता हुआ (रथेन परि दीया) रथसे शत्रुको घेर। (शत्रून् प्रभञ्जन्) शत्रुओंको कुचलता हुआ और (अमित्रान् प्रमृणन्) अमित्रोंका नाश करता हुआ और (अस्माकं तनूनां अविता) हमारे शरीरोंका रक्षण करता हुआ (एधि) आगे बढ ॥ ८ ॥

(इन्द्रः एषां नेता) इन्द्र इनका नेता है, (बृहस्पतिः दक्षिणा) बृहस्पति दक्षिण हाथकी ओर रहे (यज्ञः सोमः पुरः एतु) यज्ञीय सोम आगे चले। (अभि भञ्जतीनां) शत्रुको तोडनेवाली (जयन्तीनां) जीतनेवाली (देवसेनानां) देवसेनाओंके (मध्ये) मध्यमें (मरुतः अभि यन्तु) मरुत् आगे बढें ॥ ९ ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥१०॥
अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्मान्देवासोऽवता हवेषु ॥११॥ (८७)

अर्थ— (वृष्णः इन्द्रस्य) बलवान् इन्द्रका (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजाका (आदित्यानां मरुतां) आदित्यों और मरुतोंका (उग्रं शर्धः) प्रबल सामर्थ्य प्रकट हो रहा है। (महा-मनसां) बडे मनवाले (भुवनच्यवानां देवानां) भुवनोंको हिलानेवाले देवोंका (जयतां) जीतनेके समय (घोषः उदस्थात्) जयका शब्द ऊपर उठ रहा है ॥ १० ॥

(समृतेषु ध्वजेषु) ध्वज इकट्ठे होनेपर (अस्माकं इन्द्रः) हमारा इन्द्र विजय करे। (अस्माकं या इषवः ता जयन्तु) हमारे जो बाण हैं वे जीतें। (अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु) हमारे वीर ऊंचे रहें। (हवेषु अस्मान् देवासः अवत) युद्धोंमें हमें देव सुरक्षित रखें ॥ ११ ॥

इस सूक्तमें विजय पानेके लिये क्या करना चाहिये यह उपदेश है। इन्द्रके समान जो बनेंगे वे विजय प्राप्त करेंगे। इस दृष्टिसे इस सूक्तमें इन्द्रके गुणोंका जो वर्णन आया है वह मननपूर्वक देखने योग्य है—

१ बाहू स्थविरा वृषाणौ— बाहू सुदृढ और बलवान् हों।
२ वृषभो पारायण्णू— बैलके समान बलिष्ठ और युद्धसे सुखानेमें समर्थ।
३ असुराणां बलं जितं— असुरोंका सर्वस्व जीता। प्राण दान करनेवालोंको प्राप्त होनेवाला स्वयं प्राप्त किया।
४ आशुः शिशानः— त्वरासे कार्य करनेवाला और तीक्ष्ण स्वभाव होना
५ भीमः घनाघनः— भयंकर आघात करके शत्रुका नाश करनेवाला
६ चर्षणीनां क्षोभणः— मानवोंकी क्षोभकारक हलचल करनेवाला
७ संक्रन्दन अनिमिष एकवीरः— गर्जना करनेवाला आंखकी पलकें न झपकनेवाला अद्वितीय वीर
८ साकं शतं सेना अजयत्— एक साथ सौ सेनाएं जीतनेवाला,
९ जिष्णु अयोध्यः दुश्च्यवनः धृष्णु— विजयी जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है जिसको स्थानभ्रष्ट करना कठिन है और जो शत्रुको धर्षण करता है।
१० इषुहस्तः वृष्णः— बाण हाथमें धरनेवाला बलवान् वीर
११ जयत सहध्वं— विजय करो शत्रुका पराभव करो।
१२ निषङ्गी वशी— बाणधारी तलवारधारी सबको वशमें रखनेवाला
१३ युधः संस्रष्टा— युद्धोंको सम्यक् रीतिसे करनेवाला,
१४ संसृष्टजित् बाहुशर्धी— युद्ध जीतनेवाला बाहुबल जिसमें विशेष है
१५ उग्रधन्वा अस्ता— उग्र धनुष्य धरनेवाला शत्रुपर बाण फेंकनेवाला
१६ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः— अपने और शत्रुके बलको यथावत् जाननेवाला, युद्धमें स्थिर रहनेवाला विशेष वीर।
१७ सहस्वान् वाजी सहमानः उग्रः— शत्रुका पराभव करनेवाला बलवान् सामर्थ्यवान् उग्रवीर
१८ अभिवीरः अभि-सत्वा सहोजित्— वीरोंके साथ रहनेवाला बलशाली अपने बलसे शत्रुका जीतनेवाला
१९ जैत्रं रथं आ तिष्ठ— विजयी रथपर चढ।
२० वीरं अनु हर्षयध्वम्— वीरका उत्साह बढाओ।
२१ इन्द्रं अनु सं रभध्वं— इस वीरको प्रोत्साहन दो।
२२ ग्रामजितं गोजितं— ग्रामको जीतनेवाला, गौओंको जीतनेवाला
२३ वज्रबाहुं जयन्तं— वज्रके समान बाहुवाला, विजयी वीर,
२४ ओजसा प्रमृणन्तं— बलसे शत्रुका नाश करनेवाले
२५ गोत्राणि सहसा गाहमानः— गोत्रसमूह एकत्र बलसे प्राप्त करनेवाला
२६ शतमन्युः— सैकडों प्रकारसे शत्रुपर क्रोध करनेवाला
२७ दुश्च्यवनः पृतनाषाड् अयोध्यः— स्थानभ्रष्ट करनेके लिये अशक्य शत्रुसेनाको जीतनेवाला। जिसके साथ युद्ध करना असंभव है।

१ (अथर्व भाष्य काण्ड १९)

(१४) अभयम्।

(ऋषिः— अथर्वा। देवता— द्यावापृथिवी।)

इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागां शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम्।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥ १ ॥ (८८)

(१५) अभयम्।

(ऋषि — अथर्वा। देवता— इन्द्रः मन्त्रोक्ताः।)

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव त्वं न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १ ॥
इन्द्रं वयमनूराधं हवामहेऽनु राध्यास्म द्विपदा चतुष्पदा।
मा नः सेना अररुषीरुप गुर्विषूचीरिन्द्र द्रुहो वि नाशय ॥ २ ॥

---

२८ पुरस्तु अस्माकं सेना भवतु— युद्धोंमें हमारी सेना- ओंका रक्षण करे।
२९ रक्षोहा अमित्रहा अपबाधमानः— राक्षसोंका नाशक शत्रुओंको बाधा पहुंचानेवाला।
३० शत्रून् प्रमृणन् अमित्रान् प्रमृणन्— शत्रुओंका नाश करके दुष्टोंको कुचलनेवाला
३१ अस्माकं तनूनां अविता— हमारे शरीरोंका रक्षक
३२ अभिभञ्जतीनां जयन्तीनां देवसेनानां— शत्रुका विनाश करके जय पानेवाली देवसेना।
३३ महामनसां भुवनच्यवानां जयतां देवानां घोषः उदस्थात्— बडे मनवाले भुवनोंको हिलानेवाले जय करनेवाले देवोंका जयघोष हो रहा है।
३४ अस्माकं ध्वजा जयन्तु— हमारे ध्वज जय प्राप्त करें।
३५ अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु— हमारे वीर ऊंचे हों
३६ अस्मान् देवासः हवेषु अवत— हमें देव युद्धोंमें सुरक्षित रखें।

ये वचन विचारसे अनेक पता लग सकता है कि किस युद्धमें जय होता है। इसके विरुद्ध कुकर्मोंसे पराभव होता है।

---

(१४) अभयम्।

अर्थ— (इदं श्रेयः अवसानं उत् अगाम्) इस श्रेष्ठ स्थानतक मैं पहुंच गया हूं। (द्यावा पृथिवी मे शिवे अभूतां) द्युलोक और भूलोक मेरे लिये सुख देनेवाले हों। (प्रदिशः मे असपत्नाः भवन्तु) दिशायें मेरे लिये शत्रुरहित हों। (त्वा न द्विष्मः वै) तेरा हम द्वेष नहीं करते। (नः अभयं अस्तु) हमारे लिये अभय हो ॥ १ ॥

न वै त्वा द्विष्मः — हम तेरा द्वेष नहीं करते। यह वचन मुख्य है। हम स्वयं किसीका द्वेष नहीं करेंगे। पर दूसरे द्वेष करने लगे तो हम उनको रहने नहीं देंगे क्योंकि चारों दिशाओंमें निर्भयता और शान्ति स्थापन करना है।

(१५) अभयम्।

(हे इन्द्र) हे इन्द्र! (यतः भयामहे) जहांसे हमें भय होता है (ततः) वहांसे (नः अभयं कृधि) हमें निर्भय कर। हे (मघवन्) इन्द्र! (त्वं शग्धि) ऐसा करनेमें तू समर्थ है। (त्वं तव ऊतिभिः) तू अपने रक्षण सामर्थ्योंसे (द्विषः वि जहि) द्वेष करनेवालोंको जीत और (मृधः वि जहि) हिंसकोंका नाश कर ॥ १ ॥

(वयं अनुराधं इन्द्रं हवामहे) हम अनुकूल सिद्धि करनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं। (द्विपदा चतुष्पदा अनु राध्यास्म) दो पांववालोंसे और चार पांववालोंसे हम अनुकूल सिद्धि प्राप्त करें। हे इन्द्र! (अररुषी सेनाः नः मा उप गुः) अनुदार सेनाएं हमारे पास न आ जायं। (विषूचीः द्रुहः वि नाशय) सब ओरसे द्रोहियोंकी सेनाओंका नाश कर ॥ २ ॥

इन्द्रस्त्रातोत वृत्रहा परस्फानो वरेण्यः ।
स रक्षिता चरमतः स मध्यतः स पश्चात्स पुरस्तान्नो अस्तु ॥ ३ ॥
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्व१र्यज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
उग्रा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप क्षयेम शरणा बृहन्ता ॥ ४ ॥
अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ ५ ॥
अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥ ६ ॥ (१४)

(१६) अभयम् ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः ।)

असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥ १ ॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः ।
इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥ २ ॥ (१५)

अर्थ— (इन्द्रः त्राता) इन्द्र रक्षक है (उत वृत्रहा) और वह शत्रुनाशक है। वह (परस्फानः वरेण्यः) शत्रुनाशक और श्रेष्ठ है। (सः) वह (चरमतः स मध्यतः) अन्तमें मध्यमें (स पश्चात् स पुरस्तात्) पीछेसे और आगेसे (नः रक्षिता अस्तु) हमारा रक्षक हो ॥ ३ ॥

तू विद्वान् है इसलिये तू (उरुं लोकं नः अनु नेषि) हमें विशाल लोकमें ले जा। (यत् स्वः ज्योतिः) जहां सुखमय ज्योति है और (अभयं स्वस्ति) हमारे लिये निर्भयता और सुख है। हे इन्द्र ! (ते स्थविरस्य बाहू उग्रा) तेरे जैसे स्थिर रहनेवालेकी दोनों भुजाएं बडी उग्र हैं (बृहन्ता शरणा उप क्षयेम) हम तेरे बडे आश्रयस्थानमें रहें ॥ ४ ॥

(अन्तरिक्षं नः अभयं करति) अन्तरिक्ष हमें निर्भय करे। (उभे इमे द्यावापृथिवी अभयं) ये दोनों द्यु और पृथिवी हमें निर्भय करें। (पश्चात् अभयं पुरस्तात् अभयं) पीछेसे और आगेसे अभय हो (उत्तरात् अधरात् नः अभयं अस्तु) ऊपरसे और नीचेसे हमें अभय हो ॥ ५ ॥

(मित्रात् अभयं अमित्रात् अभयं) मित्र और शत्रुसे हमें अभय हो (ज्ञातात् अभयं यः पुरः अभयं) ज्ञात पुरुषसे अभय हो और जो आगे है उससे अभय हो। (नः अभयं नक्तं अभयं दिवा) रात्रीमें और दिनमें हमारे लिये अभय हो। (सर्वाः आशाः मम मित्रं भवन्तु) सब दिशाएं हमारी मित्र बनें ॥ ६ ॥

(१६) अभयम् ।

(पुरस्तात् असपत्नं) आगेसे शत्रु न रहे (नः पश्चात् अभयं कृतं) हमें पीछेसे अभय हो। (सविता मा दक्षिणतः) सविता मुझे दक्षिणसे और (शचीपतिः मा उत्तरात्) शचीपति मुझे उत्तरसे निर्भय करे ॥ १ ॥

(आदित्याः दिवः मा रक्षन्तु) आदित्य द्युलोकसे मेरी रक्षा करें (भूम्याः अग्नयः रक्षन्तु) भूमिसे अग्नियां रक्षा करें। (इन्द्राग्नी पुरस्तात् मा रक्षतां) इन्द्र और अग्नि आगेसे रक्षा करें (अश्विनौ अभितः शर्म यच्छतां) अश्विनौ चारों ओरसे सुख दें। (अघ्न्या तिरश्चीन् रक्षतु) गौ तिरछी रक्षा करे। (भूतकृतः जातवेदाः) ... (मे सर्वतः वर्म सन्तु) मेरे सब ओरसे कवच हों ॥ २ ॥

(१७) सुरक्षा।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — मन्त्रोक्ताः।)

अग्निर्मा पातु वसुभिः पुरस्तात्तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ १ ॥
वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ २ ॥
सोमो मा रुद्रैर्दक्षिणाया दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ३ ॥
वरुणो मादित्यैरेतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥
सूर्यो मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ५ ॥
आपो मौषधीमतीरेतस्या दिशः पान्तु तासु क्रमे तासु श्रये तां पुरं प्रैमि ।
ता मा रक्षन्तु ता मा गोपायन्तु ताभ्य आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ६ ॥
विश्वकर्मा मा सप्तऋषिभिरुदीच्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ७ ॥

---

(१७) सुरक्षा।

अर्थ— (वसुभिः पुरस्तात्) वसुओंके साथ आगेसे (अग्निः मा पातु) अग्नि मेरी रक्षा करे। (तस्मिन् क्रमे) उसमें मैं चलता हूं। (तस्मिन् श्रये) उसमें आश्रय लेता हूं। (तां पुरं प्रैमि) उस नगरीमें मैं जाता हूं। (स मा रक्षतु) वह मेरी रक्षा करे। (स मा गोपायतु) वह मुझे बचावे। (तस्मै आत्मानं परि ददे) उसके लिये मैं अपने आपको देता हूं। (स्वाहा) मैं समर्पण करता हूं ॥ १ ॥

(वायुः मा अन्तरिक्षेण) वायु मुझे अन्तरिक्षसे (एतस्याः दिशः पातु) इस दिशासे सुरक्षित रखे। (आगे पूर्ववत्) ॥ २ ॥

(सोमः मा रुद्रैः दक्षिणायाः दिशः पातु) सोम मुझे रुद्रोंके साथ दक्षिण दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ३ ॥

(वरुणः मा आदित्यैः एतस्याः दिशः पातु) वरुण मुझे आदित्योंके साथ इस दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ४ ॥

(सूर्यः मा द्यावापृथिवीभ्यां प्रतीच्याः दिशः पातु) सूर्य मुझे द्युलोक और पृथिवी लोकके साथ पश्चिम दिशासे सुरक्षित रखे ॥ ५ ॥

(आपः ओषधिमतीः एतस्याः दिशः मा पान्तु) जल औषधि युक्त मुझे इस दिशासे सुरक्षित रखें ॥ ६ ॥

(विश्वकर्मा सप्तऋषिभिः मा उदीच्याः दिशः पातु) विश्वकर्मा सप्तऋषियोंके साथ मुझे उत्तर दिशामें सुरक्षित रखे ॥ ७ ॥

इन्द्रो मा मरुत्वानेतस्या दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ८ ॥
प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ९ ॥
बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वाया दिशः पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिञ्छ्रये तां पुरं प्रैमि ।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥१०॥ (१०९)

(१८) सुरक्षा ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः ।)

अग्निं ते वसुवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्राच्या दिशोऽभिदासात् ॥ १ ॥
वायुं तेऽन्तरिक्षवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ २ ॥
सोमं ते रुद्रवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो दक्षिणाया दिशोऽभिदासात् ॥ ३ ॥
वरुणं त आदित्यवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ४ ॥
सूर्यं ते द्यावापृथिवीवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवः प्रतीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ५ ॥
अपस्त ओषधीमतीरृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ६ ॥
विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिवन्तमृच्छन्तु । ये माघायव उदीच्या दिशोऽभिदासात् ॥ ७ ॥

अर्थ— (इन्द्रः मरुत्वान् मा एतस्या दिशः पातु) इन्द्र मरुतोंके साथ मुझे इस दिशामें सुरक्षित रखे ॥ ८ ॥
(प्रजापतिः प्रजननवान् प्रतिष्ठाया सह ध्रुवायाः दिशः मा पातु) प्रजापति प्रजननशक्तिके और प्रतिष्ठाके साथ ध्रुव दिशामें मुझे सुरक्षित रखे ॥ ९ ॥
(बृहस्पतिः विश्वैः देवैः मा ऊर्ध्वायाः दिशः पातु) बृहस्पति सब देवोंके साथ मुझे ऊर्ध्व दिशामें सुरक्षित रखे ॥ १० ॥

(१८) सुरक्षा ।

(ये अघायवः) जो पापी (मा) मुझे (प्राच्याः दिशः अभिदासात्) पूर्व दिशासे आकर दास बनाना चाहते हैं (ते वसुवन्तं अग्निं ऋच्छन्तु) वे वसुओंके साथ अग्निको प्राप्त हों ॥ १ ॥
जो पापी (एतस्याः दिशः) इस दिशासे आकर दास बनाना चाहते हैं वे (अन्तरिक्षवन्तं वायुं) अन्तरिक्षमें रहने वाले वायुके (ऋच्छन्तु) आधीन हों ॥ २ ॥
जो पापी दक्षिण दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (रुद्रवन्तं सोमं ऋच्छन्तु) रुद्रयुक्त सोमके आधीन हों ॥ ३ ॥
जो पापी इस दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (आदित्यवन्तं वरुणं ऋच्छन्तु) आदित्य युक्त वरुणके आधीन हों ॥ ४ ॥
जो पापी पश्चिम दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (द्यावापृथिवीवन्तं सूर्यं) द्यावापृथिवीसे युक्त सूर्यके वशमें होकर रहें ॥ ५ ॥
जो पापी इस दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (ओषधीमतीः आपः) औषधि युक्त जलके वशमें होकर रहें ॥ ६ ॥
जो पापी उत्तर दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (सप्तऋषिवन्तं विश्वकर्माणं) सात ऋषि युक्त विश्वकर्माके वशमें होकर रहें ॥ ७ ॥

इन्द्रं ते मरुत्वन्तमृच्छन्तु । ये माघायव एतस्या दिशोऽभिदासात् ॥ ८ ॥
प्रजापतिं ते प्रजननवन्तमृच्छन्तु । ये माघायवो ध्रुवाया दिशोऽभिदासात् ॥ ९ ॥
बृहस्पतिं त विश्वदेववन्तमृच्छन्तु । ये माघायव ऊर्ध्वाया दिशोऽभिदासात् ॥१०॥ (११९)

(१९) शर्म ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — चन्द्रमा मन्त्रोक्ताश्च ।)

मित्रः पृथिव्योदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ १ ॥
वायुरन्तरिक्षेणोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ २ ॥
सूर्यो दिवोदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ३ ॥
चन्द्रमा नक्षत्रैरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ४ ॥
सोम ओषधीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ५ ॥
यज्ञो दक्षिणाभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ६ ॥
समुद्रो नदीभिरुदक्रामत् तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ७ ॥

जो पापी इस दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (मरुत्वन्तं इन्द्रं) मरुत्वान् इन्द्रके पास जाकर रहें ॥ ८ ॥

जो पापी ध्रुव दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (प्रजननवन्तं प्रजापतिं) प्रजनन सामर्थ्यसे युक्त प्रजापालकके पास जाकर रहें ॥ ९ ॥

जो पापी ऊर्ध्व दिशासे आकर मुझे दास बनाना चाहते हैं वे (विश्वदेववन्तं बृहस्पतिं) विश्वदेवोंके साथ बृहस्पतिके पास जाकर रहें ॥ १० ॥

(१९) शर्म ।

(मित्रः पृथिव्या उदक्रामत्) मित्र पृथ्वीसे ऊपर चढा । (वः तां पुरं प्र णयामि) आपको उस किलेमें मैं ले जाता हूं । (तां आ विशत) उसमें आओ (तां प्र विशत) उसमें प्रविष्ट होओ (सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु) वह दुर्ग सुख और रक्षा देवे ॥ १ ॥

(वायुः अन्तरिक्षेण उदक्रामत्) वायु अन्तरिक्षसे ऊपर चढा ॥ २ ॥

(सूर्यः दिवा उदक्रामत्) सूर्य द्युलोकसे ऊपर चढा ॥ ३ ॥

(चन्द्रमाः नक्षत्रैः उदक्रामत्) चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ ऊपर चढा ॥ ४ ॥

(सोमः ओषधीभिः उदक्रामत्) सोम औषधियोंके साथ ऊपर चढा ॥ ५ ॥

(यज्ञः दक्षिणाभिः उदक्रामत्) यज्ञ दक्षिणाओंके साथ ऊपर चढा ॥ ६ ॥

(समुद्रः नदीभिः उदक्रामत्) समुद्र नदियोंके साथ ऊपर चढा ॥ ७ ॥

ब्रह्म ब्रह्मचारिभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ८ ॥
इन्द्रो वीर्येणोदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥ ९ ॥
देवा अमृतेनोदक्रामंस्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥१०॥
प्रजापतिः प्रजाभिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः ।
तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च वर्म च यच्छतु ॥११॥ (१२७)

(२०) सुरक्षा।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — नाना देवताः।)

अप न्यधुः पौरुषेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः ।
सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान् परि पातु मृत्योः ॥ १ ॥
यानि चकार भुवनस्य यस्पतिः प्रजापतिर्मातरिश्वा प्रजाभ्यः ।
प्रदिशो यानि वसते दिशश्च तानि मे वर्माणि बहुलानि सन्तु ॥ २ ॥
यत् ते तनूष्वनह्यन्त देवा द्युराजयो देहिनः । इन्द्रो यच्चक्रे वर्म तदस्मान्पातु विश्वतः ॥ ३ ॥
वर्म मे द्यावापृथिवी वर्माहर्वर्म सूर्यः । वर्म मे विश्वे देवाः क्रन्मा मा प्रापत्प्रतीचिका ॥४॥ (१३१)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ— (ब्रह्म ब्रह्मचारिभिः उदक्रामत्) ज्ञान ब्रह्मचारियोंके साथ उत्क्रांत हुआ ॥ ८ ॥
(इन्द्रः वीर्येण उदक्रामत्) इन्द्र वीर्यसे ऊपर चढा ॥ ९ ॥
(देवाः अमृतेन उदक्रामन्) देव अमृतके साथ ऊपर चढे ॥ १० ॥
(प्रजापतिः प्रजाभिः उदक्रामत्) प्रजापति प्रजाओंके साथ ऊपर चढा ॥ ११ ॥

(२०) सुरक्षा।

(यं पौरुषेयं वधं अप नि अधुः) जिस पुरुषके किये घातको दूर रखते हैं। इन्द्र अग्नि धाता सविता बृहस्पति सोम राजा वरुण अश्विनौ यम पूषा ये सब (अस्मान् मृत्योः परि पातु) हमें मृत्युसे सुरक्षित रखें ॥ १ ॥

(भुवनस्य यः पतिः) भुवनके पति प्रजापति वायुने (प्रजाभ्यः यानि चकार) प्रजाओंके लिये जो कवच किये (प्रदिशः दिशः च यानि वसते) दिशा उपदिशाओंमें जो कवच बसते हैं (तानि वर्माणि मे बहुलानि सन्तु) वे कवच मेरे लिये बहुत हों ॥ २ ॥

(ते तनूषु) तेरे शरीरोंमें (द्युराजयः देवाः देहिनः) देहधारी तेजस्वी देव (यत् अनह्यन्त) जो कवच धारण करते हैं, (इन्द्रः यत् वर्म चक्रे) इन्द्रने जो कवच बनाया (तत् विश्वतः अस्मान् पातु) वह सब ओरसे हमारी रक्षा करे ॥ ३ ॥

(द्यावा पृथिवी मे वर्म) द्युलोक और पृथिवी मेरा कवच हो, (अहः वर्म) दिन मेरा कवच हो, (सूर्यः वर्म) सूर्य मेरा कवच हो (विश्वे देवाः मे वर्म क्रन्) विश्वे देव मेरा कवच करें (प्रतीचिका मा मा प्रापत्) विरोधी मुझे प्राप्त न हो ॥ ४ ॥

॥ यहां द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

(२१) छन्दांसि।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — छन्दांसि।)

गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यै ॥ १ ॥ (१११)

(२२) ब्रह्मा।

(ऋषिः— अङ्गिराः। देवता— मन्त्रोक्तदेवताः।)

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ॥ १ ॥ षष्ठाय स्वाहा ॥ २ ॥
सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा ॥ ३ ॥ नीलनखेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
हरितेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा ॥ १० ॥
उपोत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥ उत्तमेभ्यः स्वाहा ॥ १२ ॥
उत्तरेभ्यः स्वाहा ॥ १३ ॥ ऋषिभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥
शिखिभ्यः स्वाहा ॥ १५ ॥ गणेभ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥
महागणेभ्यः स्वाहा ॥ १७ ॥ सर्वेभ्योऽङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा ॥ १८ ॥
पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा ॥ १९ ॥ ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २० ॥
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥ २१ ॥ (१९१)

---

(२१) छन्दांसि।

अर्थ— गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती ये वेदके छन्द हैं ॥ १ ॥

(२२) ब्रह्मा।

आङ्गिरसोंके पहिले पञ्चानुवाकोंके साथ २ छठेके लिये ३ सप्तम अष्टमके लिये ४ नीले नखोंवालोंके लिये ५ हरोंके लिये ६ क्षुद्रोंके लिये ७ पर्यायवालोंके लिये ८ पहिले शंखोंके लिये ९ दूसरे शंखोंके लिये १० तीसरे शंखोंके लिये ११ अन्तिमसे जो उत्तम हैं उनके लिये १२ उत्तमोंके लिये १३ उत्तरोंके लिये १४ ऋषियोंके लिये १५ शिखावालोंके लिये १६ गणोंके लिये १७ बडे गणोंके लिये १८ गणोंमें जाननेवाले सब अंगिरोंके लिये १९ अलग अलग सहस्रवाले दोनोंके लिये २० ब्रह्माके लिये हम अर्पण करते हैं।

अथर्ववेदमें २० काण्ड हैं उन प्रत्येक काण्डके अनुवाक सूक्त और मन्त्र आदिकों ये बताते हैं उनमें इस ऋषियोंका भी वर्णन है। बीस काण्डोंके लिये ये बीस सूत्र हैं।

(ब्रह्म-ज्येष्ठा वीर्याणि संभृता) ब्रह्मज्ञान जिनमें श्रेष्ठ है ऐसे सब प्रकारके बलके अपेक्ष यहां इकट्ठे किये हैं। (अग्रे ज्येष्ठं ब्रह्म) प्रारंभमें श्रेष्ठ ब्रह्मने (दिवं आततान) द्युलोकको विस्तृत किया। (ब्रह्मा उत भूतानां प्रथमः जज्ञे) ब्रह्मा भूतोंके पहिले उत्पन्न हुआ। (तेन ब्रह्मणा कः स्पर्धितुं अर्हति) उस ब्रह्मके साथ स्पर्धा करनेके लिये कौन समर्थ होता है ॥ २१ ॥

इस वेदमें ब्रह्मज्ञान तथा अन्य सामर्थ्य इकट्ठे संग्रहित हुए हैं। सबसे प्रारंभमें ब्रह्म प्रकट हुआ। उसने आकाश उत्पन्न किया। पश्चात् ब्रह्मा उत्पन्न हुआ जिसने सृष्टीकी रचना की। वह सबसे अधिक सामर्थ्यवान् था अतः उससे स्पर्धा करनेमें कोई समर्थ नहीं था।

(२३) अथर्वाणः ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — मन्त्रोक्ताः, चन्द्रमाश्च ।)

आथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा ॥१॥ पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा ॥ २ ॥
षडृचेभ्यः स्वाहा ॥ ३ ॥ सप्तर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥
अष्टर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ५ ॥ नवर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ६ ॥
दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥ एकादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ८ ॥
द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥ ९ ॥ त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१०॥
चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा ॥११॥ पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१२॥
षोडशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१३॥ सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१४॥
अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा ॥१५॥ एकोनविंशतिः स्वाहा ॥१६॥
विंशतिः स्वाहा ॥१७॥ महत्काण्डाय स्वाहा ॥१८॥
तृचेभ्यः स्वाहा ॥१९॥ एकर्चेभ्यः स्वाहा ॥२०॥
क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ॥२१॥ एकानृचेभ्यः स्वाहा ॥२२॥
रोहितेभ्यः स्वाहा ॥२३॥ सूर्याभ्यां स्वाहा ॥२४॥
व्रात्याभ्यां स्वाहा ॥२५॥ प्राजापत्याभ्यां स्वाहा ॥२६॥
विषासह्यै स्वाहा ॥२७॥ मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा ॥२८॥
ब्रह्मणे स्वाहा ॥२९॥
ब्रह्मज्येष्ठा संभृता वीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठं दिवमा ततान ।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥३०॥ (१८१)

---

(२३) अथर्वाणः ।

अर्थ— १ अथर्ववेदके चार ऋचावालोंके लिये २ पांच ऋचावालोंके लिये ३ छः ऋचावालोंके लिये ४ सात ऋचावालोंके लिये ५ आठ ऋचावालोंके लिये ६ नौ ऋचावालोंके लिये ७ दस ऋचावालोंके लिये ८ ग्यारह ऋचावालोंके लिये ९ बारह ऋचावालोंके लिये १० तेरह ऋचावालोंके लिये ११ चौदह ऋचावालोंके लिये १२ पंद्रह ऋचावालोंके लिये १३ सोलह ऋचावालोंके लिये १४ सत्रह ऋचावालोंके लिये १५ अठारह ऋचावालोंके लिये १६ उन्नीस ऋचावालोंके लिये १७ बीसके लिये १८ बडे काण्डोंके लिये १९ तीन ऋचावालोंके लिये २० एक ऋचावालोंके लिये २१ क्षुद्रोंके लिये २२ एक चरणको [illegible] ऋचा नहीं कहा जाता उनके लिये २३ रोहितोंके लिये २४ दो सूर्याओंके लिये २५ व्रात्योंके लिये २६ प्राजापत्योंके लिये २७ विषासहिके लिये २८ मंगलिकोंके लिये २९ ब्रह्मके लिये हम समर्पण करते हैं ।

३० वें मंत्रका अर्थ पूर्व स्थानमें १९।२२ में दिया है ।

महत्काण्ड का संकेत १ से [illegible] है चार पांच आदि संख्यावाले जिन ऋषियोंका [illegible] है कि जिनके सूक्त इतनी संख्याके मंत्रोंके हैं । [illegible] १।१।१५ में इस विषयमें देखने योग्य है । क्षुद्रसे [illegible] भी [illegible] हैं एकानृचका [illegible] मंत्र रोहित प्रतिपादक काण्ड रोहित [illegible] विषासहिसे १७ वां काण्ड इस तरह बोध होता है ।

(२४) राष्ट्रम्।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — ब्रह्मणस्पतिः नाना देवताः।)

येन॑ देवं स॑वितारं॒ परि॑ देवा अधा॑रयन्। तेने॒मं ब्र॑ह्मणस्पते॒ परि॑ रा॒ष्ट्राय॑ धत्तन ॥ १ ॥

परी॒ममिन्द्र॒मायु॑षे म॒हे क्ष॒त्राय॑ धत्तन। यथै॑नं ज॒रसे॑ न॒यां ज्योक्क्ष॒त्रेऽधि॑ जागरत् ॥ २ ॥

परी॒मं सोम॒मायु॑षे म॒हे श्रोत्रा॑य धत्तन। यथै॑नं ज॒रसे॑ न॒यां ज्योक्छ्रोत्रेऽधि॑ जागरत् ॥ ३ ॥

परि॑ धत्त ध॒त्त नो॒ वर्च॑से॒मं ज॒राम॑त्युं कृणुत दी॒र्घमायुः।
बृ॒हस्पतिः॒ प्राय॑च्छ॒द्वास॑ ए॒तत्सोमा॑य॒ राज्ञे॒ परि॑धात॒वा उ॑ ॥ ४ ॥

ज॒रां सु ग॑च्छ॒ परि॑ धत्स्व॒ वासो॒ भवा॑ गृ॒ष्टीना॑मभिशस्ति॒पा उ॑।
श॒तं च॒ जीव॑ श॒रदः॑ पु॒रूची॑ रा॒यश्च॒ पोष॑मुप॒संव्य॑यस्व ॥ ५ ॥

परी॒दं वासो॑ अधिथाः स्व॒स्तयेऽभू॑र्वा॒पी॒नाम॑भिशस्ति॒पा उ॑।
श॒तं च॒ जीव॑ श॒रदः॑ पु॒रूची॒र्वसू॑नि॒ चारु॒र्वि भ॑जासि॒ जीव॑न् ॥ ६ ॥

योगे॑योगे त॒वस्त॑रं॒ वाजे॑वाजे हवामहे। सखा॑य॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ ॥ ७ ॥

हिर॑ण्यवर्णो अ॒जरः॑ सु॒वीरो॑ ज॒राम॑त्युः प्र॒जया॒ सं वि॑शस्व।
तद॒ग्निरा॑ह॒ तदु॒ सोम॑ आह॒ बृ॒हस्पतिः॑ सवि॒ता तदिन्द्रः॑ ॥ ८ ॥ (३११)

---

(१४) राष्ट्रम्।

अर्थ— (येन) जो परिधान (सवितारं देवं) सविता देवको (देवाः परि अधारयन्) देवोंने पहनाया था हे ब्रह्मणस्पते! (तेन इमं) उससे इस पुरुषको (राष्ट्राय परि धत्तन) राष्ट्रके लिये परिधान कराओ ॥ १ ॥

(इमं इन्द्रं) इस इन्द्रको (आयुषे) दीर्घायुके लिये और (महे क्षत्राय) बडे क्षात्रतेजके लिये (परि धत्तन) यह वस्त्र पहनाओ। (यथा एनं जरसे नयां) जिससे मैं इसको बुढापेके लिये ले जाऊं (क्षत्रे ज्योक् अधि जागरत्) और यह क्षात्रकर्ममें देरतक जागता रहे ॥ २ ॥

(इमं सोमं) इस सोमको (आयुषे महे श्रोत्राय) दीर्घायु और महान् ज्ञानश्रवणके लिये यह वस्त्र (परि धत्तन) पहनाओ (यथा एनं जरसे नयां) जिससे इसको बुढापेके लिये ले जाऊं और (श्रोत्रे ज्योक् अधि जागरत्) ज्ञान प्राप्तिके लिये यह सतत जागता रहे ॥ ३ ॥

(परि धत्त) वस्त्र पहनाओ (नः इमं वर्चसा धत्त) हमारे इसको तेजके साथ रखो (जरा मृत्युं दीर्घ आयुः कृणुत) वृद्ध अवस्थाके पश्चात् इसको मृत्यु प्राप्त और दीर्घ आयु प्राप्त हो। बृहस्पतिने (राज्ञे सोमाय परिधातवै उ) राजा सोमको परिधान करनेके लिये (एतत् वासः प्रायच्छत्) यह वस्त्र दिया है ॥ ४ ॥

(जरां सु गच्छ) बुढापेको भली प्रकार प्राप्त हो (वासः परि धत्स्व) वस्त्र पहनो। (गृष्टीनां अभिशस्तिपा उ भव) गौओंका विनाशसे बचानेवाला हो। (शतं च जीव शरदः पुरूचीः) सौ वर्ष जीवित रह (रायः च पोषं उपसंव्ययस्व) धन और पुष्टि प्राप्त हो ॥ ५ ॥

(स्वस्तये इदं वासः परि अधिथाः) कल्याणके लिये यह वस्त्र तूने पहना है। (वापीनां अभिशस्तिपा उ अभूः) कुओं या बावडियोंका विनाशसे बचाव करनेवाला तू हो गया है। (पुरूचीः शरदः शतं च जीव) सौ वर्षतक तू जीवित रह। (जीवन् चारुः वसूनि वि भजासि) जीवित रहकर सुंदर बनके अपने मित्रोंमें धन बांट ॥ ६ ॥

(योगेयोगे) प्रत्येक कार्यमें (वाजेवाजे) और प्रत्येक युद्धमें (सखायः) हम सब मित्र इकट्ठे होकर (तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे) बलवान् इन्द्रको अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ॥ ७ ॥

(हिरण्यवर्णः) सुवर्णके जैसे रंगवाला (अजरः) बुढापेसे रहित (सुवीरः) उत्तम वीरोंसे युक्त (जरा-मृत्युः) बुढापेके पश्चात् मृत्यु प्राप्त करनेवाला (प्रजया सं विशस्व) अपनी प्रजाके साथ रहकर आराम कर। (तत् अग्निः आह) यह अग्निने कहा (तत् उ सोम आह) यह सोमने कहा (तत् बृहस्पतिः सविता इन्द्रः) यही बृहस्पति सविता और इन्द्रने कहा है ॥ ८ ॥

(२५) अश्वः ।

(ऋषिः — गोपथः । देवता — वाजी ।)

अश्रान्तस्य त्वा मनसा युनज्मि प्रथमस्य च। उत्कूलमुद्वहो भवोदुह्य प्रति धावतात् ॥१॥ (११७)

(२६) हिरण्यधारणम् ।

(ऋषिः — अथर्वा । देवता — अग्निः हिरण्यं च)

अग्नेः प्रजातं परि यद्धिरण्यममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद्वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ॥ १ ॥
यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णं प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत्त्वा चन्द्रं वर्चसा सं सृजत्यायुष्मान्भवति यो बिभर्ति ॥ २ ॥
आयुषे त्वा वर्चसे त्वौजसे च बलाय च ।
यथा हिरण्यतेजसा विभासासि जनाँ अनु ॥ ३ ॥
यद्वेद राजा वरुणो वेद देवो बृहस्पतिः ।
इन्द्रो यद्वृत्रहा वेद तत्त आयुष्यं भुवत्तत्ते वर्चस्यं भुवत् ॥ ४ ॥ (११८)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

---

(२५) अश्व ।

अर्थ— (अश्रान्तस्य प्रथमस्य च) न थकनेवाले और प्रथम आनेवालेके (मनसा त्वा युनज्मि) मनके साथ तुझे युक्त करता हूं । (उत्कूलं उद्वहो भव) किनारेपरसे ऊपरसे ले जानेवाला हो (उदुह्य) ऊपर ले जाकर (प्रति धावतात्) फिर वापिस दौड आ ॥ १ ॥

(२६) हिरण्यधारणम् ।

(अग्नेः प्रजातं) अग्निसे उत्पन्न हुआ (यत् हिरण्यं) जो सोना है वह (मर्त्येषु अमृतं परि दध्रे) मानवोंपर अमृत रखता है । (य एनत् वेद) जो यह जानता है (स इत् एनं अर्हति) वही निश्चयसे इस सुवर्ण धारणके लिये योग्य होता है । (यः बिभर्ति जरामृत्युः भवति) जो इसका धारण करता है उसकी वृद्धावस्थाके बाद मृत्यु होती है ॥ १ ॥

(यत् हिरण्यं सुवर्णं) जिस उत्तम रंगवाले सोनेको (प्रजावन्तः पूर्वे मनवः सूर्येण ईषिरे) प्रजाओंके समेत [illegible] मनुष्योंने सूर्यसे पाया (तत् त्वा) वह तुझे (चन्द्रं वर्चसा सं सृजति) चमकता हुआ तेजसे युक्त करता है (यः बिभर्ति) जो इसे धारण करता है वह (आयुष्मान् भवति) आयुष्मान् होता है ॥ २ ॥

(आयुषे त्वा) आयुष्यके लिये तुझे (वर्चसे त्वा) तेजके लिये तुझे, (ओजसे च बलाय च) शक्ति और बलके लिये तुझे मैं बांधता हूं (यथा) इसको धारण करके (जनाँ अनु) लोगोंमें (हिरण्यतेजसा विभासासि) सुवर्ण तेजसे तू प्रकाशित हो ॥ ३ ॥

(राजा वरुणः यत् वेद) राजा वरुण जिसको जानता है (देवः बृहस्पतिः वेद) देव बृहस्पति [illegible] जानता है (वृत्रहा इन्द्रः यत् वेद) वृत्रका वध करनेवाला इन्द्र जो जानता है (तत् ते आयुष्यं भुवत्) वह तुझे [illegible] आयुकी वृद्धि करनेवाला होवे (तत् ते वर्चस्यं भुवत्) वह तेरा तेज बढानेवाला होवे ॥ ४ ॥

॥ यहां तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

---

(२७) सुरक्षा।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिराः। देवता — त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च।)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः। वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः। माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥
त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन्ब्रध्नांस्त्रीन्वैष्टपान्। त्रीन्मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्गोप्तॄन्कल्पयामि ते ॥ ४ ॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन्। अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन्। भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः। प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान्जीव मा मृथाः। प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

---

(२७) सुरक्षा।

अर्थ— (वृषभः त्वा गोभिः पातु) बैल तेरा रक्षण गौओंके साथ करे। (वृषा वाजिभिः त्वा पातु) बैल घोडोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वायुः ब्रह्मणा त्वा पातु) वायु ज्ञानसे तेरा रक्षण करे (इन्द्रः इन्द्रियैः त्वा पातु) इन्द्र इन्द्रियोंके साथ तेरा रक्षण करे ॥ १ ॥

(सोमः ओषधीभिः त्वा पातु) सोम सब औषधियोंके साथ तेरी रक्षा करे। (सूर्यः नक्षत्रैः पातु) सूर्य नक्षत्रोंके साथ रहकर तेरी रक्षा करे। (चन्द्रः वृत्रहा माद्भ्यः त्वा) वृत्रको मारनेवाला चन्द्र महिनोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वातः प्राणेन रक्षतु) वायु प्राणके साथ तेरी रक्षा करे ॥ २ ॥

(तिस्रः दिवः) तीन द्युलोक (तिस्रः पृथिवीः) तीन भूमियां (त्रीणि अन्तरिक्षाणि च) तीन अन्तरिक्ष (चतुरः समुद्रान्) चार समुद्र (त्रिवृतं स्तोमं) तीन गुणा स्तोम (त्रिवृतः आपः आहुः) तीन गुणा जल है ऐसा कहते हैं (त्रिवृद्भिः त्रिवृताः ताः त्वा रक्षन्तु) तीन गुणा तीन गुणित होकर वे तेरी रक्षा करें ॥ ३ ॥

(त्रीन् नाकान्) तीन स्वर्गोंको (त्रीन् समुद्रान्) तीन समुद्रोंको (त्रीन् ब्रध्नान्) तीन तेजोंको (त्रीन् वैष्टपान्) तीन विविध तपनेवाले स्थानोंको (त्रीन् मातरिश्वनः) तीन वायुओंको (त्रीन् सूर्यान्) तीन सूर्योंको (ते गोप्तॄन् कल्पयामि) तेरी रक्षा करनेवाले बनाता हूं ॥ ४ ॥

(घृतेन त्वा समुक्षामि) घीसे तुझे सिंचता हूं हे अग्ने! (आज्येन वर्धयन्) घीसे तुझे बढाता हूं। (अग्नेः चन्द्रस्य सूर्यस्य) अग्नि, चन्द्र और सूर्यके (प्राणं) प्राणको (मायिनः मा दभन्) कपटी लोग न दबावें ॥ ५ ॥

(मायिनः) कपटी लोग (वः प्राणं मा) तुम्हारे प्राणको (वः अपानं मा) तुम्हारे अपानको तथा (हरः) तेजको (मा दभन्) न दबावें। (विश्ववेदसः देवाः) सब धनवाले देव (भ्राजन्तः) चमकते हुए (दैव्येन धावत) अपने दिव्य बलके साथ तुम्हारे सहाय्यार्थ दौडें ॥ ६ ॥

(प्राणेन अग्निं सं सृजति) प्राणसे अग्निको संयुक्त करता हूं। (वातः प्राणेन संहितः) वायु प्राणके साथ मिला हुआ है। (देवाः) सब देवोंने (विश्वतोमुखं सूर्यं) चारों ओर मुखवाले सूर्यको (प्राणेन अजनयन्) प्राणके साथ उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥

(आयुषा आयुःकृतां जीव) आयु बनानेवालोंके आयुसे तू जीवित रह। तू (आयुष्मान् जीव) दीर्घायु होकर जीवित रह (मा मृथाः) मत मर जा। (आत्मन्वतां प्राणेन जीव) आत्मावालोंके प्राणसे जीवित रह। (मृत्योः वशं मा उदगाः) मृत्युके वशमें न जा ॥ ८ ॥

देवानां निहितं निधिं यमिन्द्रोऽन्वविन्दत्पथिभिर्देवयानैः ।
आपो हिरण्यं जुगुपुस्त्रिवृद्भिस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ९ ॥
त्रयस्त्रिंशद्देवतास्त्रीणि च वीर्याणि प्रियायमाणा जुगुपुरप्स्व१न्तः ।
अस्मिंश्चन्द्रे अधि यद्धिरण्यं तेनायं कृणवद्वीर्याणि ॥१०॥
ये देवा दिव्येकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥११॥
ये देवा अन्तरिक्ष एकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१२॥
ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ ते देवासो हविरिदं जुषध्वम् ॥१३॥
असपत्नं पुरस्तात्पश्चान्नो अभयं कृतम् । सविता मा दक्षिणत उत्तरान्मा शचीपतिः ॥१४॥
दिवो मादित्या रक्षन्तु भूम्या रक्षन्त्वग्नयः । इन्द्राग्नी रक्षतां मा पुरस्तादश्विनावभितः शर्म यच्छताम् ।
तिरश्चीनघ्न्या रक्षतु जातवेदा भूतकृतो मे सर्वतः सन्तु वर्म ॥१५॥ (१११)

(२८) दर्भमणिः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा (सपत्नक्षयकामः)। देवता — दर्भमणिः मन्त्रोक्ताश्च ।)

इमं बध्नामि ते मणिं दीर्घायुत्वाय तेजसे । दर्भं सपत्नदम्भनं द्विषतस्तपनं हृदः ॥ १ ॥

अर्थ— (देवानां निहितं निधिं) देवोंके गुप्त खजानेको (यं इन्द्रः) जिसको इन्द्रने (देवयानैः पथिभिः) देवयान मार्गोंसे (अन्वविन्दत्) ढूंढ निकाला था (आपः त्रिवृद्भिः हिरण्यं जुगुपुः) जलोंने तीन गुणोंके साथ सुवर्णकी रक्षा की (ताः) वे जल (त्रिवृता त्रिवृद्भिः) तीन गुणा तीन गुणोंके साथ (त्वा रक्षन्तु) तेरी रक्षा करें ॥ ९ ॥

(त्रयः त्रिंशत् देवताः) तैंतीस देवताओंने तथा (त्रीणि वीर्याणि) तीन वीर्योंने, अप्सु अन्तः प्रियायमाणाः) जलोंके अन्दर प्यारसे (जुगुपुः) इसकी रक्षा की। (अस्मिन् चन्द्रे अधि यत् हिरण्यं) इस चमकदार मणिपर जो सुवर्ण है, (तेन अयं वीर्याणि कृणवत्) उसके प्रभावसे यह पुरुष वीरताके कर्म करे ॥ १० ॥

(दिवि ये एकादश देवाः स्थ) द्युलोकमें जो ग्यारह देव हैं (अन्तरिक्षे ये एकादश देवाः स्थ) अन्तरिक्षमें जो ग्यारह देव हैं और (पृथिव्यां ये एकादश देवाः स्थ) पृथिवीपर जो ग्यारह देव हैं (ते देवासः) वे सब (इदं हविः जुषध्वं) इस हविका भाग करें ॥ ११-१३ ॥

(पुरस्तात् नः असपत्नं) आगेसे हमारे लिये शत्रुका भय न रहे (पश्चात् नः अभयं कृतं) पीछेसे हमारे लिये अभय किया है। (सविता दक्षिणतः मा) सविता दक्षिण दिशासे मेरी रक्षा करे और (शचीपतिः उत्तरात् मा) इन्द्र उत्तर दिशासे मेरी रक्षा करे ॥ १४ ॥

(आदित्याः मा दिवः रक्षन्तु) आदित्य मेरी द्युलोकसे रक्षा करें, (अग्नयः भूम्याः रक्षन्तु) अग्नि भूमीपर मेरी रक्षा करें। (इन्द्राग्नी पुरस्तात् मा रक्षतां) इन्द्र और अग्नि आगेसे मेरी रक्षा करें। (अश्विनौ अभितः शर्म यच्छतां) अश्विनौ मेरा चारों ओरसे आश्रय दें। (तिरश्चीन् अघ्न्या रक्षतु) पशुओंकी रक्षा वह करे। (भूतकृतः जातवेदाः मे सर्वतः वर्म सन्तु) भूतोंको बनानेवाले अग्नि सब ओरसे मेरा कवच बनें ॥ १५ ॥

(२८) दर्भमणिः ।

(दीर्घायुत्वाय तेजसे) दीर्घायुकी प्राप्ति और तेजस्विताके लिये (इमं मणिं ते बध्नामि) इस मणिको तेरे शरीरपर बांधता हूं। (दर्भं सपत्नदम्भनं) यह दर्भमणि शत्रुका नाश करता है और (द्विषतः हृदः तपनं) द्वेषीके हृदयको संताप उत्पन्न करनेवाला है ॥ १ ॥

(२७) सुरक्षा।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिराः। देवता — त्रिवृत्, चन्द्रमाश्च।)

गोभिष्ट्वा पात्वृषभो वृषा त्वा पातु वाजिभिः। वायुष्ट्वा ब्रह्मणा पात्विन्द्रस्त्वा पात्विन्द्रियैः ॥ १ ॥
सोमस्त्वा पात्वोषधीभिर्नक्षत्रैः पातु सूर्यः। माद्भ्यस्त्वा चन्द्रो वृत्रहा वातः प्राणेन रक्षतु ॥ २ ॥
तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीस्त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरः समुद्रान्।
त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आप आहुस्तास्त्वा रक्षन्तु त्रिवृता त्रिवृद्भिः ॥ ३ ॥
त्रीन्नाकांस्त्रीन्त्समुद्रांस्त्रीन्ब्रध्नांस्त्रीन्वैष्टपान्। त्रीन्मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्गोप्तॄन्कल्पयामि ते ॥ ४ ॥
घृतेन त्वा समुक्षाम्यग्न आज्येन वर्धयन्। अग्नेश्चन्द्रस्य सूर्यस्य मा प्राणं मायिनो दभन् ॥ ५ ॥
मा वः प्राणं मा वोऽपानं मा हरो मायिनो दभन्। भ्राजन्तो विश्ववेदसो देवा दैव्येन धावत ॥ ६ ॥
प्राणेनाग्निं सं सृजति वातः प्राणेन संहितः। प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ७ ॥
आयुषायुःकृतां जीवायुष्मान्जीव मा मृथाः। प्राणेनात्मन्वतां जीव मा मृत्योरुदगा वशम् ॥ ८ ॥

---

(२७) सुरक्षा।

अर्थ— (वृषभः त्वा गोभिः पातु) बैल तेरा रक्षण गौओंके साथ करे। (वृषा वाजिभिः त्वा पातु) बैल घोडोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वायुः ब्रह्मणा त्वा पातु) वायु ज्ञानसे तेरा रक्षण करे (इन्द्रः इन्द्रियैः त्वा पातु) इन्द्र इन्द्रियोंके साथ तेरा रक्षण करे॥ १॥

(सोमः ओषधीभिः त्वा पातु) सोम औषधियोंके साथ तेरी रक्षा करे। (सूर्यः नक्षत्रैः पातु) सूर्य नक्षत्रोंके साथ रहकर तेरी रक्षा करे। (चन्द्रः वृत्रहा माद्भ्यः त्वा) वृत्रको मारनेवाला चन्द्र महिनोंके साथ तेरा रक्षण करे। (वातः प्राणेन रक्षतु) वायु प्राणके साथ तेरी रक्षा करे॥ २॥

(तिस्रः दिवः) तीन द्युलोक (तिस्रः पृथिवीः) तीन भूमियां (त्रीणि अन्तरिक्षाणि) तीन अन्तरिक्ष (चतुरः समुद्रान्) चार समुद्र (त्रिवृतं स्तोमं) तीन गुणा स्तोम (त्रिवृतः आपः आहुः) तीन गुणा जल है ऐसा कहते हैं (त्रिवृद्भिः त्रिवृता ताः त्वा रक्षन्तु) तीन गुणा तीन गुणत्व होकर वे तेरी रक्षा करें॥ ३॥

(त्रीन् नाकान्) तीन स्वर्गोंको (त्रीन् समुद्रान्) तीन समुद्रोंको (त्रीन् ब्रध्नान्) तीन तेजोंको (त्रीन् वैष्टपान्) तीन विशेष तपनवाले लोकोंको (त्रीन् मातरिश्वनः) तीन वायुओंको (त्रीन् सूर्यान्) तीन सूर्योंको (ते गोप्तॄन् कल्पयामि) तेरी रक्षा करनेवाले बनाता हूं॥ ४॥

(घृतेन त्वा समुक्षामि) घीसे तुझे सिंचता हूं हे अग्ने! (आज्येन वर्धयन्) घीसे तुझे बढाता हूं। (अग्नेः चन्द्रस्य सूर्यस्य) अग्निके चन्द्रके और सूर्यके (प्राणं) प्राणको (मायिनः मा दभन्) कपटी कोई न दबावें॥ ५॥

(मायिनः) कपटी लोग (वः प्राणं मा) तुम्हारे प्राणको (वः अपानं मा) तुम्हारे अपानको तथा (हरः) बलको (मा दभन्) न दबावें। (विश्ववेदसः देवाः) सब जाननेवाले देव (भ्राजन्तः) चमकते हुवे (दैव्येन धावत) अपनी दिव्य शक्तिके साथ तुम्हारे सहाय्यार्थ दौडें॥ ६॥

(प्राणेन अग्निं सं सृजति) प्राणसे अग्निको संयुक्त करता है। (वातः प्राणेन संहितः) वायु प्राणके साथ जुडा हुआ है। (देवाः) सब देवोंने (विश्वतोमुखं सूर्यं) चारों ओर मुखवाले सूर्यको (प्राणेन अजनयन्) प्राणके द्वारा उत्पन्न किया है॥ ७॥

(आयुःकृतां आयुषा जीव) आयु बनानेवालोंके आयुसे तू जीवित रह। तू (आयुष्मान् जीव) दीर्घायु होकर जीवित रह (मा मृथाः) मत मर जा। (आत्मन्वतां प्राणेन जीव) आत्मवालोंके प्राणसे जीवित रह। (मृत्योः वशं मा उदगाः) मृत्युके वशमें न जा॥ ॥

मृण दर्भ सपत्नान्मे मृण मे पृतनायतः । मृण मे सर्वान्दुर्हार्दो मृण मे द्विषतो मणे ॥४॥
मन्थ दर्भ सपत्नान्मे मन्थ मे पृतनायतः । मन्थ मे सर्वान्दुर्हार्दो मन्थ मे द्विषतो मणे ॥५॥
पिण्ढि दर्भ सपत्नान्मे पिण्ढि मे पृतनायतः । पिण्ढि मे सर्वान्दुर्हार्दः पिण्ढि मे द्विषतो मणे ॥६॥
ओषं दर्भ सपत्नान्मे ओष मे पृतनायतः । ओष मे सर्वान्दुर्हार्द ओष मे द्विषतो मणे ॥७॥
दह दर्भ सपत्नान्मे दह मे पृतनायतः । दह मे सर्वान्दुर्हार्दो दह मे द्विषतो मणे ॥८॥
जहि दर्भ सपत्नान्मे जहि मे पृतनायतः । जहि मे सर्वान्दुर्हार्दो जहि मे द्विषतो मणे ॥९॥ (२१०)

(३०) दर्भमणिः ।

(ऋषिः— ब्रह्मा । देवता — दर्भमणिः)

यत्ते दर्भ जरामृत्युः शतं वर्मसु वर्म ते । तेनेमं वर्मिणं कृत्वा सपत्नाञ्जहि वीर्यैः ॥ १ ॥
शतं ते दर्भ वर्माणि सहस्रं वीर्याणि ते । तमस्मै विश्वे त्वां देवा जरसे भर्तवा अदुः ॥ २ ॥
त्वामाहुर्देववर्म त्वां दर्भ ब्रह्मणस्पतिम् । त्वामिन्द्रस्याहुर्वर्म त्वं राष्ट्राणि रक्षसि ॥ ३ ॥
सपत्नक्षयणं दर्भ द्विषतस्तपनं हृदः । मणिं क्षत्रस्य वर्धनं तनूपानं कृणोमि ते ॥ ४ ॥
यत्समुद्रो अभ्यक्रन्दत्पर्जन्यो विद्युता सह । ततो हिरण्ययो बिन्दुस्ततो दर्भो अजायत ॥ ५ ॥ (२१५)

(मे पृतनायतः) युद्ध करनेवालोंको (मे सर्वान् दुर्हार्दः) सब दुष्ट हृदयवालोंको (मे द्विषतः) मेरा द्वेष करनेवालोंको ॥ ४-९ ॥

सब मंत्र समान पदवाले हैं इसलिये सब मंत्रोंका भाव इकट्ठा दिया है ।

(३०) दर्भमणिः ।

अर्थ— हे दर्भ ! (यत् ते जरामृत्युः) जो बुढापेके पश्चात् मृत्यु लानेकी शक्ति है तथा (ते शतं वर्मसु वर्म) जो तेरा सैकडों कवचोंमें उत्तम कवच है (तेन इमं वर्मिणं कृत्वा) उससे इसको कवचधारी बनाकर (वीर्यैः सपत्नान् जहि) अपने पराक्रमोंसे शत्रुओंको मार ॥ १ ॥

हे दर्भ ! (ते शतं वर्माणि) तेरे सौ कवच हैं (ते सहस्रं वीर्याणि) तेरे हजारों वीर्य हैं (विश्वे देवाः) सब देवोंने (त्वां अस्मै जरसे भर्तवै) तुझे इसको वृद्धावस्थाकी प्राप्ति होनेके लिये और भरणपोषणके लिये (अदुः) दिया है ॥ २ ॥

(त्वां देववर्म आहुः) तुझे देवोंका कवच कहते हैं हे दर्भ ! (त्वां बृहस्पतिं) तुझे बृहस्पति कहते हैं (त्वां इन्द्रस्य वर्म आहुः) तुझे इन्द्रका कवच कहते हैं । (त्वं राष्ट्राणि रक्षसि) तू राष्ट्रोंका रक्षण करता है ॥ ३ ॥

हे दर्भ ! (सपत्न क्षयणं) शत्रुनाशक (द्विषतः हृदः तपनं) द्वेष करनेवालोंके हृदयोंको संताप देनेवाला (क्षत्रस्य वर्धनं) क्षात्रतेजका संवर्धन करनेवाला (ते तनूपानं मणिं कृणोमि) तेरे शरीरका रक्षक इस मणिको मैं करता हूं ॥ ४ ॥

(यत् समुद्रः अभ्यक्रन्दत्) जो समुद्र गर्जना करता रहा (विद्युता सह पर्जन्यः) बिजलीके साथ मेघ गर्जना करता रहा (ततः हिरण्ययः बिन्दुः) वहांसे सुवर्णका बिन्दु उत्पन्न हुआ (ततः दर्भः अजायत) उससे दर्भमणि उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥

(३१) औदुम्बरमणि ।

(ऋषि – सविता (पुष्टिकामः) । देवता — औदुम्बरमणिः ।)

औदुम्बरेण मणिना पुष्टिकामाय वेधसा । पशूनां सर्वेषां स्फातिं गोष्ठे मे सविता करत् ॥ १ ॥
यो नो अग्निर्गार्हपत्यः पशूनामधिपा असत् । औदुम्बरो वृषा मणिः सं मा सृजतु पुष्ट्या ॥ २ ॥
करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च नो गृहे । औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥ ३ ॥
यद् द्विपाच्च चतुष्पाच्च यान्यन्नानि ये रसाः । गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानं बिभ्रदौदुम्बरं मणिम् ॥ ४ ॥
पुष्टिं पशूनां परि जग्रभाहं चतुष्पदां द्विपदां यच्च धान्यम् ।
पयः पशूनां रसमोषधीनां बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात् ॥ ५ ॥
अहं पशूनामधिपा असानि मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु ।
मह्यमौदुम्बरो मणिर्द्रविणानि नि यच्छतु ॥ ६ ॥
उप मौदुम्बरो मणिः प्रजया च धनेन च ।
इन्द्रेण जिन्वितो मणिरा मागन्त्सह वर्चसा ॥ ७ ॥

---

(३१) औदुम्बरमणिः ।

अर्थ— (वेधसा) ज्ञानीने (औदुम्बरेण मणिना) औदुम्बर मणिसे (पुष्टिकामाय) पुष्टि चाहनेवालेके लिये प्रयत्न किया । जिससे (सविता) सविता (मे गोष्ठे) मेरी गोशालामें (सर्वेषां पशूनां स्फातिं) सब पशुओंकी वृद्धि (करत्) करे ॥ १ ॥

(यः नः गार्हपत्यः अग्निः) जो हमारा गार्हपत्य अग्नि (पशूनां अधिपा असत्) पशुओंका अधिपति है, (औदुम्बरः वृषा मणिः) बलवान् औदुम्बरमणि (मा पुष्ट्या सं सृजतु) मुझे पुष्टिके साथ युक्त करे ॥ २ ॥

(करीषिणीं) गोबरके खादसे भरपूर करनेवाली भी (फलवतीं) फलोंसे युक्त होकर (नः गृहे स्वधां इरां च) हमारे घरमें अन्न और पेय भरपूर रखे । (औदुम्बरस्य तेजसा) औदुम्बर मणिके तेजसे (धाता मे पुष्टिं दधातु) धाता मुझे पुष्टि देवे ॥ ३ ॥

(औदुम्बरं मणिं बिभ्रत्) औदुम्बर मणिको धारण करके (अहं) मैं (यत् द्विपात् च चतुष्पात् च) जो द्विपाद और चतुष्पाद और (यानि अन्नानि ये रसाः) जो अन्न और रस हैं (एषां भूमानं गृह्णे) इनका बहुत्व प्राप्त करता हूं ॥ ४ ॥

(पशूनां पुष्टिं अहं परि अग्रभम्) मैं पशुओंकी पुष्टि लेता हूं (चतुष्पदां द्विपदां यत् च धान्यं) चार पांववाले द्विपाद और जो धान्य है । (पशूनां पयः) पशुओंके दूध और (ओषधीनां रसं) औषधियोंके रसको (बृहस्पतिः सविता मे नि यच्छात्) बृहस्पति सविता मुझे देवे ॥ ५ ॥

(अहं पशूनां अधिपा असानि) मैं पशुओंका अधिपाल होऊं । (पुष्टपतिः मयि पुष्टं दधातु) पुष्टपति मुझमें पुष्टि धरे । (औदुम्बरः मणिः मह्यं द्रविणानि नि यच्छतु) औदुम्बर मणि मेरे लिये धन देवे ॥ ६ ॥

(औदुम्बरो मणिः) औदुम्बर मणि (प्रजया च धनेन च) प्रजा और धनके साथ, (इन्द्रेण जिन्वितो मणिः) इन्द्रसे प्रेरा हुआ यह मणि (वर्चसा सह मा उप आगमत्) तेजके साथ मेरे समीप आता है ॥ ७ ॥

देवो मणिः संपत्नहा धनसा धनसातये । पशोरन्नस्य भूमानं गवां स्फातिं नि यच्छतु ॥ ८ ॥
यथाग्रे त्वं वनस्पते पुष्ट्या सह जज्ञिषे । एवा धनस्य मे स्फातिमा दधातु सरस्वती ॥ ९ ॥
आ मे धनं सरस्वती पयस्फातिं च धान्यम् । सिनीवाल्युपा वहादयं चौदुम्बरो मणिः ॥ १० ॥
त्वं मणीनामधिपा वृषासि त्वयि पुष्टं पुष्टपतिर्जजान ।
त्वयीमे वाजा द्रविणानि सर्वौदुम्बरः स त्वमस्मत्सहस्वारादरातिममतिं क्षुधं च ॥ ११ ॥
ग्रामणीरसि ग्रामणीरुत्थायाभिषिक्तोऽभि मा सिञ्च वर्चसा ।
तेजोऽसि तेजो मयि धारयाधि रयिरसि रयिं मे धेहि ॥ १२ ॥
पुष्टिरसि पुष्ट्या मा समङ्ग्धि गृहमेधी गृहपतिं मा कृणु ।
औदुम्बरः स त्वमस्मासु धेहि रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ
रायस्पोषाय प्रति मुञ्चे अहं त्वाम् ॥ १३ ॥
अयमौदुम्बरो मणिर्वीरो वीराय बध्यते ।
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छात् ॥ १४ ॥ (१४०)

अर्थ— (सपत्नहा देवः मणिः) शत्रुओंका नाश करनेवाला यह दिव्य मणि (धनसा) धनोंको बांटनेवाला होकर (धनसातये) धनकी प्राप्तिके लिये [धारण किया है ।] यह (पशोः अन्नस्य भूमानं) पशु और अन्नकी समृद्धि तथा (गवां स्फातिं नि यच्छतु) गौओंकी हमें वृद्धि देवे ॥ ८ ॥

हे वनस्पते ! (यथा अग्रे त्वं) जैसे पहिले तू (पुष्ट्या सह जज्ञिषे) पुष्टिके साथ उत्पन्न हुई (एवा सरस्वती) वैसी ही सरस्वती (मे धनस्य स्फातिं आ दधातु) मेरे लिये धनकी वृद्धि देवे ॥ ९ ॥

सरस्वती सिनीवाली और (अयं औदुम्बरः मणिः) यह औदुम्बर मणि (मे) मेरे पास (धनं पयस्फातिं च धान्यं) धन धान्य और दूधकी समृद्धि (आ वहात्) लावे ॥ १० ॥

(त्वं वृषा असि) तू बलवान् है (मणीनां अधिपाः) मणियोंका अधिपति है । (पुष्टपतिः त्वयि पुष्टं जजान) पुष्टपतिने तुझमें पुष्टि उत्पन्न की है । (त्वयि इमे वाजाः) तुझमें ये बल हैं (सर्वा द्रविणानि) सब धन तुझमें हैं । (सः त्वं औदुम्बरः) वह तू औदुम्बर मणि (अस्मत् अरातिं अमतिं क्षुधं च) हमसे कंजूसी निर्बुद्धता तथा क्षुधाको (सहस्व) दूर हटा दे ॥ ११ ॥

(ग्रामणीः असि) तू ग्रामका नेता है (ग्रामणीः उत्थाय) ग्रामका नेता होकर उठकर (अभिषिक्तः) तू अभिषिक्त हुआ। (वर्चसा मा अभिषिञ्च) तेजसे मुझे अभिषिक्त कर । (तेजः असि) तू तेज है (मयि तेजः धारय) मुझमें तेज धारण कर (रयिः असि) तू धन है (मे रयिं अधि धारय) मुझमें धनका धारण कर ॥ १२ ॥

(पुष्टिः असि मा पुष्ट्या समङ्ग्धि) तू पुष्टि है मुझे पुष्टिसे युक्त कर, (गृहमेधी) तू गृहमेधी होकर (मा गृहपतिं कृणु) मुझे गृहपति कर । (सः औदुम्बरः) वह तू औदुम्बर मणि है (त्वं अस्मासु रयिं धेहि) तू हममें धन स्थापन कर । (नः सर्ववीरं च नि यच्छ) हमारे लिये वीर पुत्र पौत्रवाला धन दे । (अहं त्वां) मैं तुझे (रायः पोषाय प्रति मुञ्चे) धनकी पुष्टिके लिये बांधता हूं ॥ १३ ॥

(अयं औदुम्बरः मणिः) यह औदुम्बरमणि (वीरः वीराय बध्यते) वीर है वह वीरको बांधा जाता है । (सः नः मधुमतीं सनिं कृणोतु) वह हमें मधुरताके साथ लाभसे संयुक्त करे । (सर्ववीरं रयिं च नः नि यच्छात्) और वीरोंसे युक्त धन हमें दे ॥ १४ ॥

(३२) दर्भ।

(ऋषिः — भृगुः (आयुष्कामः)। देवता — दर्भः।)

शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः। दर्भो य उग्र ओषधिस्तं ते बध्नाम्यायुषे ॥ १ ॥
नास्य केशान् प्र वपन्ति नोरसि ताडमा घ्नते। यस्मा अच्छिन्नपर्णेन दर्भेण शर्म यच्छति ॥ २ ॥
दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः। त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥ ३ ॥
तिस्रो दिवो अत्यतृणत्तिस्र इमाः पृथिवीरुत। त्वयाहं दुर्हार्दो जिह्वां नि तृणद्मि वचांसि ॥ ४ ॥
त्वमसि सहमानोऽहमस्मि सहस्वान्। उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा सपत्नान्त्सहिषीमहि ॥ ५ ॥
सहस्व नो अभिमातिं सहस्व पृतनायतः। सहस्व सर्वान्दुर्हार्दः सुहार्दो मे बहून्कृधि ॥ ६ ॥
दर्भेण देवजातेन दिवि ष्टम्भेन शश्वदित्। तेनाहं शश्वतो जनाँ असनं सनवानि च ॥ ७ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ ८ ॥

---

(३२) दर्भः।

अर्थ— (शतकाण्डः दुश्च्यवनः) सौ काण्डोंवाला हटाना जिसका कठिन है (सहस्रपर्णः) हजारों पत्तोंवाला (उत्तिरः) ऊपर उगनेवाला (दर्भः यः उग्रः ओषधिः) दर्भ यह एक उग्र औषधि है (तं ते आयुषे बध्नामि) उसको तुझे आयु बढानेके लिये बांधता हूं ॥ १ ॥

(अस्य केशान् न प्रवपन्ति) इसके बालोंको काटते नहीं (न उरसि ताडं आ घ्नते) न छातीको पीटते हुए मारते हैं, (यस्मै) जिसको (अच्छिन्न पर्णेन दर्भेण) न कटे पत्तोंवाले दर्भसे मनुष्य (शर्म यच्छति) सुख देता है ॥ २ ॥

हे ओषधे! (ते तूलं दिवि) तेरी चोटी आकाशमें है (पृथिव्यां असि निष्ठितः) पृथिवीमें तू स्थिर है। (त्वया सहस्रकाण्डेन) तुझ सहस्र काण्डवालेके द्वारा (आयुः प्र वर्धयामहे) हम अपनी आयुको बढाते हैं ॥ ३ ॥

(तिस्रो दिवः अत्यतृणत्) तू तीन आकाशोंको और, (तिस्रः इमाः पृथिवीः उत) तीन इन पृथिवियोंको भी चीर चुका है। (त्वया अहं) तेरे द्वारा मैं (दुर्हार्दः जिह्वां) दुष्ट हृदयवालेकी जिह्वाको तथा (वचांसि नि तृणद्मि) वचनोंको चीर डालता हूं ॥ ४ ॥

(त्वं सहमानः असि) तू विजयी है, (अहं सहस्वान् अस्मि) मैं बलवान् हूं। (उभौ सहस्वन्तौ भूत्वा) हम दोनों बलवान होकर (सपत्नान् सहिषीमहि) शत्रुओंको दबा देंगे ॥ ५ ॥

(नः अभिमातिं सहस्व) हमारे शत्रुको दबाओ (पृतनायतः सहस्व) सेनासे हमला करनेवालोंको पराभूत कर। (सर्वान् दुर्हार्दः सहस्व) सब दुष्ट हृदयवालोंको पराभूत कर (मे सुहार्दः बहून् कृधि) मेरे लिये उत्तम हृदयवाले मित्र बहुत कर ॥ ६ ॥

(देवजातेन दर्भेण) देवोंसे उत्पन्न हुए दर्भसे (शश्वत् इत् दिवि स्तम्भेन) सदा द्युलोकमें थांभनेवाले (तेन अहं) उस दर्भमणिसे मैं (शश्वतः जनान् असनं) सदा लोगोंको जीता है और (सनवानि च) जीतूंगा भी ॥ ७ ॥

हे दर्भ! (ब्रह्मराजन्याभ्यां) ब्राह्मण क्षत्रियों और (शूद्राय आर्याय च) शूद्रों और आर्योंके लिये (यस्मै च कामयामहे) जिसको हम चाहते हैं और (सर्वस्मै विपश्यते च) सब देखनेवालेके लिये (मा प्रियं कृणु) मुझे प्रिय बना ॥ ८ ॥

यो जायमानः पृथिवीमदृंहद्यो अस्तभ्नादन्तरिक्षं दिवं च ।
यं बिभ्रतं ननु पाप्मा विवेद स नोऽयं दर्भो वरुणो दिवा कः ॥ ९ ॥
सपत्नहा शतकाण्डः सहस्वानोषधीनां प्रथमः सं बभूव ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतस्तेन साक्षीय पृतनाः पृतन्यतः ॥ १० ॥ (४५९)

(३३) दर्भः ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — दर्भः ।)

सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वानपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो देवो मणिरायुषा सं सृजाति नः ॥ १ ॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्भूमिदृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः ।
नुदन्त्सपत्नानधरांश्च कृण्वन्दर्भा रोह महतामिन्द्रियेण ॥ २ ॥
त्वं भूमिमत्येष्योजसा त्वं वेद्यां सीदसि चारुरध्वरे ।
त्वां पवित्रमृषयोऽभरन्त त्वं पुनीहि दुरितान्यस्मत् ॥ ३ ॥

अर्थ— (यः जायमानः) जिसने जन्मते ही (पृथिवीं अदृंहत्) पृथिवीको दृढ किया (यः अन्तरिक्षं दिवं च अस्तभ्नात्) जिसने अन्तरिक्ष और द्युलोकको स्थिर किया (यं बिभ्रतं) जिसके धारनेवालेको (पाप्मा न नु विवेद) पापी नहीं प्राप्त कर सकता (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (वरुणः) वरुण-श्रेष्ठ बनकर (दिवा कः) प्रकाश करे ॥ ९ ॥

(सपत्नहा) शत्रुको मारनेवाला (शतकाण्डः) सौ काण्डोंवाला (सहस्वान्) बलिष्ठ (ओषधीनां प्रथमः सं बभूव) औषधियोंमें पहिला हुआ है। (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (विश्वतः नः परि पातु) सब ओरसे हमारा रक्षण करे। (तेन) उससे मैं (पृतन्यतः पृतनाः) सेनावालेकी सेनाको (साक्षीय) जीतूंगा ॥ १० ॥

(३३) दर्भः ।

(सहस्र-अर्घः) सहस्रों प्रकारसे मूल्यवान् (शतकाण्डः) सौ काण्डोंवाला (पयस्वान्) दूधसे परिपूर्ण (अपां अग्निः) जलोंमें रहनेवाला अग्नि (वीरुधां राजसूयं) औषधियोंका राजसूय यज्ञ जैसा (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (नः विश्वतः परि पातु) हमें चारों ओरसे सुरक्षित रखे। (देवः मणिः नः आयुषा सं सृजाति) यह दिव्य मणि हमें आयुके साथ संयुक्त करे ॥ १ ॥

(घृतात् उल्लुप्तः) घीसे सींचा हुआ (मधुमान् पयस्वान्) मधु और दूधसे भरा (भूमि-दृंहः) भूमिको दृढ करनेवाला (अच्युतः) न गिरनेवाला (च्यावयिष्णुः) शत्रुओंको गिरानेवाला (सपत्नान् नुदन्) शत्रुओंको दूर करनेवाला (अधरान् च कृण्वन्) शत्रुओंको नीचे करनेवाला तू है दर्भ! (महतां इन्द्रियेण आ रोह) बडोंके वीर्यसे शरीरपर आरूढ हो ॥ २ ॥

(त्वं भूमिं ओजसा अत्येषि) तू भूमिको अपने बलसे उल्लंघन करके जाता है (त्वं अध्वरे वेद्यां चारुः सीदसि) तू यज्ञकी वेदीमें सुन्दर रीतिसे बैठता है। (ऋषयः त्वां पवित्रं अभरन्त) ऋषियोंने तुझे पवित्र मान कर धारण किया (त्वं अस्मत् दुरितानि पुनीहि) तू हमसे पापोंको दूर करके हमें पवित्र बना ॥ ३ ॥

तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत् तं ते बध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ ४ ॥
दर्भेण त्वं कृणवद्वीर्याणि दर्भं बिभ्रदात्मना मा व्यथिष्ठाः ।
अतिष्ठाय वर्चसाधान्यान्त्सूर्य इवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ ५ ॥ (२६४)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

(३४) जङ्गिडमणिः ।

(ऋषिः — अङ्गिराः । देवता— वनस्पतिः, जङ्गिडः ।)

जङ्गिडोऽसि जङ्गिडो रक्षितासि जङ्गिडः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्वं रक्षतु जङ्गिडः ॥ १ ॥
या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः शतं कृत्याकृतश्च ये । सर्वान्विनक्तु तेजसोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ २ ॥
अरसं कृत्रिमं नादमरसाः सप्त विस्रसः । अपेतो जङ्गिडामतिमिषुमस्तेव शातय ॥ ३ ॥
कृत्यादूषण एवायमथो अरातिदूषणः । अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ४ ॥

अर्थ— (तीक्ष्णः राजा) तीक्ष्ण राजा (विषासहिः) शत्रुको पराभूत करनेवाला (रक्षोहा) राक्षसोंको मारनेवाला (विश्वचर्षणिः) सब मानवोंका स्वामी (देवानां ओजः) देवोंका यह सामर्थ्य है (एतत् उग्रं बलं) यह उग्र बल है (तं ते) उसको तेरे शरीर पर (जरसे स्वस्तये बध्नामि) वृद्धावस्थाकी प्राप्तिके लिये और कल्याणके लिये बांधता हूं ॥ ४ ॥

(त्वं दर्भेण वीर्याणि कृण्वन्) तू दर्भमणिसे पराक्रम कर (दर्भं बिभ्रत्) दर्भमणिको धारण करके (आत्मना मा व्यथिष्ठाः) मनमें दुःखित न हो। (अथ अन्यान् वर्चसा अतिष्ठाय) अब दूसरोंसे तेजके कारण ऊपर होकर (सूर्य इव) सूर्यके समान (चतस्रः प्रदिशः आ भाहि) चारों दिशाओंमें प्रकाशित हो ॥ ५ ॥

॥ यहां चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

---

(३४) जङ्गिडमणिः ।

अर्थ— (जङ्गिडः असि) तू जङ्गिड है (जङ्गिडः रक्षिता असि) तू जङ्गिड अर्थात् रक्षक है। (अस्माकं द्विपात् चतुष्पात् सर्वं जङ्गिडः रक्षतु) हमारा जो दो पांववाला और चार पांववाला भी है उस सबका यह जङ्गिडमणि रक्षण करे ॥ १ ॥

(याः गृत्स्यः त्रिपञ्चाशीः) जो हिंसक तीन गुणा पचास हैं और (शतं कृत्याकृतः च ये) जो सौ हिंसक कर्म करनेवाले हैं (सर्वान् तेजसः विनक्तु) उन सबको यह तेजसे दूर करे, यह (जङ्गिडः अरसान् करत्) जङ्गिडमणि रसहीन करे ॥ २ ॥

(अरसं कृत्रिमं नादं) बनावटी शब्दको निर्बल बनावे (सप्त विस्रसः अरसाः) सात क्षयोंको नीरस बनावे हे जङ्गिड ! (इतः अमतिं अप) यहांसे कुबुद्धिवालोंको दूर कर (अस्ता इषुं इव शातय) बाण फेंकनेवाला जैसा बाणको फेंकता है उस तरह दूर कर ॥ ३ ॥

(अयं कृत्यादूषणः एव) यह हिंसक कर्मका नाशक है (अथो अरातिदूषणः) यह शत्रुका विनाशक है। (अथो जङ्गिडः सहस्वान्) और यह जङ्गिडमणि सामर्थ्यवान् है यह (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारे आयुको बढावे ॥ ४ ॥

स जङ्गिडस्य महिमा परि णः पातु विश्वतः । विष्कन्धं येन सासह संस्कन्धमोज ओजसा ॥ ५ ॥
त्रिष्ट्वा देवा अजनयन्निष्ठितं भूम्यामधि । तमु त्वाङ्गिरा इति ब्राह्मणाः पूर्व्या विदुः ॥ ६ ॥
न त्वा पूर्वा ओषधयो न त्वा तरन्ति या नवाः । विबाध उग्रो जङ्गिडः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ ७ ॥
अथोपदान भगवो जङ्गिडामितवीर्य । पुरा त उग्रा ग्रसत उपेन्द्रो वीर्यं ददौ ॥ ८ ॥
उग्र इत्ते वनस्पत इन्द्र ओज्मानमा दधौ । अमीवाः सर्वाश्चातयञ्जहि रक्षांस्योषधे ॥ ९ ॥
आशरीकं विशरीकं बलासं पृष्ट्यामयम् । तक्मानं विश्वशारदमरसां जङ्गिडस्करत् ॥ १० ॥ (१०७)

(३५) जङ्गिडः ।

(ऋषिः — अङ्गिराः । देवता — वनस्पतिः ।)

इन्द्रस्य नाम गृह्णन्त ऋषयो जङ्गिडं ददुः । देवा यं चक्रुर्भेषजमग्रे विष्कन्धदूषणम् ॥ १ ॥
स नो रक्षतु जङ्गिडो धनपालो धनेव । देवा यं चक्रुर्ब्राह्मणाः परिपाणमरातिहम् ॥ २ ॥

अर्थ— (जङ्गिडस्य सः महिमा) जङ्गिडमणिकी वह महिमा है (नः विश्वतः परि पातु) कि वह हमारी सब ओरसे रक्षा करे । (येन विष्कन्धं सासहे) जिससे हम रोगको दूर करते हैं (ओजसा संस्कन्धं ओजः) अपने बलसे संस्कन्ध रोगको भी दूर करते हैं ॥ ५ ॥

(देवाः त्वा त्रिः अजनयन्) देवोंने तुझे तीन बार उत्पन्न किया । (भूम्यां अधि निष्ठितं) भूमिपर तू स्थिर है । (पूर्व्याः ब्राह्मणाः) पूर्व कालके ब्राह्मण (तं उ त्वा अङ्गिरा इति विदुः) उस तुझे अङ्गिरा करके जानते हैं ॥ ६ ॥

(पूर्वाः ओषधयः न त्वा) पुरानी औषधियां तुझे लांघती नहीं (याः नवाः त्वा न तरन्ति) जो नवीन औषधियां हैं वे भी लांघती नहीं । (विबाधः उग्रः जङ्गिडः) रोगोंको विशेष बाधा पहुंचानेवाला उग्र यह जङ्गिडमणि है यह (परिपाणः सुमङ्गलः) संरक्षक और उत्तम मंगल करनेवाला है ॥ ७ ॥

(अथ उपदान भगवः जङ्गिड) हे दान देनेवाले भगवान् जङ्गिड ! हे (अमितवीर्य) अपरिमित शक्तिवाले ! (पुरा ते उग्राः ग्रसत) उग्र शत्रु तुझे ग्रास करनेसे पूर्व (इन्द्रः वीर्यं उप ददौ) इन्द्रने तुझमें वीर्य रखा है ॥ ८ ॥

हे वनस्पते ! (ते इत् उग्रः इन्द्रः) तेरे अन्दर उग्र इन्द्रने (ओज्मानं आ दधौ) बडी शक्ति रखी है (सर्वाः अमीवाः चातयन्) तू सब रोगोंको दूर करके हे औषधे ! (रक्षांसि जहि) राक्षसोंको मार ॥ ९ ॥

(आशरीकं विशरीकं) तोडनेवाला टुकडे करनेवाला (बलासं) खांसी (पृष्ट्यामयं) पीठकी बीमारी (तक्मानं विश्वशारदं) सब ऋतुमें होनेवाला ज्वर आदिको (जङ्गिडः अरसान् करत्) जङ्गिडमणि निःसत्व करता है ॥ १० ॥

(३५) जङ्गिडः ।

(इन्द्रस्य नाम गृह्णन्तः) प्रभुका नाम लेते हुए (ऋषयः) ऋषियोंने (जङ्गिडं ददुः) जङ्गिडमणि दिया है । (अग्रे देवाः) प्रारंभमें देवोंने (यं विष्कन्धदूषणं भेषजं चक्रुः) जो रोग दूर करनेवाला औषध करके किया था ॥ १ ॥

(धनपालः धना इव) धनका स्वामी जैसा धनोंका रक्षण करता है उस तरह (सः जङ्गिडः नः रक्षतु) वह जङ्गिड हमारी रक्षा करे । (यं देवाः ब्राह्मणाः) जिसको देवों और ब्राह्मणोंने (परिपाणं अरातिहं चक्रुः) रक्षक और शत्रुनाशक किया है ॥ २ ॥

दुर्हार्दः संघोरं चक्षुः पापकृत्वानमागमम् ।
तांस्त्वं सहस्रचक्षो प्रतीबोधेन नाशय परिपाणोऽसि जङ्गिडः ॥ ३ ॥
परि मा दिवः परि मा पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्परि मा वीरुद्भ्यः ।
परि मा भूतात्परि मोत भव्याद्दिशोदिशो जङ्गिडः पात्वस्मान् ॥ ४ ॥
य ऋष्णवो देवकृता य उतो ववृतेऽन्यः । सर्वांस्तान्विश्वभेषजोऽरसां जङ्गिडस्करत् ॥ ५ ॥

(३६) शतवारो मणिः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — शतवारः ।)

शतवारो अनीनशद्यक्ष्मान्रक्षांसि तेजसा । आरोहन्वर्चसा सह मणिर्दुर्णामचातनः ॥ १ ॥
शृङ्गाभ्यां रक्षो नुदते मूलेन यातुधान्यः । मध्येन यक्ष्मं बाधते नैनं पाप्माति तत्रति ॥ २ ॥
ये यक्ष्मासो अर्भका महान्तो ये च शब्दिनः । सर्वान्दुर्णामहा मणिः शतवारो अनीनशत् ॥ ३ ॥
शतं वीरानजनयच्छतं यक्ष्मानपावपत् । दुर्णाम्नः सर्वान्हत्वाव रक्षांसि धूनुते ॥ ४ ॥

अर्थ— (दुर्हार्दः) दुष्ट हृदयवालेके (संघोरं चक्षुः) क्रूर नेत्रको और (पापकृत्वानं आगमं) पाप कर्म करके किये आये हुएको (तान् त्वं सहस्रचक्षः) उनको तू हे सहस्र आंखवाले ! (प्रतिबोधेन नाशय) सावधानतासे विनाश कर । (परिपाणः असि जङ्गिडः) तू संरक्षण करनेवाला जङ्गिडमणि है ॥ ३ ॥

(दिवः मा परि पातु) द्युलोकसे मेरा रक्षण करे (पृथिव्याः मा परि) पृथिवीके ऊपर, (अन्तरिक्षात् परि) अन्तरिक्षसे (वीरुद्भ्यः मा परि) औषधियोंसे (मा भूतात् परि) भूतोंसे (भव्यात् मा परि) होनेवालोंसे (दिशः दिशः जङ्गिडः अस्मान् पातु) दिशा दिशाओंसे यह जङ्गिडमणि हम सब लोगोंका रक्षण करे ॥ ४ ॥

(ये देवकृताः ऋष्णवः) जो देवोंसे बने हिंसक कृत्य हैं (य उत ह ववृतेऽन्यः) या कोई दूसरे हिंसक (सर्वान् तान्) उन सबको (विश्वभेषजः जङ्गिडः) सब औषधिगुणवाला जङ्गिडमणि (अरसान् करत्) निःसत्व बनावे ॥ ५ ॥

(३६) शतवारो मणिः ।

(शतवारः मणिः) शतवार मणि (वर्चसा सह आरोहन्) तेजके साथ शरीर पर बांधा हुआ (दुर्णाम चातनः) दुष्ट नामवाले रोगोंको दूर करता हुआ (तेजसा यक्ष्मान् रक्षांसि अनीनशत्) अपने तेजसे क्षय रोगों और रोगजन्तुओं [राक्षसों] का नाश करता है ॥ १ ॥

(शृङ्गाभ्यां रक्षः नुदते) सींगोंसे राक्षसोंको दूर करता है (मूलेन यातुधान्यः) मूलसे यातना देनेवालोंको दूर करता है (मध्येन यक्ष्मं बाधते) मध्यसे रोगको दूर करता है (पाप्मा एनं न अति तत्रति) पापी रोग इसको लांघ नहीं सकता ॥ २ ॥

(ये यक्ष्मासः अर्भकाः) जो रोगबीज सूक्ष्म हैं (ये च महान्तः शब्दिनः) जो बड़े शब्द करनेवाले रोग हैं (सर्वान् दुर्णाम हा शतवारः मणिः अनीनशत्) इन सबको दुष्ट नामवाले रोगोंका नाश करनेवाला शतवार मणि नाश करता है ॥ ३ ॥

(शतं वीरान् अजनयत्) सौ वीरोंको उत्पन्न करता है (शतं यक्ष्मान् अपावपत्) सैकडों रोगोंको दूर करता है (सर्वान् दुर्णाम्नः हत्वा) दुष्ट नामवाले सब रोगोंको मार कर (रक्षांसि अवधूनुते) सब राक्षसों रोगबीजों-को कंपा देता है ॥ ४ ॥

हिरण्यशृङ्ग ऋषभः शातवारो अयं मणिः। दुर्णाम्नः सर्वांस्तृढ्वाव रक्षांस्यक्रमीत् ॥ ५ ॥
शतमहं दुर्णाम्नीनां गन्धर्वाप्सरसां शतम्। शतं शश्वन्वतीनां शतवारेण वारये ॥ ६ ॥ (१८५)

(३७) बलप्राप्तिः।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — अग्निः।)

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद्यानि च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे ॥ १ ॥
वर्च आ धेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम्।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय प्रति गृह्णामि शतशारदाय ॥ २ ॥
ऊर्जे त्वा बलाय त्वौजसे सहसे त्वा। अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय ॥ ३ ॥
ऋतुभ्यष्ट्वार्तवेभ्यो माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः। धात्रे विधात्रे समृधे भूतस्य पतये यजे ॥ ४ ॥ (१८९)

(३८) यक्ष्मनाशनम्।

(ऋषिः — अथर्वा। देवता — गुल्गुलुः।)

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते। यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते ॥ १ ॥

अयं — (हिरण्यशृङ्गः ऋषभः) सोनेके सींगवाला बलवान् (अयं शतवारः मणिः) यह शतवार मणि है। (दुर्णाम्नः सर्वान् तृढ्वा) सब बुरे नामवाले रोगोंको मारकर (रक्षांसि अवक्रमीत्) राक्षसोंको हटा देता है ॥ ५ ॥

(अहं दुर्णाम्नीनां शतं) मैं बुरे नामवाले सैकडों रोगोंको (गन्धर्वाप्सरसां शतं) गंधर्वों और अप्सरस् नामक सैकडों रोगोंको (शश्वतीनां शतं) कुलोंके साथ रहनेवाले सैकडों रोगोंको (शतवारेण वारये) इस शतवार मणिसे दूर करता हूं ॥ ६ ॥

शतवार यह शतावर है या क्या इसका विचार वैद्य करें।

(३७) बलप्राप्तिः।

(इदं वर्चः) यह तेज (अग्निना दत्तं आगन्) अग्निने दिया आया है यह (भर्गः यशः) तेज यश (सहः ओजः) साहस और सामर्थ्य (वयः बलं) आयु और बल देता है। (यानि त्रयस्त्रिंशत् वीर्याणि) जो तेंतीस वीर्य हैं (तानि अग्निः मे प्र ददातु) उनको अग्नि मुझे देवे ॥ १ ॥

(मे तन्वां) मेरे शरीरमें (वर्चः सहः) तेज साहस (ओजः वयः बलं) ओज आयु और बल (आ धेहि) स्थापन कर। (इन्द्रियाय) इंद्रिय सामर्थ्यके लिये (कर्मणे वीर्याय) कर्मशक्ति और वीर्यके लिये (शतशारदाय) सौ वर्षकी आयुके लिये (त्वा प्रति गृह्णामि) तुझे मैं धारण करता हूं ॥ २ ॥

(ऊर्जे त्वा बलाय त्वा) बलके लिये बलके लिये (ओजसे सहसे त्वा) सामर्थ्य और साहसके लिये (अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय) शत्रु पराभवके लिये और राष्ट्रपोषणके लिये तथा (शतशारदाय पर्यूहामि) सौ वर्षकी आयुके लिये तुझे मैं पहनता हूं ॥ ३ ॥

(ऋतुभ्यः त्वा आर्तवेभ्यः) ऋतुओंके लिये ऋतुओंके अन्य पुत्रोंके लिये (माद्भ्यः संवत्सरेभ्यः) महिनों और संवत्सरोंके लिये (धात्रे विधात्रे) धाता और विधाताके लिये (समृधे भूतस्य पतये यजे) समृद्धिके लिये तथा भूतोंके स्वामीके लिये यजन करता हूं ॥ ४ ॥

(३८) यक्ष्मनाशनम्।

(यक्ष्माः तं न अरुन्धते) रोग उसको रोकते नहीं (शपथः एनं न अश्नुते) शाप इसको पहुंचता नहीं (यं) जिसको इस (भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिः गन्धः) औषध रूप गुग्गुलका उत्तम सुगंध (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

विश्वधावीर्यस्तस्माद्यक्ष्मा मृगा अश्वा इवेरते। यद्गुल्गुलु सैन्धवं यद्वाप्यासि समुद्रियम् ॥ २ ॥

उभयोरग्रभं नामास्मा अरिष्टतातये ॥ ३ ॥ (१९१)

(३९) कुष्ठनाशनम्।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिराः। देवता — कुष्ठः)

ऐतु देवस्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ १ ॥

त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नद्यमारो नद्यारिषः। नद्यायं पुरुषो रिषत्।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ २ ॥

जीवला नाम ते माता जीवन्तो नाम ते पिता। नद्यायं पुरुषो रिषत्।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ३ ॥

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव। नद्यायं पुरुषो रिषत्।
यस्मै परिब्रवीमि त्वा सायंप्रातरथो दिवा ॥ ४ ॥

त्रिः शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यस्त्रिरादित्येभ्यस्परि। त्रिर्जातो विश्वदेवेभ्यः।
स कुष्ठो विश्वभेषजः। साकं सोमेन तिष्ठति।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ५ ॥

अर्थ— (तस्मात् यक्ष्माः विश्वधावीर्यात्) उससे सब रोग दूर भागते हैं (मृगाः अश्वाः इव ईरते) जैसे मृग और अश्व दौड भागते हैं। (यत् गुल्गुलु सैन्धवं) जो तू गुग्गुल नदीसे प्राप्त हुआ हो (यत् वा अपि समुद्रियं असि) अथवा तू समुद्रसे प्राप्त हुआ हो ॥ १ ॥

(उभयोः नाम अग्रभं) मैंने दोनोंका नाम लिया है (अस्मै अरिष्टतातये) इसकी नीरोगताके लिये ॥ २ ॥

(३९) कुष्ठनाशनम्।

(त्रायमाणः देवः कुष्ठः) रक्षण करनेवाला दिव्य गुणयुक्त कुठ वनस्पति (हिमवतस्परि ऐतु) हिमालय पर्वतपरसे आवे। (सर्वं तक्मानं नाशय) तू हरएक ज्वरको दूर कर (सर्वाः यातुधान्यः) और सब यातना देनेवाले रोगोंको दूर कर ॥ १ ॥

हे कुठ! (ते त्रीणि नामानि) तेरे तीन नाम हैं (नद्यमारः) न मारनेवाला (नद्यारिषः) न हानि पहुंचानेवाला (नद्यायं पुरुषः रिषत्) हानि न पहुंचावे यह पुरुष। (यस्मै त्वा सायं प्रातः अथो दिवा परिब्रवीमि) जिसके लिये तेरी मैं सायंको, प्रातःकालमें और दिनभर प्रशंसा करता हूं ॥ २ ॥

(ते माता जीवला नाम) तेरी माता जीवन लानेवाली है (जीवन्तः नाम ते पिता) जीता रहनेवाला तेरा पिता है ॥ ३ ॥

(ओषधीनां उत्तमः असि) औषधियोंमें तू उत्तम है (अनड्वान् जगतां इव) जैसा बैल चलनेवालोंमें और (श्वपदां व्याघ्रः) श्वापदोंमें व्याघ्र होता है ॥ ४ ॥

(शाम्बुभ्यो अङ्गिरेभ्यः त्रिः) अङ्गिर कुलोत्पन्न शाम्बुओंसे तीन बार (आदित्येभ्यः परि त्रिः) आदित्योंसे तीन बार (विश्वदेवेभ्यः त्रिः जातः) विश्वेदेवोंसे तीन बार उत्पन्न हुआ। (सः कुष्ठः विश्वभेषजः) वह कुठ सब रोगोंकी औषध है। वह (सोमेन साकं तिष्ठति) सोमके साथ रहता है। तू सब ज्वरोंका नाश कर और यातना देनेवाले सब रोगोंका नाश कर ॥ ५ ॥

अश्वत्थो देवसदनस्तृतीयस्यामितो दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ६ ॥
हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ७ ॥
यत्र नावप्रभ्रंशनं यत्र हिमवतः शिरः । तत्रामृतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायत ।
स कुष्ठो विश्वभेषजः साकं सोमेन तिष्ठति ।
तक्मानं सर्वं नाशय सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥
यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यं वा त्वा कुष्ठ काम्यः । यं वा वसो यमात्स्यस्तेनासि विश्वभेषजः ॥ ९ ॥
शीर्षलोकं तृतीयकं सदन्दिर्यश्च हायनः । तक्मानं विश्वशारदमधराञ्चं परा सुव ॥ १० ॥ (१७०)

(४०) मेधा ।

(ऋषि — ब्रह्मा देवता — बृहस्पतिः विश्वे देवाः ।)

यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः सरस्वती मन्युमन्तं जगाम ।
विश्वैस्तद्देवैः सह संविदानः सं दधातु बृहस्पतिः ॥ १ ॥

मा न आपो मेधां मा ब्रह्म प्र मथिष्टन ।
शुष्यदा यूयं स्यन्दध्वमुपहूतोऽहं सुमेधा वर्चस्वी ॥ २ ॥
मा नो मेधां मा नो दीक्षां मा नो हिंसिष्टं यत्तपः ।
शिवा नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥ ३ ॥
या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । तामस्मे रासतामिषम् ॥ ४ ॥ (१०

(४१) राष्ट्रं बलमोजश्च ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — तपः ।)

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥ १ ॥ (१०

(४२) ब्रह्मयज्ञः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्म ।)

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः । अध्वर्युर्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोऽन्तर्हितं हविः ॥ १ ॥
ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।
ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ— हे (आपः) जलो ! (नः मेधां मा प्र मथिष्टन) हमारी बुद्धिका मंथन न करो (मा ब्रह्म) हमारे ज्ञानको न क्षीण करो (सु-अवदा यूयं स्यन्दध्वं) सुगम प्रवाहसे तुम बहते रहो । (उपहूतः अहं) प्रार्थित हुआ मैं (सुमेधा वर्चस्वी) उत्तम बुद्धिवान् और तेजस्वी बनूं ॥ २ ॥

(नः मेधां मा हिंसिष्टं) हमारी मेधाको हानि न पहुंचाओ । (नः दीक्षां मा) हमारी दीक्षाको हानि न पहुंचाओ (यत् नः तपः) जो हमारा तप है (मा हिंसिष्टं) उसका नाश न करो (नः आयुषे शिवाः सन्तु) हमारी आयुके लिये कल्याणकारी हों (मातरः शिवाः भवन्तु) माताएं—जलधाराएं हमारे लिये कल्याण करनेवाली हों ॥ ३ ॥

हे अश्विनौ ! (या ज्योतिष्मती नः पीपरत्) जो प्रकाशवाली हमें पूर्ण करती है और (तमः तिरः) अन्धकार पार करती है, (तां इषं अस्मे रासतां) उस अन्नको हमें दे दो ॥ ४ ॥

(४१) राष्ट्रं बलमोजश्च ।

(भद्रं इच्छन्तः स्वर्विदः ऋषयः) कल्याणकी इच्छा करनेवाले आत्मज्ञानी ऋषि (अग्रे तपः दीक्षां उपसेदुः) प्रारंभमें तप और दीक्षाका आचरण करने लगे (ततः राष्ट्रं बलं ओजः च जातं) उससे राष्ट्र हुआ और बल और सामर्थ्य भी उत्पन्न हुआ । (तत् अस्मै) इसलिये इसके सामने (देवाः उप सं नमन्तु) ज्ञानी पुरुष विनम्र हों ॥ १ ॥

ऋषियोंके प्रयत्नसे राष्ट्र बना है इसलिये ज्ञानी लोग राष्ट्रके सामने विनम्र होकर रहें ऐसा करें ॥

(४२) ब्रह्मयज्ञः ।

(ब्रह्म होता) ब्रह्म होता हुआ है । (ब्रह्म यज्ञाः) ब्रह्म ही यज्ञ हुए हैं । (स्वरवः ब्रह्मणा मिताः) स्तंभ ब्रह्मसे नापे हैं । (ब्रह्मणः अध्वर्युः जातः) ब्रह्मसे अध्वर्यु हुआ है, (ब्रह्मणः हविः अन्तर्हितं) ब्रह्मके अन्दर हवि रखा है ॥ १ ॥

(घृतवतीः स्रुचः ब्रह्म) घीसे भरी स्रुवाएं ब्रह्म है, (ब्रह्मणा वेदिः उद्धिता) ब्रह्मसे वेदी तैयार की गयी है (यज्ञस्य तत्त्वं ब्रह्म) यज्ञका तत्त्व ब्रह्म है । (ये हविष्कृतः ऋत्विजः) जो हवि तैयार करनेवाले ऋत्विज हैं । (शमिता स्वाहा) शान्त जो है उसके लिये समर्पण हो ॥ २ ॥

अंहोमुचे प्र भरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।
इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ३ ॥
अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजन्तं प्रथममध्वराणाम् ।
अपां नपातमश्विना हुवे धिय इन्द्रियेण त इन्द्रियं दत्तमोजः ॥ ४ ॥ (१११)

(४३) ब्रह्म ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्म बहवो देवताः ।)

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे । अग्नये स्वाहा ॥ १ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान्दधातु मे । वायवे स्वाहा ॥ २ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ॥ ३ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे । चन्द्राय स्वाहा ॥ ४ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे । सोमाय स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ— (अंहोमुचे मनीषां प्र भरे) पापसे छुड़ानेवालेके लिये प्रशंसा गाता हूं। (सुत्राव्णे सुमतिं आवृणानः) उत्तम रक्षण करनेवालेके लिये उत्तम मति देता हूं। हे इन्द्र ! (इदं हव्यं प्रति गृभाय) यह हवि स्वीकार कर। (यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु) यजमानकी इच्छाएं सत्य हों ॥ ३ ॥

(अंहो-मुचं) पापसे छुड़ानेवाले (यज्ञियानां वृषभं) पूजनीयोंके अन्दर सामर्थ्यवान् (अध्वराणां प्रथमं विराजन्तं) यज्ञोंमें प्रथम विराजमान (अपां न-पातं) जलोंको न गिरानेवालेकी और (अश्विना हुवे) अश्विनी देवोंकी प्रशंसा करता हूं। मुझे (धियः) बुद्धियां (ओजः) सामर्थ्य और (इन्द्रियेण इन्द्रियं) इन्द्रिय शक्तिसे इंद्रिय दे ॥ ४ ॥

(४३) ब्रह्म ।

(दीक्षया तपसा सह) दीक्षा और तपके साथ (यत्र ब्रह्मविदः यान्ति) जहां ब्रह्मज्ञानी जाते हैं। (अग्निः मा तत्र नयतु) अग्नि मुझे वहां ले जाय और (अग्निः मे मेधां दधातु) अग्नि मुझे मेधा बुद्धि देवे। अग्निके लिये अर्पण हो ॥ १ ॥

॥ ॥ (वायुः मा तत्र नयतु) वायु मुझे वहां ले जाय (वायुः प्राणान् मे दधातु) वायु मेरे अन्दर प्राणोंको धारण करे ॥ ॥ २ ॥

॥ ॥ (सूर्यः मा तत्र नयतु) सूर्य मुझे वहां ले जाय (सूर्यः मे चक्षुः दधातु) सूर्य मुझमें आंख रखे ॥ ॥ ३ ॥

॥ ॥ (चन्द्रः मा तत्र नयतु) चन्द्र मुझे वहां ले जाय और (चन्द्रः मे मनः दधातु) चन्द्र मुझमें मन स्थापन करे ॥ ॥ ४ ॥

॥ ॥ (सोमः मा तत्र नयतु) सोम मुझे वहां ले जाय और (सोमः मे पयः दधातु) सोम मुझे दूध देवे ॥ ॥ ५ ॥

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा ॥ ६ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा ॥ ७ ॥
यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे। ब्रह्मणे स्वाहा ॥ ८ ॥ (११९)

(४४) भैषज्यम्।

(ऋषिः — भृगुः। देवता — आञ्जनम्, वरुणः।)

आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे। तदाञ्जन त्वं शंताते शमापो अभयं कृतम् ॥ १ ॥
यो हरिमा जायान्योऽङ्गभेदो विसल्पकः। सर्वं ते यक्ष्ममङ्गेभ्यो बहिर्निर्हन्त्वाञ्जनम् ॥ २ ॥
आञ्जनं पृथिव्यां जातं भद्रं पुरुषजीवनम्। कृणोत्वप्रमायुकं रथजूतिमनागसम् ॥ ३ ॥
प्राण प्राणं त्रायस्वासो असवे मृड। निर्ऋते निर्ऋत्या नः पाशेभ्यो मुञ्च ॥ ४ ॥
सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्। वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः ॥ ५ ॥

अर्थ— ॥ ॥ (इन्द्रः मा तत्र नयतु) इन्द्र मुझे वहां ले जाय और (इन्द्रः मे बलं दधातु) इन्द्र मुझे बल देवे ॥ ॥ ६ ॥

॥ ॥ (आपः मा तत्र नयन्तु) जलप्रवाह मुझे वहां ले जांय और (अमृतं मा उप तिष्ठतु) अमृत मुझे प्राप्त हो जाय ॥ ॥ ७ ॥

॥ ॥ (ब्रह्मा मा तत्र नयतु) ब्रह्मा मुझे वहां ले जाय और (ब्रह्मा मे ब्रह्म दधातु) ब्रह्मा मुझे ज्ञान देवे ॥ ॥ ८ ॥

(४४) भैषज्यम्।

(आयुषः प्रतरणं असि) तू आयुष्य बढानेवाला है, (विप्रं भेषजं उच्यसे) तू विशेष स्फूर्तिवाला औषध कहा जाता है। (तत् आञ्जन ! त्वं शंताते) सो हे अञ्जन ! तू शान्ति बढानेवाला है (आपः) जलो ! (अभयं शं कृतं) मेरे लिये निर्भयता और सुख करो ॥ १ ॥

(यः हरिमा) जो पाण्डुरोग है (जायान्यः) जो स्त्रीसे होनेवाला रोग है, (अंगभेदः) अंगोंको तोडनेवाला दर्द है (विसल्पकः) विसर्पक कुष्ठादि रोग है वे (सर्वं यक्ष्मं ते अंगेभ्यः) सब रोग तेरे अंगोंसे (आंजनं बहिः निर्हन्तु) यह अञ्जन बाहर निकाले ॥ २ ॥

(आञ्जनं पृथिव्यां जातं) यह अञ्जन पृथिवीपर उत्पन्न हुआ है। यह (भद्रं पुरुषजीवनं) कल्याणकारी और मनुष्योंको जीवन देनेवाला है, यह मुझे (अप्रमायुकं कृणोति) मरणरहित करता है (रथजूतिं) और रथके समान वेगवाला और (अनागसं) पापरहित बनाता है ॥ ३ ॥

हे (प्राण) प्राण ! (प्राणं त्रायस्व) मेरे जीवित प्राणकी रक्षा कर, हे (असो) प्राण ! (असवे मृड) प्राणको सुखी कर। हे (निर्ऋते) दुर्गते ! (निर्ऋत्याः पाशेभ्यः नः मुञ्च) दुर्गतिके पाशोंसे हमें छुडा ॥ ४ ॥

(सिन्धोः गर्भः असि) तू सिन्धुका गर्भ है (विद्युतां पुष्पं) बिजलियोंका तू फूल है (वातः प्राणः) वायु तेरा प्राण है (सूर्यः चक्षुः) सूर्य आंख है (दिवः पयः) द्युलोकका दिव्य रस है ॥ ५ ॥

नदीयोंकी उत्पत्ति और बिजुलीका तेज तुम्हारे अन्दर है।

देवाञ्जन त्रैककुदं परि मा पाहि विश्वतः । न त्वा तरन्त्योषधयो बाह्याः पर्वतीया उत ॥ ६ ॥
वीदं मध्यमवासृपद्रक्षोहामीवचातनः । अमीवाः सर्वाश्चातयन्नाशयदभिभा इतः ॥ ७ ॥
बह्वीदं राजन्वरुणानृतमाह पूरुषः । तस्मात्सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ८ ॥
यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यदूचिम । तस्मात्सहस्रवीर्य मुञ्च नः पर्यंहसः ॥ ९ ॥
मित्रश्च त्वा वरुणश्चानुप्रेयतुराञ्जन । तौ त्वानुगत्य दूरं भोगाय पुनरोहतुः ॥ १० ॥ (११०)

(४५) आञ्जनम् ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — आञ्जनम्, मन्त्रोक्तदेवताः ।)

ऋणादृणमिव संनयन्कृत्यां कृत्याकृतो गृहम् । चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणाञ्जन ॥ १ ॥
यदस्मासु दुष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे । अनामगस्तं च दुर्हार्दः प्रियः प्रति मुञ्चताम् ॥ २ ॥
अपामूर्ज ओजसो वावृधानमग्नेर्जातमधि जातवेदसः ।
चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनं दिशः प्रदिशः करदिच्छिवास्ते ॥ ३ ॥

अर्थ— हे (देवाञ्जन) दिव्य अञ्जन ! तू (त्रै-ककुदं) तीन कोनोंमें श्रेष्ठ है। (मा विश्वतः परि पाहि) मेरी सब ओरसे रक्षा कर। (बाह्याः उत पर्वतीयाः) बाह्य और पर्वतपर होनेवाली (ओषधयः त्वा न तरन्ति) औषधियां तुमसे बढकर नहीं होतीं ॥ ६ ॥

(रक्षोहा अमीवचातनः) राक्षसोंका मारनेवाला और रोगोंको हटानेवाला यह (इदं मध्यं वि अवासृपत्) इस मध्यभागमें आया है [हमारे पास चलकर आया है] यह (सर्वाः अमीवाः चातयन्) सब रोगोंको दूर करता है और (इतः अभि भा नाशयत्) यहांसे आक्रमक रोगोंका नाश करता है ॥ ७ ॥

(हे वरुण राजन्) वरुण राजा ! (पुरुष बहु इदं अनृतं आह) पुरुष यहां बहुत असत्य बोलता है हे (सहस्रवीर्य) हजारों शक्तियोंसे युक्त ! (तस्मात् अंहसः नः परि मुञ्च) उस पापसे हमें छुडाओ ॥ ८ ॥

हे (आपः) जलो ! हे (अघ्न्याः) न मारने योग्य ! हे वरुण ! (इति यत् ऊचिम) ऐसा जो हमने कहा है हमारी शक्ति ! तू उस पापसे हमें छुडाओ ॥ ९ ॥

हे आञ्जन ! मित्र और वरुण (त्वा अनु प्रेयतुः) तेरे पीछे जाते हैं (तौ त्वा दूरं अनुगत्य) वे दोनों तेरे पीछे दूरतक जाकर (भोगाय पुनः ओहतुः) भोगके लिये फिर तुझे लाते ॥ १० ॥

(४५) आञ्जनम् ।

हे अञ्जन ! (ऋणात् ऋणं संनयन् इव) ऋणसे ऋण वापस करनेके समान (कृत्याकृतः गृहं कृत्यां) हिंसक कर्म करनेवालेके घर उसीके हिंसक कर्मको भेजा देते हैं। (चक्षुः मन्त्रस्य दुर्हार्दः) आंखके इशारोंसे हानि करनेवाले दुष्ट हृदयवालेकी (पृष्टीः अपि शृण) पसलियां तोड ॥ १ ॥

(यत् अस्मासु दुष्वप्न्यं) जो हमारे अन्दर दुष्ट स्वप्न है (यत् गोषु) जो गौओंमें और (यत् च नः गृहे) जो हमारे घरमें है (प्रियः दुर्हार्दः अ-नाम-गः) प्रिय दुष्ट हृदयवाला अपयशी (तं प्रति मुञ्चतां) उसको धारण करे— [उसके पास वह चला जाय ।] ॥ २ ॥

(अपां ऊर्जः) जलोंकी शक्ति और (ओजसः वावृधानः) सामर्थ्यसे बढनेवाला (जातवेदसः अग्नेः अधिजातं) जातवेद अग्निसे उत्पन्न हुआ (चतुर्वीरं पर्वतीयं यत् आञ्जनं) चार वीरोंकी शक्तिवाला जो पर्वतपर हुआ अञ्जन है वह (दिशः प्रदिशः ते शिवाः करत् इत्) दिशा और उपदिशा तेरे लिये कल्याण करनेवाली करे ॥ ३ ॥

चतुर्वीरं बध्यत आञ्जनं ते सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु।
ध्रुवस्तिष्ठासि सवितेव चार्य इमा विशो अभि हरन्तु ते बलिम् ॥ ४ ॥
आस्वैकं मणिमेकं कृणुष्व स्नाह्येकेना पिबैकमेषाम्।
चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यश्चतुर्भ्यो ग्राह्या बन्धेभ्यः परि पात्वस्मान् ॥ ५ ॥
अग्निर्माग्निनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ६ ॥
इन्द्रो मेन्द्रियेणावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ७ ॥
सोमो मा सौम्येनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ८ ॥
भगो मा भगेनावतु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥ ९ ॥
मरुतो मा गणैरवन्तु प्राणायापानायायुषे वर्चस ओजसे तेजसे स्वस्तये सुभूतये स्वाहा ॥१०॥(१११)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

अर्थ—(चतुर्वीरं आञ्जनं ते बध्यते) चार वीरोंकी शक्तिवाला अञ्जन तेरे शरीरपर बांधा जाता है इससे (ते सर्वाः दिशः अभयाः भवन्तु) तेरे लिये सब दिशाएं निर्भय हों। (सविता इव आर्यः च ध्रुवः तिष्ठसि) सविताके समान तथा आर्य बनकर अपने स्थानपर स्थिर हो। (इमाः विशः ते बलिं अभि हरन्तु) ये सब प्रजाएं तेरे लिये बलि अर्पण करें॥ ४॥

(एकं आसु) एकको आंखमें (एकं मणिं आ कृणुष्व) एकको मणि बना (एकेन स्नाहि) एकके साथ स्नान कर, (एषां एकं पिब) इनमेंसे एकको पी के तब (चतुर्वीरं) चार वीरोंकि बलवाला अञ्जन (चतुर्भ्यः नैर्ऋतेभ्यः बन्धेभ्यः) चार राक्षसी बन्धनोंसे तथा (ग्राह्याः) पकडनेवाले रोगसे (अस्मान् परि पातु) हमारा रक्षण करे॥ ५॥

इस मन्त्रमें जो गुप्त ज्ञान कहा है उसका अन्वेषण करना चाहिये।

(अग्निना अग्निः मा अवतु) अग्निके साथ अग्नि मेरी रक्षा करे। (प्राणाय अपानाय) प्राणके लिये अपानके लिये (आयुषे वर्चसे) आयुके लिये तेजके लिये (ओजसे तेजसे) सामर्थ्यके लिये कान्तिके लिये (स्वस्तये सुभूतये स्वाहा) कल्याणके लिये उत्तम ऐश्वर्यके लिये समर्पण करते हैं॥ ६॥

(इन्द्रः इन्द्रियेण मे अवतु) इन्द्र इन्द्रशक्तिसे मेरी रक्षा करे॥ ७॥

(सोमः मा सौम्येन अवतु) सोम सौम्यता शक्तिसे मेरी रक्षा करे॥ ८॥

(भगः मा भगेन अवतु) भग मेरी ऐश्वर्यसे रक्षा करे॥ ९॥

(मरुतो मा गणैः अवन्तु) मरुत मेरी गणोंसे रक्षा करें॥ १०॥

॥ यहां पञ्चम अनुवाक समाप्त॥

(४६) अस्तृतमणिः।

(ऋषिः — प्रजापतिः। देवता — अस्तृतमणिः।)

प्रजापतिष्ट्वा बध्नात्प्रथममस्तृतं वीर्याय कम्।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चस ओजसे च बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ १ ॥
ऊर्ध्वस्तिष्ठतु रक्षन्नप्रमादमस्तृतेमं मा त्वा दभन्पणयो यातुधानाः।
इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः सर्वाञ्छत्रून्वि षहस्वास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ २ ॥
शतं च न प्रहरन्तो निघ्नन्तो न तस्तिरे।
तस्मिन्निन्द्रः पर्यदत्त चक्षुः प्राणमथो बलमस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ३ ॥
इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परि धापयामो यो देवानामधिराजो बभूव।
पुनस्त्वा देवाः प्र णयन्तु सर्वेऽस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ४ ॥
अस्मिन्मणावेकशतं वीर्याणि सहस्रं प्राणा अस्मिन्नस्तृते।
व्याघ्रः शत्रूनभि तिष्ठ सर्वान्यस्त्वा पृतन्यादधरः सो अस्त्वस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ५ ॥
घृतादुल्लुप्तो मधुमान्पयस्वान्सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः।
शंभूश्च मयोभूश्चोर्जस्वांश्च पयस्वांश्चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ६ ॥

---

(४६) अस्तृतमणिः।

अर्थ— (प्रजापतिः त्वा) प्रजापतिने तुझे (प्रथमं कं अस्तृतं वीर्याय अबध्नात्) पहिले सुखदायी अस्तृत मणिको वीर्यके लिये बांधा था। (तत् ते आयुषे) वह तेरे शरीरपर आयुके लिये (वर्चसे ओजसे) तेजके लिये सामर्थ्यके लिये (बलाय च) बलके लिये बांधता हूं। (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अस्तृत मणि तेरी रक्षा करे ॥ १ ॥

(अस्तृत अप्रमादं इमं रक्षन्) अस्तृत मणि प्रमाद न करता हुआ इसका रक्षण करनेके लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठतु) ऊपर स्थित रहे। (यातुधानाः पणयः त्वा मा दभन्) यातना देनेवाले पणि तुझे हानि न पहुंचावें। (इन्द्र इव दस्यून् अव धूनुष्व) इन्द्रके समान शत्रुओंको हिला दे। (पृतन्यतः सर्वान् शत्रून् वि सहस्व) सेनासे हमला करनेवाले सब शत्रुओंको पराभूत कर। (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ २ ॥

(शतं च प्रहरन्तः न) प्रहार करनेवाले सौ और (निघ्नन्तः न तस्तिरे) मारनेवाले भी इसके सामने ठहर नहीं सकते। (तस्मिन् इन्द्रः) उसमें इन्द्रने (चक्षुः प्राणं अथो बलं पर्यदत्त) दृष्टि प्राण और बल दिया। अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ ३ ॥

(इन्द्रस्य त्वा वर्मणा परिधापयामः) इन्द्रके कवचसे तुझे हम ढांपते हैं। (यः देवानां अधिराजः बभूव) जो देवोंका अधिराज हुआ है। (पुनः त्वा सर्वे देवाः प्र णयन्तु) फिर तुझे सारे देव प्रेरित करें, अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ ४ ॥

(अस्मिन् मणौ) इस मणिमें (एक शतं वीर्याणि) एक सौ वीर्य हैं (अस्मिन् अस्तृते सहस्रं प्राणाः) इस अस्तृत मणिमें हजार प्राणकी शक्तियां हैं। (व्याघ्रः सर्वान् शत्रून् अभि तिष्ठ) व्याघ्र बनकर सब शत्रुओंको पराभूत कर। (यः त्वा पृतन्यात्) जो तेरे ऊपर सैन्यसे आक्रमण करे (सः अधरः अस्तु) वह नीचे गिरे। अस्तृतमणि तेरा रक्षण करे ॥ ५ ॥

(घृतात् उल्लुप्तः) घीसे सिंचित हुआ (मधुमान् पयस्वान्) मधुसे भरा दूधसे पूर्ण (सहस्रप्राणः शतयोनिः) सहस्र प्राणशक्तियां इसके पास हैं सौ उत्पत्ति स्थान हैं (वयोधाः शंभूः) आयुष्य धारण करनेवाला कल्याण करनेवाला (मयोभूः च ऊर्जस्वान् च) सुख देनेवाला बलवान (पयस्वान् च) रससे पूर्ण यह मणि है। यह अस्तृत मणि तेरा रक्षण करे ॥ ६ ॥

यथा त्वमुत्तरोऽसो असपत्नः सपत्नहा ।
सजातानामसद्वशी तथा त्वा सविता करदस्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥ ७ ॥ ([illegible])

(४७) रात्रिः ।

(ऋषिः — गोपथः । देवता — रात्रिः ।)

आ रात्रि पार्थिवं रजः पितुरप्रायि धामभिः ।
दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः ॥ १ ॥

न यस्याः पारं ददृशे न योयुवद्विश्वमस्यां नि विशते यदेजति ।
अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्रि पारमशीमहि भद्रे पारमशीमहि ॥ २ ॥

ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव । अशीतिः सन्त्यष्टा उतो ते सप्त सप्ततिः ॥ ३ ॥

षष्टिश्च षट् च रेवति पञ्चाशत्पञ्च सुम्नयि । चत्वारश्चत्वारिंशच्च त्रयस्त्रिंशच्च वाजिनि ॥ ४ ॥

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः । तेभिर्नो अद्य पायुभिर्नु पाहि दुहितर्दिवः ॥ ५ ॥

रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत मा नो दुःशंस ईशत । मा नो अद्य गवां स्तेनो मावीनां वृक ईशत ॥ ६ ॥

अर्थ— (यथा त्वं उत्तरः असः) जैसा तू श्रेष्ठतर है और (असपत्नः सपत्नहा) शत्रुरहित और शत्रुओंको मारनेवाला है तथा (सजातानां वशी असत्) सजातीयोंको वशमें करनेवाला है (तथा त्वा सविता करत्) वैसा तुझे सविताने किया है। अस्तृत मणि तेरी रक्षा करे ॥ ७ ॥

(४७) रात्रिः ।

हे रात्रि ! तूने (पितुः धामभिः) पृथ्वी पिताके स्थानों समेत (पार्थिवं रजः) पृथिवीके प्रदेशोंको (आ अप्रायि) भर दिया है। तू (बृहती) बडी (दिवः सदांसि) द्युलोकके स्थानोंको (वि तिष्ठसे) व्यापकर रहती है। (त्वेषं तमः आ वर्तते) तेजस्वी अंधेरा युक्त आ रहा है ॥ १ ॥

(यस्याः पारं न ददृशे) जिसका पार दिखाई नहीं देता (न योयुवत्) जिसमें न कुछ अलग अलग प्रतीत होता है, (विश्वं अस्यां नि विशते) सब इसमें आराम करते हैं, (यत् एजति) जो चलता है [वह इसमें विश्राम करता है] हे (उर्वि तमस्वति रात्रि) बडी अन्धकारवाली रात्रि ! (अ-रिष्टासः) न विनष्ट होते हुए हम (ते पारं अशीमहि) तेरे पार पहुंचेंगे (भद्रे ! पारं अशीमहि) हे कल्याण करनेवाली ! तेरे पार हम जावेंगे ॥ २ ॥

हे रात्रि ! (ये ते नृचक्षसः) जो तेरे मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले और (द्रष्टारः) देखनेवाले रक्षक हैं (नवतिः नव) नब्बे आर नौ (अशीतिः अष्टाः सन्ति) अस्सी और आठ (उत च ते सप्त सप्ततिः) और सात और सत्तर हैं ॥ ३ ॥

(षष्टिः च षट्) साठ और छः हैं (रेवति) धनवाली रात्रि ! (पंचाशत् पंच) पचास और पांच हैं (सुम्नयि) सुख देनेवाली रात्रि ! (चत्वारः चत्वारिंशत् च) चार और चालीस हैं (वाजिनि) बलवाली रात्रि ! (त्रयः त्रिंशत् च) और तैंतीस हैं ॥ ४ ॥

(द्वौ च ते विंशतिः च ते) दो और बीस हे रात्रि ! (अवमाः एकादश) कमसेकम ग्यारह रक्षक हैं। हे (दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री ! (तेभिः पायुभिः) उन रक्षकोंसे (अद्य नः नु पाहि) आज हमारी रक्षा कर ॥ ५ ॥

(रक्ष माकिः) हमारी रक्षा कर (अघशंसः मा नः ईशत) पापी हमपर स्वामी न हो (मा नः दुःशंस ईशत) न हमपर दुष्ट कीर्तिवाला स्वामित्व करे (अद्य गवां स्तेनः मा) आज गौओंका चोर न हमपर अधिकार चलावे (अवीनां वृकः मा नः ईशत) भेडोंके भेडिये हम वशमें करे ॥ ६ ॥

माश्वानां भद्रे तस्करो मा नृणां यातुधान्यः ।
परमेभिः पथिभिः स्तेनो धावतु तस्करः । परेण दत्वती रज्जुः परेणाघायुरर्षतु ॥ ७ ॥
अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । हनू वृकस्य जम्भयास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ ८ ॥
त्वयि रात्रि वसामसि स्वपिष्यामसि जागृहि । गोभ्यो नः शर्म यच्छाश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः ॥९॥ (१५५)

(४८) रात्रिः ।

(ऋषिः — गोपथः । देवता — रात्रिः ।)

अथो यानि च यस्मा ह यानि चान्तः परीणहि । तानि ते परि दद्मसि ॥ १ ॥
रात्रि मातरुषसे नः परि देहि । उषा नो अह्ने परि ददात्वहस्तुभ्यं विभावरि ॥ २ ॥
यत्किं चेदं पतयति यत्किं चेदं सरीसृपम् । यत्किं च पर्वतायासत्वं तस्मात्त्वं रात्रि पाहि नः ॥ ३ ॥
सा पश्चात्पाहि सा पुरः सोत्तरादधरादुत । गोपाय नो विभावरि स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ४ ॥
ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति ।
पशून्ये सर्वान्रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ ५ ॥

अर्थ— हे (भद्रे) कल्याण करनेवाली रात्री ! (अश्वानां तस्करः मा) घोडोंका चोर और (नृणां यातुधान्यः मा) मनुष्योंको कष्ट देनेवाले हमें कष्ट न देवें । (स्तेनः तस्करः) चोर और डाकू (परमेभिः पथिभिः धावतु) दूरके मार्गसे भाग जाय । (दत्वती रज्जुः परेण) दांतवाली रस्सी [सांप] (परेण अघायुः अर्षतु) दूरके मार्गसे पापी भाग जाए ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! (अध) और (तृष्टधूमं) तृषा बढानेवाले (अहिं) सांपको (अशीर्षाणं) सिरसे हीन कर । (वृकस्य हनू जम्भय) भेडियेके जबडेको पीस (तेन तं द्रुपदे जहि) उससे उसको तू खोडमें मार ॥ ८ ॥

हे रात्रे ! (त्वयि वसामसि) तेरे अन्दर हम रहते हैं तेरे आश्रयसे (स्वपिष्यामसि) हम सोयेंगे (जागृहि) तू जाग । (नः गोभ्यः शर्म यच्छ) हमारी गौओंके लिये सुख दे और (अश्वेभ्यः पुरुषेभ्यः) घोडोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख दे ॥ ९ ॥

(४८) रात्रि ।

(अथो यानि च यस्मा ह) और जो हम जानते हैं (यानि च परीणहि अन्तः) जो संदूकमें हैं (तानि ते परि दद्मसि) वे सब तेरे लिये अर्पण करते हैं ॥ १ ॥

(रात्रि मातः) हे रात्रि माते ! (नः उषसे परि देहि) तू हमें उषाके अधीन कर । (उषा नः अह्ने परि ददातु) उषा हमें दिनके सुपुर्द करे । हे (विभावरि) तेजस्विनी रात्रि ! (अहः तुभ्यं) दिन तुम्हारे सुपुर्द हमें करे ॥ २ ॥

(यत् किं च इदं पतयति) जो कुछ यहां उडता है (यत् किं च इदं सरीसृपं) जो कुछ यहां रींगता है, (यत् किं च पर्वते असत्वं) जो कुछ पर्वतपर जीव है हे रात्रे ! (तस्मात् त्वं नः पाहि) उससे तू हमारी रक्षा कर ॥ ३ ॥

(सा पश्चात् पाहि) वह तू पीछेसे हमारी रक्षा कर (सा पुरः) आगेसे (सा उत्तरात् अधरात् उत) वह तू ऊपरसे और नीचेसे हमारी रक्षा कर । हे (विभावरि) तेजस्विनी रात्री ! (नः गोपाय) हमें सुरक्षित रख । (ते इह स्तोतारः स्मसि) तेरे हम यहां स्तोतागण हैं ॥ ४ ॥

(ये रात्रिं अनुतिष्ठन्ति) जो रात्रीमें अनुष्ठान करते हैं (ये च भूतेषु जाग्रति) जो प्राणियोंमें जागते हैं (ये सर्वान् पशून् रक्षन्ति) जो सब पशुओंकी रक्षा करते हैं (ते नः आत्मसु जाग्रति) वे हमारे जीवोंमें जागते हैं (ते नः पशुषु जाग्रति) वे हमारे पशुओंमें जागते रहते हैं ॥ ५ ॥

वेद वै रात्रि ते नाम घृताची नाम वा असि ।
तां त्वा भरद्वाजो वेद सा नो वित्तेऽधि जाग्रति ॥ ६ ॥ (१११)

(४९) रात्रिः ।

(ऋषिः — गोपथः भरद्वाजश्च । देवता — रात्रिः ।)

इषिरा योषा युवतिर्दमूना रात्री देवस्य सवितुर्भगस्य ।
अश्वक्षमा सुहवा संभृतश्रीरा पप्रौ द्यावापृथिवी महित्वा ॥ १ ॥
अति विश्वान्यरुहद्गम्भीरो वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः ।
उशती राज्यनु सा भद्राभि तिष्ठते मित्र इव स्वधाभिः ॥ २ ॥
वर्ये वन्द्ये सुभगे सुजात आजगन्रात्रि सुमना इह स्याम् ।
अस्मांस्त्रायस्व नर्याणि जाता अथो यानि गव्यानि पुष्ट्या ॥ ३ ॥
सिंहस्य राज्युशती पींषस्य व्याघ्रस्य द्वीपिनो वर्च आ ददे ।
अश्वस्य ब्रध्नं पुरुषस्य मायुं पुरु रूपाणि कृणुषे विभाती ॥ ४ ॥
शिवां रात्रिमनुसूर्यं च हिमस्य माता सुहवा नो अस्तु ।
अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध येन त्वा वन्दे विश्वासु दिक्षु ॥ ५ ॥

अर्थ— हे रात्रि ! (ते नाम वेद वै) तेरा नाम हम जानते हैं । (घृताची नाम वै असि) तू घी देनेवाली है । (तां त्वा भरद्वाजः वेद) उस तुमको भरद्वाज जानता है (सा नः वित्ते अधि जाग्रति) वह तू हमारे धनपर जागती रह ॥ ६ ॥

(४९) रात्रिः ।

(इषिरा) इच्छा करने योग्य (योषा युवति) तरुण स्त्री जैसी (दमूना) अपने अधीन अपना मन रखनेवाली (सवितुः भगस्य देवस्य) सविता भग देवकी (रात्री) यह रात्री (अश्व-क्षमा) शीघ्र देखरेख करनेवालेसे प्रभावित (सु-हवा) सुखसे प्रार्थना करने योग्य (संभृत श्रीरा) इकट्ठी शोभावाली यह रात्री (महित्वा द्यावा पृथिवी आ पप्रौ) अपने महत्त्वसे द्युलोक और भूलोकको भर देती है ॥ १ ॥

(गम्भीर विश्वानि अति अरुहत्) गहरा अन्धेरा सब जगतपर चढ गया है । (श्रविष्ठाः वर्षिष्ठं अरुहन्त) बडी शक्तिवाली वह ऊंचे आकाशपर चढी है । (उशती रात्री) इच्छा करनेवाली रात्री और (सा भद्रा अभि तिष्ठते) वह कल्याण करनेवाली रात्री पहुंच जाती है (मित्रः स्वधाभिः इव) मित्र जैसा अपनी शक्तियोंके साथ आता है ॥ २ ॥

(वर्ये) वरण करने योग्य (वन्द्ये) वन्दन करने योग्य (सुभगे) उत्तम भगवाली (सु-जाते) उत्तम जन्मवाली हे रात्रि ! तू (आ अगन्) आ गयी है (सुमना इह स्याम्) यहां उत्तम मनवाली हो । (अस्मान् त्रायस्व) हमारी रक्षा कर । (नर्याणि जाता) मनुष्योंके हितके लिये जो उत्पन्न हुए हैं (अथो) और (यानि गव्यानि पुष्ट्या) जो गायोंकी पुष्टि करनेवाले हैं उन सबकी रक्षा कर ॥ ३ ॥

(उशती रात्री) इच्छा करनेवाली रात्री (सिंहस्य) सिंहके (पींषस्य) हरिनके, (व्याघ्रस्य) बाघके (द्वीपिनः) चीतेके (वर्च आ ददे) तेजको लेती है । (अश्वस्य ब्रध्नं) घोडेके वेगको (पुरुषस्य मायुं) पुरुषके शब्दको लेती है और (विभाती) चमकती हुई रात्री (पुरु रूपाणि कृणुषे) बहुत रूपोंको किया करती है ॥ ४ ॥

(शिवां रात्रीं) कल्याण करनेवाली रात्री (अनुसूर्यं) सूर्यके पीछे (हिमस्य माता) शर्दीकी यह माता (नः सुहवा अस्तु) हमारे लिये सुखसे स्तुति करने योग्य हो । हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवाली ! (अस्य स्तोमस्य) इस स्तोत्रको (नि बोध) जाने (येन विश्वासु दिक्षु त्वा वन्दे) जिससे मैं सब दिशाओंमें तेरी वन्दना करता हूं ॥ ५ ॥

स्तोमस्य नो विभावरि रात्रि राजेव जोषसे ।
असाम सर्ववीरा भवाम सर्ववेदसो व्युच्छन्तीरनूषसः ॥ ६ ॥
शम्या ह नाम दधिषे मम दिप्सन्ति ये धना ।
रात्रीहि तानसुतपा य स्तेनो न विद्यते यत्पुनर्न विद्यते ॥ ७ ॥
भद्रासि रात्रि चमसो न विष्टो विष्वङ् गोरूपं युवतिर्बिभर्षि ।
चक्षुष्मती मे उशती वपूंषि प्रति त्वं दिव्या न क्षाममुक्थाः ॥ ८ ॥
यो अद्य स्तेन आयत्यघायुर्मर्त्यो रिपुः । रात्री तस्य प्रतीत्य प्र ग्रीवाः प्र शिरो हनत् ॥ ९ ॥
प्र पादौ न यथायति प्र हस्तौ न यथाशिषत् । यो मलिम्लुरुपायति स संपिष्टो अपायति ।
अपायति स्वपायति शुष्के स्थाणावपायति ॥ १० ॥ (१७१)

(५०) रात्रिः ।

(ऋषिः — गोपथः । देवता — रात्रिः ।)

अध रात्रि तृष्टधूममशीर्षाणमहिं कृणु । अक्षौ वृकस्य निर्जह्यास्तेन तं द्रुपदे जहि ॥ १ ॥

अर्थ— हे (विभावरि) प्रकाशवाली रात्रि ! (नः स्तोमस्य) हमारे स्तोत्रको तू (राजा इव जोषसे) राजाके समान प्यार करती है (व्युच्छन्तीः उषसः) चमकनेवाली उषाओंमें (सर्ववीराः असाम) सारे वीर पुत्रोंके साथ हम रहें और (सर्व-वेदसः भवाम) सब धनोंके साथ हों ॥ ६ ॥

(शम्या ह नाम दधिषे) आराम देनेवाली इस अर्थका नाम तू धारण करती है। (ये मम धना दिप्सन्ति) जो मेरे धनोंको हानि पहुंचाते हैं (तान् असुतपा रात्री इहि) उनके प्राणोंको ताप पहुंचानेवाली तू रात्री हो। (यः स्तेनः न विद्यते) जो चोर है वह न रहे (यत् पुनः न विद्यते) वह फिर भी न हो ॥ ७ ॥

हे रात्रि ! तू (भद्रा असि) कल्याण करनेवाली है। (चमसः न विष्टः) जैसा परोसा हुआ पात्र होता है। (युवतिः विष्वङ् गोरूपं बिभर्षि) तू युवती होकर चारों ओर गौका रूप धारण करती है। (मे उशती चक्षुष्मती वपूंषि) मुझे इच्छती हुई तू नक्षत्रोंके युक्त अनेक आकर्षक शरीर दिखाती है। (त्वं दिव्या न,) तू आकाशके नक्षत्रोंके समान (क्षां प्रति अमुक्थाः) पृथिवीको भी सुभूषित कर ॥ ८ ॥

(यः अद्य स्तेनः आयति) जो आज चोर आता है व (अघायुः मर्त्यः रिपुः) पापी मर्त्य शत्रु है (रात्री तस्य प्रतीत्य) रात्री उसके पास जाकर उसका (ग्रीवाः प्र शिरः प्र हनत्) गला और सिर काट डाले ॥ ९ ॥

हे रात्रि ! (पादौ प्र) उसके पांवोंको काट डाल (न यथा आयति) जिससे वह फिर न आ सके। (हस्तौ प्र) हाथ तोड दे (यथा न अशिषत्) जिससे वह हमें न पकड सके (यः मलिम्लुः उप आयाति) जो चोरी करने आता है वह (संपिष्टः अपायति) पीसा हुआ चला जाय। (अपायति सु अपायति) वह चला जाय अच्छी तरह चला जाय (शुष्के स्थाणौ अपायति) सूखे खंभे पर चला जाय ॥ १० ॥

(५०) रात्रिः ।

हे रात्रि ! (तृष्टधूमं अहिं) तृषा बढानेवाले विषवाले सांपको (अशीर्षाणं कृणु) सिर रहित कर। (वृकस्य अक्षौ निर्जह्याः) भेडियेकी आंखें निकाल दे। (तेन तं द्रुपदे जहि) उससे तू उसको लकडीके खंभे पर मार ॥ १ ॥

ये ते रात्र्यनड्वाहस्तीक्ष्णशृङ्गाः स्वाशवः । तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ २ ॥
रात्रिंरात्रिमरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् । गम्भीरमप्लवा इव न तरेयुररातयः ॥ ३ ॥
यथा शाम्याकः प्रपतन्नपवान्नानुविद्यते । एवा रात्रि प्र पातय यो अस्माँ अभ्यघायति ॥ ४ ॥
अप स्तेनं वासो गोअजमुत तस्करम् । अथो यो अर्वतः शिरोऽभिधाय निनीषति ॥ ५ ॥
यदद्या रात्रि सुभगे विभजन्त्ययो वसु । यदेतदस्मान्भोजय यथेदन्यानुपायसि ॥ ६ ॥
उषसे नः परि देहि सर्वान्रात्र्यनागसः । उषा नो अह्ने आ भजादहस्तुभ्यं विभावरि ॥ ७ ॥ (१७८)

अर्थ— हे रात्रि ! (ये ते तीक्ष्णशृङ्गाः) जो तेरे तीखे सींगवाले (स्वाशवः) बडे तेज (अनड्वाहः) बैल हैं, (तेभिः नः अद्य) उनके साथ हमें आज (विश्वहा दुर्गाणि अति पारय) सदा संकटोंके पार पहुंचा दे ॥ २ ॥

(वयं तन्वा अरिष्यन्तः) हम शरीरसे हानि न उठाते हुए (रात्रिं रात्रिं तरेम) प्रत्येक रात्रीमें पार हो जांय । (अरातयः अप्लवाः इव) शत्रु नौका रहितोंके समान (न तरेयुः) पार न हों ॥ ३ ॥

(यथा शाम्याकः) जैसा सावांका दाना (प्र पतन्) गिरता हुआ (अपवान् न अनुविद्यते) ढूंढनेपर मिलता नहीं हे रात्रि ! (एवा) इस तरह (प्र पातय) उसको गिरा दे (यः अस्मान् अभ्यघायति) जो हमसे पापाचरण करता है ॥ ४ ॥

(वासः स्तेनं अप) वस्त्रोंके चोरको दूर कर (गो अज उत तस्करं) गौओंको ले जानेवालेको तथा लुटेरेको दूर कर । (अथो यो अर्वतः शिरः) और जो घोडेके सिरको (अभिधाय निनीषति) बांधकर ले जाता है उसको भी दूर कर ॥ ५ ॥

हे (सुभगे रात्रि) भाग्यवाली रात्रि ! (यत् अद्य वसु विभजन्ती) जो आज तू धन बांटती हुई (आ अयाः) आयी है । (तत् एतत् अस्मान् भोजय) वह हमें उपभोगके लिये दे (यथा इत् अन्यान् न उपायसि) जिससे वह दूसरोंके पास न जाय ॥ ६ ॥

हे रात्रि ! (अनागसः सर्वान् नः) निष्पाप हम सबको (उषसे परि देहि) उषाके लिये दे दो । (उषा नः अह्ने आ भजात्) उषा हमें दिनके लिये दे दे । (वि-भावरि) प्रकाशवाली ! (अहः तुभ्यं) दिन तुम्हारे पास हमें सौंप दे ॥ ७ ॥

चार रात्री सूक्त

यहां गोपथ ऋषिके चार सूक्त रात्रीके वर्णनके हैं । इनमें एक तीसरा सूक्त भरद्वाजका भी अर्थात् गोपथ और भरद्वाज इन दोनोंका है । इनमें जो रात्रीका वर्णन है वह विशेष विचार पूर्वक देखने योग्य है ।

१ वि भा-वरि— विशेष तेजस्वी ४७।२; ४७।९; ४९।६; ५०।७;

२ संभृत श्रीः— इकट्ठी हुई शोभावाली ४९।१;

३ विभाती— विशेष तेजस्वी ४९।४;

४ ज्योतिष्मती— विशेष प्रकाशवाली ४९।६ ।

विविध चमकनेवाली विविध प्रकारके प्रकाशोंसे युक्त यह रात्री है । हमारी इस देशमें जो रात्री होती है उसमें विशेष प्रकाशोंका वर्णन नहीं होता इसलिये यह वर्णन हमारे देशमें होनेवाली रात्रीका नहीं लगता ऐसा प्रतीत होता है । तथा—

१ तेभिर्नो अद्य पारयाति दुर्गाणि विश्वहा ॥ ५० । २

२ रात्रिं अरिष्यन्तस्तरेम तन्वा वयम् ॥ ५० । ३

३ अरिष्टासस्त उर्वि तमस्वति रात्री पारम् अशीमहि । भद्रे पारमशीमहि ॥ ४७।९

१ हमें सब संकटोंसे पार ले जाती है । २ इस रात्रीको हम अपने शरीरके साथ विना न हुए पार जायेंगे । ३ विना न हारकर बडी अंधकारमय रात्रीके पार जाना है अंधकार करनेवाली रात्री ! हम पार हो जायेंगे !

रात्रीमें सुरक्षित पार होने का वर्णन भारतकी १२ घण्टोंकी रात्रीके विषयमें नहीं है क्योंकि इस रात्रीके पार हम जायेंगे

(५१) आत्मा।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — आत्मा सविता च।)

अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतो मे प्राणोऽयुतो
मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः ॥ १ ॥
देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत आ रभे ॥ २ ॥ (१८०)

(५२) कामः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — कामः।)

कामस्तदग्रे समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
स काम कामेन बृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि ॥ १ ॥

यह हरएक मनाही मनुष्य भी जानता है। प्रतिदिन मनुष्य सोता है और दूसरे दिन उठकर पार होता ही है। इसलिये यह प्रार्थना (ऊर्ध्वा समस्वती रात्रा) बडे अन्धकारवाली विशाल रात्रीकी ही होगी। जो रात्री ५।६ मास रहती है अथवा ६ मास उत्तरीय ध्रुवके पास रहती है। उस रात्रीकी यह प्रार्थना होगी। क्योंकि दीर्घकाल तक वहां रात्री रहती है इसलिये प्रार्थनाकी सार्थकता वहीं हो सकती है। इस रात्रीका निरीक्षण देखिये—

१ बृहती (४७।१)— बडी।

२ यस्याः पारं न ददृशे। (४७।१)— जिसका पार दीखता नहीं इतनी यह रात्री दीर्घकाल टिकनेवाली है।

३ ये ते रात्रि नृचक्षसो द्रष्टारो नवतिर्नव। (४८।१)— हे रात्री! तेरे अन्दर पहारादार मनुष्योंका निरीक्षण करनेवाले ९९ हैं।

४ ये भूतेषु जाग्रति। (४८।५)— जो मनुष्योंके रक्षणार्थ जागते हैं।

ये ९९ जागना पहारा करना है यह अति दीर्घ रात्रीके लिये ही हो सकता है। इसलिये यह रात्री अनेक महिने रहनेवाली उत्तरीय ध्रुवके पास होनेवाली रात्री होगी।

जिस समय दीर्घ रात्री होती है उस समय हिंस्रपशुओंके भय होता है जिसका वर्णन इन मंत्रोंमें है चोर डाकू लुटेरोंका भय होता है वह इन मंत्रोंमें है। पशुओंकी चोरी भी है। हमारी छोटी रात्रीमें भी ये भय होते हैं पर जितना वर्णन इन मंत्रोंमें है उतना नहीं होता। इन मंत्रोंमें वर्णन किया भय दीर्घ रात्रीमें ही हो सकता है। बृहती उर्वी आदि पद उस रात्रीके द्योतक हैं। इसलिये निश्चय यह है कि यह मन्त्र धारक रात्रीका वर्णन दीर्घ रात्रीका है।

---

(५१) आत्मा।

अर्थ— (अहं अयुतः) मैं पूर्ण हूं (मे आत्मा अयुतः) मेरा आत्मा पूर्ण है (मे चक्षुः अयुतं) मेरा नेत्र पूर्ण है (मे श्रोत्रं अयुतं) मेरे कान पूर्ण हैं (मे प्राणः अयुतः) मेरा प्राण पूर्ण है (मे अपानः अयुतः) मेरा अपान पूर्ण है (मे व्यानः अयुतः) मेरा व्यान पूर्ण है (अहं सर्वः अयुतः) मैं सब पूर्ण हूं ॥ १ ॥

(सवितुः देवस्य प्रसवे) सविता देवकी प्रेरणामें (अश्विनोः बाहुभ्यां) अश्विदेवोंके बाहुओंसे तथा (पूष्णः हस्ताभ्यां) पूषाके हाथोंसे (प्रसूतः) प्रेरा हुआ मैं (त्वा आ रभे) तुझे आरंभ करता हूं ॥ २ ॥

(५२) कामः।

(अग्रे कामः समवर्तत) प्रारंभमें काम उत्पन्न हुआ। (यत् मनसः रेतः प्रथमं आसीत्) जो मनका पहिला वीर्य था। हे काम! (बृहता कामेन सयोनिः सः) बडे कामके साथ समान उत्पत्तिस्थानवाला वह तू (यजमानाय रायस्पोषं धेहि) यजमानके लिये धनकी पुष्टि दे ॥ १ ॥

त्वं काम सहसासि प्रतिष्ठितो विभुर्विभावा सख आ सखीयते ।
त्वमुग्रः पृतनासु सासहिः सह ओजो यजमानाय धेहि ॥ २ ॥
दूराच्चकमानाय प्रतिपाणायाक्षये । आस्मा अशृण्वन्नाशाः कामेनाजनयन्त्स्वः ॥ ३ ॥
कामेन मा काम आगन्हृदयाद्धृदयं परि । यदमीषामदो मनस्तदैतूप मामिह ॥ ४ ॥
यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः ।
तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥ ५ ॥ (१८)

(५३) काल'।

(ऋषिः— भृगुः। देवता— कालः।)

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥
सप्त चक्रान्वहति काल एष सप्तास्य नाभीरमृतं न्वक्षः ।
स इमा विश्वा भुवनान्यञ्जत्कालः स ईयते प्रथमो नु देवः ॥ २ ॥

अर्थ— हे काम! (त्वं) तू (सहसा प्रतिष्ठितः असि) सामर्थ्यके साथ रहता है। तू (विभुः विभावा) व्यापक तथा तेजस्वी और (सखीयते सखा) मित्रके समान वर्तनेवालोंके साथ तू मित्र बनकर रहता है। (त्वं उग्रः) तू उग्र है (पृतनासु सासहिः) संग्रामोंमें विजय करनेवाला (यजमानाय सहः ओजः आ धेहि) यजमानके लिये साहस और बल दे ॥ २ ॥

(दूरात् चकमानाय) दूरसे कामना करनेवाले (प्रतिपाणाय अक्षये) प्रति प्राणके अक्षय कर्मोंके लिये (अस्मै आशाः अशृण्वन्) इस कामकी घोषणा सब दिशाएं सुनती हैं कि (कामेन स्वः अजनयन्) इस कामसे दिव्य सुख निर्माण किया है ॥ ३ ॥

(कामेन मा कामः आगन्) कामसे मेरी ओर काम आ गया है। (हृदयात् हृदयं परि) हृदयसे हृदयकी ओर भी काम आ गया है। (यत् अमीषां अदः मनः) जो उनका यह मन है (तत् मां इह उप एतु) वह मेरे पास यहां आवे ॥ ४ ॥

हे काम! (यत् कामयमानाः) जिसकी इच्छा करते हुए (ते इदं हविः कृण्मसि) तेरे लिये यह हवि करते हैं (तत् नः सर्वं समृध्यतां) वह सब हमारे लिये सिद्ध हो जाय। (अथ एतस्य हविषः वीहि) और इस हविका तू स्वीकार कर, (स्वाहा) तुम्हारे लिये समर्पण हो ॥ ५ ॥

काम का अर्थ इच्छा आकांक्षा है। यही सब सृष्टिमें बडे बडे कार्य कर रहा है। सृष्टि उत्पन्न करनेकी कामना परमेश्वरमें थी और सृष्टि बनगयी। मनुष्य भी नाना प्रकारकी कामनाएं करता है और अनेक प्रकारके बडे कार्य करता है। इस लिये देखा जाय तो इस कामका राज्य ही सब स्थानोंपर है। यह देखना चाहिये।

(५३) काल।

(कालः अश्वः) कालरूपी घोडा (वहति) विश्वको खींचता है। (सप्त रश्मिः) इसके सात किरण हैं (सहस्र-अक्षः) हजार आंख हैं यह (अ-जरः) जरारहित और (भूरि-रेताः) बहुत वीर्यवान् है। (तं विपश्चितः कवयः आ रोहन्ति) उसपर ज्ञानी कवि चढते हैं (तस्य चक्रा विश्वा भुवनानि) उसके चक्र सब भुवन हैं ॥ १ ॥

(एषः कालः सप्त चक्रान् वहति) यह काल सात चक्रोंको खींचता है। (अस्य सप्त नाभीः) इसकी सात नाभियां हैं (अक्षः नु अमृतं) इसका अक्ष अमृत है। (सः इमा विश्वा भुवनानि अञ्जत्) वह इन सब भुवनोंको प्रकट करता है। (सः प्रथमः देवः कालः ईयते) वह प्रथम पहिला देव है और वह चलता रहता है ॥ २ ॥

पूर्णः कुम्भोऽधि काल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
स इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्कालं तमाहुः परमे व्योमन् ॥ ३ ॥
स एव सं भुवनान्याभरत्स एव सं भुवनानि पर्यैत् ।
पिता सन्नभवत्पुत्र एषां तस्माद्वै नान्यत्परमस्ति तेजः ॥ ४ ॥
कालोऽमूं दिवमजनयत्काल इमाः पृथिवीरुत । काले ह भूतं भव्यं चेषितं ह वि तिष्ठते ॥ ५ ॥
कालो भूतिमसृजत काले तपति सूर्यः । काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति ॥ ६ ॥
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम् । कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः ॥ ७ ॥
काले तपः काले ज्येष्ठं काले ब्रह्म समाहितम् । कालो ह सर्वस्येश्वरो यः पितासीत्प्रजापतेः ॥ ८ ॥
तेनेषितं तेन जातं तदु तस्मिन्प्रतिष्ठितम् । कालो ह ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ॥ ९ ॥
कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम् । स्वयंभूः कश्यपः कालात्तपः कालादजायत ॥ १० ॥ (११७)

अर्थ— (पूर्णः कुम्भः काले अधि आहितः) भरा हुआ घडा [यह विश्व] कालके ऊपर रखा है । (तं वै पश्यामः बहुधा नु सन्तः) उसको हम देखते हैं जो अनेक प्रकारसे होता है । (सः इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ्) वह प्रत्यक्ष इन सब भुवनोंके सामने है (परमे व्योमन् तं कालं आहुः) परम आकाशमें उसको काल कहते हैं ॥ ३ ॥

(सः एव भुवनानि सं आभरत्) वह ही सब भुवनोंका भरणपोषण करता है (सः एव भुवनानि सं पर्यैत्) वही सब भुवनोंको व्यापता है । (पिता सन्) वह पिता होता हुआ (एषां पुत्रः अभवत्) इनका पुत्र हुआ है । (तस्मात् वै परं तेजः नान्यत् अस्ति) उससे अधिक तेज कोई नहीं है ॥ ४ ॥

(कालः अमूं दिवं अजनयत्) कालने ही इस द्युलोकको बनाया है । (उत कालः इमाः पृथिवीः) और कालने ही ये भूमियां बनायी हैं (काले ह भूतं भव्यं च) कालमें जो भूतकालमें हुआ और भविष्यमें होगा वह सब रहता है तथा कालमें (इषितं ह वितिष्ठते) जो प्रेरित होता है वह सब रहता है ॥ ५ ॥

(कालः भूतिं असृजत) कालने सृष्टि बनायी है । (सूर्यः काले तपति) सूर्य कालमें ही तपता है । (काले ह विश्वा भूतानि) कालमें ही सब भूत रहे हैं (काले चक्षुः विपश्यति) कालमें आंख विशेष रीतिसे देखता है ॥ ६ ॥

(काले मनः) कालमें मन (काले प्राणः) कालमें प्राण और (काले नाम समाहितं) कालमें नाम रहा है । (कालेन आगतेन) काल आनेपर (इमाः सर्वाः प्रजाः) ये सब प्रजाएं (नन्दन्ति) आनंदित होती हैं ॥ ७ ॥

(काले तपः) कालमें तप होता है (काले ज्येष्ठं) कालमें ज्येष्ठ रहता है (काले ब्रह्म समाहितं) कालमें ज्ञान रखा हुआ है (कालः ह सर्वस्य ईश्वरः) काल ही सबका ईश्वर है (यः प्रजापतेः पिता आसीत्) जो प्रजापतिका पिता था ॥ ८ ॥

(तेन इषितं) उसने प्रेरित किया है (तेन जातं) उससे उत्पन्न हुआ है (तत् उ तस्मिन् प्रतिष्ठितं) वह निःसंदेह उसमें रहा है । (कालः ह ब्रह्म भूत्वा) काल निःसंदेह ब्रह्म बनकर (परमेष्ठिनं बिभर्ति) परमेष्ठीको धारण करता है ॥ ९ ॥

(कालः प्रजाः असृजत) कालने प्रजाएं निर्माण की हैं (कालः अग्रे प्रजापतिं) कालने पहिले प्रजापतिको बनाया है । (स्वयंभूः कश्यपः कालात्) स्वयंभू कश्यप कालसे बना है (कालात् तपः अजायत) कालसे तप बना है ॥ १० ॥

कालसे सब कुछ बना है । काल ही सबका कारण है । यह विचार करके जानना योग्य है ॥

(५४) कालः ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — कालः ।)

कालादापः समभवन्कालाद्ब्रह्म तपो दिशः । कालेनोदेति सूर्यः काले नि विशते पुनः ॥ १ ॥

कालेन वातः पवते कालेन पृथिवी मही । द्यौर्मही काल आहिता ॥ २ ॥

कालो ह भूतं भव्यं च पुत्रो अजनयत्पुरा । कालादृचः समभवन्यजुः कालादजायत ॥ ३ ॥

कालो यज्ञं समैरयद्देवेभ्यो भागमक्षितम् । काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ४ ॥

कालेऽयमङ्गिरा देवोऽथर्वा चाधि तिष्ठतः ।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्याः ।
सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः ॥ ५ ॥ (१००)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

---

(५४) कालः ।

अर्थ— (कालात् आपः समभवन्) कालसे जल उत्पन्न हुए हैं (कालात् ब्रह्म तपः दिशः) कालसे ज्ञान तप और दिशाएं उत्पन्न हुई हैं । (कालेन सूर्यः उदेति) कालसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है (पुनः काले नि विशते) पुनः वह सूर्य कालमें ही प्रविष्ट होता है ॥ १ ॥

(कालेन वातः पवते) कालसे वायु बहता है (कालेन पृथिवी मही) कालसे ही पृथिवी बडी हुई है । (काले द्यौः मही आहिता) कालमें ही बडा द्यौ रहा है ॥ २ ॥

(पुत्रः कालः ह भूतं भव्यं च) पुत्र कालने ही भूत और भविष्य (पुरा अजनयत्) पहिले बनाये हैं (कालात् ऋचः समभवन्) कालसे ऋचाएं उत्पन्न हुईं और (कालात् यजुः अजायत) कालसे यजु उत्पन्न हुआ है ॥ ३ ॥

(कालः) कालने ही (अक्षितं यज्ञं भागं) अक्षय यज्ञभागको (देवेभ्यः समैरयत्) देवोंके लिये प्रेरित किया है । (काले गन्धर्व-अप्सरसः) कालमें ही गन्धर्व और अप्सराएं हुई हैं । (काले लोकाः प्रतिष्ठिताः) कालमें सब लोक रहे हैं ॥ ४ ॥

(काले अयं अङ्गिराः देवः) कालमें यह अंगिरा देव और (अथर्वा च अधि तिष्ठतः) और अथर्वा अधिष्ठाता होकर रहा है । (इमं च लोकं परमं च लोकं) इस लोकको और परम लोकको तथा (पुण्यान् लोकान् च) सब पुण्य लोकोंको और (पुण्याः विधृतीः च) पुण्य मर्यादाओंको तथा (सर्वान् लोकान् अभिजित्य) सारे लोकोंको जीतकर (परमः देवः कालः) परमदेव काल (ब्रह्मणा सः ईयते) ब्रह्म-ज्ञान-के साथ चलता जाता है ॥ ५ ॥

॥ षष्ठ अनुवाक समाप्त ॥

(५५) रायस्पोषप्राप्तिः ।

(ऋषिः — भृगुः । देवता — अग्निः ।)

रात्रिंरात्रिमप्रयातं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥
या ते वसोर्वात इषुः सा त एषा तया नो मृड ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ २ ॥
सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥
प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥ ४ ॥
अपश्चा दग्धान्नस्य भूयासम् । अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ।
सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ५ ॥
त्वामिन्द्रा पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवत् । अहरहर्बलिमित् ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥ ६ ॥ (४०३)

---

(५५) रायस्पोषप्राप्तिः ।

अर्थ— (रात्रिं रात्रिं अप्रयातं) प्रत्येक रात्रिमें बंधे हुए कहीं भी न जानेवाले (अश्वाय तिष्ठते अस्मै) इस खडे हुए घोडेको (घासं इव भरन्तः) घास देते हैं, उस तरह अग्निके लिये हम हवि अर्पण करनेवाले हम सब (रायस्पोषेण इषा सं मदन्तः) धन और पुष्टिके तथा अन्नके साथ आनन्द करते हुए (ते प्रातिवेशाः) तेरे पडोसी हम हे अग्ने! (मा रिषाम) दुःख न भोगें ॥ १ ॥

(या ते वसोः वातः इषुः) जो तुझ बसानेवालेका वायुरूप बाण है (सा ते एषा) वह तेरा ही यह बाण है (तया नः मृड) उससे हमें सुख दे ॥ २ ॥

(सायं सायं) प्रति सायंकाल (अग्निः नः गृहपतिः) अग्नि हमारा गृहपति होकर रहता है। वह (प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता) प्रत्येक प्रातःकालमें उत्तम मनका दाता होता है। वह (वसोः वसोः वसुदानः एधि) हमें प्रत्येक उत्तम वसुका दान देनेवाला हो (त्वा इन्धानाः वयं) तुझे प्रदीप्त करनेवाले हम (तन्वं पुषेम) अपने शरीरको पुष्ट करेंगे ॥ ३ ॥

(प्रातः प्रातः) प्रत्येक प्रातःकालमें (अग्निः नः गृहपतिः) अग्नि हमारा गृहपति हुआ है वह (सायं सायं सौमनसस्य दाता) प्रत्येक सायंकालमें उत्तम मनका दाता है। वह (वसोः वसोः वसुदानः एधि) हमें प्रत्येक उत्तम वसुका दान देनेवाला हो (त्वा इन्धानाः शतं हिमाः ऋधेम) तुझे प्रदीप्त करनेवाले हम सौ वर्ष समृद्ध होते रहेंगे ॥ ४ ॥

(दग्धान्नस्य अ-पश्चा भूयासं) जले अन्नवालेके पीछे मैं न होऊं। (अन्नादाय अन्नपतये) अन्नका स्वीकार करनेवाले अन्नके पति (रुद्राय अग्नये नमः) रुद्ररूपी अग्निके लिये मैं नमस्कार करता हूं। (सभ्य! मे सभां पाहि) सभाके योग्य तू है मेरी सभाकी रक्षा कर। (ये च सभ्याः सभासदः) जो सभामें बैठनेवाले सभासद हैं वे भी सभाकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

हे इन्द्र! (त्वं पुरुहूत) तू बहुतों द्वारा प्रार्थना करने योग्य हो। (विश्वं आयुः व्यश्नवत्) तेरा उपासक सारी आयु भोगे। (अहः अहः बलिं इत् ते हरन्तः) प्रतिदिन तुझे बलि लाते हुए हम हे अग्ने! (तिष्ठते अश्वाय घासं इव) खडे घोडेको घास देते हैं उस तरह तुझे हम हवि देते हैं ॥ ६ ॥

(५६) दुःष्वप्ननाशनम्।

(ऋषिः — यमः। देवता — दुःष्वप्ननाशनम्।)

यमस्य लोकादध्या बभूविथ प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि धीरः।
एकाकिना सरथं यासि विद्वान्त्स्वप्नं मिमानो असुरस्य योनौ ॥ १ ॥

बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्पुरा रात्र्या जनितोरेके अह्नि।
ततः स्वप्नेदमध्या बभूविथ भिषग्भ्यो रूपमपगूहमानः ॥ २ ॥

बृहद्गावासुरेभ्योऽधि देवानुपावर्तत महिमानमिच्छन्।
तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः ॥ ३ ॥

नैतां विदुः पितरो नोत देवा येषां जल्पिश्चरत्यन्तरेदम्।
त्रिते स्वप्नमदधुराप्त्ये नर आदित्यासो वरुणेनानुशिष्टाः ॥ ४ ॥

यस्य क्रूरमभजन्त दुष्कृतोऽस्वप्नेन सुकृतः पुण्यमायुः।
स्वर्मदसि परमेण बन्धुना तप्यमानस्य मनसोऽधि जज्ञिषे ॥ ५ ॥

---

(५६) दुःष्वप्ननाशनम्।

अर्थ— (यमस्य लोकात्) यमके लोकसे (अध्या बभूविथ) तू इधर आया है। (धीरः प्रमदा मर्त्यान् प्र युनक्षि) तू बुद्धिमान् हर्षसे मनुष्योंको स्वप्नसे युक्त करता है। (असुरस्य योनौ) प्राणके रमनेवाले स्थानमें (स्वप्नं मिमानः) स्वप्नकी रचना करता हुआ (विद्वान्) जानता हुआ (एकाकिना सरथं यासि) तू अकेलेके साथ समान रथपर बैठकर जाता है ॥ १ ॥

(विश्वचया बन्धः) पूर्ण व्यापनेवाले बन्धनने (रात्र्याः जनितोः पुरा) रात्रीके उत्पन्न होनेके पूर्व (एके अह्नि) एक दिन (त्वा अग्रे अपश्यत्) तुझे प्रथम देखा था। हे (स्वप्न) स्वप्न! (ततः इदं अध्या बभूविथ) वहांसे इधर आया है (भिषग्भ्यः रूपं अपगूहमानः) और वैद्योंसे अपने रूपको तू छिपाता है ॥ २ ॥

(बृहद्गावा महिमानं इच्छन्) बडी गौओंवाला अपना महत्त्व चाहता हुआ स्वप्न (असुरेभ्यः देवान् अधि उपावर्तत) असुरोंसे देवोंके पास आया है। (स्वः आनशानाः त्रयस्त्रिंशासः) स्वर्गमें रहनेवाले तैंतीस देवोंने (तस्मै स्वप्नाय आधिपत्यं दधुः) उस स्वप्नके लिये अधिपत्य दिया है ॥ ३ ॥

(पितरः एतां न विदुः) पितर इस स्वप्नको जानते नहीं (उत न देवाः) और देव भी इस स्वप्नको जानते नहीं (येषां जल्पिः इदं अन्तरा चरति) जिनका वार्तालाप इस स्वप्नके अन्दर चलता है। (वरुणेन अनुशिष्टाः आदित्यासः नरः) वरुणसे शिक्षित किये आदित्य और मनुष्य (स्वप्नं आप्त्ये त्रिते अदधुः) स्वप्नको आप्तके पुत्र त्रितमें रखते हैं। [आप्त पुत्र जागनेके कारण स्वप्न होता है ऐसा मानते हैं।] ॥ ४ ॥

(यस्य क्रूरं दुष्कृतः अभजन्त) जिस स्वप्नके क्रूर फलको दुष्कर्म करनेवाले जागनेमें भोगते हैं और (सुकृतः अस्वप्नेन पुण्यं आयुः) पुण्य कर्म करनेवाले स्वप्न न आनेसे पुण्यकारक आयुको भोगते हैं। (परमेण बन्धुना स्वः मदसि) श्रेष्ठ बन्धु परमात्माके साथ रहकर स्वर्गसुखका आनन्द मिलता है। तू स्वप्न (तप्यमानस्य मनसः अधि जज्ञिषे) तपे हुए मनसे उत्पन्न होता है ॥ ५ ॥

विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्ताद्विद्म स्वप्न यो अधिपा इहा ते ।
यशस्विनो नो यशसेह पाह्याराद् द्विषेभिरप याहि दूरम् ॥ ६ ॥ (५१२)

(५७) दुःष्वप्ननाशनम् ।

(ऋषिः — यमः । देवता — दुःष्वप्ननाशनम् ।)

यथा कलां यथा शफं यथर्णं संनयन्ति । एवा दुःष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ॥ १ ॥

सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।
समस्मासु यद्दुःष्वप्न्यं निर्द्विषते दुःष्वप्न्यं सुवाम ॥ २ ॥

देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः । मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ॥ ३ ॥

तं त्वा स्वप्न तथा सं विद्म स त्वं स्वप्नाश्व इव कायमश्व इव नीनाहम् ।
अनास्माकं देवपीयुं पियारुं वप यदस्मासु दुःष्वप्न्यं यद्गोषु यच्च नो गृहे ॥ ४ ॥

अर्थ — हे स्वप्न ! ते सर्वाः पुरस्तात् परिजाः विद्म [illegible] है । (यः इह ते अधिपाः विद्म) [illegible] है । [illegible]) [illegible] (इह आरात् [illegible] पाहि) [illegible] (द्विषद्भिः दूरं अप याहि) [illegible]

[illegible]

अनास्माकस्तद्देवपीयुः पियारुर्निष्कमिव प्रति मुञ्चताम्।
नवारत्नीनपमया अस्माकं ततः परि। दुःष्वप्न्यं सर्वं द्विषते निर्दयामसि ॥ ५ ॥ (४१७)

(५८) यज्ञः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — यज्ञः मन्त्रोक्ता देवताश्च।)

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥ १ ॥
उपास्मान्प्राणो ह्वयतामुप वयं प्राणं हवामहे।
वर्चो जग्राह पृथिव्य१न्तरिक्षं वर्चः सोमो बृहस्पतिर्विधत्ता ॥ २ ॥
वर्चसो द्यावापृथिवी संग्रहणी बभूवथुर्वर्चो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम।
यशसं गावो गोपतिमुप तिष्ठन्त्यायतीर्यशो गृहीत्वा पृथिवीमनु सं चरेम ॥ ३ ॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्मा सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥ ४ ॥
यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः ॥ ५ ॥

अर्थ— (अनास्माकः देवपीयुः पियारुः) जो हमारा नहीं जो देवोंका विरोधी है दोषयुक्त है वह (तत् निष्कं इव प्रति मुञ्चताम्) वह स्वप्नफलको हारके समान पहने। (नव-आरत्नीः अपमयाः) नौ हाथ परे दूर जा। (अस्माकं ततः परि) हमारे दुष्ट स्वप्न उसके पास जाय। (सर्वं दुःष्वप्न्यं द्विषते निर्दयामसि) सब दुष्ट स्वप्न हम उसपर फेंकते हैं जो हमारा द्वेष करता है ॥ ५ ॥

(५८) यज्ञ।

(समना सदेवा) मन समेत देवी शक्तियोंके साथ (घृतस्य जूतिः) घीकी अविच्छिन्न गति (हविषा संवत्सरं वर्धयन्ती) हविसे संवत्सरको बढाती है। (नः श्रोत्रं चक्षुः प्राणः अच्छिन्नः अस्तु) हमारे कान आंख और प्राण ये अविच्छिन्न रहें (आयुषः वर्चसः वयं अच्छिन्नाः) आयु और तेजसे हम अविच्छिन्न हों ॥ १ ॥

(प्राणः अस्मान् उपह्वयतां) प्राण हमें बुलावे (वयं प्राणं उपहवामहे) हम प्राणको बुलावें। (पृथिवी वर्चः जग्राह) पृथिवीने तेज ग्रहण किया है। (अन्तरिक्षं वर्चः) अन्तरिक्षने तेज ग्रहण किया है (सोमः बृहस्पतिः विधत्ता) सोम और बृहस्पति तेज धारण करते हैं ॥ २ ॥

(द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी (वर्चसः संग्रहणी बभूवथुः) तेजका संग्रह करनेवाले हुए हैं। (वर्चः गृहीत्वा पृथिवीं अनु संचरेम) तेजको लेकर हम पृथिवीपर संचार करेंगे। (यशसं गोपतिं गावः उपतिष्ठन्ति) यशस्वी गौके स्वामीके पास गौवें जाती हैं। (यशः गृहीत्वा आयती) यश लेकर आनेवाली गौओंके (गृहीत्वा) लेकर हम (पृथिवीं अनु संचरेम) पृथिवीपर घूमेंगे ॥ ३ ॥

(व्रजं कृणुध्वं) बाडा बनाओ (सः हि वः नृपाणः) वही तुम्हारे मानवोंका दूध पीनेका स्थान हो। (वर्म सीव्यध्वं) कवच सीकर तैयार करो वे (बहुला पृथूनि) बहुत हों और बडे भी हों। (अधृष्टाः पुरः आयसीः कृणुध्वं) शत्रुसे आक्रमण न होनेवाले लोहेके नगर कोटोंसे बनाओ। (वः चमसः मा सुस्रोत्) तुम्हारे पात्र न चूवें (तं दृंहत) उसको दृढ बनाओ ॥ ४ ॥

(यज्ञस्य चक्षुः मुखं प्रभृतिः च) यज्ञकी दृष्टि और मुख उत्तम भरण पोषण करनेवाले हैं। (वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि) वाणीसे कानोंसे और मनसे मैं आहुति यज्ञमें करता हूं। (विश्वकर्मणा इमं विततं यज्ञं) विश्वकर्माने फैलाए हुए इस यज्ञके पास (सुमनस्यमानाः देवाः यन्तु) उत्तम मनवाले देव आवें ॥ ५ ॥

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञिया येभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम् ।
इम यज्ञं सह पत्नीभिरेत्य यावन्तो देवास्तविषा मादयन्ताम् ॥ ६ ॥ (५०३)

(५९) यज्ञः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — अग्निः ।)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥
यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वादा पृणातु विद्वान्त्सोमस्य यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ २ ॥
आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥ ३ ॥ (५०६)

(६०) अङ्गानि ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — वाक् अङ्गानि च ।)

वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः ।
अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥
ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः । प्रतिष्ठा अरिष्टानि मे सर्वात्मानिभृष्टः ॥ २ ॥ (५०८)

अर्थ— (ये देवानां ऋत्विजः) जो देवोंके ऋत्विज हैं (ये च यज्ञियाः) जो पूजनीय हैं (येभ्यः भागधेयं हव्यं क्रियते) जिनके लिये स्वीकार करने योग्य हव्य दिया जाता है (इमं यज्ञं पत्नीभिः सह एत्य) इस यज्ञमें पत्नियोंके साथ आकर (यावन्तः देवाः) जितने देव हैं वे सब (तविषा मादयन्ताम्) हविसे तृप्त हों ॥ ६ ॥

(५९) यज्ञः ।

हे अग्ने ! हे देव ! (त्वं मर्त्येषु व्रतपा असि) तू मनुष्योंमें हमारे व्रतोंका रक्षक है । (यज्ञेषु त्वं ईड्यः) तू यज्ञोंमें स्तुतिके योग्य है ॥ १ ॥

हे (देवाः) हे देवो ! (यत् वयं विदुषां व व्रतानि प्रमिनाम) यदि हमने आप विद्वानोंके कोई व्रत तोडे होंगे (अविदुष्टरासः) न जानते हुए तोडे होंगे (तत् विश्वादा अग्निः) तो सबको खा जानेवाला अग्नि (पृणातु) पूर्ण करे (सोमस्य च विद्वान् ब्राह्मणान् आविवेश) सोमको जाननेवाला जो ब्राह्मण में आकर बैठता है वह सब दोषको दूर करे ॥ २ ॥

(देवानां पन्थां अपि आ अगन्म) हम देवोंके मार्गपर आ गये हैं । (यत् शक्नवाम) जिसे हम समर्थ हुए तो (तत् अनु प्रवोढुं) उसके आगे ले जानेके लिये यत्न करेंगे । (स विद्वान् अग्निः) वह ज्ञानी अग्नि (स यजात्) वह यज्ञ करे (स इत् होता) वह निःसंदेह हवन करता है (सः अध्वरान्) वह यज्ञोंको (सः ऋतून् कल्पयाति) वह ऋतुओंको सामर्थ्यवान बनाता है ॥ ३ ॥

(६० अङ्गानि ।

(मे आसन् वाक्) मेरे मुखमें वाणी रहे (नसोः प्राणः) मेरे नाकमें प्राण रहे (अक्ष्णोः चक्षुः) मेरे आंखमें दृष्टि रहे (कर्णयोः श्रोत्रं) मेरे कानोंमें श्रवण शक्ति रहे (केशाः अपलिताः) मेरे बाल श्वेत न हों (दन्ताः अशोणाः) मेरे दांत मलिन न रहें [illegible] (बाह्वोः बहु बलं) मेरे बाहुओंमें बहुत बल रहे (ऊर्वोः ओजः) मेरे जांघोंमें सामर्थ्य रहे (जंघयोः जवः) मेरी पिंडलियोंमें वेग रहे (पादयोः प्रतिष्ठा) मेरे पांवोंमें स्थिर रहनेकी शक्ति हो । (मे सर्वा अरिष्टानि) मेरे सब अवयव नीरोग हों (आत्मा अनिभृष्टः) मेरा आत्मा [illegible] न गिरा हुआ हो ॥ १-२ ॥

(६१) पूर्णायुः ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्मणस्पतिः ।)

तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय । स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥१॥ (७०९)

(६२) सर्वप्रियत्वम् ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्मणस्पतिः ।)

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु । प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥ १ ॥ (७१०)

(६३) आयुर्वर्धनम् ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — ब्रह्मणस्पतिः ।)

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान्यज्ञेन बोधय । आयुः प्राणं प्रजां पशून्कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥१॥ (७११)

(६४) दीर्घायुष्यम् ।

(ऋषिः — ब्रह्मा । देवता — अग्निः ।)

अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु ॥ १ ॥

इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि । तथा त्वमस्मान्वर्धय प्रजया च धनेन च ॥ २ ॥

यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव । आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥ ४ ॥ (७१५)

---

(६१) पूर्णायुः ।

अर्थ— (मे तनूः तन्वा) मेरा शरीर मोटा ताजा हो (दतः सहे) शत्रुओंका मैं पराभव करूंगा मुझे दबानेवालोंको मैं अपने सामर्थ्यसे दूर करता हूं । (सर्वं आयुः अशीय) मैं पूर्ण आयुको प्राप्त करूंगा (मे स्योनं सीद) मेरे सुखकारी स्थानपर बैठ (पुरुः पृणस्व) अपने आपको परिपूर्ण कर, (पवमानः स्वर्गे) पवित्र होता हुआ सुखपूर्ण स्थानमें रहूंगा ॥ १ ॥

(६२) सर्वप्रियत्वम् ।

(देवेषु मा प्रियं कृणु) देवोंमें मुझे प्रिय बना (राजसु मा प्रियं कृणु) राजाओंमें मुझे प्रिय कर (सर्वस्य पश्यतः प्रियं) सब देखनेवालोंके लिये मैं प्रिय बनूं (उत शूद्रे उत आर्ये) चाहे वह शूद्र हो चाहे आर्य हो ॥ १ ॥

(६३) आयुर्वर्धनम् ।

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् (उत्तिष्ठ) उठ, (यज्ञेन देवान् बोधय) यज्ञसे देवोंको समझा दो । आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति तथा यजमानको (वर्धय) बढाओ ॥ १ ॥

(६४) दीर्घायुष्यम् ।

हे अग्ने ! (बृहते जातवेदसे) बडे जातवेदके लिये (समिधं आहार्षं) समिधा लाया हूं (सः जातवेदाः) वह जातवेदा (मे श्रद्धां च मेधां च प्र यच्छतु) मुझे श्रद्धा और मेधा देवे ॥ १ ॥

जातवेदाः— जिससे वेद हुए। परमात्मा अग्नि।

हे जातवेद ! (इध्मेन समिधा त्वा वर्धयामि) लकडियोंकी समिधासे मैं तुझे बढाता हूं। (तथा त्वं अस्मान्) वैसा तू हमें (प्रजया च ध[illegible] [illegible] वर्धय) प्रजा और धनसे बढा ॥ २ ॥

हे अग्ने (यानि कानि [illegible]) जो कोई (दारूणि) लकडियां (ते आ दध्मसि) तेरे लिये हम लाकर डालते हैं (यविष्ठ्य ! तत् जुषस्व) हे [illegible] उनका तू सेवन कर। (तत् सर्वं मे शिवं अस्तु) वह सब मेरे लिये कल्याणकारी हो ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (एताः ते समिधः [illegible]) समिधायें हैं (त्वं इद्धः) तू प्रदीप्त होकर (समित् भव) तेजस्वी हो। (अस्मासु आयुः धेहि) हमें [illegible] (आचार्याय अमृतत्वं) आचार्यके लिये अमरपन दे ॥ ४ ॥

(६५) अयनम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — जातवेदा सूर्यश्च।)

हरिः सुपर्णो दिवमारुहोऽर्चिषा ये त्वा दिप्सन्ति दिवमुत्पतन्तम्।
अव तां जहि हरसा जातवेदोऽबिभ्यदुग्रोऽर्चिषा दिवमा रोह सूर्य ॥ १ ॥ (४१६)

(६६) असुरक्षयणम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — जातवेदाः सूर्यो वज्रश्च।)

अयोजाला असुरा मायिनोऽयस्मयैः पाशैरङ्किनो ये चरन्ति।
तांस्ते रन्धयामि हरसा जातवेदः सहस्रऋष्टिः सपत्नान्प्रमृणन्पाहि वज्रः ॥ १ ॥ (४१७)

(६७) दीर्घायुष्यम्।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — सूर्य।)

पश्येम शरदः शतम् ॥ १ ॥ जीवेम शरदः शतम् ॥ २ ॥
बुध्येम शरदः शतम् ॥ ३ ॥ रोहेम शरदः शतम् ॥ ४ ॥
पूषेम शरदः शतम् ॥ ५ ॥ भवेम शरदः शतम् ॥ ६ ॥
भूयेम शरदः शतम् ॥ ७ ॥ भूयसीः शरदः शतात् ॥ ८ ॥ (४५५)

(६८) वेदोक्त कर्म।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — कर्म।)

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं वि ष्यामि मायया। ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ १ ॥ (४४१)

---

(६५) अयनम्।

अर्थ— (हरिः सुपर्णः) दुःखोंका हरण करनेवाला उत्तम किरणवाला सूर्य (दिवं आरुह) द्युलोक पर आरूढ हुआ है। (दिवं उत्पतन्तं त्वा) द्युलोक पर चढते समय तुझे (ये दिप्सन्ति) जो हानि पहुंचाते हैं, हे (जातवेदः) अग्ने! (ताम् हरसा अव जहि) उनको अपने तेजसे मार दिए। हे सूर्य! (अबिभ्यत्) न डरता हुआ (उग्रः) उग्र होकर (अर्चिषा दिवं आ रोह) तेजसे द्युलोक पर चढ ॥ १ ॥

(६६) असुरक्षयणम्।

(अयोजालाः) लोहेका जाल ऊपर जो रखते हैं (मायिनः असुराः) जो कपटी असुर (अयस्मयैः पाशैः अङ्किनः च चरन्ति) लोहेके पाश हाथमें लेकर चलते हैं। हे (जातवेद) अग्ने! (तान् ते हरसा रन्धयामि) उनको मैं तेरे तेजसे विनष्ट करता हूं। तू (सहस्र-ऋष्टिः वज्रः) सहस्र धारवाला वज्र बन कर (सपत्नान् प्रमृणन् पाहि) शत्रुओंका नाश करता हुआ हमारी रक्षा कर ॥ १ ॥

(६७) दीर्घायुष्यम्।

हम सौ वर्ष देखें ॥ १ ॥ हम सौ वर्ष जीवें ॥ २ ॥ हम सौ वर्ष ज्ञान प्राप्त करते रहें ॥ ३ ॥ हम सौ वर्ष बढते रहें ॥ ४ ॥ हम सौ वर्ष पुष्ट होते रहें ॥ ५ ॥ हम सौ वर्ष अच्छी तरह रहें ॥ ६ ॥ हम सौ वर्ष उन्नत होते रहें ॥ ७ ॥ सौ वर्षोंसे भी अधिक जीवें ॥ ८ ॥

(६८) वेदोक्त कर्म।

(अव्यसः च) अव्यापक और (व्यचसः च) व्यापक (बिलं मायया विष्यामि) बिलको कुशलतासे मैं खोलता हूं। (ताभ्यां वेदं उद्धृत्य) इन दोनोंसे वेदको उद्धृत कर (अथ कर्माणि कृण्महे) कर्मोंको हम करते हैं ॥ १ ॥

यह अव्यापक और व्यापक दोनोंको मैं [illegible] खोलता हूं। उनमेंसे वेदको बाहर निकालता हूं। उस वेदके अनुसार हम कर्म करते हैं।

(६९) आपः।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — आपः।)

जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥१॥ उपजीवा स्थोप जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥२॥
संजीवा स्थ सं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥३॥ जीवला स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥४॥ (४७०)

(७०) पूर्णायु।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — इन्द्रसूर्यादयः।)

इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम्। सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ १ ॥ (४७१)

(७१) वेदमाता।

(ऋषिः — ब्रह्मा। देवता — गायत्री।)

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ १ ॥ (४७२)

(७२) परमात्मा।

(ऋषिः — भृग्वङ्गिरा ब्रह्मा। देवता — परमात्मा देवाश्च।)

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ॥ १ ॥ (४७३)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

॥ इत्येकोनविंशं काण्डं समाप्तम् ॥

---

(६९) आपः।

अर्थ— (जीवाः स्थ) तुम जीवनवाले हो (जीव्यासं सर्वं आयुः जीव्यासं) मैं जीऊं, मैं सब आयुतक जीऊं ॥ १ ॥ (उपजीवाः स्थ) तुम जीवनवाले हो (उप जीव्यासं) मैं जीऊं, सब आयुतक जीऊं ॥ २ ॥ (संजीवाः स्थ) तुम उत्तम जीवनवाले हो, मैं उत्तम जीवनवाला बनूं, सब आयुतक जीऊं ॥ ३ ॥ (जीवलाः स्थ) तुम जीवन युक्त हो मैं जीऊं सब आयुतक मैं जीऊं ॥ ४ ॥

(७०) पूर्णायु।

हे इन्द्र! (जीव) जीओ! हे सूर्य (जीव) जीओ (देवाः जीवाः) हे देवो! जीते रहो। (अहं जीव्यासं) मैं जीऊं। (सर्वं आयुः जीव्यासं) सब आयुतक जीवित रहूं ॥ १ ॥

(७१) वेदमाता।

(मया वरदा वेदमाता स्तुता) मैंने वेदमाताकी स्तुति की वह वेदमाता (द्विजानां प्र चोदयन्ती) द्विजोंको प्रेरणा देनेवाली और (पावमानी) पवित्र करनेवाली है आयु प्राण प्रजा पशु कीर्ति धन ज्ञान तेज (मह्यं दत्त्वा) मुझे देकर (ब्रह्मलोकं व्रजत) ब्रह्मलोकको जाओ ॥ १ ॥

(७२) परमात्मा।

(यस्मात् कोशात्) जिस कोशसे (वेदं उदभराम) वेदको हमने निकाला (तस्मिन् अन्तः) उसीमें (एनं अवदध्म) इस वेदको हम पुनः रखते हैं। (ब्रह्मणः वीर्येण इष्टं कृतं) ज्ञानके वीर्यसे जो कर्म करना था वह किया। (तेन तपसा) उस तपसे (देवाः इह अवत) देव यहां हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

॥ यहां सप्तम अनुवाक समाप्त ॥

॥ यहां १९ वां काण्ड समाप्त हुआ ॥

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य

विंशं काण्डम्।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

[illegible]

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर बी. ए.,
स्वाध्याय मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय मंडल (पारडी)
पारडी [जि. सूरत]

★

शक १८८२ संवत् २ १७ ई. स. १९६

★

प्रथम बार

★

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवलेकर बी. ए.,
भारत मुद्रणालय स्वाध्याय-मंडल
पोस्ट- स्वाध्याय-मंडल (पारडी)
पारडी [जि. सूरत]

अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

विंशं काण्डम् ।

अथर्ववेदमें इन्द्र देवताका वर्णन

अथर्ववेदमें इन्द्र देवताके मंत्र इस तरह हैं—

प्रथम काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
२	अथर्वा	१	
७	चातनः	१	
९	अथर्वा	१	
१६	चातनः	१	
१९	ब्रह्मा	१	
२	अथर्वा	१	
२१	अथर्वा	४	
२६	ब्रह्मा	१	
३५	अथर्वा	१	१२

द्वितीय काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
५	भृगुराथर्वणः	७	
१२	भरद्वाजः	१	
२७	कपिञ्जलः	१	
२९	अथर्वा	१	
३६	पतिवेदनः	१	११

तृतीय काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
१	अथर्वा	४	
२	अथर्वा	२	
३	अथर्वा	४	
४	अथर्वा	१	
८	अथर्वा	१	
१	अथर्वा	१	
११	ब्रह्मा भृग्वङ्गिराश्च	३	
१४	ब्रह्मा भृग्वङ्गिराश्च	१	
१५	अथर्वा	३	
१६	अथर्वा	२	
१९	वसिष्ठः	३	
१७	अथर्वा	१	
३१	ब्रह्मा	२	२८

चतुर्थ काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
४	अथर्वा	१	
११	भृग्वङ्गिराः	१२	
२२	वसिष्ठः अथर्वा वा	७	
२४	मृगारः	७	२७

पञ्चम काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
३	बृहद्दिवोऽथर्वा	२	
८	अथर्वा	९	
२३	कण्वः	१३	
२४	अथर्वा	१	
२६	ब्रह्मा	२	२७

षष्ठ काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्रसंख्या	
५	अथर्वा	१	
३३	जाटिकायनः	३	
४	अथर्वा	२	
५८	अथर्वा	२	

सूक्त	ऋषि	मंत्र	योग
६५	अथर्वा	१	
६६	अथर्वा	१	
६७	अथर्वा	१	
७५	कबन्धः	१	
८२	भग	१	
९३	अथर्वा	१	
९८	अथर्वा	१	
९९	अथर्वा	१	
१०३	उच्छोचनः	१	
१०४	प्रशोचनः	१	३६

सप्तम काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्र	योग
१२	शौनकः	१	
२४	ब्रह्मा	१	
३१	भृग्वङ्गिराः	१	
४४	प्रस्कण्वः	१	
५०	अंगिराः	१	
५१	अंगिराः	१	
५४	भृगु	१	
५५	भृगुः	१	
५८	कौरुपथिः	२	
७२	अथर्वा	१	
७६	अथर्वा	१	
८४	भृगुः	२	
८६	अथर्वा	१	
९१	अथर्वा	१	
९२	अथर्वा	१	
९३	भृग्वङ्गिराः	१	
९७	अथर्वा	८	
९८	अथर्वा	१	
११	भृगुः	२	
११७	अथर्वाङ्गिराः	१	३१

अष्टम काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्र	योग
४	चातनः	२५	
८	भृग्वङ्गिराः	२४	४९

नवम काण्डके आहारमें ग्रन्थक इनके मंत्र नहीं हैं।

एकोनविंश काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्र	योग
५	अथर्वाङ्गिरा	१	
१	वसिष्ठः	१	
१३	अप्रतिरथः	११	
१५	अथर्वा	४	
७	ब्रह्मा	१	१०

विंश काण्ड

सूक्त	ऋषि	मंत्र
१	विश्वामित्रः	१
२	गृत्समदः	१
३–५	इरिम्बिठिः	१२
६	विश्वामित्रः	९
७	सुकक्षः ३ विश्वामित्रः १	४
८	भरद्वाजः १ कुत्सः १ विश्वामित्रः १	३
९	नोधाः २, मेध्यातिथिः २	४
१०	मेध्यातिथिः	२
११	विश्वामित्रः	११
१२	वसिष्ठः ६ अत्रिः १	७
१३	वामदेवः १ गोतमः १ कुत्सः १ विश्वामित्रः १	४
१४	सौभरिः	४
१५	गोतमः	६
१७	कृष्णः ११ वसिष्ठः १	१२
१८	मेधातिथिः प्रियमेधश्च ३ वसिष्ठः ३	६
१९	विश्वामित्रः	७
२०	विश्वामित्रः ४ गृत्समदः ३	७
२१	सव्यः	११
२२	त्रिशोकः ३ प्रियमेधः ३	६
२३–२४	विश्वामित्रः	१८
२५	गोतमः ६ अष्टकः १	७
२६	शुनःशेप ३ मधुच्छन्दाः ३	६
२७–२९	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	१५
३०–३२	बरुः सर्वहरिर्वा	१२
३३	अष्टकः	३
३४	गृत्समदः	१८
३५	नोधाः (भरद्वाजः)	१६
३६	भरद्वाजः	११
३७	वसिष्ठः	११

३	इरिम्बिठि १, मधुच्छन्दाः १	६
३९	मधुच्छन्दा १	
	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ४	५
४	मधुच्छन्दाः	३
४१	गोतमः	३
४२	कुरुसुतिः	३
४३	त्रिशोकः	३
४४	इरिम्बिठिः	३
४५	शुन:शेपो देवरातः	३
४६	इरिम्बिठिः	३
४७	सुकक्षः ३ इरिम्बिठिः १	
	मधुच्छन्दाः ६	११
५	मेध्यातिथिः	२
५१	प्रस्कण्वः २, पुष्टिगुः २	४
५२-५३	मेध्यातिथिः	६
५४-५५	रेभः	६
५६	गोतमः	६
५७	मधुच्छन्दाः ३ विश्वामित्र ४	
	गृत्समदः ३ मेध्यातिथि ६	१६
५८	नृमेधः २ जमदग्निः २	४
५९	मेध्यातिथिः २ कोशिकः २	४
६	सुकक्षः सुतकक्षो वा ३	
	मधुच्छन्दा ३	६
६१	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	६
६२	गोतमरि ४ नृमेधः ३	
	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ ३	१
६३	भुवनः आप्त्यः वा ३ भरद्वाजः	
	गोतमः ३ पर्वतः ३	९
६४	नृमेध ३ विश्वमनाः ३	६
६५-६६	विश्वमनाः	६
६७	वत्सप्रीः ३ गृत्समदः ४	७
६८-७१	मधुच्छन्दा	६
७२	वत्सप्रेः	३
७३	वसिष्ठ ३ वसुक्र ३	६
७४	शुनःशेप	७
७५	वत्सप्रीः	३

७६	वसुक्रः	८
७७	वामदेवः	८
७८	शंयुः	३
७९	वसिष्ठः साक्षिर्वा	२
८	शंयुः	२
८१	पुरुहन्मा	२
८२	वसिष्ठः	१
८३	शंयुः	१
८४	मधुच्छन्दा	३
८५	प्रगाथः २ मेध्यातिथिः २	४
८६	विश्वामित्रः	१
८७	वसिष्ठः	७
८९	कृष्णः	११
९२	प्रियमेधः १२, पुरुहन्मा ९	२१
९३	प्रगाथ ३ देवजामयः ५	८
९४	कृष्णः	११
९५	गृत्समदः १ सुताः वैश्रवनः ३	४
९६	पूरणः	५
९७	कलि	३
९८	शंयुः	२
९९	मेध्यातिथिः	२
१	नृमेधः	३
१ १	मेध्यातिथिः	३
१ ४	मेध्यातिथिः २ नृमेधः २	४
१ ५	नृमेधः ३ पुरुहन्मा २	५
१ ६	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	३
१ ७	वत्सः ३ भरद्वाजः १ सुकक्षः १	१५
१ ८	नृमेधः	३
१ ९	गोतमः	३
११	श्रुतकक्षः सुकक्षो वा	३
१११	पवनः	३
११२	सुकक्षः	३
११३	भर्गः	२
११४	वामन	२
११	वत्सः	१
११६	मेध्यातिथिः	२
११७	वसिष्ठः	३

११८	भर्गः २ मेध्यातिथिः २	४
११९	आयुः १ श्रुष्टिगुः १	२
१२०	देवातिथिः	२
१२१	वसिष्ठः	२
१२२	शुनःशेपः	३
१२४	वामदेवः ३ भुवनः ३	६
१२५	सुकीर्तिः	५
१२६	वृषाकपिरिन्द्राणी च	२३
१२७	पुनः १ विश्वामित्रो रथो ५	
	पुरुहन्मा वा शुनकः १	६
१२८	कण्वः	३
		९७७

काण्डोंमें इन्द्रके वर्णनके ये मंत्र हैं—

प्रथम काण्डमें	१२ मंत्र
द्वितीय काण्डमें	११ मंत्र
तृतीय काण्डमें	२८ मंत्र
चतुर्थ काण्डमें	२७ मंत्र
पंचम काण्डमें	२४ मंत्र
षष्ठ काण्डमें	३६ मंत्र
सप्तम काण्डमें	४१ मंत्र
अष्टम काण्डमें	४९ मंत्र
	२२८

इनके मंत्र आठ काण्डोंमें हैं। नवम काण्डसे अठारहवें काण्डतक इन्द्रके मंत्र नहीं हैं।

उन्नीसवें	काण्डमें	२	मंत्र हैं।
बीसवें	काण्डमें	९७७	मंत्र हैं।
अष्टम	काण्डतक	२२८	मंत्र हैं।
		१२०७	

अथर्ववेदमें कुल मंत्रसंख्या ५९७७ है इनमें १२०७ मंत्रोंमें इन्द्रका वर्णन है। कुल मंत्रोंका यह पांचवां भाग है। इन्द्र शत्रुके साथ युद्ध करके उनका पराभव करनेवाला देवता है। इस देवताके मंत्रोंमें युद्धके वर्णन ही हैं। इन्द्रके साथ युद्ध करनेवाले वैदिक मरुत् देवता हैं। इस देवताके मंत्र भी इस इन्द्रका विचार करनेके समय विचारमें लेने चाहिए, क्योंकि इन्द्रके साथ युद्धकर्ममें रहनेवाले मरुत् ही हैं। ये वीर युद्ध करनेवाले वैदिक वीर हैं। उसी प्रकार अग्निका और आदित्यदेवताका करनेका कार्य अग्निनी देवताका है अतः अग्निकी देवताके मंत्रोंका भी विचार इस इन्द्रके मंत्रोंके विचारके साथ करना चाहिये। इसी तरह यह देव भी युद्ध देव ही है। त्वष्टा शस्त्र करके इन्द्रको देता है। इस तरह यह त्वष्टा आदि देवताओंका भी विचार युद्धकर्ममें कार्य करनेवाले इन्द्र देवताके मंत्रोंके साथ होना चाहिये। इस तरह विचार करनेपर वेदका युद्धशास्त्रका विचार सम्यक्‌तया हो सकता है।

हम यहां केवल इन्द्रके मंत्रोंका ही विचार करना चाहते हैं और यह विचारसे जानना चाहते हैं कि इन्द्र देवता देवोंके युद्ध मंत्री क्या हैं।

अब हम देखते हैं कि इस इन्द्रका वर्णन किनने ऋषियोंने किया है—

ऋषिका नाम		मंत्रसंख्या
१	अथर्वा	१८
२	मधुच्छन्दाः	१५
३	विश्वमना	६२
४	वसिष्ठः	५३
५	गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ	५२
६	विश्वामित्रः	३५
७	सुकक्षांगिराः	१८
८	गृत्समदः	१५
९	गोतमः	१४
१०	मेध्यातिथिः	११
११	कृष्णः	३१
१२	वामदेवः	२७
१३	वृषाकपिरिन्द्राणी च	२३
१४	इरिम्बिठिः	२१
१५	पुरुमेधः	१९
१६	नोधाः	१८
१७	प्रियमेधः	१८
१८	भर्गः आत्रेयः	१६
१९	शुनःशेपः	१६
	पुरुहन्मा	१३
२०	कण्वः	१३
२१	वत्सः सर्वहरिर्वा	११
२२	भरद्वाजः	११
२३	कुत्सः	११
२४	ब्रह्मा	११
२५	बृहद्दिवः	१०

२७	वामदेवः	१२
२८	अप्रतिरथः	११
२९	अंगिराः	११
३०	वसुक्रः	११
३१	कण्वः	११
३२	सोभरि	१०
३३	वत्सः	९
३४	शंयुः	९
३५	पुरुमेधः	९
३६	भृगुः	८
३७	प्रगाथः	८
३८	कुमारः	७
३९	त्रिशोक	६
४०	पर्वतः	६
४१	भुवन	६
४२	श्रुतकक्षः	६
४३	रेभः	६
४४	पूरणः	५
४५	सुकीर्तिः	५
४६	देवजामयः	५
४७	तिरश्चीरांगिरसः	५
४८	मर्त्यः	४
४९	कुत्स	४
५०	आरुकः	४
५१	मेधातिथिः	३
५२	पुत्राः पैजवनः	३
५३	भगः	३
५४	प्रस्कण्वः	३
५५	प्रयोगः	३
५६	गाथिकायनः	३
५७	कुरुसुतिः	३
५८	कवष	३
५९	कलिः	३
६०	पुराण	३
६१	ब्रह्ममेधनः	३
६२	वैखानसः	२
६३	अमहीयु	२
६४	देवातिथिः	२
६५	द्युतानः	२
६६	श्रुतिगुः	२
६७	ध्रुवः	२
६८	सौभिकः	२
६९	पतिवेदनः	२
७०	आयुः	२
७१	अत्रिः	२
७२	कपिंजलः	२

इतने ऋषियोंके मंत्र इन्द्रका वर्णन कर रहे हैं। अब यह वर्णन कैसा है यह देखिये—

इन्द्रकी मूछियाँ

इन्द्र वीर है इसलिये उसकी मूछियां अच्छी होंगी यह स्वाभाविक ही है देखिये—

हरि-श्मश्रुः हरि-केशः। ऋ २ ।३१।३ (१८९)

पीली मूछियोंवाला और पीले केशोंवाला इन्द्र है। और देखिये—

इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते। ऋ १ ।७२।५ (४८५)

इन्द्र अपने पीले रंगके मूछोंके बालोंपर पानी लगाता है। इस वर्णनसे पता लगता है कि इन्द्रके बाल मूछोंके बालोंके तथा सिरके (हरि हरित्) पीले रंगके थे।

इन्द्रका गला

इन्द्रका गला तुवि-ग्रीवः (१५) बडा था। मुखकी जितनी चौडाई होती है उससे गला बडा होना चाहिये। कमसे कम वीरका गला तो अवश्य मजबूत होना चाहिये। वैसा मजबूत गला इन्द्रका था। देखिये—

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुः अन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते॥ अथ २ ।५।२ (१५)

इन्द्र (तुविः ग्रीवः) बडी गर्दनवाला (वपा-उदरः) बडे पेटवाला (सुबाहुः) उत्तम बाहुवाला (अन्धसः मदे) सोमरसके उत्साहमें (वृत्राणि जिघ्नते) शत्रुओंको मारता है।

इन्द्रका पेट (वपा-उदरः) पुष्ट था, पेटपर चर्बी थी। ऐसा इस मंत्रसे दीखता है। यह उसकी अवस्था उचित कथन है।

इन्द्रकी दो शिराएं थीं

इन्द्रकी दो शिराएं थीं ऐसा कहा है। देखिये—

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी।
ऋ १ ।६ ।५ (१७८)

शिप्र (द्वि-बर्हसः) दो शिखावाले इन्द्रका (बृहत् सहः) बडा बल (रोदसी दाधार) आकाश तथा पृथिवीका धारण करता है।

बर्हस् शब्दका अर्थ मोरके सिरपरका तुर्रा तथा पक्षीके पर है। यहांके अर्थमें शिखा अर्थ है। इन्द्रकी दो शिखाएं थी अथवा सिरमें दो तुर्रे थे ऐसा यहांके मंत्रके कथनसे स्पष्ट दीखता है।

इन्द्रका सोम पीना

इन्द्र सोम पीता था और अपना पेट भर देता था। इसलिये इसका वर्णन ऐसा किया है—

यः सोमपातमः कुक्षिः समुद्र इव पिन्वते।

अ. १ ।७११

जो पेट सोम अधिक पीनेसे समुद्रके समान फूलता है।

इन्द्र (सोम-पा-तमः) अत्यधिक सोम पीनेवाला है इसलिये सोम पीनेपर उसका पेट समुद्र जैसा फूलता है। सोमपा सोमपा-तरः सोमपातमः ये पद उसके अत्यधिक सोम पीनेका वर्णन कर रहे हैं।

इन्द्रका साफा

इन्द्रके साफेका वर्णन इस तरह वेद कर रहा है—

हरिशिप्रं त्वा रथे आ वहन्तु। अ. २ ।१२।२(११२)

सुहद् आहिं हरिशिप्रो य आयसः। अ. २ ।३ ।४ (१८५)

(हरिशिप्रं) सुनहरी साफावाले इन्द्रको रथमें बिठला कर ले जावें। (हरि शिप्रः) सुनहरी साफावाले इन्द्रने अहिको मारा। इस तरह यह इन्द्रके साफेका वर्णन है। यह साफा सुनहरी था। (आयसः) लोहेके शिरस्त्राणके ऊपर सुनहरी साफा वह बांधता था।

सु-शिप्री (मं ११)— उत्तम साफा बांधनेवाला शिप्र का दूसरा अर्थ हनु है। सुशिप्री का अर्थ उत्तम हनुवाला भी होता है। पर आयसः सुशिप्रः (१८५) का अर्थ लोहेके शिरस्त्राणपर उत्तम साफा बांधनेवाला ऐसा होता है। अर्थात् वीर इन्द्र मस्तकपर लोहेका शिरस्त्राण रखता है और उसपर जरीका साफा बांधता है।

इन्द्रका पोषाक

इन्द्रका सब पोषाक जरतारीका होता है इसलिये इन्द्रको (इन्द्रः हिरण्ययः) (२५८)— सुवर्णमय इन्द्र है ऐसा कहते हैं। इन्द्रके तरफ देखनेसे वह सुवर्णका बना है ऐसा दीखता है।

पांवसे लेकर सिरतक सब पोषाक उत्तम चमकनेवाले जरतारीके कसीदेका होता है। जैसा किसी राजा महाराजाका होता है। हरिश्रियः (१७४)— सुवर्णकी शोभा सब शरीर पर होती है। सब शरीरका पोषाक उत्तम जरतारीका होनेसे उसकी शोभा वैसी दीखती है।

इन्द्र शरीरसे बडा है

तन्वा वावृधानः (४१)— शरीरसे बडा इन्द्र होता है। इन्द्रका प्रत्येक शरीरका अवयव हृष्टपुष्ट तथा बलवान् होता है। किसी अवयवमें किसी प्रकारकी दुर्बलता नहीं होती। वीरका शरीर ऐसा ही बलवान् होना चाहिये।

इन्द्र बैल जैसा बलवान् है

इन्द्र अत्यंत बलवान् है, बैल जैसा वह शक्तिशाली है इस कारण इस इन्द्रको वृषभः (१)— बैल जैसा बलवान् कहा जाता है बलिष्ठोंमें बलिष्ठ इन्द्र है।

शृंगवृषः (२)— सींगवाले बैलके समान इन्द्र बलवान् है। सींगवाला बैल जैसा शत्रुपर एकदम चढाई करता है और सींगोंसे शत्रुको मारता है, वैसा इन्द्र अपने वज्रसे शत्रुको मारता है।

वृषभः (५९)— बलवान्, शक्तिमान् इन्द्र है।

शुष्मी (५८)— सामर्थ्यवान्,

तविषः (७४)— शक्तिमान् बडा सामर्थ्यवान् धैर्यवान् व्यवहारमें कुशल शूर बलवान् वीर,

ते वृष्ण्यं शवः (४)— हे इन्द्र! तेरा बल सामर्थ्ययुक्त है। तेरा सामर्थ्य अप्रतिम है।

वाजः (१८)— सामर्थ्यवान् इन्द्र है।

शविष्ठीभिः आवृतः (२८)— इन्द्र अनेक शक्तियोंसे युक्त है। अनेक शत्रुओंकी योजनाएं नष्ट करता है।

इस तरह इन्द्रके अतुल सामर्थ्यका वर्णन वेदमंत्रोंमें किया है, अब उसके सौंदर्यका वर्णन देखिये—

इन्द्रका सौंदर्य

इन्द्र जैसा सामर्थ्यवान् है वैसा सुन्दर भी है। जो हृष्टपुष्ट और बलवान् होता है वह शरीरसे सुन्दर ही दीखता है। देखिये—

दस्म (२८)— दर्शनीय सुन्दर

पुरुः (२८)— तेजस्वी कान्तिमान्।

इन्द्र तेजस्वी है इसलिये योग्य सुन्दर भी है। इस ही उसका शरीर सप्रमाण है सुडौल है तेजस्वी है इस कारण इन्द्र

प्रकारका आरोग्यका प्रभाव उसपर रहता है अतः वह देखनेमें सुन्दर दीखता है। जैसे तेजस्वी पुरुष प्रभावशाली होते ही हैं वैसा इन्द्र वीर भी प्रभावी है।

इन्द्र विद्वान् है

इन्द्रके वर्णनमें उसके विद्वान होनेका भी वर्णन है। वह जैसा बलवान् शूर है वैसा वह विद्वान् भी है देखिये—

विश्वस्य विद्वान् (११८)— इन्द्र सब विद्याओंका ज्ञाता है जिसमें जो जानने योग्य है उसको वह यथायोग्य रीतिसे जानता है। जिसमें जानने योग्य कोई विद्या उसको नहीं आती ऐसा नहीं है। सब विद्याओंको उत्तम प्रकारसे वह जानता है।

बृहते विप्राय धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे साम गायत। ऋ ८।९८।१ (१८४)

(बृहते) बड़े (विप्राय) ज्ञानी ब्राह्मण (धर्मकृते) धर्मके अनुकूल कार्य करनेवाले (विपश्चिते) विद्वान् (पनस्यवे) स्तुत्य इन्द्रके लिये सामगायन गाओ। उसका स्तोत्र गाओ।

इस मंत्रमें दिये सब विशेषण विद्वान् इन्द्रके शुभगुणोंका वर्णन करते हैं। ये सब विशेषण उसकी विशेष विद्वत्ता दर्शाते हैं।

जरारहित तरुण इन्द्र

इन्द्र इतना सामर्थ्यवान् बलवान् प्रभावी विद्वान् है वैसा वह जरारहित तरुण भी है। उसकी आयु कितनी भी हुई होगी तो भी वह अ-जुर्यः (२४)- जरारहित है अतएव वह युवा (११)- तरुण है। आयु कितनी भी हुई हो जिसके विचार तरुण हैं वह वृद्ध होनेपर तरुण ही है। ऐसा तरुण विचारोंसे युक्त सबको रहना चाहिये। तरुण विचार जिसके हैं वह शरीरसे भी क्षीण नहीं होता। अतः सदा विचारोंका तारुण्य अपने मनमें सबको रखना योग्य है।

तेजस्वी इन्द्र

इन्द्रके वर्णनमें द्युमत्तमः (१२१)— अत्यंत तेजस्वी इन्द्र है। त्वेष-सं-दृक् (२४)— कान्तिमान् देदीप्यमान् दीखनेवाला इन्द्र है। ऐसे पद उसका तेजस्वी होना बताते हैं। इन्द्र कदापि निस्तेज निरुत्साही बलहीन सामर्थ्यहीन नहीं होता वह सदा सतेज उत्साही बलवान् सामर्थ्यवान् रहता है। ऐसा ही वीरोंको होना चाहिये। सब पुरुष ऐसे ही होने चाहिये।

आनन्दी स्वभाववाला इन्द्र

इन्द्र उत्साही तथा बलवान् रहता है अतः उसमें आनन्द स्वभावसे ही रहता है। देखिये- मन्दसानः (४११- आनन्दी स्वभाववाला इन्द्र है। मदाय भाषाणु (१ २) आनंदका अनुभव करनेके लिये इन्द्र यहां आवे। ये वर्णन उसके आनंदी स्वभावके दर्शक हैं। मद पदका अर्थ प्रेम हर्षित्व मन अपने सामर्थ्यका अभिमान आनंद अति संतोष वीर्य शौर्य और तेज जिससे उत्साह बढता है।

इन्द्रके बाहू

इन्द्रके वर्णनमें उसके बाहुओंका वर्णन इस तरह हुआ है-

सुबाहुः (१५)— इन्द्रके बाहु उत्तम हैं अर्थात् सुडौल और बलिष्ठ हैं।

वज्रबाहुः (५१)— जैसा वज्र सामर्थ्यवान् होता है उस प्रकार इन्द्रके बाहु सामर्थ्यवान् हैं।

बाहोजाः (बाहु-ओजाः) (२१)— बाहुओंके विशेष बलसे इन्द्र बलवान् हुआ है।

इन्द्रके बाहु ऐसे बलवान् हैं इस कारण वह युद्धमें शत्रुओंका पूर्ण पराभव कर सकता है। वीरोंको व्यायाम आदिसे अपने बाहु ऐसे बलवान् करने चाहिये।

मुष्टियुद्ध करनेवाला इन्द्र

मुष्टिहत्यया वृत्रा निकधयासिष्ट (४५९)— मुष्टियुद्धसे शत्रुओंको दूर रखता है मुष्टियुद्ध करके शत्रुओंका पराभव करता है। ऐसे वर्णनोंसे पता चलता है कि इन्द्र मुष्टियुद्ध करनेमें भी प्रवीण था और मुष्टियुद्ध करके इत्यादि शत्रुओंको पराभूत करता था।

बहुत अन्नसे युक्त इन्द्र

इन्द्र सामर्थ्यवान् है उसका शरीरका प्रत्येक अवयव हृष्टपुष्ट है ऐसे वर्णन देखनेसे पता चलता है कि वह पौष्टिक अन्न भी पर्याप्त प्रमाणमें अपने पास रखता होगा और उसका उपभोग भी यथेच्छ करता होगा। नहीं तो शरीर हृष्टपुष्ट होनेकी संभावना ही नहीं होगी। इस विषयके प्रमाण अब देखिये—

पुरु-भोजाः (२८)— बहुत भोजन करनेवाला बहुत अन्नसामग्री अपने पास रखनेवाला पौष्टिक अन्न पर्याप्त प्रमाणमें अपने पास रखनेवाला।

पुरु-क्षुः (११४)— बहुत अन्नसे युक्त अनेक प्रकारके पौष्टिक अन्न अपने पास रखनेवाला।

सु मनाः (१८)— सब पर्याप्त प्रमाणमें अपने साथ रखनेवाला अनेक प्रकारके पुष्टिकारक, बलवर्धक तथा उत्साह वर्धन खाद्य पेय अपने पास इन्द्र पर्याप्त प्रमाणमें रखता था। इस कारण वह सदा सामर्थ्यवान् रहता था।

इन्द्र महान् है

इस सब वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इन्द्र एक अत्यंत महान् वीर पुरुष है। देखिये इस इन्द्रकी महत्ता बतानेवाले वर्णन—

बृहत् (११)— इन्द्रका बल बडा सविस्तर है महान् है

मंहिष्ठः (११)— इन्द्र विशाल है।

इन्द्रः महान् परः च (४१२)— इन्द्र बडा और श्रेष्ठ है इसमें इन्द्रकी जैसी महत्ता वर्णन हुई है वैसी तरह उसकी श्रेष्ठता उच्चता तथा महत्ता भी दिखाई देती है।

द्यौः न प्रथिमा शवः (४१२)— द्युलोकके समान उसका बल फैला है। द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है वैसा उसका सामर्थ्य भी अत्यंत बडा विस्तृत है। उसके सामर्थ्यकी बराबरी दूसरा कोई कर नहीं सकता ऐसा वह अप्रतिम सामर्थ्यवान है।

वज्रिणे महित्वं अस्तु (४१२)— वज्रधारी इन्द्रके लिये महत्त्व है। वज्रके द्वारा वह सब शत्रुओंको दूर करता है इसलिये उसका महत्त्व बढा है।

ओजसा महान् अभिष्टिः (४१८)— इन्द्र सामर्थ्यसे बडा है और सब शत्रुओंको दबा देनेवाला यशस्वी वीर है। उसके बराबर दूसरा कोई सामर्थ्यवाला नहीं है जो इस इन्द्रकी बराबरी कर सके।

नृभिः वृत्रहा इन्द्रः शवसे मदाय वावृधे (११८)— वीरोंके साथ रहकर वृत्रोंको मारनेवाला इन्द्र सामर्थ्य और उत्साहके लिये प्रशंसित होता है। इन्द्र वृत्रोंको मारता है इस प्रजाको सुख देता है इसलिये उसका बल बढनेसे प्रजा सुखी होती है, सामर्थ्य और उत्साह इन्द्रमें होते हैं। इन कारणोंके लिये सब वीर पुरुष इन्द्रका वर्णन करते हैं और उसके बडेपनका गुणगान करते हैं।

न गिरनेवाला इन्द्र

इन्द्र न गिरनेवाला है अपने ध्येयसे वह कभी पतित नहीं होता है इसलिये इसका महत्त्व चारों ओर फैला है देखिये—

न-पात् (२)— न गिरनेवाला या न गिरानेवाला इन्द्र है।

प्र-न-पात् (३)— विशेष रीतिसे न गिरनेवाला या न गिरानेवाला इन्द्र है। वह अपने कर्तव्यसे कभी विमुख नहीं होता।

उद्-नाथ (५)— विशेष प्रगति करनेवाला इन्द्र है।

ये सब उसके कर्तव्यनिष्ठाके वर्णन हैं। वीरको ऐसा ही होना चाहिये।

कल्याण करनेवाला मित्र इन्द्र है

' शिवः सखा इन्द्रः (१२)— इन्द्र सबका कल्याण करनेवाला मित्र है। इन्द्र सदा सुजनोंका हित करता है सुख करता है, कल्याण करता है। सबका वह सखा है, मित्र है, सुहृद् है। कभी किसीका बुरा करनेका विचार भी उसके मनमें नहीं आता है। शत्रुका बुरा करता है। पर वह अपरिहार्य है। शत्रुका नाश किये विना जनताका हित हो नहीं सकता इस कारण वह सब शत्रुओंका नाश करता है वह आवश्यक ही है।

इन्द्रका मन

इन्द्रका मन मनुष्योंकी सहायता करनेके कार्यमें तत्पर रहता है इसलिये वह नृ-मनाः (१४६)— मनुष्योंकी उन्नति करनेमें जिसका मन सदा लगा है मानवोंके हितके कार्य करनेमें जो अपना मन प्रेरित करता है। तथा—

एभिः द्युभिः सुमनाः (१११)— इन तेजस्वी तत्त्वोंसे तेजस्वी बना मन है जिसका ऐसा तेजस्वी मनवाला इन्द्र है।

मनस्वान् प्रथमः देवः (११८)— शुद्ध तथा उत्तम मनसे युक्त वह पहिला देव है।

ऐसे इन्द्रके मनके वर्णन वेदमंत्रोंमें अन्दर दीखते हैं।

स्वर्षा (४६)— अपने प्रभावसे प्रकाशित इन्द्र है। इस कारण—

शुभ्नः (५१)— उत्तम गुणोंसे वह युक्त है और

ध्यायि पूज्यमा (१९)— बुद्धिमान् लोग भी जिसका पूजन करते हैं ऐसा इन्द्र उत्तम मनसे तथा प्रभावी शक्तियोंसे युक्त है।

आर्योंका रक्षण

इन्द्र आर्योंका रक्षण करता है इस कारण उसको दासोंका नाश करना आवश्यक होता है। देखिये—

आर्य वर्ण आवत् (९१)— इन्द्र आर्योंकी विशेष सुरक्षा करता है। आर्योंका रक्षण करना और अनार्योंका नाश करना ये इन्द्रके अत्यंत आवश्यक कर्तव्य ही हैं। आर्य

(१ १)- श्रेष्ठ पुरुष होता है। सदाचारी श्रेष्ठ पुरुषोंका संरक्षण करना और दुराचारी नीच पुरुषोंका सुधार हो सकता है तो उनका सुधार करना नहीं तो उन दुराचारियोंको दूर करना और पुरुषोंका राज्यमें कर्तव्य ही होता है।

दासानि आर्याणि करः’ (१४१)— इन्द्र दासोंको आर्य करता है। दास उनका नाम है जो दुराचारी दुष्ट होते हैं। उनको इन्द्र सदाचारका पालन करनेके लिये बाधित करता है और उनकी उन्नति करके उनको आर्य बनाता है। अनार्योंको सदा कष्ट करके उनका नाश करता है ऐसा नहीं परंतु उनको सुधरनेका अवसर देता है। वे सुधरे तो वे आर्योंमें शामील होते हैं उनको आर्योंके अधिकार सबके सब प्राप्त होते हैं। न सुधरे तो उनको दूर किया जाता है। अनार्योंको आर्य बनानेका यह विधि इन्द्रका था।

यः दासं वर्णं अधरं गुहा कः (२ १)— यह इन्द्र दास वर्णको—अर्थात् दास लोगोंको—नीच स्थानमें—गुहामें—रखता है। आर्योंके स्थानसे पृथक् स्थानमें दास रहें। ऊंचे स्थानपर आर्य रहें और नीचेके स्थानपर दास रहें ऐसा इन्द्रकी व्यवस्थाका आशय है। ग्राममें जो ऊंचा स्थान हो वहां आर्य रहें और जो नीचका स्थान हो वहां दास अनार्य अथवा हीनाचार करनेवाले लोग रहें ऐसी व्यवस्था इन्द्र करता था।

आर्यं ज्योतिः ममके विदन् (९)— आत्मशक्तिसे परिपूर्ण आर्य तेज मनुष्योंको प्राप्त हो। इस तरह आर्यत्वके प्रसारके लिये इन्द्र प्रयत्न करता था।

पुरुषार्थके कर्म करनेवाला इन्द्र

इन्द्र बलवान् है, विद्वान् है आर्योंकी रक्षा करता है आदि इस इन्द्रके अनेक गुण वर्णन देखे। ये सब उत्तम पुरुषार्थके गुण हैं। पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला इन्द्र है इस विषयमें इसके वर्णनोंमें कैसा भाव प्रकट होता है देखिये—

शतक्रतुः (१ ६)— सैकडों प्रकारके पुरुषार्थके प्रयत्न करनेवाला इन्द्र है। अनेक कर्म यह जनताके हित करनेके लिये करता रहता है।

पुरुकृत् (१११)— बहुत कर्म करनेवाला इन्द्र है।

तुवि कूर्मिः (२१६)— अनंत कर्मोंका करनेवाला इन्द्र है।

अभिमातिषाहः (१ ७)— शत्रुका पराभव करनेके लिये जो जो करना योग्य तथा आवश्यक है वह सब इन्द्र करता है।

चित्रं युगे युगे नव्यम् (४१२)- इन्द्रका कर्म प्रत्येक युगमें नया नया होता है। युगके अनुसार परिस्थिति बदलनेसे जो कर्म जैसे करने चाहिये वे कर्म वैसे करता है, इस कारण इन्द्रके कर्मोंसे जनताका हित होता है।

पौंस्यैः कृत्वा नर्यः’ (५ १)- पौरुषके अनेक कर्म करनेके कारण इन्द्र (नर्यः) जनताका हित करनेवाला हुआ है।

कत् नु अस्य इन्द्रस्य पौंस्यं अकृतं अस्ति (१८१)- कौनसा पौरुषका जनताके हित करनेवाला कर्म इन्द्रने नहीं किया है? अर्थात् जनताका हित करनेके लिये जो कर्म आवश्यक हैं वे सब कर्म इन्द्र सदा करता रहता है। जन समाजका हित हो प्रजाजनोंकी उन्नति हो एतदर्थ वह सदा प्रयत्नशील रहता है।

तानि पौंस्या सना मा भुवन् (४११)- आपके ये पौरुषके कर्म पुराने नहीं हुए हैं। वे सदा ताजे वैसे हैं। अर्थात् इन्द्र सदा उत्तमोत्तम कर्म जनताके हितके लिये करता रहता है।

तव द्युम्नानि मा क्षारिषुः (४१२)- इन्द्रके तेज क्षीण नहीं हुए हैं। उसके तेज सदा चमकते रहते हैं। यह इन्द्र कभी भी थकता नहीं श्रान्त नहीं होता सदा कार्यरत रहता है और आलस्य छोडकर जनताके कल्याणके लिये आवश्यक कर्म जितने करने पडें करता ही रहता है।

अस्य कार्मे विपन्यतः न रोषति (१६१)- इस इन्द्रके अनुकूल जो कार्य करते हैं उनपर यह कदापि रुष्ट नहीं होता। इसकी इच्छा जनताका हित करनेकी होती है अतः जो लोग जनताका हित करनेके लिये प्रयत्नशील होते हैं उनपर इन्द्र संतुष्ट रहता है और उनका भला वह करता है।

इस तरह इन्द्र जनताके हित करनेके कार्य सब करता है। और जो दूसरे वैसे कर्म करते हैं उनको भी सहायक होता है।

लोगोंके लिये प्रयत्न करनेवाला

इन्द्र लोगोंकी उन्नतिके लिये सदा प्रयत्न करता है इसलिये उसे लोक-कृत्नु (१७४)- लोगोंके लिये सुखस्थानपूर्वक प्रयत्न करके स्थान बनानेवाला कुशल कार्यकर्ता कहते हैं।

स्थिर नीतिवाला

स्थिरः (११९)- इन्द्र स्थिर है। इसका अर्थ यह है कि उसकी नीति जनताका हित करनेके विषयमें स्थिर रहती है। उसमें कभी न्यूनता नहीं होती। सुख देनेवाले विषयमें उसके कार्यक्रम अच्छी तरह सुस्थिर रहते हैं। आज एक, कल दूसरा परसों तीसरा ऐसा नहीं होता। जनताका हित विषयके

होगा ऐसे ही कार्य वह करेगा इस उद्देश्यमें उसकी स्थिर नीति रहती है।

लोगोंकी साक्षी

लोग भी कहते हैं कि इन्द्रः नः मृळयाति (११७) इन्द्र हम सबको सुख देता है। यह सब जनताका अनुभव है।

इन्द्र अपूर्व है

अ-पूर्व्यः (६५)- इन्द्र अपूर्व है। इससे पहिले ऐसा जनताका हित करनेवाला कोई नहीं हुआ था और इसीसे हम कहते हैं कि आगे भी ऐसा कोई नहीं होगा। इस कारण इसको सब लोग प्रियः (११६)- प्रिय करके कहते हैं। सबको यह अत्यंत प्रिय हुआ है।

आगे बढनेवाला

इन्द्र सदा सत्कर्म करनेके लिये आगे बढनेवाला है। वह कभी आक्रमण करनेके समय पीछे नहीं रहता। इस कारण उसको अभि-भुः (११६)- आगे बढनेवाला कहते हैं।

पुरः प्रेहि (१६)- आगे बढ शत्रुपर आक्रमण कर हमला कर धृष्णुया प्र जिगाति (१२१)- वेगसे शत्रुपर हमला करता है।

यह इन्द्रका आगे बढना शत्रुपर करनेकी चढाईके समयका है। शूर वीर अपनी सेनासे शत्रुपर चढाई करते हैं वैसी चढाई करनेमें इन्द्र विशेष उत्साह बताता है।

न गिरनेवालेको गिरानेवाला

इन्द्र सुस्थिर शत्रुको उखाडकर दूर फेंकनेवाला है। अतः उसको यह अ-च्युत-च्युतः (२ [illegible])— न गिरनेवाले शत्रुको गिरानेवाला कहते हैं। यह इन्द्र स्वयं अपने स्थानपर स्थिर होगा और शत्रुको स्थानभ्रष्ट करनेवाला है। सुस्थिर प्रबल शत्रुको भी अपने स्थानसे हिलाकर दूर करनेवाला है। न हिलनेवालेको समूल उखाडकर फेंकनेवाला इन्द्र है।

गुप्त न रहनेवाला

इन्द्र इस तरहके कार्य करता रहता है इसलिये वह इसका अ-गोह्यः (१११)— यह इन्द्र छिपकर न रहनेवाला है। अपने प्रत्यक्ष कार्योंसे यह सबके लिये खुला हुआ है।

सत्रा-जितः (१११)— सेनाके साथ रहकर शत्रुको जीतनेवाला है। सदा विजयी होनेके कारण यह इन्द्र कभी भी छिपकर नहीं रह सकता।

सार्वजनिक हितके कार्य करता है

इन्द्र सदा सार्वजनिक हितके कार्य करता है इस कारण उसको नर्यः — नरोंका हित करनेमें तत्पर रहनेवाला कहा है।

नर्यापसं (नर्य-अपस्)' (१ [illegible])— सार्वजनिक हितके कार्य सदा करता है।

पुरूणि नर्या दधानः (४७)— सार्वजनिक हितके बहुत कार्य करनेवाला।

'अस्य मह इन्द्रस्य पुरूणि सुकृता महानि कर्म (४८)— इस बडे इन्द्रके अनंत परमोत्तम बडे महत्कर्म सार्वजनिक हितके लिये होते हैं। यह जो कार्य करता है वे सब जनताके हितके ही कार्य होते हैं।

इस कारण इसकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

त्वरासे कार्य करनेवाला

इन्द्र जो कार्य करना चाहता है वह त्वरासे करता है और उत्तमसे उत्तम रीतिसे सफल और सुफल करता है। कभी बीचमें अधूरी अवस्थामें छोडता नहीं। इसलिये उसको—

तुरः (११६)— त्वरासे कार्य करनेमें कुशल।

तुर्वणिः (११६)— सत्वर परन्तु उत्तम कार्य करनेमें चतुर।

तुतुजानः (११७)— प्रत्येक कार्य अतिशीघ्र तथा उत्तम करनेमें कुशल

यः कर्मण्या तुतुजानः तुविष्मान् ([illegible])— जो स्वभाव धर्मसे ही शीघ्रतासे कार्य समाप्त करनेमें कुशल और बलवान् है।

तुराषाट् ([illegible])— त्वरासे लडाईमें शत्रुको पराजित करता है।

यह सामर्थ्य इन्द्रका है। इस कारण इन्द्रके सामर्थ्यकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

इन्द्रका सामर्थ्य

शक्रः (११५)— सामर्थ्यवान् इन्द्र,

शची-पतिः (१२१)— शक्तिमान् इन्द्र है, शचीका अर्थ शक्ति है।

सत्य-शुष्मः (६१)— सच्चा सामर्थ्य जिसके पास है।

उग्रः शवसस्पतिः (१४ [illegible])— बलका बडा स्वामी इन्द्र है।

स्व-धावः (१४१)— अपनी धारक शक्तिसे युक्त इन्द्र है।

महान् ओजसा असि (११)– बड़े सामर्थ्यके साथ इन्द्र चमकता है ।

कद् वयः दधे (११९)— किस प्रकारकी अद्भुत शक्ति इन्द्रमें है ।

विवि ओजसा आकाणा (१०१)— युद्धोंमें सामर्थ्य प्रकट करता है ।

न पुराणः न नूतनः अस्य ते वीर्यं न अनुआपत् (९१)— कोई प्राचीन अथवा कोई अर्वाचीन वीर तेरे पराक्रमकी बराबरी नहीं कर सकता है । ऐसा इन्द्रका सामर्थ्य अद्भुत है ।

त्वा न किः आ मिनवत् (११)— तुझे कोई रोक नहीं सकता । तेरी शक्ति अप्रतिहत है ।

अभिधृतः स्थिरः रणाय संस्कृतः (११९)— इन्द्र कभी पीछे नहीं हटता युद्धस्थानमें स्थिर रहता है और युद्धके लिये सदा तैयार रहता है ।

अमः सचा शवांसि दधानः (११५)— तम- वीर इन्द्र है साथ साथ अनेक सामर्थ्योंको धारण करनेवाला भी है ।

वज्री नः विश्वा सुपथा कृणोतु (११५)— वज्रधारी इन्द्र अपने सामर्थ्यसे हमारे लिये सब मार्ग उत्तम सुगम करता है ।

इस तरह इन्द्र सामर्थ्यवान् है इस कारण सर्वत्र उसकी प्रशंसा गायी जाती है ।

इस तरह इन्द्रकी सब लोग सदा प्रशंसा करते हैं । इस स्तुतिसे स्तुति करनेवालोंका हित होता है । यह इन्द्र बलवान् है शूर है युद्धमें कुशल है इत्यादि उसके गुण स्तुतिमें वर्णन किये जाते हैं । स्तुति सुननेवालेके मनमें ये गुण उत्तम हैं यह भाव जम जाता है और इन गुणोंको अपनेमें धारण करनेकी प्रबल इच्छा स्तुतिको सुननेवालोंमें उत्पन्न होती है । यदि वे गुण निष्ठासे अपनेमें धारण किये तो वह बलवान् शूर युद्धमें कुशल होता है और इस तरह उसकी उन्नति होती है । स्तुतिका यह लाभ है ।

प्रशंसित इन्द्र

इन्द्रकी प्रशंसा सब करते हैं, इस विषयमें देखिये—

पुरु-स्तुतः (११)— बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र है ।

मंहः (४४)— सुदृढ महनीय ।

पनीयस् (७१)— जिसकी सब स्तुति करते हैं ।

अर्कः (११)– अर्चनीय पूजनीय ।

गूर्त-श्रवाः (११)— जिसका यश चारों ओर फैला है ।

स्तोतॄणां अविता (१००)— स्तुति करनेवालोंका कल्याण करता है ।

सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनां वाचस्पतिं (४९)– मानवों द्वारा प्रशंसित उत्तम विद्वान इन्द्रकी स्तुति कर ।

दानौकसः (११)— इन्द्र दानका घर ही है ऐसा उदार दाता है ।

इन्द्रकी गौवें

इन्द्रके पास उत्तम गौवें होती हैं । वह स्वयं दूध पीता है अपने सैनिकोंको दूध पीनेके लिये देता है तथा योग्य मनुष्योंको गौवें देता है । इन्द्र गौका उत्तम रीतिसे पालन करता है अतः उसके पासकी गौवें उत्तमोत्तम होती हैं ।

गोमान् (१९)— गौओंको अपने पास रखनेवाला

गोपतिः (११९)— गौओंकी पालना करनेवाला

शाचि-गुः (१९)— शक्तिशाली गौओंका निर्माण करनेवाला, हृष्टपुष्ट गौओंको अपने पास रखनेवाला

अ-गो-रुधः (४९)— गौओंको न रोकनेवाला उनकी उन्नतिमें बाधा न डालनेवाला, गौओंकी उन्नति करने- वाला ।

गवां पुरस्कृत् (७१५)— गौओंका उद्धारक

गविष (४९)— गौओंकी इच्छाके अनुसार उन्नति करनेवाला

पुरुभोजसं गां ससान (५१)— बहुत अन्न देनेवाली गायको इन्द्र प्राप्त करता है । गाय बहुत दूध देती है ऐसी गौओंको इन्द्र अपने पास रखता है ।

यः वलस्य अपधा गा उदाजत् (९)— जिसने वलने छिपाकर रखी गौओंको ऊपर निकाला ।

दासपत्नीः धेनाः आविः अकृणोत् (७५)— दासोंमें शत्रुने छिपायी गायें इन्द्रने प्रकाशमें लायीं । शत्रुको पराजय करके उसके पासकी गौवें अपने आधीन करके रखीं ।

अंगिरोभ्यो गुहासतीः गाः आविष्कृण्वन् उत आ अकरत् (१०४)— अंगिरा ऋषियोंके लिये गौवें जो विलीन छिपाकर रखी थी उसको बाहर निकाला और उनका दान उन ऋषियोंके लिये किया ।

गव्य अश्व्य दात ददाति (९८)— घोड़ों गायें और गौवें इन्द्र दानमें देता है ।

सब प्रकारका सामर्थ्य इसमें रहता है इसलिये इसका मानस प्रोत्साहित होता है।

सपत्नः असपत्नहा (२८८ — वह बलवान है और कभी न गिरनेवाला है। अपने बलसे वह उन्नत होता रहता है।

शुष्मस्य भूरि धीमहि (४७८) बलके कारण तुझे अन्तःकरणमें हम रखते हैं।

यः तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः एकः कृष्टीः च्यावयति (२४१)— वह इन्द्र तीखे सींगवाले बैलके समान महाभयंकर है वह अकेला ही सब शत्रुजनोंको स्थान भ्रष्ट करता है विनष्ट करता है। अकेला ही अपने बलके कारण सब शत्रुओंको पराजित करता है।

न महिमानं न वीर्यं न राधः अस्य अन्वश्नुवन्ति (४८२)— कोई वीर तेरी महिमा तेरा वीर्य तेरे धनकी बराबरी नहीं कर सकता।

दमोदाः (२१६)— इन्द्र बल देनेवाला है।

अजूर्यो जायते बली यमः (४ ८)— क्षीणता रहित बलवान् नियामक होता है।

ते वीर्यस्य शक्तिः चर्कृतम् (४५६)— तेरे पराक्रमोंकी कीर्ति उन्नतिकी इच्छा करनेवालोंने गाई है।

पूर्वाः ते अस्य वीर्यस्य विद्म (४११)— हम तेरे इस पराक्रमको अच्छी तरह जानते हैं।

विविदुषे मनुष्याय मन्म (५ ६)— जो ज्ञानी या बलवान् होता है उसका स्तोत्र गाया जाता है।

शावसे राधसे सखा (१४२)— बलके और धनके लिये संगठित होनेकी आवश्यकता अत्यंत है।

विश्वा शवसा वृष्ण्या महिना आ पप्राथ (५११)— सारे बल और सामर्थ्यकी महिमाने भर दिया है अर्थात् जहां शक्ति और सामर्थ्य है वहां महिमा बढ जाती है।

त्वं बलात् सहसः अभिजातः (५५८)— तू बल और साहसके कारण प्रसिद्ध हुआ है।

ते वृष्ण्यानि कर्माणि (६ १)— तेरे कर्मोंका वर्णन करके हम उनको गाते हैं।

तुविशुष्मः महिषः (६१२)— इन्द्र महा सामर्थ्यवान् और भैंसेके समान बलवान् है।

महान् उग्रः सत्यः देवः इन्द्रः (६११)— बडी महिमावाला उग्र देव इन्द्र है।

इन्द्रः शुष्मं दधे (७ ७)— इन्द्र प्रचण्ड बल धारण करता है।

वृष्ण्यं शवः (७११)— इसका प्रबल बल है।

अप्रतिमानं ओजः (६१२)— इस इन्द्रका अतुलित सामर्थ्य है।

अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा महांसि अति प्रत्यञ्चाय (६ २)— अपरंपार महा सामर्थ्यसे अपने सब सामर्थ्योंको वह अति तीक्ष्ण बनाता है।

भूमिः प्राङ् अपाङ् उदङ् न्यङ् हूयसे (७२)— मानवों द्वारा पूर्व पश्चिम दक्षिण उत्तर दिशाओंमें सहायार्थ तू बुलाया जाता है।

इस तरह इन्द्रके प्रचण्ड सामर्थ्यका वर्णन वेद कर रहा है। इस वर्णनको पढनेसे अपनेमें सामर्थ्य बढाना चाहिये यह स्फूर्ति स्तुति करनेवालोंमें उत्पन्न होती है जो मानवोंकी उन्नतिके लिये अत्यंत आवश्यक है।

किलेमें रहनेवाला इन्द्र

अद्रि-षः (११५)— पहाडी किलोंमें इन्द्र रहता है। वह इस वीरकी सुरक्षितताके लिये पहाडी किलोंमें रहता है। किलेमें रहनेसे अपनी सुरक्षितता निश्चित होती है। यह वह शत्रुओंके किले तोडता है देखिये—

शत्रुके किले इन्द्र तोडता है

इन्द्र स्वयं पर्वतपरके किलेमें रहता है। शत्रुके द्वारा वह किलेको अभेद्य बनाता है। पर स्वयं इन्द्र शत्रुके किले तोडता है उनमें प्रवेश करता है तथा उनको अपने अधिकारमें लेता है। शत्रुको वहांसे हटाता है और उनमें अपने लोगोंको बसाता है। इन्द्रके वर्णनोंमें ये वर्णन बहुत हैं उनमेंसे थोडे देखिये—

पूर्भित् (पूः-भित्) (४१)— शत्रुके नगरोंके किलोंको तोडनेवाला इन्द्र है।

पुरां दर्मा (११)— शत्रुकी पुरियोंको तोडनेवाला

अयं ओजसा पुरः विभिनत्ति (११६)— यह इन्द्र अपने बलसे शत्रुकी नगरीयोंके किलोंको तोडता है।

शश्वतीनां पुरां दर्ता असि (४ १)— तू शत्रुके सारे किलोंको तोडता है।

शारदीः पुरः सासहानः अवातिरः (४१५)— शरद् ऋतुमें रहनेके लिये बनाये शत्रुके किले साहससे इसने तोडे।

दर्षि पुरं ओजसा सहसि (११५)— इस किलेको तू अपने बलसे तोडता है।

याः ओजसा अव अर्दति पुरः बिभेद (११)— अपने ... से अपने बलसे शत्रुके निन्यानवे किले तोड दिये।

नवनवतिं पुरः सद्यः (१४७)— निन्नानवे किलोंको तोड दिया।

ऋजिश्वना परिवृता अनानुदः वृङ्गदस्य शातीः पुरः अभिनत् (११६)— ऋजिश्वाके द्वारा घेरी हुई कंजूस वंगदकी भी नगरियोंको तूने तोड दिया।

अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव दुष्पदा रथ्या श्वाकेण नि अवृणक् (१२७)— बिना सहाय लेते हुए अकेले सुश्रवाके हमला किये हुए बीस जनराजाओंको तथा उनके साठ हजार निन्नानवे सैनिकोंको अपने रथचक्रसे मार डाला। साठ हजार सैनिकोंका पराभव करनेके लिये कितना बल चाहिये उतना इन्द्रके पास बल था यह इससे ज्ञात है।

त्वं अवस मोहं तूर्णे राजे कुत्सं अतिथिग्वं आयुं अरन्धयः (११८)— तूने इस तरुण राजाका हित करनेके लिये कुत्स अतिथिग्व और आयुको मारा।

निवेशने शततमा अविवेषीः वृत्रं अहन् (१४७)— रहनेके लिये तूने सौवें किलेमें प्रवेश किया उस समय तूने वृत्रको मार दिया।

उत नमुचिं अहन् (१४७)— और नमुचिको भी मारा।

इस तरह शत्रुके किले तोडनेका वर्णन वेदमें है। साठ साठ हजार शत्रु सैनिकोंका वध किया इस कार्यके लिये इन्द्रका सैन्य कितना होगा इसकी कल्पना पाठक करें। किलोंमें रहकर लडने वालेके साथ थोडा सैन्य हुआ तो भी लड सकता है। पर शत्रुके किले तोडना उनमें रहे शत्रुओंका नाश करना साठ सत्तर हजार शत्रुके सैनिकोंका नाश करना आदि कार्य करनेके लिये शत्रुके सैन्यकी अपेक्षा तीन गुणा तो सैन्य अवश्य ही चाहिये। उतना इन्द्रके पास था यह इस वर्णनसे सिद्ध होता है।

इन्द्रका संरक्षण सामर्थ्य

इन्द्र एक समय निन्नानवे किले शत्रुके लेता है और सौवें किलेमें जाकर रहता है इससे इन्द्रका युद्ध करनेका सामर्थ्य कितना बडा है यह स्पष्ट होता है। युद्ध करनेका सैनिकोंका सामर्थ्य होता है। इस सामर्थ्यके आदरसे शत्रुओंसे संरक्षण किया जाता है और आन्तरिक उपद्रवकारियोंसे भी संरक्षण होता है। इसलिये इन्द्र उत्तम संरक्षण करनेवाला है अतः कहा है—

अविता (११)— इन्द्र रक्षण करनेवाला है।

सत्पतिः (१)— उत्तम पालन करनेवाला है।

१ (अथर्व स्वा काण्ड १)

कुत्सपाय्या (२)— यज्ञके कुत्सका संरक्षक। आर्य यज्ञ करते थे और अनार्य यज्ञका नाश करते थे। इसलिये यज्ञके कुत्सका रक्षण करनेका कार्य आर्य क्षत्रिय रक्षण करता है।

त्वं समर्यः वर्म असि (१ ४)— तू मेरा कवच है। जैसे कवच रक्षण करता है वैसे तू मेरा रक्षण करता है।

इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि अभयं करत् (११८)— इन्द्र सब दिशाओंमेंसे आनेवाले शत्रुओंसे निर्भयताका निर्माण करता है।

सखायः! वाजे वाजे वाजे वाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे (१११)— हे मित्रो! हम सब मिलकर शत्रुके साथ संग्राम होनेपर प्रत्येक युद्धमें बलशाली इन्द्रको अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं।

सखा इन्द्रः पुरस्तात् उत मध्यतः सखिभ्यः वरिवः कृणोतु (१७)— हमारा मित्र इन्द्र आगेसे और मध्यसे हमारे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ संरक्षण देवे, अथवा धन देवे।

धने हिते येन आविथ (१५)— युद्ध शुरू होनेपर अपनी शक्तिसे तू हमारा संरक्षण करता है। यहां धन नाम युद्धका है क्योंकि युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर शत्रुका धन अपने अधीन होता है।

सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः नः इन्द्र उपागमत् (११२)— हजारों संरक्षक योजनाओं और सामर्थ्योंसे हमारे पास यह इन्द्र आता है और हमारा संरक्षण करता है।

हे इन्द्र! वावृधानस्य विश्वा धमानि विश्वुषः ते ऊतिं आवृणीमहे (१ २)— हे इन्द्र! तुम बढनेवाले और शत्रुका भी हटानेवाले वीरके संरक्षणको हम चाहते हैं। तेरी शक्तिसे हमारा संरक्षण होता रहे।

मा अन्तकेभिः परावो वायस्व (१४१)— हमारा संरक्षण सरल साधनोंसे कर। उनमें अधिक प्रयोग करनेकी आवश्यकता न रहे।

तन्वा ऊती वावृधस्व (२५१)— अपने शरीरसे अपनी संरक्षक शक्ति बढाओ।

स वाजेषु न प्राविषत् (११८)— वह इन्द्र युद्धोंमें हमारा संरक्षण करता है।

नः अविता भव— (१४२)— तू हमारा संरक्षक हो।

सुरूपकृत्नुं ऊतये जुहूमसि (१४४)— उत्तम सुंदर रूप बनानेवाले इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

मा पते धाशुष ते विभूतय ऊतय (२ १)— दो बडे दाताके लिए तेरी विभूतियां संरक्षक रही हैं।

रेवतः मघः गोदाः (१४५)— धनवान् इन्द्रका हर्ष गौओंको देनेवाला है।

इस तरहके वचन बता रहे हैं कि इन्द्र गौओंकी उत्तम पालना करता है। अधिक दूधरूपी अन्न देनेवाली गौवें तैयार करता है और उनका दान ऋषियोंके लिये करता है।

इन्द्र घोडोंकी पालना करता है

इन्द्र जैसी उत्तम गौओंकी पालना करता है उसी तरह वह उत्तम घोडोंकी पालना करनेवाला भी है। देखिये—

हर्यश्वः (हरि-अश्वः) (६८)— लाल या पीले घोडोंको रखनेवाला इन्द्र है।

हरि-प्रियः (१४३)— घोडे जिसको अत्यंत प्रिय हैं ऐसा इन्द्र है।

हरि-पाः (११४)— लाल घोडे अपने पास रखने वाला इन्द्र है।

हरीणां स्थाता इन्द्रः (४ १)— घोडोंको आश्रय देनेवाला इन्द्र है।

अश्वस्य पोता (७१५)— घोडोंकी पालना करने वाला इन्द्र है।

केशिनी (९)— केशवाले इन्द्रके घोडे हैं।

ब्रह्मयुजौ (९)— इशारेके साथ रथको जुडनेवाले इन्द्रके घोडे हैं। इशारा होते ही अपने स्थानपर रथके साथ जुडे होनेवाले जिसके घोडे हैं।

केशिना ब्रह्मयुजा हरी त्वा आवहताम् (९)— केशे बालोंवाले इशारेसे जुड जानेवाले दो घोडे तुझे-इन्द्रको यहां ले आवें।

इन्द्रः अश्वान् ततक्ष (५१)— इन्द्र युद्धोंमें घोडोंको तैयार करता है। युद्धोंमें जीतनेवाले घोडे इन्द्र तैयार करता है। घोडोंको ऐसी शिक्षा वह देता है जिससे युद्ध क्षेत्रमें उसके घोडे जीतते हैं।

वचोयुजा मा संमिश्लः हर्योः सखा (२५८)— शब्दके इशारेके साथ रथके साथ जुडनेवाले घोडोंका साथी इन्द्र है अर्थात् ऐसे उत्तम घोडे जिसके पास रहते हैं, ऐसा इन्द्र है।

ते हरी सुयमा (९ १)— तेरे दोनों घोडे उत्तम रीतिसे स्वाधीन रहनेवाले हैं।

त्वां सत्पतिं नरः पृत्सु अर्वतः काष्ठासु हवामहे (१७४)— तब हम वीर युद्ध जैसे उत्तम पालक इन्द्रको शत्रुओंसे घिर जानेपर— तथा घुडदौडके मैदानोंमें— बुलाते हैं। सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

रघुष्यदः सप्तयः आ वहन्तु (१२)— जल्दी दौडने वाले घोडे तुझे यहां ले आवें।

अरुषीः हरयः मा सहस्रिरे (११४)— लाल घोडे इन्द्रको यहां लाते हैं।

अर्वाङ् हरिभ्यां आयाहि (११६)— मेरे पास घोडोंसे आओ।

अस्मत् आरे मा मुमुचः (१४१)— हमसे दूर अपने घोडोंको न छोड।

गवेषणं रथे हरिभ्यां युजे (५६)— गौओंको ढूंढने वाले रथको मैं दो घोडोंको जोडता हूं।

केशिना घृतस्नू हरी रथे त्वा अर्वाञ्चा वहतां (१७४)— केशे बालोंवाले घी जिनके शरीरसे चूता है वा टपकता है ऐसे तेजस्वी दो घोडे रथमें तुझे हमारे पास ले आवें। इसमें 'घृत-स्नू' पद है। घी जैसा पदार्थ जिनके शरीरसे टपकता है। यह वर्णन इन्द्रके घोडोंकी तेजस्विताका है।

हरिभ्यां उप याहि (१७५)— घोडोंसे यहां आओ। दो घोडे अपने रथको जोडकर, उस रथमें बैठकर यहां आओ। इन्द्रके रथको दो घोडे जोते जाते हैं यह इस वर्णनका अर्थ है।

केशिना हरी इन्द्रं वहतः (१७८)— केशे बालोंवाले दो घोडे इन्द्रको ले जाते हैं।

स्थिरयुजा हरी युधा हिन्वन् (१८८)— युद्धमें स्थिर रहकर युद्ध करनेवाले इन्द्रको दो घोडे लडाईमें चलाते हैं।

हर्यन्ता हरी यज्ञियं मंहिष्ठं इन्द्रं रथे वहतः (१८७)— प्रिय दो घोडे यज्ञकारी आनंदित इन्द्रको रथसे ले जाते हैं।

अस्य रथे विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा काम्या हरी युनज्मि (१९५)— इस रथको दोनों ओर लाल रंगके दो प्रिय घोडे सरदार इन्द्रको ले चलनेके लिये जोते जाते हैं।

तव ऊतिभिः सुप्रावीः मर्त्यः अश्वावती गोषु प्रथमः गच्छति (१५४)— तेरी सुरक्षासे सुरक्षित हुआ मानव गौओं और घोडोंवालोंमें पहिला होकर जाता है।

सर्वरथा हरी इह विमुञ्च (११७)— सब रथोंके दो घोडे यहां छोड।

मदच्युता हरी युक्ष्व (१४)— मद गिरानेवाले दो घोडे रथको जोत।

यमस्य रथं हरी वहतः (४८४)— नियामक इन्द्रके रथको दो लाल घोडे चलाते हैं।

त्या मघवता जूतासः मि ष्याम (४५१)— तेरी प्रेरणासे घोडोंसे सुरक्षित हुए हम शत्रुको रोक सकते हैं।

मघवद्भिः हरिभिः याः ओप ईयते (१८८)— वेगवाले घोडोंसे यह इन्द्र ओजसे शीघ्र जाता है। इस मंत्रमें हरिभिः अनेक घोडोंके साथ इस अर्थका प्रयोग है। अन्यत्र हरी दो घोडे ऐसा ही प्रयोग है।

ऋभ्वासः वाजिपासः रणप्रवाहः सप्तमाह्नः एवं सुपति शर्म यत्रवाहुं प्रत्यक्षदर्शं सत्यश्रुतमं इं अस्मभ्या आ वहन्तु (१ ४)— उन बलवाले इन्द्रके घोडे वह उन और मनुष्योंके पालक मनुके समान ज्ञानवाले बलवान् सब सामर्थ्यवाले इस इन्द्रको हमारे पास ले आवें।

इन्द्रका रथ

घोडोंके वर्णनके मंत्रम इन्द्रके रथका भी वर्णन आता है। इन्द्र घोडेपर बैठता नहीं वह सदा रथमें ही बैठता है। अतः कहा है—

रथे-ष्ठाः (२११)— इन्द्र रथमें बैठता है।

ते रथः सुस्थाम (१ १)— तेरा रथ उत्तम रीतिसे स्थिर है, रथ मजबूत है।

ऋतयुजे रथे धर्मोयुजा इन्द्रवाहा हरी युञ्जन्ति (१५)— सत्य धर्मोंवाले उत्तम रथमें इशारेसे ही जुड जानेवाले इन्द्रके दो लाल रंगके घोडे जोडे जाते हैं।

अभिमानः सुवक्षा— (११८)— अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला इन्द्र है। यह इन्द्रका रथ (सुवक्षा) उत्तम चक्रवाला है। वेगसे यह जाता है और अन्दर बैठनेवालेको कुछ भी कष्ट नहीं होता। ऐसा उसका उत्तम रथ है।

अर्भकः कुमारकः नवं रथं अधितिष्ठत् (५८४)— छोटा बालक इन्द्र नये रथपर चढकर बैठा। इस तरह यह घर और तेजस्वी युवक वीर है। कुमारकसे उस इन्द्रकी यह युवकता स्पष्टतासे प्रकट हो रही है।

इस प्रकार घोडों और रथका वर्णन इन्द्रके विषयमें वेदमें आया हुआ है। इन्द्र रथमें बैठकर ही इधर उधर जाता है। उसके घोडे अनेक हैं वे सभियोंके बैठनेके लिये काममें आते होंगे। क्योंकि इन्द्रके रथको दो ही घोडे जोते जाते हैं।

इन्द्रका अतुल सामर्थ्य

इन्द्रके अतुल सामर्थ्यके विषयमें वेदमन्त्रोंमें बहुत ही वर्णन है, उसका अब थोडासा दिग्दर्शन करता हूं—

भीमः (७१)— इन्द्र महाभयंकर है इन्द्र शत्रुको कैसा दीखता है यह भाव इस शब्द द्वारा प्रकट हुआ है।

तवस (११)— इन्द्रका सामर्थ्य विशेष है।

पुरुशाकः (२४८)— बहुत शक्तिवाला है।

ओजिष्ठः (२८७)— इन्द्र बहुत ओजस्वी है महा बलवान् है।

सहसावान् (२४१)— साहसकी शक्तिसे वह युक्त है। शत्रुका पराभव करनेका उसका सामर्थ्य विशेष अधिक है।

शवसस्पतिः (४१५)— वह बलका स्वामी है।

अप्रतिमान ओजः (१११)— उसका अप्रतिम सामर्थ्य है। उसके समान दूसरे किसीका भी बल नहीं है।

ते वीर्यं भूरि (७१)— इन्द्रका पराक्रम बहुत बडा है।

विश्वायु धायसे अपावृत (११)— संपूर्ण आयुपर्यंत वह बलके लिये प्रसिद्ध है। सब आयुपर्यंत वह बलसे होनेवाले कर्म करता रहता है।

विश्वं केवलं सह सखा दधिषे (७४)— सब प्रकारका बल सामर्थ्य तू— इन्द्र— धारण करता है। अन्यमें जो सामर्थ्य अल्प है वह सब इन्द्रमें है।

वृषभः वृषण्वावान् सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते (११२)— बलवान् सामर्थ्ययुक्त सदा सत्यवान् अनेक कर्मोंको कुशलतासे करनेवाला शत्रुका पराभव करनेवाला जो इन्द्र है उसकी स्तुति होती है। यह इन्द्र पुरुमायः है। इस पदका अर्थ अनेक कर्म करनेवाला कुशलतासे कर्म करनेवाला अनेक कपट प्रयोगोंमें भी शत्रुको जीतनेमें प्रवीण ऐसा होता है। माया का अर्थ कुशलता तथा कपट प्रयोग ऐसा दोनों प्रकारका है। यह इन्द्र कुशलतापूर्वक शत्रुका पराभव करता है तथा आवश्यकता होनेपर कपट प्रयोग करके भी शत्रुका नाश करता है। ये दोनों अर्थ यहां ठीक उचित हैं।

यः शवसा विश्वानि भारतान (५४)— जो इन्द्र अपने बलसे सब शत्रुओंको फैलाकर मारता है। शत्रु एकत्रित होने नहीं देता, उनको हिलाता है और वह नाश करता है।

अषाढाय सहमानाय वेधसे तुविग्रये पर्वतेष्ठाः अद्रोघवाचं शविष्ठं तं मतिभिः अभि— (१११)— शत्रुसे दबनेवाला नहीं शीघ्र नाश करनेवाला पर्वतपरके किलेमें रहनेवाला द्रोहरहित भाषण करनेवाला बलवान् है उसकी बुद्धियोंसे स्तुति करते हैं। तुविग्रि का अर्थ त्वरासे नाश करनेवाला शीघ्रताप शत्रुका नाश करनेवाला है। पर्वतपरके किलेमें इन्द्र रहता है द्रोहरहित भाषण करता है भाषणमें कठोरता नहीं उत्तम नम्रता प्रकट होती है भाषण सबको प्रिय लगे ऐसा उत्तम होता है।

इस प्रकारका सामर्थ्य इन्द्रमें रहता है इसलिये उसका शासन मोहरहित होता है।

अमृतः अनपच्युतः (२८८)— वह अमर है और कभी न गिरनेवाला है। अपने बलसे वह उन्नतर होता रहता है।

शुष्मस्य भूरि धीमहि (४७८) उसके शासन सुखे अन्तःस्थानमें हम रखते हैं।

यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः एकः कृष्टीः च्यावयति (२४१)— वह इन्द्र तीखे सींगवाले बैलके समान महाभयंकर है वह अकेला ही सब शत्रुगणोंको स्थान भ्रष्ट करता है विनष्ट करता है। अकेला ही अपने बलके कारण सब शत्रुओंको पराजित करता है।

न महिमानं न वीर्यं न राधः इन्द्र आनुनशम्ति (४८९)— कोई वीर तेरी महिमा तेरा वीर्य तेरे धनकी बराबरी नहीं कर सकता।

हमोदाः (२११)— इन्द्र बल देनेवाला है।

अनूर्मी वाजी यमः (४०८)— पीडा रहित बलवान् नियामक होता है।

ते वीर्यस्य शक्तिमः पर्शिरम् (४११)— तेरे पराक्रमोंकी कीर्ति सर्वत्र फैली प्रचार करनेवालोंने गाई है।

पूरवः ते अस्य वीर्यस्य विद्युः (४१५)— लोग तेरे इस पराक्रमको अच्छी तरह जानते हैं।

विश्विद्युभे मरुत्वते भरत (५१)— जो ज्ञानी या बलवान् होता है उसका स्तोत्र गाया जाता है।

शवसे राधसे सख्या (१४१)— बलके और धनके लिये संगठित होनेकी आवश्यकता अवश्य है।

विभ्वा शवसा शुष्म्या महिना आ पप्राथ (५११)— तूने बल और सामर्थ्यकी महिमासे भर दिया है अर्थात् जहां शक्ति और सामर्थ्य है वहां महिमा बढ जाती है।

त्वं बलात् सहसः अभिजातः (५१८)— तू बल और साहसके कारण प्रसिद्ध हुआ है।

ते वृष्ण्यानि अवोचम (६१)— तेरे बलोंका वर्णन करके हम स्तुति करते हैं।

शुचिशुष्मः महिषः (११३)— इन्द्र महा सामर्थ्यवान् और तेजसे बलवान् बलवान् है।

महान् उग्रः तस्थौ वृषभः इन्द्रः (११३)— बडी महिमावाला बल देनेवाला इन्द्र है।

इन्द्रः शुष्मी वृषा (७७)— इन्द्र बलवान् बल बढानेवाला माना है।

वृष्ण्यं शवः (७११)— इसका समस्त बल प्रेम है।

अप्रतिमानं ओजः (१११)— इस इन्द्रका अप्रतिम सामर्थ्य है।

अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा महांसि अति प्रत्यासीत (६२)— अपरंपार महा सामर्थ्यसे अपने बल सामर्थ्योंको वह अति तीक्ष्ण बनाता है।

भूमिः प्राङ् अपाङ् उदङ् न्यङ् ह्वयते (७१)— मानवों द्वारा पूर्व पश्चिम दक्षिण, उत्तर दिशाओंमें सहायतार्थ तू बुलाया जाता है।

इस तरह इन्द्रके प्रचण्ड सामर्थ्यका वर्णन वेद कर रहा है। इस वर्णनको पढनेसे अपनेमें सामर्थ्य बढाना चाहिये यह इनकी स्तुति करनेवालोंमें उत्पन्न होती है जो मानवोंकी उन्नतिके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

किलेमें रहनेवाला इन्द्र

अद्रि-वः (११५)— पहाडी किलोंमें इन्द्र रहता है। वह इस वीरकी सुरक्षितताके लिये पहाडी किलोंमें रहता है। किलेमें रहनेसे अपनी सुरक्षितता निश्चित होती है। यह वह शत्रुओंके किले तोडता है देखिये—

शत्रुके किले इन्द्र तोडता है

इन्द्र स्वयं पर्वतपरके किलेमें रहता है। शत्रुके द्वारा बने किलेको अभेद्य बनाता है। पर स्वयं इन्द्र शत्रुके किले तोडता है उनमें प्रवेश करता है तथा उनको अपने अधिकारमें लेता है। शत्रुको वहांसे हटाता है और उसमें अपने लोगोंको बसाता है। इन्द्रके वर्णनोंमें ये वर्णन बहुत हैं उनमेंसे थोडे देखिये—

पूर्भिद् (पूः-भिद्) (४१)— शत्रुके नगरोंके किलोंको तोडनेवाला इन्द्र है।

पुरां दर्मा (११)— शत्रुकी पुरियोंको तोडनेवाला

अध ओजसा पुरः बिभिदाथ (११९)— वह इन्द्र अपने बलसे शत्रुकी नगरीयोंके किलोंको तोडता है।

शश्वतीनां पुरां दर्ता असि (४१)— तू बहुत सारे किलोंको तोडता है।

शारदीः पुरः सासहानः अभ्यातिरः (४१५)— शरद् ऋतुमें रहनेके लिये बनाये शत्रुके किले साहससे इन्द्रने तोडे।

दर्द पुरः ओजसा संहसि (११५)— वह किलोंको अपने बलसे तोडता है।

बालोजसा वप मयति पुरः विभेद (११)— अपने बाहुबलसे शत्रुके निम्नाभव किले तोड दिये।

नवनवतिं पुरः सद्यः (१४७)— निन्यानवे किलोंको तोड दिया।

ऋजिश्वना परिषूताः अनानुदः वङ्गृदस्य शताः पुरः अभिनत् (१२६)— ऋजिश्वाके द्वारा घेरी हुई वंगृदकी सौ नगरियोंको तूने तोड दिया।

अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः द्विर्दश जनराज्ञः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव दुष्पदा रथ्या चक्रेण नि अवृणक् (१२७)— बिना सहाय्य जैसे हुए अकेले सुश्रवाले हमला किये हुए इन बीस जनराजाओंको तथा उनके साठ हजार निन्यानवें सैनिकोंको असह्य रथचक्रसे मार डाला। साठ हजार सैनिकोंका पराभव करनेके लिये कितना बल चाहिये उतना इन्द्रके पास बल था यह इससे स्पष्ट है।

त्वं अस्मै महे यूने राज्ञे कुत्सं अतिथिग्वं आयुं अरन्धयः (११८)— तूने इस तरुण राजाका हित करनेके लिये कुत्स अतिथिग्व और आयुको मारा।

क्षियेद्यामे पर्वतमा अधिक्षेपीः शुष्णं अहन् (१४७)— रहनेके लिये तूने ऊँचे किलेमें प्रवेश किया। उस समय तूने शुष्णको मार दिया।

उत पिप्रुं अहन् (१४७)— और पिप्रुको भी मारा।

इस तरह शत्रुके किले तोडनेका वर्णन वेदमें है। साठ साठ हजार शत्रु सैनिकोंका वध किया, इस कार्यके लिये इन्द्रका सैन्य कितना होगा इसकी कल्पना पाठक करें। किलोंमें रहकर लडने-वालेके पास थोडा सैन्य हुआ तो चल सकता है। पर शत्रुके किले तोडना, उनमें रहे शत्रुओंका नाश करना, साठ सत्तर हजार शत्रुके सैनिकोंका नाश करना आदि कार्य करनेके लिये शत्रुके सैन्यकी अपेक्षा तीन गुणा तो सैन्य अवश्य ही चाहिये। उतना इन्द्रके पास था यह इस वर्णनसे सिद्ध होता है।

इन्द्रका संरक्षण सामर्थ्य

इन्द्र एक समय निन्यानवे किले शत्रुके लेता है और सौवें किलेमें जाकर रहता है इससे इन्द्रका युद्ध करनेका सामर्थ्य कितना बडा है यह स्पष्ट होता है। युद्ध करनेका सैनिकीय सामर्थ्य होता है। इस सामर्थ्यसे बाहिरके शत्रुओंसे संरक्षण किया जाता है और आन्तरिक उपद्रवकारियोंसे भी संरक्षण होता है। इसलिये इन्द्र उत्तम संरक्षण करनेवाला है अतः कहा है—

अविता (११)— इन्द्र रक्षण करनेवाला है।

सत्पतिः (१८)— उत्तम पालन करनेवाला है।

१ (अथर्व स्ता काण्ड २)

कुम्भपाय्या (२)— यज्ञके कुम्भका संरक्षण। आर्य यज्ञ करते थे और अनार्य यज्ञका नाश करते थे। इसलिये यज्ञके कुम्भका रक्षण करनेका अर्थ आर्य आतिथ्य रक्षण करना है।

त्वं सप्रथाः वर्म असि (१४)— तू मेरा बडा कवच है। जैसे कवच रक्षण करता है वैसे तू मेरा रक्षण करता है।

इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि अभयं करत् (११८)— इन्द्र सब दिशाओंमेंसे आनेवाले शत्रुओंसे निर्भयताका निर्माण करता है।

सखायः! योगे योगे वाजे वाजे तवस्तरं इन्द्रं ऊतये हवामहे (१११)— हे मित्रो! हम सब मिलकर शत्रुके साथ संबंध होनेपर प्रत्येक युद्धमें बलवाली इन्द्रको अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं।

सखा इन्द्रः पुरस्तात् उत मध्यतः सखिभ्यः वरिवः कृणोतु (१७)— हमारा मित्र इन्द्र आगेसे और मध्यसे हमारे मित्रोंके लिये श्रेष्ठ संरक्षण देवे, अथवा धन देवे।

धने हिते येन आविथ (२१)— युद्ध शुरू होनेपर अपनी शक्तिसे तू हमारा संरक्षण करता है। यहां धन नाम युद्धका है क्योंकि युद्धमें विजय प्राप्त होनेपर शत्रुका धन अपने अधीन होता है।

सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः नः इह उपागमत् (११२)— हजारों संरक्षक योजनाओं और सामर्थ्योंसे हमारे पास यह इन्द्र आता है और हमारा संरक्षण करता है।

हे इन्द्र! वावृधानस्य विश्वा धनानि जिग्युषः ते ऊतिं आवृणीमहे (१७२)— हे इन्द्र! तुझ जैसे बढनेवाले और धनोंको जीतनेवाले वीरके पराक्रमको हम चाहते हैं। तेरी शक्तिसे हमारा संरक्षण होता रहे।

नः अवृकेभिः वरूथैः पायस्व (१४९)— हमारा संरक्षण सरल साधनोंसे कर। उनमें कपट प्रवेश करनेकी आवश्यकता न रहे।

तन्वा ऊती वावृधस्व (१५१)— अपने शरीरसे अपनी संरक्षक शक्तिको बढाना।

स वाजेषु नः प्राविषत् (१२८)— वह इन्द्र युद्धोंमें हमारा संरक्षण करता है।

नः अविता भव— (१४१)— तू हमारा संरक्षक हो।

सुरूपकृत्नुं ऊतये जुहूमसि (१४४)— उत्तम सुंदर रूप बनानेवाले इन्द्रको हम अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

मावते दाशुषे ते विभूतयः ऊतयः (१७२)— मेरे जैसे दाताके लिये तेरी विभूतियां संरक्षक होती हैं।

अस्माकं तनूनां अविता भूत् (१११)— तू हमारे शरीरोंका संरक्षक हो।

धर्मयित्राः पित्राः प्रचर (४८१)— अस्माकं संरक्षक तू है इस लिए प्रजामें उनके रक्षणार्थ संचार कर।

सखीयतः माविथ (४९६)— मित्रताके साथ रहने वालोंका संरक्षण कर।

पृतनासु प्रणम्तये कार्ष धक्कार (४९६)— शत्रुके धनको जीतनेके लिए तुमने पुरुषार्थ किया।

चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अव (५११)— विलक्षण संरक्षक साधनोंसे हमारा संरक्षण कर।

चित्रः ऊती सदावृधः सखा कया नः आभुवत् (७२१)— *विलक्षण संरक्षक सदा महान् मित्र इन्द्र* किस महान् सामर्थ्यसे युक्त है जिससे वह हमारा संरक्षण करता है।

यः ऊती अजरं प्रहेतारं अप्रतिहतं आशुं जेतारं होतारं रथीतमं अतूर्तं तुग्र्यावृधं (९९९)— आपके संरक्षणके लिये जरारहित विजयी अपराजित, शीघ्र विजय प्राप्त करनवाले प्रेरणा देनेवाले श्रेष्ठ रथी इन्द्रको प्राप्त करो। वह आपका उत्तम संरक्षण करेगा।

इस प्रकार इन्द्र संरक्षणका कार्य करता है। इससे हम संरक्षक मंत्री भी कह सकते हैं। इसके मुख्य कार्योंमें जनताका संरक्षण आन्तरिक उपद्रवियोंसे तथा बाह्य शत्रुओंसे करनेका कार्य अन्तर्भूत हुआ है और यह कार्य वेदमंत्र स्पष्ट रीतिसे बता रहे हैं। इस कारण यह संरक्षक मंत्री ही है।

युद्ध करनेवाला इन्द्र

इन्द्र युद्धका देवता है। सदैव शत्रुसे युद्ध करना यह इसका मुख्य कार्य है। देखिये इसके वर्णन—

पुरो योधः (१ ४)— आगे रहकर युद्ध करनेवाला अग्रभागमें रहकर युद्ध करनेवाला।

भर हूतुः (२७९)— युद्धमें अपूर्व पराक्रम दर्शानेवाला।

पृत्सु सासहिः (१ ४)— युद्धोंमें साहस करनेवाला विजयी वीर।

परि-ज्मा (७८६)— चारों ओर घूमकर युद्ध करनेवाला।

समत्सु वृत्रहा (११४)— युद्धोंमें घेरनेवाले शत्रुओंका वध करनेवाला।

यः समत्सु संचद् (१)— जो संग्रामोंमें शत्रुको घेरता है।

हे इन्द्र ! वाजेषु सासहिः भव (११)— हे इन्द्र! तू युद्धोंमें शत्रुको जीतनेवाला हो।

त्वां वाजे हवामहे (६५)— तुझे हम युद्धमें सहायार्थ बुलाते हैं।

युधा युधं धृष्णुया उप घषि (१२५)— युद्धकी तैयारीसे युद्धके प्रति तू अपनी बलके धैर्यके साथ जाता है।

वाजेषु दाधृषं विद्म (१५)— युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला तू है ऐसा हम जानते हैं।

संयती क्रन्दसी च विह्वयेते (१ ५)— युद्धमें युद्ध करनेवाला सैन्य जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाता है।

प्राणेषु पृतनाज्ये पृत्सु तूर्षु श्रवःसु अभिमातिषु सासह (१११)— धनप्राप्तिके कार्योंमें युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेके प्रसंगोंमें यश प्राप्त करनेके कार्योंमें शत्रुका सामना करनेके प्रसंगोंमें तू हमारा साथी हो।

युध्यमाना अवसे यं हवन्ते (२ १)— युद्ध करनेवाले वीर अपने रक्षणके लिये जिस इन्द्रको बुलाते हैं।

सत्राट् इन्द्रः स्वरिः अमत्रः रणाय आवशे (२२४)— सत्राट् चमकनेवाला इन्द्र अपने बलमें शक्तिमान् और सामर्थ्यवान् होकर युद्धके लिये तैयार है।

युधे इध्मानः आयुधानि ऋघायमाणः शत्रून् नि रिणाति (११८)— युद्धकी इच्छा करनेवाला जब शस्त्रोंको शत्रुपर प्रेरित करता है तब शत्रुओंको नीचे गिराता है।

अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ (१८१)— इस युद्धमें हमारे संरक्षणके लिये खड़ा रह।

समत्सु ज्योतिः कर्ता (१८२)— युद्धोंमें तेजस्विता प्रकट करनेवाला इन्द्र है।

यथा अमित्राम् सासहानः (१८२)— युद्धसे शत्रुओंको पराजित करनेवाला इन्द्र है।

तं महत्सु आजिषु उत अर्भे हवामहे (११८)— उस इन्द्रको हम जैसे बड़े युद्धोंमें सहाय्यार्थ बुलाते हैं वैसे छोटे संघर्षोंमें भी बुलाते हैं।

कं इन्द्रः कं अस्मो तृपः (२४)— किसको मारा और किसको बचमें रखा ! इसने क्या क्या किया !

वृत्राण्यां घनः अभवत् (४९५)— इन्द्र शत्रुओंको मारने वाला हुआ है।

वाजेषु वाजिनं प्राव (४९५)— युद्धोंमें घोड़ाकी रक्षा कर।

अस्माकं यस्य नीरुद्र हरी न वृण्वत (४११)— युद्धमें मिलकर आने हुए घोड़ोंका वीर रोक नहीं सकता वह इन्द्र है।

उग्राभिः ऊतिभिः सहस्रप्रधनेषु नः अव (४५१)- उग्र वीरताके संरक्षणके साधनोंसे सहस्रों प्रकारके धन जिसमें मिलते हैं ऐसे युद्धोंमें हमारी रक्षा कर। सहस्र-प्र-धन यह युद्धका नाम है। शत्रुका पराभव करनेसे शत्रुके सहस्रों प्रकारके धन विजयी वीरको प्राप्त होते हैं।

इन्द्रं वयं महा धने इन्द्रं अर्भे हवामहे (४५१)- इन्द्रको हम बडे बडे युद्धोंमें सहायार्थ बुलाते हैं तथा छोटे युद्धोंमें भी बुलाते हैं।

अस्मिन् यामनि नः शिक्ष (५११)— इस चढाईमें हमें मार्ग आदेश दे (कि हम अपनी तैयारी कैसी करें?)

अज्ञाता वृजना दुरोण्यः अशिवासः नः मा अव क्रमुः (५१७)— अज्ञात, कपटी दुष्ट अशुभ शत्रु हमपर आक्रमण न करें।

युधा इदमस्या परिशा चकर्थ (५११)- युद्धसे देवोंके लिये धन प्राप्त किया है।

शुमिः युतः अभियुध्या त आजि त्वया सोम वर्सं जयेम (५१७)— वीरोंसे घिरा हुआ तू युद्ध करता है उस युद्धमें हम तेरे साथ रहकर यशको वीरतासे जीतेंगे।

अदेवीः मायाः असहिष्ठ (५१८)— असुरोंके कपट जालोंको पराभूत किया।

अस्मा अमस्वत्सु सतस्थानाः समीक रयां विहवन्त (५५)— वीर लोग युद्धमें खडे रहकर युद्धकी सहायतार्थ इस बुलाते हैं।

स्तुवान् स्वपूर्तान् शत्रून् नि वृणाति वृत्र हन्ति (५५१)— उत्तम संतानोंवाले उत्तम सत्कारवाले शत्रुओंका वह इन्द्र दूर करता है और उनको मारता है।

अस्य शत्रु आरात् चित् भयतां (५५२)— इस इन्द्रके शत्रु दूरसे भी डरते रहते हैं।

अस्मै अन्या यन्ता नि नमन्तो (५५१)— इसके सामने सब मानवी तेजस्वी वीर विनम्र होकर रहते हैं।

शत्रुं आरात् दूरं यः उग्रः शम्बः तेन अपबाधस्व (५८१)— शत्रुका पाससे और दूरसे भी जो उग्र वज्र है उससे बाधा पहुंचाओ।

शत्रुः इन्द्रः विश्वाः द्विषः अति मोदते (५८१)- सामर्थ्यवान् इन्द्र सब शत्रुओंको दूर करता है।

समीके संगे सोऽहन्त (६१४)— संग्रामके युद्धमें वीरोंके लिये आश्रय स्थान देनेवाला इन्द्र है।

अहिं अपराध्यः आहन् (६१५)— अहि नामक शत्रुको मारकर नीचे गिराया।

समीके इन्द्रं हवामहे (७१६)— युद्धमें सहाय्यार्थ हम इन्द्रको बुलाते हैं।

इन्द्रके युद्धविषयक सामर्थ्यका यह वर्णन है। इससे पता लग सकता है कि इन्द्रकी युद्धमें प्रवीणता कितनी है। इसीलिये हम इन्द्रका युद्धमें ध्यान देते हैं। पाठक भी इन वचनोंमें युद्ध मंत्रोंके गुण देख सकते हैं।

शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र

शत्रुका पराभव हमेशा इन्द्र करता है। इस विषयमें इन्द्रके वचन देखने योग्य हैं उनमेंसे कुछ देखिये—

शत्रून् अहि (१४)— शत्रुओंको पराभूत कर

दस्यून् हन्ता (५१)— दस्युओंका हनन करनेवाला

उग्रः (५१)— इन्द्र अत्यंत उग्र वीर है।

शत्रून् जेता (११८)— शत्रुओंको जीतनेवाला।

दस्योः हन्ता (४ १)— दस्युओंका वध करनेवाला

शत्रून् विध्यमान इन्द्र (४१)— शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र है।

अर्कैः वासं अविरत्—(४१) अपने तेजसे इन्द्र अपने शत्रुको मार डालता है।

बल बिभेद (५१)— बल नामक शत्रुको इन्द्रने मारा।

विबाधः भुजुर (५१)— विरुद्ध भाषण करनेवालोंको दूर किया।

अभिक्रतूनां दमिता अभवत् (५१)- यज्ञविरोधियोंको दबानेवाला इन्द्र है।

भरे वाजसातौ सुतमः (५१)- युद्धमें तथा अन्नदान करनेके समय इन्द्र सब नेताओंमें अतिश्रेष्ठ है।

भूषयम् (५१)- सबका बलवान् बनता है।

समत्सु ऊतये (५१)- युद्धोंमें रक्षण करनेके लिये इन्द्र सहायक होता है।

चर्षणी-सहः (६८)- शत्रुसेनाका पराभव इन्द्र करता है।

यः दस्योः हन्ता (२ ७)- दस्युओंका वध करनेवाला इन्द्र है।

य पर्वतेषु क्षियन्तं शंबरं यः आशयमानं अहिं दानुं जघान (२ ८)- जिस इन्द्रने पर्वतमें रहनेवाले शंबरको बलवान् अहिको और विश्राम करनेवाले दानुको मारा।

यः कर्शीभिः शंबरं पर्यतरत् (२ ९)- जिसने शक्तियोंसे शंबरको मारा ।

द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत् (२१)- आकाशमें ऊपर चढनेवाले रौहिणको इन्द्रने मारा ।

वाधे सुवृक्तिं प्र भरामि (११०)- शत्रुके बाधा पहुं चानेके लिये यह उत्तम स्तोत्र मैं बोलता हूं ।

घोरं करणा वरिष्ठं आगुरिं उग्रं ओजिष्ठं तवसं तरस्विनं (१११)- भेद कर्म करनेके समय वरिष्ठ शत्रुको मारने वाले उग्र, बलवान्, सामर्थ्यवान् शत्रुको इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

व्रतमतः आजसा ऊतिभिः सत्वने (११२)- नियमोंके अनुसार चलनेवाला इन्द्र अपने बलसे तथा संरक्षकके साधनोंसे उत्तम रीतिसे आगे बढता है ।

अभिभूतिः (१२१)- शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है ।

त्वोतासः यथं यमा वज्रं आददीमहि युधि स्पृधः संजयेम (४६१)- हे इन्द्र ! तेरे द्वारा रक्षित हुए हम मारक वज्र हाथमें धरते हैं और उससे युद्धमें स्पर्धा करनेवाले सब शत्रुओंको उत्तम रीतिसे जीतते हैं ।

वय अस्त्रभिः शूरेभिः त्वया युजा पृतन्यतः सासह्याम (४६१)— हम अस्त्र फेंकनेवाले शूरोंके साथ तथा तेरे साथ रहकर सैन्यसे हमला करनेवाले शत्रुको पराजित करेंगे ।

स्याजाः इन्द्रः पृतनाः स्याजन (५ ४)- अपनी निज शक्तिसे समर्थ हुआ इन्द्र शत्रुसेनाको जीतता है ।

पृतनासु त्वं आतिष्ठ (५ ४)— युद्धोंमें रथपर बैठ कर युद्ध कर ।

विश्वा शुधमा अभिभूय (५ ५)— सेनाके शत्रुसेनाका पराभव कर ।

पृतना-षाहः (३)— शत्रुको जीतनेवाला इन्द्र है ।

अभिक्षितिभिः तनिभिः पृतना जिगाय (४६)— इन्द्र भक्तोंके साथ रहकर शत्रुसेनाको इन्द्रने जीत लिया ।

इन्द्रः युधं बहुना आ पिबेश (४७)— इन्द्र शत्रुके शत्रुसेनामें घुसता है ।

सत्रासाहः (५)— इन्द्र वीरोंके साथ रहकर शत्रुको पराभूत करता है ।

शत्रुघ (५)— वह शत्रुको जीतता है ।

नदा-हा (५) वह शत्रुको मारनेवाला है ।

स पृथिवीं उत द्यां सत्राषाह (५)— जिस इन्द्रने पृथ्वीको [illegible] अर्थात् पृथ्वी परके शत्रुओंको पराभूत किया और आकाशके आनेवाले शत्रुओंको भी जीत लिया ।

त्वया युजा प्रति ब्रुवे (१ ४)— तेरे साथ रहनेसे-इन्द्रके साथ रहनेसे मैं शत्रुको योग्य उत्तर दे दूंगा ।

विश्वा स्त्रिधः अपभिन्धि (२७४)— सब शत्रुओंका नाश कर उनमें फूट डाल उनका संगठन न हो ऐसा कर ।

मायाभिः उत्सिसृपत् दस्यून् अवधूनुथाः (१८)- कपटोंसे व्यवहार करनेवालों शत्रुओंको इन्द्रने नीचे गिराया ।

बाधः मृधः परिजहि (२७४)— बाधा करनेवाले शत्रुओंको पराभूत कर ।

धृष्णो ! धृषत् (१२७)— हे शत्रुका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! तू शत्रुका धर्षण करनेवाला है ।

भूरि परा हन्ति (११९)— तू बहुत शत्रुओंको दूर करता है ।

धृषत् (११)— शत्रुका धर्षण करनेवाला इन्द्र है ।

तुषि मामः (११६)— इन्द्र बहुत शत्रुओंको नाश कर रखता है ।

न रिषा न दभ्मिः (११६)— उस इन्द्रको शत्रु नहीं दबा सकते ।

मिथूदृशा हि स्थापथ अनुरूपमाने सख्तौ (४८९)- मिथ्या आचरणके बिना जो व्यवहार करते हैं उनको तुमको ! वे न मानते हुए दोनों ही रहें । शत्रुओंके मिटानेके बाद करना यह एक युद्धनीति ही है ।

अपा देवहितं वाजं सनेम (१९२)— हमसे देवोंका हित करनेवाला बल प्राप्त करेंगे ।

स्त्रिधः अपव्रजति (४११)— इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है ।

अघृतः पार्यो सहसा सिषासति (४११)— शत्रुसे दबाया न जानेवाला इन्द्र हमारे धनोंको प्राप्त करता है ।

दुरवपाव्या दूरं पराति (४१२)— दुष्ट शत्रु दूर भाग जाते हैं ।

मर्धं परिक्रोश जहि (४१३)— वह आक्रोश करके शत्रु दुष्ट शत्रुओंको पराजित कर ।

कृत्रनाम्ब संनय (४१३)— निन्दक हमला करनेवाले शत्रुका नाश कर ।

उग्रं अपगीसहं त्वां हुमहे (५१)— अपनी सब शत्रुसेनाको जीतनेवाले तुझ इन्द्रको हम सहायार्थ बुलाते हैं ।

अभिभाम् तुमहाम् हपि (५११) शत्रुओंको हरण

कर। अर्थात् ऐसा कर कि शत्रुके हमसे बडे बलवाली न हों। उनको हम सहजहीसे दूर कर सकें ऐसा बल हममें बढाओ।

अपकृती मञ्जुरः (५१)— शत्रुका दूर करनेवाला इन्द्र पराजित है यह उत्तम ही है।

संवननेन-अमर्यकरः उभयावी (५१)— भेदोंको ठीक नष्ट करनेवाला इन्द्र दोनों पक्षोंको मिलाता है। दो पक्ष मिलनेसे शक्ति बढती है।

विश्वासां पृतनानां तरुता (५८८)— सब शत्रुकी सेनाको इन्द्र जीत लेता है।

वृत्रहा ज्येष्ठा गृणे (५८८)— वृत्रको मारनेवाला इन्द्र सचमुच श्रेष्ठ है ऐसी उसकी स्तुति होती है।

ब्रह्मद्विषः अप जहि (५९४)— ज्ञानका द्वेष करनेवाले सब शत्रुओंको पराजित कर।

अराधसः पणीन् वधा नि बाधस्व (५९५)— दान न देनेवाले वणिकोंको वधसे बाधा पहुंचाओ।

शत्रवे वधं अस्ता असि (६१६)— शत्रुपर तू वध करके बाण फेंकता है।

यः मा जिघांसति (६१६)— जो हमारा वध करता है वह हमारा शत्रु है।

अवानुदितः ब्रह्मद्विषः हन्ति (६२)— किसीके न कहनेपर भी इन्द्र ज्ञानके द्वेष करनेवालोंको मारता है।

त्वं तरुष्यतः तूर्व (६६४)— तू सब शत्रुओंको जीत।

ते मन्यवे विश्वा स्पृधः श्नथयन्त (६६५)— तेरे क्रोधके सामने सब शत्रु ढीले पडते हैं।

अस्य मन्यवे विश्वा विशः कृपयः सं नमन्ते (६७२)— इस इन्द्रके क्रोधके सामने शत्रुके सब सैनिक वा सब प्रजाजन नम्र होते हैं।

प्राचः अपाचः उदीचः अधराचः अ मित्रान् अप नुदस्व (७१५)— पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण दिशाके सब शत्रुओंको दूर हटाओ।

सर्वे इन्द्रस्य शत्रवो हताः (९११)— इन्द्रके सब शत्रु मारे गये।

सप्तभ्यः शत्रुभ्यः शत्रुः अभवः (९२१)— सातों प्रकारके शत्रुओंका तू शत्रु है। पहाडी, जलपरोंही, दस्युरोगी, रथी, जलचर, अन्तरिक्षचर, पहाडी ऐसे सात प्रकारके शत्रु होते हैं। इन सब शत्रुओंका पराभव इन्द्र करता है इस कारण इन्द्र बडा विजयी है।

त्वं शुष्णस्य पदने वधातिर (९२२)— तूने शुष्णको शस्त्रोंसे मारा है।

इन्द्र! अशत्रुः जज्ञिषे (६१५)— हे इन्द्र! तू शत्रुरहित उत्पन्न हुआ है।

अभ्रातृव्यः, अ-नाः अनु-आपिः (७४)— तेरे लिये कोई शत्रु नहीं, कोई दूसरा नेता नहीं, कोई मित्र नहीं। तू ही अपना भाई नेता और मित्र है। तू ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र वीर है।

युधा इत् आपित्वं इच्छसे (७४)— युद्धसे ही तू मित्रता करनेकी इच्छा करता है। युद्ध करके शत्रुको दूर करता है या बचते हैं वे तुम्हारे मित्र होकर रह सकते हैं।

इस तरह इन्द्र शत्रुओंके साथ युद्ध करता है, शत्रुओंको दूर करता है प्रजाका संरक्षण करता है। युद्ध करना और मानवोंका संरक्षण करना ये इसके मुख्य कार्य हैं। इस कारण हम इस इन्द्रको युद्धमंत्री अथवा संरक्षण मंत्री कह सकते हैं।

इन्द्रने अनेक राक्षसोंको मारा है। उनमेंसे कई आजके देशोंसे संबंध रखनेवाले हैं ऐसा दीखता है। असुर ये असीरियन दीखते हैं रक्षस् या राक्षस ये रशियन प्रतीत होते हैं अहि ये अफगाणिस्तान-अहिवलस्तानके होंगे बल ये बलुची होंगे वृत्र ये इसमें वर्तुं प्रांत है वहांके होंगे। इस तरह ये इन्द्रके शत्रु थे। ये उपद्रवी थे। इनके नगर किले थे। उनको इन्द्रने तोडा और अपने अनुयायियोंके रहनेके लिये वे नगर दिये।

यहांतक जो वेदवचन दिये हैं उनपर हमने टीका टिप्पणी बिलकुल की नहीं। वे वचन इतने स्पष्ट हैं कि उनके पढनेसे इन्द्र युद्ध करनेवाला, शत्रुका पराभव करनेवाला अपनी प्रजाका रक्षण करनेवाला है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

आखंडला (११)— शत्रुके टुकडे करनेवाला इन्द्र है।

पृतनाषाट् (१५)— शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला।

वनेषु उपायन् व्यंस अहन् (४५)— वनोंको आश्रय करनेवाले उन बडी छातीवाले शत्रुको मारा।

अन्या सखया चरायति मायिनं अशुषं नि बर्हयः (११५)— शत्रुको भगानेवाले मित्रके साथ रहकर दूर रहनेवाले कपटी अशुषको इन्द्रने मारा।

अतिथिग्वस्य वर्तनी करञ्जं उत पर्णयं त्वं तेजिष्ठया वधीः (११६)— अतिथिग्वके मार्गमें आकर विरोध करनेवाले करंज और पर्णयको तूने तेज शस्त्रसे मारा।

शत्रुतूर्याय बृहतीं अमृध्रां संपदं इयक्षि नः आ भर (१८१)— शत्रुको मारनेके लिये बडी संयममें रहने वाली कल्याण करनेवाली धनसंपत्ति हमें भर दो।

इस प्रकार इन्द्रके वीर्यके वर्णन देखने योग्य हैं। अब इसके शत्रुके विषयमें थोडासा देखिये—

वृत्र वध

वृत्र-हा (१९)— वृत्रको मारनेवाला इन्द्र है।

वृत्राणि जिघ्नते (१५)— वृत्रोंको इन्द्र मारता है।

वृत्राणि जहि (१९)— वृत्रोंको जीत।

वृत्राणि घ्नन् (५१)— वृत्रोंको मारनेवाला इन्द्र है।

वृत्रहा अहिं अवधीत् (३१)— वृत्रवध करनेवाले इन्द्रने अहिको मारा।

इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान् (५९)— इन्द्रने वृत्रोंको अनुपम रीतिसे मार दिया।

वार्त्रहत्य (१ ५)— वृत्रवध करनेका कर्म।

दश सहस्राणि वृत्राणि अप्रति नि बर्हयः (१२४)— दस हजार वृत्रोंको अप्रतिम रीतिसे इन्द्रने मारा।

वर्च अर्बुदं नुनुदे (१७४)— वर्च असुरको नीचे गिराया।

नमुचेः शिरः अपां फेनेन उदवर्तयः (१७८)— नमुचि राक्षसका सिर जलके फेनसे उड़ा दिया।

विश्वाः स्पृधः अजयः (१७८)— सब शत्रुओंको जीत।

आयसः हरिशिप्रः अहिं तुदत् (१८५)— फौलादके कवचवाले सुनहरी साफेको बांधनेवाले इन्द्रने अहि नामक शत्रुको मारा।

अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात् (२)— अहिको मारकर सात नदियोंको बहाया।

किं स्विदस्य हरयः येन तुम्रता तुम्रन् वृत्रस्य मर्म विदत् (२२१)— अनेक भूमियोंमें रहनेवाले इस इन्द्रने वज्र फेंकनेके समय वृत्रका मर्मस्थान कहां है यह जाना। शत्रुके मर्मस्थानको जानकर उसी स्थानपर आघात करना योग्य है।

आद्रिं अक्षा पदां शिरो विध्यत् (२२२)— वज्रको शत्रुपर फेंकनेवाले इन्द्रने पदाको बीचमें बींधा।

अस्य वाचसा वज्रेण भुवनस्य वृत्रं इन्द्रः विपृक्षत् (२२५)— अपने बलसे वज्रसे करते हुए इसके इन्द्रने टुकडे कर डाले।

देववीती त्वं नृभिः भूरीणि वृत्राणि हंसि (२४९)— युद्धमें तू वीरोंके साथ रहकर बहुत वृत्रोंको मारता है।

वृत्रहत्ये शिवः भूः (२५२)— वृत्रका वध करनेके समय तू सबका कल्याण करनेवाला हो।

दस्युहा अभवः (२७२)— दस्युओंको मारनेवाला तू हुआ है।

दाशुषे वृत्राणि हन्सि (१२१)— दाताके हितके लिये शत्रुओंको तू मारता है।

एकः वृत्राणि जिघ्नसे (२७५)— तू अकेला ही वृत्रोंको मारता है।

वृत्रहा जनुषा परि (९४१)— जन्मसे ही इस वृत्रोंको मारता है।

अपः वव्रिवांसं वृत्रं परा हन् (५११)— जलप्रवाहको रोकनेवाले वृत्रको इन्द्रने मारा।

अप्रतिष्कुतः इन्द्रः दधीचो अस्थभिः नवतीः नव वृत्राणि जघान (२९)— अपराजित इन्द्रने दधीचीकी अस्थियोंसे बनाये वज्रसे निन्यानवे वृत्रोंको मारा।

दोधतः वृत्रस्य शिरः वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण वि बिभेद (९७४)— कांपनेवाले वृत्रका सिर बलवान सैकडों धारवाले वज्रसे तोड दिया।

इन्द्रके शस्त्रास्त्र

इन्द्रके शस्त्रोंमें वज्र मुख्य है। यह फौलादका बना है, अनेक तीक्ष्ण धाराएं इसको होती हैं और लगनेसे शब्द होता है। वज्रके आघातसे इन्द्रके सब शत्रु मर जाते हैं और इन्द्र विजयी होता है ऐसा यह वज्र है। यह हाथमें पकड़ा जाता है और शत्रुपर फेंका जाता है। इस वज्रके विषयमें कुछ वर्णन अब देखिये—

इन्द्रस्य हिरण्ययः हर्यतः वज्रः (७)— इन्द्रका चमकनेवाला सोनेकी वज्र है। यह वास्तवमें फौलादका होता है पर उसपर सुनहरी नक्काशी होती है।

त्वं महान्तं पर्वतं पर्वशः वज्रेण कर्त्त (७४)— तूने– इन्द्रने महान् पर्वतके वज्रसे टुकडे किये।

वज्रः हरितः रंहा न विष्वक् (१८५)— यह सुवर्णका वज्र निकले शत्रुको वेग करता है।

हरिं भरः सहस्रशोकाः अभवत् (१८९) इन्द्रके भरा यह वज्र सहस्रों दीप्तियोंवाला हो गया है।

वज्रहस्तः (२११)— इन्द्र हाथमें वज्र लेता है।

सा अस्य वज्रः हरितः य आयसः हरिः निकामः हरिः आ गभस्त्योः द्युम्नी सुशिप्रः हरिमन्युसायक इन्द्रे हरिता रूपा मिमिक्षिरे (१८४)— यह इस इन्द्रका वज्र शोभेके फौलादका है यह प्राण हरण करनेवाला वज्र इस इन्द्रको प्रिय है यह इन्द्र शत्रुके प्राण हरण करनेवाले

वज्रको हाथोंमें पकड़ता है, वह तेजस्वी उत्तम धाम बांधनेवाला इन्द्र शत्रुके प्राण हरण करनेवाले चोपड़े फेंके जानेवाले वज्रको धारण करता है उस इन्द्रमें सारे सुन्दर रूप मिले हैं ।

इस वचनमें कहा है कि वह इन्द्रका वज्र फौलादका है अतः पीला है इसपर सुनहरी नक्शी है । इन्द्र इसको दोनों हाथोंसे किसी समय बायें हाथसे और किसी समय सीधे हाथसे पकड़ता है वह इन्द्र शत्रुपर मारनेके लिये (सायकं) बाण भी फेंकता है ।

अस्मै इन्द्राय त्वष्टा स्वर्यं स्वपस्तमं वज्रं ततक्ष (२२१)— इस इन्द्रके लिये युद्ध करनेके हेतुसे दिव्य तथा उत्तम कार्य करनेवाला वज्र त्वष्टाने निर्माण करके दिया । त्वष्टा वह कारीगर है जो वज्र बाण रथ आदि बनाता है ।

अपां धरुण्ये तिरश्चा वज्रं प्र भर (२२७)— जल-प्रवाहोंके प्रवाहित होनेके लिये इसपर वज्रको तिरछा मार ।

दक्षिण हस्ते वज्रं धीष्व (१४)— दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर ।

हर्यश्वो वज्रः हस्ताय प्रति धायि (५८१)— हर्षणीय वज्र हाथमें लिया है ।

ओजसा वज्रं शिशाधि ( )— तू अपने बलसे वज्रको तीक्ष्ण बना ।

सत्रोपस्थं वज्रं बाह्वोः बिभर्षि ( )— तू अपने कर्ममान् तेजस्वी वज्रको बाहुओंसे धारण करता है ।

गभस्त्योः वज्रः मिम्यक्ष ( )— हाथोंमें वज्र चमकता है ।

स्थिर वज्रहस्त अद्रिवः (१८५)— आश्चर्यकारक वज्र हाथमें धारण करनेवाला पहाडी किलेमें रहनेवाला इन्द्र ।

अस्ता ( )— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेमें कुशल इन्द्र है ।

ते अंकुशः दीर्घः अस्तु (१७)— तेरा अंकुश बड़ा हो ।

इन्द्रस्य मही सुपर्णा सुमिषः शतानीका हेतयः (२१५)— इस इन्द्रकी बडी सुन्दर उत्तम इच्छाएं हैं और सैकडों नोकोंवाले उसके पास शस्त्र हैं ।

इस तरह इन्द्रके शस्त्रोंका वर्णन है । सीसेकी गोली भी वह मारता था ऐसा अगले मंत्रोंसे प्रतीत होता है—

सीसं न इन्द्रः प्रायच्छत् तदंग यातुचातनम् ।
अथ° १।१६।२

इन्द्रने मुझे सीस (सीसेकी गोली) दी है हे प्रिय ! वह सीसा यातना देनेवाले दुष्ट शत्रुओंको दूर करनेवाला है ।

इदं विष्कंधं सहते इदं बाधते अत्त्रिणः ।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥
अथ° १।१६।३

यह सीसा शत्रुको पराभूत करता है बाधक शत्रुओंको यह दूर करता है । जो (पिशाच्याः) रक्त पीनेवालोंकी जातियां हैं वे सब जातियां इस सीसेसे पराभूत होती हैं ।

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नो असो अवीरहा ॥
अथ° १।१६।४

यदि तू हमारी गौको मारेगा यदि घोडेको मारेगा यदि मनुष्यको मारेगा तो उस दुष्टको मैं सीसेसे वींधूंगा जिससे हमारोंमें कोई वीरोंको मारनेवाला नहीं रहेगा ।

यहां " सीसेन विध्यामः " सीसेसे वींधते हैं ऐसा कहा है वह सीसेकी गोलीसे वींधना ही होगा पर बंदूकका नाम वेदमें नहीं मिला । तो वह सीसेसे वींधना किस तरह होता है इसकी खोज पाठक करें । परन्तु यहां " विध्यामः " वींधनेका अर्थ स्पष्ट है । वज्र भी दूरसे फेंका जाता था बाण भी दूरसे फेंके जाते थे सीसेसे वींधना भी दूरसे ही होता था ।

सैन्य बल

इन्द्रके पास सहस्रोंका सैन्य सदा तैयार रहता था ।

यदा अनीकं शवसा प्र दविद्युतत् ( )— इसका सैन्य बलसे चमकता रहता है ।

वाजिनीवसुः (१४१)— सैन्यके साथ रहनेवाला इन्द्र है । इन्द्रके साथ वीरोंकी सेना तैयार रहती है ।

शतानीकः (२२१)— सैकडों सैनिक इन्द्रके साथ रहते हैं ।

हे वीर ! सेन्यः असि (२२२)— हे वीर इन्द्र ! तू सेनाके साथ रहता है तू सेनाके साथ कार्य करता है सेनाका संचालन तू करता है ।

इन्द्र वीर है

इन्द्र वीर है, क्योंकि वह युद्ध करता है और विजय प्राप्त करता है । अतः कहा है—

सुतमः (२१४)— वेताओंमें श्रेष्ठ वीर इन्द्र है ।

सत्रासहः वीरः (४ २) सदा जयनेवाला वीर इन्द्र है ।

शूरः रणे स्थिरः भव (१६८)— इन्द्र शूर है और युद्धमें अपने स्थानमें स्थिर रहता है भाग नहीं जाता अथवा चंचल भी नहीं होता ।

पुरुवीरः (२१४)— इन्द्र बहुत वीरोंके साथ रहनेवाला बडा वीर नेता है ।

उग्रः (११)— वह उग्रवीर है ।

वीरयुः असि (२६८)— वीरोंको योग्य स्थानमें योजना पूर्वक रखनेवाला इन्द्र है ।

मानुषीणां क्षितीनां उत दैवीनां विशां पूर्वयावा असि (४४)— मानवी प्रजाओंमें तथा दैवी प्रजाओंमें यह इन्द्र पहिले शत्रुपर हमला करनेके लिये आगेवाला है।

सत्राय पस्ये इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा धियः मर्मृजन्त (२१७)— शाश्वत कालसे स्वामित्व करनेवाले इन्द्रकी हृदयसे मनसे तथा बुद्धिसे स्तुति करके अपनी बुद्धियोंको पवित्र करते हैं।

नृपतिः (६ ३)— मनुष्योंका पालनकर्ता इन्द्र है।

नृणां नर्यः नृतमः क्षपावान् (४९७)— नेताओंमें मुख्य नेता मानवोंका उत्तम भद्र संचालक पृथिवीका राजा यह है।

त्रिशोकः रथः शत नून् अनु आवहत् (४१८)— तीन ज्योतियोंवाला उस इन्द्रका रथ सैकडों नेताओंके साथ ले जाता है।

स्वपतिः इन्द्रः (६ २)— अपना स्वामी इन्द्र है।

त्वं ईशिषे (६ ६)— तू सबपर स्वामित्व करता है।

इन्द्रः विश्वा भूतानि येमिरे (७१७)— इन्द्र सब भूतोंको स्वाधीन रखता है।

जगतः तस्थुषः स्वर्दृशं ईशानं अभिनोनुमः (७२२)— जंगम तथा स्थावर विश्वके तपस्वी स्वामी इन्द्रको हम नमन करते हैं।

त्वावान् अन्यः न दिव्यः न पार्थिवः न जातः न जनिष्यते (७२१)— तेरे जैसा दूसरा कोई न दिव्य, न पार्थिव न हुआ और न होगा। ऐसा तू अद्वितीय है।

जेता अभवस्य च मन्तवे (१७९)— विजय पाने और शत्रुका विनाश करनेके लिये तू है।

त्वं अभिभूः असि (१८५)— तू सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

सत्रासाह् (४९८)— तू विजयी है।

अभिभूतिः (७१५)— तू सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला है।

प्रजाका पालक इन्द्र

इन्द्र प्रजाका उत्तम पालन करता है प्रजाका पालन करनेके लिये ही वह युद्ध आदि करता है इसलिये उसके वर्णनमें कहा है—

विश्पतिः (३३)— इन्द्र प्रजाका पालनकर्ता है।

सत्पतिः (३४)— वह उत्तम पालक है।

राजा (६)— वह सब प्रजाका रक्षण करनेवाला है।

चर्षणी धृतः (१ ८)— यह प्रजाजनोंका धारण करनेवाला है।

चर्षणिप्रा इन्द्रः महा द्युम्ना देवेभ्यः वरिवः चकार (४९)— प्रजापालक इन्द्रने बडे युद्धसे देवोंके लिये श्रेष्ठ धन प्राप्त करके दिया।

सखिभ्यः सखा (१२)— मित्रोंके लिये वह उत्तम मित्र है।

चर्षणीनां पतिः (१७)— वह प्रजाओंका स्वामी है, वह कर्मोंका स्वामी है।

ज्येष्ठराज (१७९)— यह इन्द्र श्रेष्ठ राजा है।

जनानां अर्यः (१४३)— तू जनोंका स्वामी है।

स त्वं राजासि (१७१)— वह तू शासन करता है।

यः एक इत् विदयः कृष्टीः अभ्यस्ति (४ ९)— जो अकेला ही सब प्रजाजनोंपर अधिकार रखता है।

चर्षणीनां ईशानः (४११)— प्रजाजनोंका वह स्वामी है।

दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः (२४)— दिव्य जनोंका और पार्थिव जगत्का इन्द्र राजा हुआ है।

चर्षणीनां सम्राजं सुवाहं महिष्ठं नरं इन्द्रं गीर्भिः स्तोत (१७७)— मानवोंके राजा शत्रुके वीरोंको जीतनेवाले बडे नेता और इन्द्रकी स्तुति कर।

विश्वा पृतना अभिभूतरं नरं इन्द्रं सजूः ततक्षुः राजसे जजनुः च (३३२)— सब शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले नेता इन्द्रको सबने मिलकर निश्चित किये उत्तम पालन करनेके कार्यमें लगाया।

पञ्चक्षितीनां चर्षणीनां वसूनां इन्द्रः (७९६)— पांचों मानवोंके धनोंका इन्द्र राजा हुआ है।

चायस्य दीर्घश्रवसः पतिः (४४४)— बडा और श्रेष्ठ स्वामी इन्द्र है।

शाक्रः विश्वानि मर्त्यानि विद्वान् (५ १)— समर्थ इन्द्र मानवोंके हितके सब कर्म जानता है।

शवसा पतिः अभवत् (५११)— सामर्थ्यसे वह राजा हुआ है।

क्षितीनां वृषभः (५१४)— सब मनुष्योंमें वह बलिष्ठ है।

त्वं जनानां राजा (५९६)— तू जनोंका राजा है।

विश्वा भुवः आभुवः (६ १)— तू अपना प्रभाव सब स्थानोंपर जमाता है।

विश्वा जातानि ओजसा अभिभूः असि (६ १)- तू सब शत्रुओंका अपने सामर्थ्यसे पराभव करनेवाला है।

यहां तथा अन्य अनेक स्थानोंमें 'जनानां राजा। क्षितीनां वृषभः। पञ्चक्षितीनां इन्द्रस्पति' आदि वचनोंमें इन्द्रको मानवोंका राजा कहा है। यह संरक्षण भी मानवोंका ही करता है याचक आवेशसे उसको अपनी रक्षाके लिये बुलाते हैं उनके सहाय्यार्थ वह उनके पास जाता है उनका रक्षण करता है तथ मानवोंकी पालना करता है। इस तरह इन्द्र सदा मानवोंका हित करता रहता है।

स्वस्तिदा विशां पतिः वृत्रहा वि मृधो वशी।
वृषा इन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभय-करः ॥ १ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः।
अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन् अमित्रस्य अभिदासतः ॥ ३ ॥
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ४ ॥

अथर्व १।२१

(विशांपतिः स्वस्तिदा) प्रजाओंका पालक राजा कल्याण करनेवाला हो (वृत्रहा) शत्रुको मारनेवाला (वि मृधः वशी) हिंसकोंको वशमें करनेवाला (सोमपा) सोमपान करनेवाला (अभयं-करः) और प्रजाको अभय करनेवाला है ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (नः मृधः वि जहि) हमारे शत्रुओंको मार डाल (पृतन्यतः नीचा यच्छ) सेना द्वारा हमपर हमला करनेवालोंको नीचे रखो। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें दास बनानेकी इच्छा करता है उसको (अधमं तमः गमय) हीन अंधकारमें पहुंचाओ ॥ २ ॥

(रक्षः मृधः वि जहि) राक्षसोंको तथा हिंसकोंको मार डाल (वृत्रस्य हनू रुज) शत्रुके जबडोंको तोड दे। हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुनाशक इन्द्र (अभिदासतः अमित्रस्य मन्युं वि रुज) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके क्रोधको तोड दे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र! (द्विषतः मनः अप) द्वेषीका मन नष्ट कर दे (जिज्यासतः वधं अप) आयुका नाश करनेवालेके शस्त्र दूर कर (महत् शर्म वि यच्छ) हमें बडा सुख दे (वधं वरीयः यावय) वध हमसे दूर रहे ॥ ४ ॥

इन्द्रका वर्णन इन मंत्रोंमें देखने योग्य है।

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न।
बिभेद वलं भृगुर्न ससहे शत्रून् ॥ ३ ॥
मत्स्वेद महे रणाय ॥ ४ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ॥ ६ ॥

अथर्व २।५

(यतीः न) यत्न करनेवाले पुरुषके समान (यः तुराषाट् मित्रः इन्द्रः) शीघ्र त्वरासे शत्रुपर हमला करनेवाले मित्र इन्द्रने (वृत्रं जघान) वृत्रको मारा (वलं बिभेद) बलका नाश किया और (शत्रून् ससहे) शत्रुओंका पराभव किया ॥ ३ ॥

(इन्द्र) यहां (महे रणाय मत्स्व) बडे युद्धके लिये आनंदित हो ॥ ४ ॥

(पर्वते शिश्रियाणं) पर्वतके आश्रयमें रहनेवाले (अहिं अहन्) अहिको मारा। (अस्मै त्वष्टा स्वर्यं वज्रं ततक्ष) इस इन्द्रके लिये त्वष्टाने दिव्य वज्र तैयार करके दिया था ॥ ६ ॥

जयन् क्षेत्राणि सहसायमिन्द्र।
कृण्वानो अन्यान् अधरान् सपत्नान् ॥

अथर्व २।१९।२

(सहसा) अपने बलसे (क्षेत्राणि जयन्) क्षेत्रोंको जीतता है और (अन्यान् सपत्नान् अधरान् कृण्वन्) दूसरे शत्रुओंको नीचे दबा देता है।

अमित्रसेनां मघवन् अस्मान् शत्रूयतीमभि।
युवं तामिन्द्र वृत्रहन् अग्निश्च दहतं प्रति ॥

अथर्व ३।१।३

हे (मघवन्) इन्द्र! हमारे साथ शत्रुता करनेवाली जो शत्रुकी सेना हमपर आक्रमण करनेके लिये आ रही है (ताम्) उस शत्रुकी सेनाको हे शत्रुको मारनेवाले इन्द्र और अग्नि! तुम दोनों मिलकर उस सैन्यको जला दो।

प्र ते वज्रः प्रमृणन् एतु शत्रून्।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचः ॥ अथ ३।१।४

तेरा वज्र शत्रुओंको मारता हुआ आगे बढे। पीछे रहनेवाले साथ चलनेवाले और आगे होनेवाले शत्रुको मार डाल।

इन्द्र सेनां मोहय अमित्राणाम्।
ताम् विषूचो विनाशय ॥ अथ ३।१।५

हे इन्द्र! शत्रुकी सेनाको मोहित कर और उनको चारों ओरसे विनाश कर।

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्तु ओजसा।
चक्षूंषि अग्निः आदत्तां पुनरेतु पराजिता ॥

अथ ३।१।६

इन्द्र शत्रुकी सेनाको मोहित करे, सैनिक उनको वेगसे मारें अग्नि उनकी आंखें बंद करे और फिर वह पराजित हो जावे।

३ (अथर्व स्वा. काण्ड १)

यो विश्वजित् विश्वभृत् विश्वकर्मा। (अथ ५।११।१)
जो सबको जीतनेवाला सबका भरण पोषण करनेवाला और सब कर्म करनेवाला है।

यो दासवर्णं वर्णं मावरोत्। (अथ ४।२४।२)—
जो दासोंको बन्धमें डालता है।

यः सम्राजावपति सं युधे वशी। (अथ ५।२४।७)—
जो स्वाधीन रहनेवाला युद्धोंके प्रति ले जाता है।

अनमित्रं नो अधरादनमित्रं न उत्तरात्।
इन्द्रानमित्रं नः पश्चात् अनमित्रं पुरस्कृधि॥
अथ. ६।४०।२

हे इन्द्र! नीचेसे ऊपरसे पीछेसे और आगेसे हमें शत्रुरहित कर।

इन्द्रश्चकार प्रथमं नैर्हस्तमसुरेभ्यः। (अथ ६।६५।३)
इन्द्रने प्रथम असुरोंके लिये निहस्तपन अर्थात् निर्बलपन किया। इससे असुर पराभूत हुए।

निर्हस्तः शत्रुः अभिदासन्नस्तु ये सेनाभिर्युधमायन्त्यस्मान्। समर्पयेन्द्र महता वधेन द्रात्वेषामघहारो विविद्धः॥ १॥
आतन्वाना आयच्छन्तोऽस्यन्तो ये च धावथ।
निर्हस्ताः शत्रवः स्थनेन्द्रोऽद्य पराशरीत्॥ २॥
निर्हस्ताः सन्तु शत्रवोऽङ्गैषां म्लापयामसि।
अथैषामिन्द्र वेदांसि शतशो वि भजामहे॥ ३॥
अथ ६।६६

(यः अभिदासन् शत्रुः निर्हस्तः अस्तु) हमारेपर हमला करनेवाला शत्रु हस्तरहित हो। (ये सेनाभिः अस्मान् युधं आयन्ति) जो सेना लेकर हमारे साथ युद्ध करनेके लिये आते हैं हे इन्द्र! (महता वधेन समर्पय) उनको बडे वधके साथ मार डाल। (एषां अघहारो विविद्धः द्रातु) इनका पापी वीर विद्ध होकर भाग जावे॥ १॥

हे (शत्रवः) शत्रुओ! (ये आतन्वानाः) जो तुम धनुष्य तानकर (आयच्छन्तः अस्यन्तः च धावथ) खींचते हुए और बाण फेंकते हुए चले आते हो तुम (निर्हस्ताः स्थन) हस्तहीन हो जाओ (इन्द्रः अद्य वः पराशरीत्) इन्द्र आज ही तुम्हें मार डाले॥ २॥

(शत्रवः निर्हस्ताः सन्तु) सब शत्रु हस्तरहित हो जांय (एषां अङ्गा म्लापयामसि) इनके अंगोंको हम निर्बल बना देते हैं। हे इन्द्र! (एषां वेदांसि) इन शत्रुओंके धनोंको (शतशः वि भजामहे) सैकडों प्रकारसे आपसमें बांट देते हैं॥ ३॥

इस सूक्तसे पता लगता है कि शत्रुको पराजित करके शत्रुके धन धान्य आपसमें बांट लेते थे।

परि वर्त्मानि सर्वत इन्द्रः पूषा च सस्रतुः।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां परस्तराम्॥ १॥
अथ ६।६७

इन्द्र और पूषा (सर्वतः वर्त्मानि परि सस्रतुः) सब मार्गोंमें भ्रमण करें जिससे (अमित्राणां सेनाः) शत्रुओंकी सेना (परस्तरां मुह्यन्तु) दूरतक मोहित हो जाय।

इससे पता लगता है कि इन्द्रके साथ पूषा भी युद्धमें जाता था।

निरमुं नुद ओकसः सपत्नो यः पृतन्यति।
नैर्बाध्येन हविषेन्द्र एनं पराशरीत्॥ १॥
परमां तं परावतमिन्द्रो नुदतु वृत्रहा।
यतो न पुनरायति शश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ २॥
अथ ६।७५

(यः सपत्नः पृतन्यति) जो शत्रु सेनाद्वारा आक्रमण करता है (अमुं ओकसः निः नुद) उसको घरसे निकाल दो (एनं नैर्बाध्येन हविषा) इस शत्रुको बाधकारी समर्पणसे (इन्द्रः पराशरीत्) इन्द्र मार डाले॥ १॥

(वृत्रहा इन्द्रः) शत्रुनाशक इन्द्र (तं परमां परावतं नुदतु) उस शत्रुको दूरसे दूरके स्थानको भगा दे (यतः शश्वतीभ्यः समाभ्यः) जिससे शाश्वत कालतक (पुनः न आयति) फिर नहीं आ सके॥ २॥

इस तरह शत्रु बहुत दूर हो इसलिये उपाय किये जाते थे।

इन्द्रो जयाति न पराजयाता अधिराजो राजसु राजयाति। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह॥ १॥
त्वमिन्द्राधिराजः श्रवस्युस्त्वं भूः अभिभूतिर्जनानाम्। त्वं दैवीर्विश इमा वि राजायुष्मत् क्षत्रमजरं ते अस्तु॥ २॥
प्राच्या दिशस्त्वमिन्द्रासि राजोतोदीच्या दिशो वृत्रहञ्छत्रुहोऽसि। यत्र यन्ति स्रोत्यास्तज्जितं ते दक्षिणतो वृषभ एषि हव्यः॥ ३॥
अथ ६।९८

(इन्द्रः जयाति) इन्द्रकी जय होती है (न पराजयाति) कभी पराजय नहीं होती। (राजसु अधिराजः राजयाति) राजाओंमें जो सबसे श्रेष्ठ अधिराजा होता है उसकी शोभा बढती है। हे इन्द्र! हे राजा (इह चर्कृत्य ईड्यः) यहां शत्रुका नाश करनेके कारण स्तुतिके योग्य हुआ है (वन्द्यः उपसद्यः नमस्यः भव) वन्दनीय पास जाने योग्य और नमस्कार करने योग्य हो॥ १॥

हे इन्द्र! (त्वं अधिराजः) तू राजाधिराज है (श्रवस्युः) कीर्तिमान् है (त्वं जनानां अभिभूतिः भूः) तू जनताओंका पराजितकर्ता है (त्वं इमाः दैवीः विशः विराज)

तू इन दिव्य प्रभावोंपर विराजमान हो (ते आयुष्मत् सर्वं अजरं अस्तु) तेरा दीर्घायु युक्त बलप्रदेश अजरामर हो ॥ १ ॥

(हे इन्द्र ! त्वं प्राच्याः दिशः राजा असि) हे इन्द्र ! तू पूर्व दिशाका राजा है हे (वृत्रहन्) शत्रुको मारनेवाले ! (उत उदीच्या दिशः शत्रुहा असि) और तू उत्तर दिशाके शत्रुओंका नाश करनेवाला है (यत्र स्रोत्या यन्ति) जहांतक नदियां जाती हैं वहांतकके प्रदेशको (तत् ते जितं) तूने जीत लिया है तथा (वृषभः हव्यः दक्षिणतः एषि) बलवान् और आदरसे पुकारने योग्य होकर दक्षिण दिशामें तू जाता है ॥ २ ॥

इस तरह इन्द्रके पराक्रमोंका वर्णन अथर्ववेदमें है ।

> इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य यावच्छ्रेष्ठाभिर्म
> घवन् शूर जिन्व । यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट
> यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ॥ १ ॥ अथ ७।३१

हे इन्द्र ! (यावत् श्रेष्ठाभिः बहुलाभिः ऊतिभिः) अति श्रेष्ठ विविध प्रकारके संरक्षणोंसे (अद्य नः जिन्व) आज हमें जीवित रख। हे (मघवन् शूर) धनवान् शूर वीर ! (यः नः द्वेष्टि) जो हमारा द्वेष करता है (सः अधरः पदीष्ट) वह नीचे गिर जाय। (यं उ द्विष्मः) जिसका हम सब द्वेष करते हैं (तं उ प्राणः जहातु) उसको प्राण छोड़ देवे ॥ १ ॥

इन्द्रके सेनापतिके कार्य बहुत हैं इस विषयमें ऐसे मंत्रोंमें जो वर्णन है वह ऐसे मंत्रोंमें देखा जा सकता है ।

> इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।
> यथा हनाम सेना अमित्राणां सहस्रशः ॥ १ ॥
>
> अथ ८।८

(पुरंदरः) शत्रुके किलोंको तोड़नेवाला शूर बलवान् (मन्थिता इन्द्रः) मन्थन करनेवाला इन्द्र (मन्थतु) शत्रुकी सेनाका मन्थन करे (यथा अमित्राणां सहस्रशः सेनाः) जिस प्रकार शत्रुओंके हजारों सैनिकोंको (हनाम) हम मारें ।

> इन्द्र जालं बृहत् इन्द्र शूर सहस्रार्घस्य शत
> वीर्यस्य । तेन शतं सहस्रं अयुतं न्यर्बुदं जघान
> शक्रो दस्यूनां अभिधाय सेनया ॥ ७ ॥

हे शूर इन्द्र ! (सहस्रार्घस्य शतवीर्यस्य बृहतः ते) हजारोंद्वारा पूजित सैकड़ों सामर्थ्योंवाले बड़े तुझ इन्द्रका (बृहत् जालं) बड़ा जाल है। (तेन अभिधाय) उस जालसे घेरकर तथा (सेनया) अपनी सेनाके द्वारा (शक्रः) समर्थ इन्द्र (दस्यूनां शतं जघान) शत्रुओंके सैकड़ों हजारों लाखों और करोड़ों सैनिकोंको मारता है। ॥ ७ ॥

यहां हजारों लाखों शत्रुओंको मारनेका उल्लेख है। अर्थात् ऐसी बड़ी लड़ाइयां इन्द्र जीतता है, इतना यह स्पष्ट है ।

इन्द्रकी कपटनीति

इन्द्र युद्धमें शत्रुओंसे कपटनीति भी बर्तता था इस विषयमें कहा है—

अभिभूति-ओजाः मायाभिः दस्यून् (४८)— शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्यसे युक्त इन्द्रने कपट प्रयोगोंसे भी शत्रुओंको मारा है। अर्थात् कपटी शत्रुओंसे यह इन्द्र कपटका प्रयोग भी करता था ।

मूरदेवान् मूरधाचः सं पिपेष (४८)— कपटसे क्रियाओंका वध इन्द्रने पीस डाला ।

जो शत्रु कपट करते थे उनको कपटसे वह मारता था ।

अर्पनीतिः मायिनां प्र अभिनात् (४५)— कपट नीतिमें कुशल इन्द्र कपटी शत्रुओंको मारता है। अर्प (अर्पम्)– कपट, कुटिलता माया। इसका उपयोग करके इन्द्र दुष्टोंको दबाता था। अर्पे नीतिः (४५)– कपटनीतिमें कुशल वीर ।

शार्धनीतिः (४५)— सेनाके दलोंको चलानेकी नीति जिसकी उत्तम है। सैन्यके दलोंका उत्तम उपयोग बड़े चातुर्यसे करनेका नाम शार्ध-नीति है ।

मानवोंपर दया

इन्द्र मानवोंपर दया करता है इस विषयमें—

एकः देवत्रा मर्तान् दयसे (५८) देवोंमें इन्द्र अकेला ही मनुष्योंपर दया करता है ।

जनोः वृषा (४१)— मनुष्योंको बचानेवाला इन्द्र है। मानवोंका कल्याण करनेके लिये इन्द्र सदा दक्ष रहता है ।

मघवा विश्वा विश्वं पर्यशायत (११)— धनवान इन्द्र प्रत्येक प्रजाजनकी देखभाल करता है ।

वृषा जनानां श्रेना भवचाकशत् (११)— बलवान् इन्द्र लोगोंकी प्रार्थना सुनता है जनताका कहना सुनता है और उनके हितके कार्य किया करता है ।

इन्द्रका दातृत्व

इन्द्र धन आदि देता है इस विषयमें ये वर्णन हैं—

अश्वस्य गोः यवस्य वसु नः पुरः असि (१२)– घोड़े, गौवें जौ और धन देनेवाला इन्द्र है ।

विश्वानि पात्रूमिः एव रातिः पापि (११९)– धन धारण करनेवालोंने तेरेसे दान प्राप्त किया है ।

दाशुषे अर्थ महमानं गार्य दि (८८)— दाताको इस भेद इन्द्रने बड़ा कर दिया है ।

सधमादं मघवा इन्द्रः सूरिभिः सा चितिष्ठति (४८४)— विख्यात दानी धनवान् इन्द्र ज्ञानियोंके साथ बैठता है।

अरातयः सस्तां रातयः बोधन्तु (४९)— कंजूस सो जांय दानी जागते रहें।

वसु प्रयच्छसि (१७)— तू धन देता है।

अश्वावत् गोमत् यवमत् उत्सधारा इव दोहसे (१९)— घोडे गौवें जौके युक्त धन बडी धारासे देता है।

सुदानुः (१८)— उत्तम दाता इन्द्र है।

विश्ववसुः (४१)— धनका दान करनेवाला इन्द्र है।

भूरिदात्रः (४१)— बड़ा दानी।

यस्य दुर्धरं राधः (६१)— जिसका अप्रतिम दान है।

प्रभूवसुः (७२)— बहुत धनका दाता।

धनञ्जयः (१५)— युद्धमें जीतनेवाला धनको जीतनेवाला।

सधुम्न आ भर (१२१)— धनका तेजस् भरक दान दे।

भरेषु वाजसातये इन्द्रं उपब्रुवे (१ ९)— युद्धोंमें अन्न या धनका दान करनेके लिये हम इन्द्रको बुलाते हैं।

तव इदं वसु समिता वि क्षियते (१२१)— तेरा यह धन चारों ओर दानसे फैलता है।

त्वं मनीषया वसुना पृणासि (१५४)— तू उसको पर्याप्त धनसे भर देता है।

पुरुराधः (५८)— बहुत धन देनेवाला इन्द्र है।

मघवा (६८)— धनवान् इन्द्र

पुरुक्षुधि (६८)— बहुत धनी इन्द्र है।

पुरुवसुः (१२१)— बहुत धनवान्

मघवा वसुनः राय ईशते (८१)— इन्द्र धनवान् है वह निवासक धनका स्वामी है।

वसुनः इन्द्रस्पतिः (१९)— इन्द्र धनका स्वामी है।

अ-काम-कर्शनः (११)— कामना पूर्ण करनेवाला इन्द्र है।

यथा त्वं अर्द्ध वस्वः एकः ईशीय (१६७)— जैसा तू धनका स्वामी है वैसा मैं धनका अकेला स्वामी बनूं।

मनीषिणो दिदासेयं (१६८)— ज्ञानीको धनका दान करूं।

न देवः न मर्तः ते राधसे धर्ता अस्ति (१७)— न देव वा न मानव कोई भी तेरे दान देनेमें विरोध करनेवाला नहीं है। तू दान करता है उसमें किसीका विरोध नहीं हो सकता।

भूता मघ (१)— किसीको धनवान होनेके लिये आशीर्वाद दे।

दाती सूनृती (१८)— इन्द्र देनेवाला और इसको मधुरक वाणीसे युक्त है।

हिरण्यं भोगं ससान (५१)— सुवर्ण तथा भोग्य पदार्थ वह प्राप्त करता है।

धनानां संजितः (५१)— धनोंको जीतनेवाला इन्द्र है।

स्पार्हं वसु आ भर (१७४)— स्पृहणीय धन अवश्य भर दे।

काम्यं वसु सहस्रेण मंहते (१२४)— वह इष्ट धन सहस्रगुणा देता है।

पिशंगरूपं गोमन्तं मघु ईमहे (१२८)— पीले रंगवाला अर्थात् सुवर्णमय गौओंसे युक्त धन हमें शीघ्र प्राप्त हो ऐसा चाहते हैं।

त्वा पुरुवसुं विद्म (१४२)— तू बहुत धनवाला है यह हम जानते हैं।

भद्रंराति वसुनां उपस्तुहि (१६१)— दान करनेवाला जिसका दान है ऐसे धनदाता इन्द्रकी स्तुति कर।

इन्द्रस्य रातयः मह्यः (१६१)— इन्द्रके दान कल्याण करनेवाले हैं।

मनः दानाय चोदयन् (१६१)— अपने मनको दान देनेमें प्रवृत्त कर।

अस्य मंहाः न क्षिप्यते (१६६)— इस इन्द्रका धन बढता ही रहता है।

जिग्युषः धनं (१६६)— विजयी वीरका धन होता है।

शचीमघाः (१६६)— बडे धनवाला इन्द्र है।

अस्य राधः न पर्येतवे (४ ७)— इसके धनके दानकी कोई मर्यादा नहीं है।

सुन्वानाय आसुर्व रयिं ददाति (४११)— यज्ञ करनेवालेको इन्द्र बहुत धन देता है।

सातासि साचिस्वामं ससासां वर्षिष्ठं रयिं अस्मे आ भर (४५८)— सामकारी जिसकी अनुभव जीतनेवाले श्रेष्ठ धनको हमें अपनी सुरक्षा करनेके लिये लाकर भर दो।

चित्रं वरेण्यं राधः अर्वाक् ते अस्तु ते विभु प्रभु असत् (४७१)— विलक्षण श्रेष्ठ धन हमारे पास भेज दे, वैसा धन तेरे पास बहुत है।

शविष्ठ इन्द्र ! रमस्वतः यशस्वतः अस्मान् राये सुचोदय (४७२)— हे तेजस्वी इन्द्र ! प्रयत्न करनेवाले और यशस्वी बने हमको धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम रीतिसे प्रेरित कर।

एवावसु (५११)— धनका दाता इन्द्र है।

विश्वं वार्यं पुष्यसि (६१५)— सब प्रकारके धनको बढाता है।

अस्मे बृहत् पृथु श्रवः गोमत् वाजवत् विश्वायुः अक्षितं धेहि (४७४)— हमें बड़ा विस्तृत यशस्वी गौओं और अन्नोंसे युक्त पूर्ण आयुतक टिकनेवाला धन दे ।

सहस्रसातमं पृथु बृहत् श्रवः रयिभिः इन्द्रः अस्मे धेहि (४७५)— हजारों प्रकारका आनन्द देनेवाला यशस्वी बड़े अन्नवाला धन और रथके साथ रहनेवाला अन्न हमें प्राप्त हो ।

गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु च आ शंसय (४८७)— गौओं घोड़ों तथा सहस्रों तेजस्वी धनोंमें हमें रख ।

इस तरह इन्द्रके धनी होने और धनका दान करनेके विषयमें वेदमंत्रोंमें वर्णन है ।

सत्यकी प्रेरणा करनेवाला इन्द्र

यः रध्रस्य कृशस्य ब्रह्मणः नाधमानस्य कीरेः चोदिता (२ १)— जो इन्द्र उपासकको दुर्बलको ज्ञानी याचक कविको उत्साह बढानेके लिये उत्तम प्रेरणा देता है ।

यस्य प्रदिशि अश्वासः गावः ग्रामाः रथासः (१ ४)— इस इन्द्रकी आज्ञामें घोड़े गौवें गांव और रथ रहते हैं । इसलिये वह हरएक प्रकारकी प्रेरणा देता है और पराक्रम करता है ।

यस्य अमितानि वीर्या (४ ७)— इस इन्द्रके अपरिमित पराक्रम हैं इसलिये वह उत्तम प्रेरणा सब भक्तोंको करता है और उनकी उन्नति करनेमें समर्थ होता है ।

विचर्षणिः (१४)— विशेष रीतिसे देखनेवाला विचार पूर्वक देखभाल करनेवाला इशारा करनेवाला चपल, कर्म योजनाके करनेमें चतुर इन्द्र है ।

सदावृधः विश्वगूर्तः अरमयाः धृष्णु-ओजाः अधृष्टः इन्द्रः (५१)— सदा बढनेवाला सबोंसे प्रशंसित सब बड़े कार्य करनेवाला शत्रुका धर्षण करनेवाला अजेय युद्ध, निडर इन्द्र है । इसलिये वह सबको उत्तम प्रेरणा देता है ।

अषाळ्हः उग्रः पृतनासु सासहिः (५११)— जिसको कमजोर, युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला इन्द्र है ।

अयाजकोंका दमन करता है

अयज्युं मर्त्यं दासः (४९५)— यज्ञ न करनेवाले मानवोंको दण्ड देनेवाला इन्द्र है ।

असुन्वां संसदं विषूचीं व्यनाशयः सोमपाः उत्तरः भवन् (१४१)— यज्ञ न करनेवालोंकी सभाको छिन्नभिन्न करके उनको नाश करता है और यज्ञ करनेवालोंको उच्च बनाता है ।

ये यज्ञियां नावं आरुहं न शेकुः ते केपयः ईर्मा एव न्यविशन्त (१ ७)— जो यज्ञकी नौकापर चढ नहीं सकते वे पापी इधरमें ही पड़े रहते हैं ।

आपत्ति दूर करनेवाला इन्द्र

निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ (४१)— आपत्तियोंको दूर करनेका उपाय इन्द्र अच्छी तरह जानता है । इस कारण आपत्तियां उसको नहीं सताती ।

देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति स्वप्नाय न स्पृहयन्ति (१ १)— देव यज्ञ करनेवालोंको चाहते हैं सुस्त मानवोंको नहीं चाहते ।

अतन्द्राः प्र मादं यन्ति (१ १)— आलस्य छोडनेवाले ही विशेष उत्साहको प्राप्त होते हैं ।

अ-दाशुषां वेदः अन्तः ख्यः हि तेषां वेदः नः आ भर (१४१)— कंजूस मानवोंका धन अन्दरसे ढूंढ निकाल और उनका धन हमें लाकर दे ।

निदे वक्तवे अराव्णे नः मा रन्धीः (१ १)— निन्दक, व्यर्थ बकवाद करनेवाले कंजूसके आधीन हमें न कर । उनका शासन हमपर न हो ।

सूरिभ्योऽपि सुष्टुतिः न हाप्यते (११९)— धनका दान करनेवालोंके लिये निंदा योग्य नहीं है । उन दाताओंकी प्रशंसा ही होनी योग्य है ।

पाप

अघं नः पश्चात् न सचात् (११७)— पाप हमारे पीछे नहीं लगे ।

न पापत्वाय रासीय (५११)— पाप करनेके लिये [illegible] नहीं है ।

घमंडियोंका नाशक इन्द्र

यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् जघान (२ ७)— जो घोर सदा पाप करनेवाले और बारबार कहनेपर भी न माननेवाले हैं उनको मारता है ।

यः शर्धते शृध्यां न अनुददाति (२ ७)— जो इन्द्र घमंडीका घमंड नहीं सहन करता ।

महतः मन्यमानान् योधय (५१७)— अपने आपको बहुत बड़ा माननेवाले जो घमंडी हैं उनसे युद्ध कर ।

शासदानाम् बाहुभिः साह्याम (५१७)— इन घमंडी शत्रुओंका हम बाहु युद्धमें पराभव करेंगे ।

भयको दूर करनेवाला इन्द्र

इन्द्रः महत् भयं अभीषत् अपचुच्यवत् (११९)— इन्द्र बड़े भयके कारणको पराजित करके दूर भगाता है ।

अविभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः (११५) निर्भय इन्द्रके पास तू मिलकर जाता है। इस कारण तू निर्भय हुआ है।

संगठन करनेवाला इन्द्र

यदा मरुत्सु कृणोषि मान् इव समूहसि (७ ५)— जब हे इन्द्र! तू भाषण करता है तब तू समूह बनाता है। इन्द्रके भाषणमें संगठन करनेकी शक्ति होती है।

लोगोंको बसानेवाला इन्द्र

वसुः (१२७)— आर्योंको बसानेवाला इन्द्र है। यह इन्द्र आर्योंको बस्ती करानेकी सुव्यवस्था करता है।

इन्द्र घर रहनेके लिये देता है

त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तिमत् शरणं छर्दिः मह्यं मघवद्भ्यः च यच्छ यवयः दिद्युं एभ्यः (५१४)— तीन धातुओंसे बना तीन रक्षणोंवाला कल्याणकारी आश्रय करने योग्य घर मुझे दे तो तथा ऐसे घर धनवानोंको भी मिले ऐसा कर और इनसे सब शत्रुओंको दूर कर। जिससे यहां सुखसे सब मानवोंका रहना हो सके।

उत्तम मार्ग

सुपथा शीभं अर्वाङ् याहि (१ १)— उत्तम मार्गसे शीघ्र हमारे पास आओ। ये मार्ग इन्द्रके मार्ग हैं। ऐसे इन्द्रके मार्ग उत्तम होने चाहिये। इन्द्र उत्तम मार्ग निर्माण करता है।

दुःख देनेवालोंको दण्ड

अघकारकः आसक्तासि (६१)— दुःख देनेवाले दुष्ट शत्रुओंको तू योग्य दण्ड देता है। इससे प्रजाजन आनंदमें रह सकते हैं।

देवकी सहायता

देवयुं देवासः आर्येणः प्रणयन्ति (१५५)— देवत्व प्राप्त करनेवालेको देव आगे बढाते हैं। दैवी गुणोंको देखकर उन गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेसे देवत्व प्राप्त होता है। ऐसे देवत्व प्राप्त करनेवालोंको देव हरप्रकारसे सहायता करते हैं।

ब्रह्मप्रिय यदा इव जोषयन्ते (१५५)— ज्ञान जिसको प्रिय है, जो ज्ञान प्राप्त करता है, उसका देव श्रेष्ठ पुरुषको सहाय्य करनेके समान सहाय्य करते हैं।

इन्द्रका महात्म्य

इन्द्रस्य यातं धामभिः महयामसि (१ ८)— इन्द्रका महत्त्व सबके देखनेमें स्थानोंसे वर्णित होता है। इन्द्रका महत्त्व इतना बडा है।

महिनः (२१६)— इन्द्र सचमुच महत्त्वसे युक्त है।

यश हमें प्राप्त हो

स्पार्हं भोजिष्ठं वसुभिः आ भर (५१८)— भरपूर सामर्थ्यवान् परिपूर्ण धन हमें भरपूर दे।

इन्द्र सच्चा है

इन्द्रमें सच्चाई है वह कभी असत्यमार्गसे दूर नहीं जाता। इस कारण कहा है—

सत्य (५ ५)— इन्द्र सत्य है, सच्चा है, कभी असत्य मार्गपर जाता नहीं।

सत्यस्य सूनुः (१११)— इन्द्र सत्यका प्रवर्तक है। सत्य मार्गसे चलनेसे लाभ होता है यह अपने आचरणसे उसने बताया है।

युद्धसे लूट

असुरस्य भुजं आ भर (११६)— असुरोंसे धन भर दे। असुरोंका पराभव करके उनसे धन आदि पदार्थ भरपूर प्रमाणमें प्राप्त कर। शत्रुके नगर तोडके उनपर अपना कब्जा किया तो वहांसे अनेक लूट करके विजयी वीरोंको धन अनेक प्रमाणमें प्राप्त होता है। ऐसा धन इन्द्रके पास आता रहता है। विजय प्राप्त करनेवाले वीरको ऐसा धन मिलता ही है।

इन्द्रके वर्णन

इस समयतक हमने इन्द्रके वर्णन देखे। मंत्रवचनोंको देकर उनके यहां सरल अर्थ दिये हैं। इन वचनोंपर विशेष विस्तारसे करके अधिक टीका-टिप्पणी नहीं की है। क्योंकि इन वचनों-पर अधिक टीका-टिप्पणी करनेकी कोई जरूरत ही नहीं है। इतने ये वचन स्पष्ट हैं।

इन वचनोंसे मनन करके इन्द्रके कर्तव्य पता पाठकोंको लग सकता है। इन्द्र लोगोंका संरक्षण करता है, शत्रुओंसे युद्ध करके उनका पराभव करके बाहरके शत्रुओंको दूर करता है। अन्दरसे और बाहरसे संरक्षण करके प्रजाको सुरक्षित आनंद देना ये इस इन्द्रके मुख्य कार्य हैं। इसीलिये इस इन्द्रको हम युद्धमंत्री अथवा संरक्षकमंत्री कह सकते हैं। इनके कर्तव्य यहां इन निर्देशोंमें दिये हैं। उनका विचार पाठक करें और युद्धमंत्रीके कर्तव्य क्या हैं, इस विषयमें वेदका कथन क्या है वह पाठक देखें और उसका मनन करके निश्चय करें कि राज्यके युद्धमंत्री ऐसे होने चाहिये।

अथर्ववेदके अनेक नामोंमें क्षात्रवेद भी एक नाम है। यह नाम अथर्ववेदको इसलिये मिला है कि इसमें इन्द्रके मंत्र पांचवें भागसे भी अधिक संख्यामें हैं। इन इन्द्रके मंत्रोंके कारण ही इस वेदको क्षात्रवेद कहा है।

पाठक इस प्रकरणका अधिक विचार करके क्षात्रमतका योग्य बोध प्राप्त करें और इस बोधको राष्ट्रीय जागृतिके कार्यमें लगा देवें।

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

विंशं काण्डम् ।

विषयानुक्रमणिका

॥ यहाँ बीसवाँ काण्ड समाप्त ॥

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

विंश काण्डम्।

[सूक्त १]

(ऋषिः — १ विश्वामित्रः २ गोतमः ३ विरूपः। देवता — १ इन्द्रः २ मरुतः ३ अग्निः।)

इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥ २ ॥
उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ३ ॥ (१)

[सूक्त २]

(ऋषिः — [गृत्समदो मेधातिथिर्वा ?] । देवता — १ मरुतः २ अग्निः ३ इन्द्रः ४ द्रविणोदाः।)

मरुतः पोत्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ १ ॥
अग्निराग्नीध्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ २ ॥

(सूक्त १)

(हे इन्द्र) हे इन्द्र ! (वयं सोमे सुते) हम सोमरस निचोडनेपर (वृषभं त्वा) तुम बलवान्‌को (हवामहे) बुलाते हैं, ऐसी प्रार्थना करते हैं (मध्वो अन्धसः पाहि) इस मधुररसका पान कर ॥ १ ॥ (ऋ. ३।४०।१)

(दिवः विमहसः मरुतः) हे द्युलोकके समान तेजस्वी मरुत् वीर ! (यस्य क्षये) जिसके घर, जिसके मकानमें (पाथ) तुम रक्षा करते हैं (सः जनः सुगोपातमः) वह मनुष्य अत्यंत उत्तम रक्षक होता है ॥ २ ॥ (ऋ. १।८६।१)

(उक्षान्नाय वशान्नाय) बैलके कार्यसे प्राप्त जिसका अन्न है गौसे प्राप्त दूध घी जिसका अन्न है (सोमपृष्ठाय वेधसे) सोमका हवन जिसपर होता है उस ज्ञानी (अग्नये) अग्निके लिये (स्तोमैः विधेम) स्तोत्रोंसे हम सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४३।११)

वृषभं हवामहे— बलवान्‌की हम स्तुति करते हैं।

मध्वो अन्धसः पाहि— मधुररसका पान कर।

दिवः विमहसः मरुतः यस्य क्षये पाथ स जनः सुगोपातमः— द्युलोकके समान विशेष तेजस्वी वीर सैनिक जिसके घर जाकर रहते या रसपान करते हैं वह मनुष्य उत्तम रक्षक होता है।

वेधसे स्तोमैः विधेम— ज्ञानीका सत्कार हम स्तोत्र गाकर करते हैं।

उक्षान्नः— बैलकी खेतीसे उत्पन्न अन्न खानेवाला।

वशान्नः— गौके उत्पन्न दूध दही घी छाछ आदि पीनेवाला। दूध और अन्न।

सोमपृष्ठः— सोमका रस पीनेवाला।

वेधाः— ज्ञानी कर्मकुशल।

सु-गोपा-तमः— अत्यंत उत्तम रक्षण करनेवाला वीर बने।

(सूक्त २)

(मरुतः पोत्रात्) मरुत् वीर पोताके पात्रसे (सुष्टुभः स्वर्कात्) स्तोत्रसे युक्त उत्तम मंत्र युक्त (ऋतुना सोमं पिबतु) ऋतुके अनुसार सोमरस पीवें ॥ १ ॥

(अग्निः आग्नीध्रात्) अग्नि अग्निध्र ऋत्विक् के पात्रसे उत्तम स्तोत्र युक्त और उत्तम मंत्र युक्त ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ २ ॥

इन्द्रो ब्रह्मा ब्राह्मणात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ३ ॥
देवो द्रविणोदाः पोत्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ॥ ४ ॥ (७)

[सूक्त ३]

(ऋषिः — इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥ (१०)

(इन्द्रः ब्रह्मा) इन्द्र ब्रह्मा (ब्राह्मणात्) ब्रह्माके पाससे उत्तम स्तोत्र युक्त और उत्तम मंत्र युक्त ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ ३ ॥

(द्रविणोदाः देवः) धनदाता देव (पोत्रात्) सोम रसको पवित्र करनेवालेके पाससे उत्तम स्तुतिसे युक्त और उत्तम मंत्र युक्त ऋतुके अनुसार सोमरस पीवे ॥ ४ ॥

ऋतुना सोमं पिबतु— ऋतुके अनुकूल रसपान करे। जिस ऋतुमें जितना रस पीना शरीर स्वास्थ्यके लिये योग्य है उतना ही उस ऋतुमें पीवे अधिक न पीवे। सब खान पान ऋतुके अनुसार ही होना चाहिये।

पोता— रसको पवित्र शुद्ध निर्दोष जो बनाता है।

आग्नीध्र— अग्निको प्रदीप्त करनेवाला।

ब्रह्मा— यज्ञका मुख्य अध्यक्ष। यह अथर्ववेदी ही होना चाहिये।

द्रविणोदाः— धन देनेवाला (द्रविण-) धनका (दाः) दाता।

सु स्तुभः— उत्तम स्तोत्रोंसे जिसकी प्रशंसा होती है।

सु-अर्कः— उत्तम मंत्र जिसके साथ कहे जाते हैं।

इस सूक्तके ऋ. २।३६।३७ के मंत्र हैं।

(सूक्त ३)

हे इन्द्र ! (आ याहि) आओ (ते सुषुम हि) तुम्हारे लिये हमने यह रस तैयार किया है (इमं सोमं पिब) इस सोमरसका पान करो (मम इदं बर्हिः आ सदः) और मेरे लिये इस आसनपर बैठो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।१)

हे इन्द्र ! (केशिना ब्रह्मयुजा हरी) केश वालोंवाले ज्ञानके साथ युक्त होनेवाले घोडे (त्वा आ वहतां) तुझे यहां ले आवें। (नः ब्रह्माणि नः उप शृणु) हमारे मंत्रोंको समीपसे सुनो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।२)

हे इन्द्र ! (वयं सोमिनः) हम सोमयाग करनेवाले (ब्रह्माणः) ज्ञानी लोग (सुतावन्तः) सोमरस तैयार करके (सोमपां त्वा) सोम पीनेवाले तुमको (युजा) योग्य साथ रहनेवाले यज्ञके साथ (हवामहे) बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।३)

आतिथ्य सत्कार— मम इदं बर्हिः आ सदः। मेरे लिये इस आसनपर बैठ। जो अतिथि घर आजाय उसको इस रीतिसे सम्मानपूर्वक बैठनेके लिये आसन देना चाहिये।

सोमं पिब— सोम रस पीओ ऐसा कहकर उस अतिथिको आदरसे पेय रस देना चाहिये।

केशिनी ब्रह्मयुजौ हरी त्वा आवहतां— केश जिनके सजे हैं जो घोडे इशारेसे ज्ञानसे संकेतमात्रसे रथके साथ जुड जाते हैं ऐसे घोडे शिक्षित होने चाहिये। इनसे ऐसे घोडे यह स्थानपर ले आवें।

नः ब्रह्माणि उप शृणु— हमारे मंत्र समीप बैठकर श्रवण कर।

वयं ब्रह्माणः त्वा हवामहे— हम ब्राह्मण तुझे बुलाते हैं।

युजा- साथ रहनेवाले यज्ञके साथ यहां आओ। यज्ञमें निर्भय करनेके लिये रक्षक का योग हो वह रक्षक उनके साथ कर देना यहां इंगितमात्रसे सूचित किया गया है।

[सूक्त ४]

(ऋषि — इरिम्बिठि । देवता — इन्द्रः।)

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ १ ॥
आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु । गृभाय जिह्वया मधु ॥ २ ॥
स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे तव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ३ ॥ (११)

[सूक्त ५]

(ऋषिः — इरिम्बिठि । देवता — इन्द्रः।)

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ १ ॥
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ २ ॥
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहं जहि ॥ ३ ॥

(सूक्त ४)

हे (सु शिप्रिन्) उत्तम साफा धारण करनेवाले इन्द्र ! (सुतावतः नः आ याहि) सोमरस तैयार करनेवाले हमारे पास आओ (अस्माकं सुष्टुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियोंको पासमे श्रवण कर। और (अन्धसः सु पिब) इस रसको पीओ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।४)

(ते कुक्ष्योः) तेरी कोखोंमें (आ सिञ्चामि) मैं इस रसका सिंचन करता हूं। वह रस तेरे (गात्रा अनु वि धावतु) गात्रोंमें अनुकूलतासे दौड जाय (जिह्वया मधु गृभाय) जिह्वासे इस मधुररसका आस्वाद ग्रहण कर ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।५)

(संसुदे ते) उत्तम दाता एसे तेरे लिये वह (स्वादुः अस्तु) मीठा बने (तव तन्वे मधुमान्) तेरे शरीरके लिये मधुर बने। वह (सोमः ते हृदे शं अस्तु) सोमरस तेरे हृदयके लिये शान्ति देनेवाला हो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।६)

सु शिप्रिन्— उत्तम साफा सिरपर बांधनेवाला उत्तम दृष्टिवाला।

अन्धसः सु पिब— रसका उत्तम रीतिसे पान कर। अन्धः— जिससे प्रभाव बल शरीरमें बढता है वह पौष्टिक रस धारक रस।

गात्रा अनु वि धावतु— अंग प्रत्यंगमें स्फूर्ति उत्पन्न हो। अनेक अंगोंमें स्फूर्ति उत्पन्न हो। [illegible] पीनेसे प्रत्येक अंगमें बढाता जाता है।

जिह्वया मधु गृभाय— जिह्वासे मधुरताका आस्वाद लेते हुए रसपान करना चाहिये। सोमरसमें गौका दूध और मधु मिलाया जाता है। इससे वह मीठा बनता है।

सोमः ते हृदे शं अस्तु— सोम हृदयके लिये शान्ति देता है।

मधु मधुमान् स्वादुः शं— ये पद सोमरसका मीठा पन बता रहे हैं। सहद उसमें डाला है यह बात मधु मधुमान् इन पदोंसे स्पष्ट हो रही है।

(सूक्त ५)

हे (विचर्षणे इन्द्र) विशेष कर्म कुशल इन्द्र ! (अयं अभि संवृतः सोमः) यह गौदुग्धसे मिलाया हुआ सोमरस (त्वा प्र सर्पतु) तेरे पास चलता जाय (जनीः इव) जैसी स्त्रियां पतिके पास जाती हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।७)

(तुविग्रीवः वपोदरः) बडी गरदनवाला चर्बीवाले पेटवाला (सु बाहुः) उत्तम बलवान् बाहुवाला (इन्द्रः) इन्द्र (अन्धसः मदे) सोमरसके आनन्दमें (वृत्राणि जिघ्नते) शत्रुओंको मारता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।८)

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (पुरः प्रेहि) आगे बढ (त्वं ओजसा विश्वस्य ईशानः) तू अपनी शक्तिसे विश्वका स्वामी है। हे (वृत्रहन्) शत्रुओंका नाश करनेवाले इन्द्र ! (वृत्राणि जहि) शत्रुओंका नाश कर ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१७।९)

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥ ४ ॥
अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ५ ॥
शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥ ६ ॥
यस्ते शृङ्गवृषो नपात्प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ ७ ॥ (१०)

(ते अंकुशः दीर्घः अस्तु) तेरा अंकुश लंबा हो (येन) जिससे (सुन्वते यजमानाय) सोमयाग करनेवाले यजमानके लिये तू (वसु प्र यच्छसि) धन देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१७।१०)

हे इन्द्र! (अयं सोमः ते) यह सोमरस तेरे लिये (निपूतः बर्हिषि अधि) छानकर आसनपर रखा है (एहि) आओ (ईं द्रव) इसके पास दौड़कर आओ और (पिब) पीओ ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१७।११)

हे (शाचिगो) शक्तियुक्त गौओंवाले हे (शाचिपूजन) शक्तिमानोंसे पूजित! हे (आखण्डल) शत्रुका खण्डन करनेवाले इन्द्र! (ते रणाय सुतः) तेरे आनंदके लिये यह रस तैयार किया है और (प्र हूयसे) तू बुलाया जाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।१७।१२)

(यः ते शृङ्गवृषः) यह जो तेरा सींगवाले बैल जैसा बल है (न पात्) न पतित होनेवाला सामर्थ्य है तथा जो (प्र न पात्) विशेषतः न गिरनेवाला बल है और (कुण्ड पाय्यः) रक्षा करनेका संरक्षणका सामर्थ्य है (तस्मिन् मनः आ दध्र) उस सामर्थ्यमें मैं अपने मनको स्थिर करता हूं ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१७।१३)

इन्द्रके विशेषण-वर्णन—

१ विचर्षणि — विशेष मनसे कुशल कर्मोंका विशेष हित करनेवाला जिसके अनुकूल जन रहते हैं।

२ तुवि ग्रीव — बड़ी गर्दन जिसकी है मजबूत पठ-ठाका भाव ... या गर्दन शरीर रहती है, इन्द्रने व्यायाम करके अपनी गर्दन बलवान् की थी।

३ वपोदर — (वपा) चरबी (उदर) पेटपर जिसके है। पुष्ट पेटवाला।

४ सुबाहुः — बड़े बलवान् बाहुवाला, जिसके बाहु हृष्ट-पुष्ट बलवान् हैं।

५ ओजसा विश्वस्य ईशानः — अपनी शक्तिसे विश्वका स्वामी बना है।

६ शाचिगु — हृष्टपुष्ट गौवें जिसकी हैं जो पुष्ट पौष्टिक दूध देती हैं।

७ शाचि पूजन — जिसकी पूजा शक्तिमान पुरुष करते हैं। अर्थात् शक्तिमानोंके लिये भी जो पूजनीय है।

८ आखण्डल — शत्रुके खण्ड खण्ड करनेवाला। शत्रुका विनाश करनेवाला।

९ शृङ्ग-वृष — सींगवाले बैलके समान जो बलवान् है।

१० न-पात् — जो गिराता नहीं और नाहीं स्वयं कभी पतित होता है।

११ प्र-न पात् — विशेष रीतिसे जो गिरता गिराता नहीं।

१२ कुण्ड-पाय्य — (कुण्ड-कृषि यहां रखने वा) रक्षक और पालक शत्रुका नाश करके भी अपना संरक्षण करता है।

ये इन्द्रके वीरके गुण हैं। वीर इन गुणोंसे युक्त होना चाहिये यह बोध यहां मिलता है।

अभीः इव — स्त्री जिस तरह पतिके पास जाती है स्त्रियां अपने पतिके साथ रहें यह उनका कर्तव्य है।

इन्द्रः वृत्राणि जिघ्नते — इन्द्र शत्रुओंको मारता है। यहां इन्द्र यह पुल्लिंगमें है और वृत्र पद नपुंसक लिंगमें है। नपुंसक लिंगसे उनकी शक्तिकी हीनता बताई है। वीर इन्द्र शक्तिहीन शत्रुको मारता है।

वृत्रहन्! वृत्राणि जहि — हे वृत्रको मारनेवाले वीर! तू शत्रुओंको मार। अपने पौरुषसे उनका वध कर।

वृत्रः — घेरनेवाला शत्रु, शत्रु जो अपनेको चारों ओरसे घेरता है वह वृत्र असुर।

वसु प्रयच्छसि — तू धन देता है।

सुतः निपूतः (मं. ५) अधि संभृतः (मं. १) — सोमरस निचोड़ा छाना गया और दूधके साथ मिलाया है। इसके पश्चात् (पेय) पीया जाता है। यह मनका उत्साह बढ़ानेवाला पेय है।

[सूक्त ६]

(ऋषिः — विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रं त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे । स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ १ ॥
इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥ २ ॥
इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः । तिर स्तवान विश्पते ॥ ३ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते । क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥ ४ ॥
दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥ ५ ॥
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे । इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥ ६ ॥
अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता । पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥ ७ ॥
अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥ ८ ॥
यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ९ ॥ (१९)

(सूक्त ६)

हे इन्द्र ! (सुते सोमे) सोमरस तैयार करनेपर (वयं वृषभं त्वा) हम तुझ बलिष्ठको (हवामहे) बुलाते हैं । (सः मध्वः अन्धसः पाहि) वह तू मधुर रसका पी ॥ १ ॥ (अथर्व. २०।१।१; ऋ. ३।४०।१)

हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतोंके द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (क्रतुविदं) कर्मको करवानेवाले (सुतं सोमं हर्य) सोमरसको तू चाह और (तातृपिं पिब) अत्यंत तृप्ति करनेवाले इस रसको पी और (वृषस्व) बलवान् बन ॥ २ ॥ (ऋ. ३।४०।२)

हे (स्तवान) स्तुति किये गये (विश्पते इन्द्र) प्रजापालक इन्द्र ! (नः धितावानं यज्ञं) हमारे धनसे समृद्ध इस यज्ञको (विश्वेभिः देवेभिः प्र तिर) संपूर्ण दिव्य पुरुषों या देवोंके साथ आकर बढा दो ॥ ३ ॥ (ऋ. ३।४०।३)

हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (इमे सुताः चन्द्रासः इन्दवः सोमाः) ये निचोडे हुए चमकीले आनंद बढानेवाले सोमरस (तव क्षयं प्र यन्ति) तेरे आवासमें जाते हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ३।४०।४)

हे इन्द्र ! (वरेण्यं सुतं सोमं) स्वीकार करने योग्य इस सोमरसको अपने (जठरे दधिष्व) पेटमें धारण कर (द्युक्षास इन्दवः तव) द्युलोकमें रहनेवाले ये सोमरस तेरे लिये ही हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. ३।४०।५)

हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नः सुतं पाहि) हमारे द्वारा तैयार किये इस रसको पी । (मधोः धाराभिः अज्यसे) इस मधु रसकी धाराओंसे तू संचार करता है । (यशः त्वादातम् इत्) हमारा यश निःसंदेह तेरी ही देन है ॥ ६ ॥ (ऋ. ३।४०।६)

(वनिनः अक्षिता द्युम्नानि) तुम्हारे भक्त अक्षय धन (इन्द्रं अभि सचन्ते) इन्द्रकी ओर जाते हैं । (सोमस्य पीत्वी वावृधे) सोमरसको पीनेवाला बडा होता है ॥ ७ ॥ (ऋ. ३।४०।७)

हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र ! (अर्वावतः परावतः च) पाससे या दूरसे (नः आ गहि) हमारे पास आ जाओ और (इमाः नः गिरः जुषस्व) इन हमारी स्तुतियोंको स्वीकार करो ॥ ८ ॥ (ऋ. ३।४०।८)

हे इन्द्र ! (अर्वावतं) समीपसे (परावतं) दूरसे (यत् अन्तरा) मध्यसे भी (हूयसे) तुझे हम पुकारते हैं । (ततः इह आ गहि) वहांसे यहां आओ ॥ ९ ॥ (ऋ. ३।४०।९)

इस सूक्तमें इन्द्रके विशेषण देखिये । ये वीरके गुण बता रहे हैं—

१ वृषभः— बैलके समान बलवान्, [illegible] वृष्टि करनेवाला ।

२ पुरु-स्तुतः— बहुतों द्वारा प्रशंसित जो रक्षण करता है उस वीरकी स्तुति सब करते ही रहते हैं ।

[सूक्त ७]

(ऋषिः — १-३ सुकक्षः ४ विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्	। अस्तारमेषि सूर्य	॥ १ ॥
नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा	। अहिं च वृत्रहावधीत्	॥ २ ॥
स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्	। उरुधारेव दोहते	॥ ३ ॥
इन्द्रं क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य पुरुष्टुत	। पिबा वृषस्व तातृपिम्	॥ ४ ॥ (११)

(सूक्त ७)

हे सूर्य ! (श्रुतामघं वृषभं) प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान् बैल जैसा बलवान् (नर्य-अपसं) मानवोंके हितके लिये कर्म करनेवाले (अस्तारं) शत्रु फेंकनेमें कुशल इन्द्रके हितके लिये ही (अभि उत् घ इत् एषि) तू उदय होता है ॥१॥ (ऋ. ८।९३।१)

(यः बाहु-ओजसा) जो अपने बाहुबलसे शत्रुके (नव नवतिं पुरः) न्यानवे पुरियोंको (बिभेद) छिन्नभिन्न करता है (च वृत्रहा अहिं अवधीत्) और इसके मारनेवालेने अहिको भी मारा ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९३।२)

(सः नः इन्द्रः शिवः सखा) वह हमारा इन्द्र कल्याण करनेवाला मित्र है। वह हमें (अश्वावत् गोमत् यवमत्) घोडों गौओं और जौसे परिपूर्ण धन (उरुधारा इव दोहते) बडी धारासे दूध देनेवाली गौके समान प्रदान करे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९३।३)

इन्द्र क्रतुविदं इस मंत्रका अर्थ अथर्व २।५।१ में (पृ ५ पर) देखिये। (ऋ. ३।४०।२)

इन्द्रके विशेषण इस सूक्तमें देखिये—

१ श्रुता-मघः— प्रसिद्ध ऐश्वर्यवान् जिसके ऐश्वर्यकी चारों ओर प्रशंसा होती है।

२ वृषभ — बैलके समान बलवान् इस कारण वृष्टि करनेवाला सामर्थ्यवान्

३ नर्यापस— (नर्य-अपस्)— मानवोंके हितके कर्म करनेवाला

४ अस्ता— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेमें कुशल

५ शिवः सखा— हितकर मित्र

६ बाह्वोजसा यः नव नवतिं पुरः बिभेद— जो अपने बाहुओंके सामर्थ्यसे शत्रुके न्यानवे नगरोंको छिन्न भिन्न

३ स्तवान — स्तुतिके योग्य

४ विश्प-पतिः— प्रजाओंका यथायोग्य रीतिसे पालन करनेवाला

५ सत्पतिः— सज्जनोंका पालन करनेवाला

६ गिर्-वणः— जिसकी प्रशंसा होती है ऐसा वीर

७ वृत्र-हन्— घेरनेवाले शत्रुका मारनेवाला घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाला। ये वीरके गुण इस सूक्तमें कहे हैं।

सोमरसके विषयमें इस सूक्तमें जो कहा है वह अब देखिये

१ मधु अन्धः— मधुर पेय रस

२ क्रतुविद्— कर्तव्यकर्मोंका ज्ञान देनेवाला जिसके पीनेसे कर्तव्यकर्मोंका ज्ञान होता है

३ तातृपिः— तृप्ति करनेवाला

४ सोमाः सुताः शुभ्रासः इन्दवः— ये सोमरस चमकते हैं चमकीले ये रस हैं। अन्धेरेमें चमकते हैं।

५ शुभ्रास इन्दवः— शुभ्रवर्णमें रहनेवाले ये रस हैं। हिमालयके मौजवान पर्वत पर १९ फूटपर यह सोम वनस्पति उगती है इसलिये इसको इन्दु कहा है। स्वप्नमें पुलोकमें इसका निवास है।

तातृपिं पिब वृषस्व — तृप्ति करनेवाले इस रसको पी और बलवान बन। यह रस पीनेसे सामर्थ्य बढता है।

विश्वेभिः देवेभिः यज्ञं प्र तिर— सब देवोंकी शक्ति जैसे इस यज्ञको पूर्ण कर। सब देवोंकी शक्ति बढने ... होती है।

सोमरस चमकता है इसलिये इसको चन्द्र इन्दु ये नाम हैं। अर्थात् इस सोममें फॉस्फरस रहता है जिसके कारण इस रसमें चमक रहती है। इसी कारण यह बलवान बनाता है बल बढाता है

[सूक्त ८]

(ऋषिः — १ भरद्वाजः २ कुत्सः ३ विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥ १ ॥
अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ २ ॥
आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥ ३ ॥ (१९)

करता है। पुरः ये बड़ी पुरियां किलेबन्दी होती हैं। ये लोहमय तथा पोलादका बने हैं। वह इन्द्र करता है।

७ वृत्रहा अहिं अवधीत्— वृत्रको मारनेवालेने अहिको मारा। अ-ह्री कम न होनेवाला शत्रु। जिसकी शक्ति बढती रहती है ऐसा शत्रु। अहि नाग-स्थान यह नाम अफगाणिस्थान का था। सर्प नाग स्थान का इस-लाम स्थान हुआ जिसका अफ-गाणि-स्थान हुआ ऐसा कई मानते हैं। अहि तथा सर्प जातिके मनुष्य आर्योंके शत्रु थे।

८ व्रज अभ्यावृत गोमत् यवमत् व्रज गौवें और जौके स्थल था।

९ सोम पिब वृषस्व— सोम पी और बलवान् बन। इससे स्पष्ट विदित होता है कि सोमरस पीनेसे पीनेवालेका बल बहुत बढ जाता है।

(सूक्त ८)

(एवा प्रत्नथा पाहि) इस प्रकार पूर्वके समान सोम रसको पी। (त्वा मन्दतु) तुझे यह रस आनन्द देवे (ब्रह्म श्रुधि) हमारे मंत्र पाठको सुन (उत गीर्भिः वावृधस्व) और हमारे स्तुतियोंसे बढ जा। (सूर्यं आविः कृणुहि) सूर्यको प्रकट कर (इषः पिपिहि) अन्नोंकी पुष्टिसे पुष्ट कर (शत्रून् जहि) शत्रुओंको मार हे इन्द्र! (गाः अभि तृन्धि) किरणोंको छेदकर बाहर निकाल ॥ १ ॥

(ऋ ६।१७।३)

(अर्वाङ् एहि) इधर आ (त्वा सोमकामं आहुः) तुझे सोमरस चाहनेवाला कहते हैं। (अयं सुतः) यह रस तैयार है (तस्य मदाय पिब) उसको आनन्दित होनेके लिये पी। (उरु-व्यचाः जठरे आ वृषस्व) बडा बलवान् तू अपने पेटमें डाल (हूयमानः) बुलाया हुआ (पिता इव नः शृणुहि) पिताके समान हमारी प्रार्थना सुन ॥ २ ॥

(ऋ १।१०४।९)

(अस्य कलशः आपूर्णः) इसका कलश भर दिया है। (स्वाहा) यह उत्तम रीतिसे तुझे समर्पित है। (सेक्ता इव कोशं) पानीवाला जैसा पात्र भरता है वैसा (पिबध्यै सिसिचे) पीनेके लिये यह पात्र भर रखा है। उ (प्रियाः सोमासः) प्रिय सोम (मदाय) आनंदके लिये (अभि प्रदक्षिणित्) चारों ओरसे (इन्द्रं सं आववृत्रन् उ) इन्द्रको घेरकर लौटा आते हैं ॥ ३ ॥

इन्द्रका वर्णन इस सूक्तमें देखिये—

१ ब्रह्म श्रुधि— वेदके मंत्रोंका श्रवण कर।

२ गीर्भिः वावृधस्व— स्तुतियोंसे तेरी कीर्ति बढती जाय।

३ शत्रून् जहि— शत्रुओंको मार।

४ गाः अभि तृन्धि— [शत्रुके अधीन रही] गौओंको किले तोडकर बाहर ला। शत्रु गौओंको चुराकर अपने किलेमें रखता है इन्द्र उस गढको तोडकर गौओंको बाहर लाता है। इस तरह सूर्य किरणोंको बाहर लाता और प्रकाशको फैलाता है।

अभि प्रदक्षिणित्— अतिथिको अपने सीधे हाथको दक्षिणकी ओर रखना यह सन्मानकी द्योतक रीति है। स्वयं दातरकी ओर इस प्रकार आतिथिका दाहिनी ओर रखना।

[सूक्त ९]

(ऋषिः — १-२ नोधाः ३-४ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः ।
अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ १ ॥
द्यु॒क्षं सु॒दानुं॒ तवि॑षीभि॒रावृ॑तं गि॒रिं न पु॑रु॒भोज॑सम् ।
क्षु॒मन्तं॒ वाजं॑ श॒तिनं॑ सह॒स्रिणं॑ म॒क्षू गोम॑न्तमीमहे ॥ २ ॥
तत्त्वा॑ यामि सु॒वीर्यं॒ तद्ब्रह्म॑ पू॒र्वचि॑त्तये ।
येना॒ यति॑भ्यो॒ भृग॑वे॒ धने॑ हि॒ते येन॒ प्रस्क॑ण्व॒मावि॑थ ॥ ३ ॥
येना॑ समु॒द्रमसृ॑जो म॒हीर॒पस्तदि॑न्द्र॒ वृष्णि॑ ते॒ शवः॑ ।
स॒द्यः सो अ॑स्य महि॒मा न सं॒नशे॒ यं क्षो॒णीर॑नुचक्र॒दे ॥ ४ ॥ (४०)

(सूक्त ९)

(तं वः दस्मं) आपके उस दर्शनीय (ऋतीषहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले (वसोः अन्धसः मन्दानं) सबके निवासक अन्नसे आनन्दित होनेवाले (इन्द्रं) इन्द्रकी हम (गीर्भिः नवामहे) गीतोंसे प्रशंसा गाते हैं। जैसी (धेनवः स्वसरेषु वत्सं अभि न) गौवें बाडोंमें रहे अपने बछडेके [लिये हंबरती हैं।] ॥ १ ॥ (ऋ. ८।८८।१)

(द्युक्षं) द्युलोकमें रहनेवाले अति तेजस्वी (सुदानुं) उत्तम दान देनेवाले (तविषीभिः आवृतं) अनेक शक्तियोंसे युक्त (पुरुभोजसं गिरिं न) बहुत भोजन देनेवाले पर्वतके समान (क्षुमन्तं) अन्नसे पूर्ण (वाजं) बलिष्ठ (गोमन्तं) गौओंवालेसे (मक्षू) सत्वर हम (शतिनं सहस्रिणं ईमहे) सैकडों और हजारों धन मांगते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।८८।२)

(तत् सुवीर्यं ब्रह्म) उस वीर्यको उत्तम रीतिसे बढानेवाले ज्ञानको (पूर्व-चित्तये) प्रथम विचार करनेके लिये (त्वा यामि) तेरे पास मैं मांगता हूं। जब (धने हिते) युद्ध शुरू हुआ तब (येन) जिस ज्ञानसे (यतिभ्यः भृगवे) यतियोंके लिये भृगुके लिये रक्षण किया और (येन प्रस्कण्वं आविथ) जिस शक्तिसे प्रस्कण्वकी रक्षा की ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।३।९)

(येन समुद्रं असृजः) जिस सामर्थ्यसे समुद्रको तूने उत्पन्न किया और (महीः अपः) बडे जलप्रवाह पैदा किये हे इन्द्र! (ते वृष्णि शवः) वह तुम्हारी वृष्टि करनेवाला तेरा ही बल है। (सः अस्य महिमा सद्यः न संनशे) वह इसकी महिमा कभी कम नहीं होता (यं क्षोणीः अनुचक्रदे) जिसका वर्णन सब मनुष्य कर रहे हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।३।१०)

इस सूक्तमें इन्द्र वीरके गुण ये कहे हैं—

१ दस्म— दर्शनीय सुन्दर सुरूप

२ ऋती-षह्— शत्रुओंका नाश करनेवाला, हानि पहुंचानेवालोंको दूर करनेवाला

३ वसोः अन्धसः मन्दानः— जिससे प्राणियोंका निवास होता है जिससे प्राणोंका धारण होता है उस प्रकारके अन्नसे आनन्दित होनेवाला

४ द्युक्षः— द्युलोकमें रहनेवाला

५ सुदानुः— दान देनेवाला

६ तविषीभिः आवृतः— नाना शक्तियोंसे युक्त

७ पुरुभोजसः— अनेक प्रकारके अन्न अपने पास रखनेवाला

८ क्षुमान्— अन्न पास रखनेवाला

९ गोमान्— गौवें पास रखनेवाला

१० धने हिते आविथ— युद्ध शुरू होनेपर रक्षण करता है।

११ वृष्णि शवः— वृष्टि करनेवाला सामर्थ्य जिसका है।

१२ यं क्षोणीः अनुचक्रदे— जिसका सब लोग वर्णन करते हैं।

१३ येन समुद्रं असृजः महीः अपः— जिसने समुद्र और बडे बडे जलप्रवाह उत्पन्न किये।

१४ अस्य महिमा न संनशे— इसकी महिमा कम नहीं होता।

ये गुण इन्द्रके वीरके हैं। वीरमें ऐसे गुण रहने चाहिये।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः ।
अहन्व्यंसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ ३ ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥ ४ ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥ ५ ॥

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥ ६ ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥ ७ ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥ ८ ॥

(शर्धनीतिः इन्द्रः) शत्रुओंको कंपानेवाले इन्द्रने (वृत्रं अवृणोत्) वृत्रको घेर लिया । (वर्प-णीतिः मायिनां प्र अमिनात्) नाना रूपोंको लेनेवाले इन्द्रने कपटी शत्रुओंको विशेष रीतिसे नष्ट किया । (वनेषु उशधग् व्यंसं अहन्) वनोंको भस्म करनेवालेने कंधे-भुजा तोडनेवाले शत्रु-को मार दिया और (राम्याणां धेना आविः अकृणोत्) रात्रीमें छिपायी गौओंको किरणोंसे प्रकट किया । शत्रुने छिपायी गौओंको बाहर निकाला ॥ ३ ॥

(स्वर्षा इन्द्रः) स्वयं प्रकाशी इन्द्रने (अहानि जन-यन्) दिनोंको उत्पन्न किया (अभिष्टिः) अपना अभीष्ट प्राप्त करनेवाले इन्द्रने (उशिग्भिः) अपने साथियोंके साथ रहकर (पृतनाः जिगाय) शत्रुसेनाओंको जीत लिया । (मनवे) मनुष्यमात्रके हितके लिये (अह्नां केतुं प्रारोचयत्) दिनोंके ध्वजरूप-सूर्यको-प्रकाशित किया और (बृहते रणाय) बडी रमणीयताके लिये (ज्योतिः अविन्दत्) प्रकाशको प्राप्त किया ॥ ४ ॥

(इन्द्रः) इन्द्र (तुजः) लडाके (बर्हणा आ विवेश) शत्रुसेनामें घुस गया । वह (नृवत्) नेताके समान (पुरूणि नर्या दधानः) बहुत वीरके कर्म करता है । (जरित्रे इमाः धियः अचेतयत्) उसने अपनी स्तुति करनेवालेके लिये ये बुद्धियां सचेत की और (आसां इमं शुक्रं वर्णं) इन उषाओंके इस तेजस्वी प्रकाशको (प्र अतिरत्) अधिक बढा दिया ॥ ५ ॥

(अस्य महः इन्द्रस्य) इस महान् इन्द्रके (पुरूणि सुकृता महानि कर्म) बहुत उत्तमतासे किये कर्म हैं जिनकी लोग (पनयन्ति) स्तुति करते हैं । (वृजनेन वृजिनान् सं पिपेष) कपटसे कपटियोंको उसने पीस डाला । (अभि-भूति-ओजाः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्यवाले इन्द्रने (मायाभिः दस्यून्) अपनी शक्तियोंसे दुष्टोंका नाश किया ॥ ६ ॥

(सत्पतिः चर्षणिप्राः इन्द्रः) सज्जनोंके पालक और मानवोंकी मनोरथ परिपूर्ण करनेवाले इन्द्रने (मह्ना युधा) अपनी महिमासे और युद्ध करके (देवेभ्यः वरिवः चकार) देवोंके लिये ऐश्वर्य निर्माण की । (विवस्वतः सदने) विवस्वानके घरमें (विप्राः कवयः) ज्ञानी कवि (अस्य तानि उक्थेभिः गृणन्ति) इस इन्द्रके उन कर्मोंका स्तोत्रोंसे गान करते हैं ॥ ७ ॥

(सत्रासाहं) साथ रहकर जीतनेवाले (वरेण्यं) श्रेष्ठ निवडने योग्य (सहोदां) सामर्थ्य बल देनेवाले (स्वः देवीः अपः च ससवांसं) स्वर्गप्रकाश और दिव्य जलको जीतने-

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९ ॥
इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतीँरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥ १० ॥
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥ ११ ॥ (२१)

वाले (इन्द्रं) इन्द्रके साथ (धीरासः अनुमदन्ति) बुद्धिमान ज्ञानी लोग आनन्द मनाते हैं (यः पृथिवीं उत इमां द्यां ससान) जिसने पृथिवी और इस द्युलोकको जीता है ॥ ८ ॥

(इन्द्रः अत्यान् ससान) इन्द्रने घोडे जीते हैं । (उत सूर्यं ससान) और सूर्यको जीता है (पुरुभोजसं गां ससान) बहुत अन्न देनेवाली गायको जीता है (हिरण्ययं उत भोगं ससान) सुवर्णको और भोगको जीता है, (दस्यून् हत्वी) उसने दस्युओंको मारकर (आर्यं वर्णं आवत्) आर्य वर्णकी रक्षा की है ॥ ९ ॥

(इन्द्रः ओषधीः अहानि असनोत्) इन्द्रने औषधियों और दिनोंको जीता (वनस्पतीन् अन्तरिक्षं असनोत्) वनस्पतियों और अन्तरिक्षको जीता (वलं बिभेद) वल नामक शत्रुको तोड दिया (विवाचः नुनुदे) विरुद्ध बोलनेवालोंको दूर किया और (अथ अभिक्रतूनां दमिता अभवत्) और शत्रुके विरोधियोंका दमन करनेवाला हो गया है ॥ १० ॥

(शुनं मघवानं) उत्तम गुणवाले धनवान् (अस्मिन् भरे वाजसातौ) इस युद्धमें धनोंको जीतनेके लिये (नृतमं) श्रेष्ठ नेता तथा (शृण्वन्तं उग्रं) सबकी सुननेवाले उग्रवीर (समत्सु ऊतये) युद्धोंमें रक्षणार्थ (वृत्राणि घ्नन्तं) शत्रुओंको मारनेवाले (धनानां संजितं) धनोंको जीतनेवाले (इन्द्रं हुवेम) इन्द्रको हम बुलावें ॥ ११ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रवीरके गुण देखिये—

१ पूर्भित्— शत्रुके किले तोडनेवाला शत्रुके पुरियोंपर अपना अधिकार जमानेवाला

२ दासं वर्णं अधरं अतिरत्— दास नामक शत्रुकी शक्तियोंको मारा

३ विदद्वसुः— धनका दान करनेवाला

४ शत्रून् विदन्त्यमानः— शत्रुओंका नाश करनेवाला

५ ब्रह्म जूतः— ज्ञानसे प्रेरित होनेवाला

६ तन्वा वावृधानः— शरीरसे बडा बलवान् होनेवाला

७ भूरिदात्रः— बहुत दान देनेवाला

८ उभे रोदसी आपृणात्— दोनों लोकोंको तेजसे भरनेवाला

९ तविषः— बलवान्

१० मखः— पूजनीय

११ अमृताय भूषन्— अमरत्वके लिये वेषभूषा करनेवाला

१२ मानुषीणां क्षितीनां दैवीनां विशां पूर्वयावा— मानवी और दैवी प्रजाओंका अपूर्व नेता

१३ शर्धनीतिः— जिसकी नीति बलके आश्रयसे चलती है

१४ वृत्रं अवृणोत्— जिसने वृत्रको घेरा था

१५ वर्पनीतिः मायिनां प्र अमिनात्— अनेक रूप धारण करनेवाले इन्द्रने कपटियोंका पराभव किया ।

१६ वर्पे नीतिः— अनेक रूप धारण करनेवाला इन्द्र है ।

१७ व्यंसं अहन्— व्यंसको मारा

१८ वयोधाः— प्रकाशित होनेवाला तेजस्वी;

१९ स्वर्षाः— प्रकाशयुक्त

२० अभिष्टिः सखिभिः पृतनाः जिगाय— इस कार्य करनेवालेने अपनी शक्तियोंसे शत्रुसेनाओंको जीत लिया ।

२१ बृहते रणाय ज्योतिः अविन्दत्— बडे आनन्दके लिये प्रकाश प्राप्त किया ।

२२ इन्द्रः नृभिः वर्हणा आविवेश— इन्द्र ताकदसे कार्य करनेवाला वेगसे शत्रुसेनामें घुस गया ।

२३ नृवत्— नेता हुआ ।

२४ पुरूणि नर्या कृण्वानः— बडे वीर कर्म करता है ।

२५ इमा धियः अचेतयत्— ये बुद्धियां सचेत करता है ।

२६ अस्य महः इन्द्रस्य महानि पुरूणि सुकृता

[सूक्त १२]

(ऋषिः — १-६ वसिष्ठः ७ अत्रिः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ ७।२३।१-६)

उदु॒ ब्रह्मा॑ण्यैरत श्रव॒स्येन्द्रं॑ सम॒र्ये म॑हया वसिष्ठ।
आ यो विश्वा॑नि॒ शव॑सा त॒तानो॑पश्रो॒ता म॒ ईव॑तो॒ वचां॑सि ॥ १ ॥
अया॑मि॒ घोष॑ इन्द्र दे॒वजा॑मिरिर॒ज्यन्त॒ यच्छु॒रुधो॒ विवा॑चि।
न॒हि स्वमायु॑श्चिकि॒ते जने॑षु॒ तानीदंहां॒स्यति॑ प॒र्ष्यस्मा॑न् ॥ २ ॥
यु॒जे रथं॑ ग॒वेष॑णं॒ हरि॑भ्या॒मुप॒ ब्रह्मा॑णि जुजुषा॒णम॑स्थुः।
वि बा॑धिष्ट॒ स्य रोद॑सी महि॒त्वेन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ती ज॑घ॒न्वान् ॥ ३ ॥

पनयन्ति— इस बड़े इन्द्रके अनेक सत्कर्मोंकी सब लोग स्तुति करते हैं।

२७ वृजनेन वृजिनान् सं पिपेष— कपटसे कपटियोंको पीस डाला।

२८ अभिभूत्योजाः मायाभिः दस्यून्— आक्रमक बलवाले इन्द्रने कपटोंसे शत्रुओंको नाशा।

२९ सत्पतिः चर्षणिप्राः इन्द्रः मह्ना युधा देवेभ्यः वरिवः चकार— सज्जनोंके पालक मानवोंके रक्षक इन्द्रने बड़े युद्धसे देवोंके लिये श्रेष्ठ स्थान बनाया।

३० विप्राः कवयः अस्य तानि उक्थेभिः गृणन्ति— ज्ञानी कवि इसके उन कर्मोंका वर्णन गाते हैं।

३१ सत्रासाहः— साथ रहकर विजय करनेवाला

३२ वरेण्य — श्रेष्ठ

३३ सहोदाः— बल देनेवाला

३४ ससवान्— विजयी

३५ यः पृथिवीं उत द्यां ससान— जिसने पृथिवीपर और द्युलोकमें विजय किया है।

३६ धीरणासः इन्द्रं अनुमदन्ति— बुद्धिमान लोग इन्द्रके वर्णनसे आनंद मनाते हैं।

३७ ससान पुरुभोजसं गां हिरण्ययं भोगं ससान— बहुत पालक गौ सोना और भोग इसने जीते।

३८ दस्यून् हत्वी आर्यं वर्णं प्रावत्— शत्रुको मार कर आर्य वर्णकी रक्षा की।

३९ वलं बिभेद— बलका पराभव किया

४० विवाचः नुनुदे— विरोध करनेवालोंको दूर किया।

४१ अभिक्रतूनां दमिता अभवत्— वह विरोधियोंको दबानेवाला हुआ है।

४२ शुनं मघवानं इन्द्रं हुवेम— उदार भगवान् इन्द्रको हम बुलाते हैं।

४३ अस्मिन् भरे वाजसातौ नृतमं— इस युद्धमें धनप्राप्तिके समय यह श्रेष्ठ वीर है।

४४ समत्सु ऊतये शृण्वन्तं— युद्धोंमें रक्षाके लिये इसको जो सुनता है उसको बुलाते हैं।

४५ वृत्राणि घ्नन्तं— वृत्रोंको मारनेवाला

४६ धनानां संजितं— धनोंको जीतनेवाला यह वीर है।

ये इन्द्रके वीरताके गुण इस सूक्तमें वर्णन किये हैं।

(सूक्त १२)

(श्रवस्या) यशकी इच्छासे (ब्रह्माणि उत् ऐरत) स्तोत्र गाओ, हे वसिष्ठ! (समर्ये इन्द्रं महय) युद्धमें इन्द्रकी महिमाका गान कर। (यः शवसा विश्वानि आ ततान) जिसने अपने बलसे सब विश्वको फैलाया है। (ईवतः मे वचांसि उपश्रोता) भक्ति करनेवाले मेरे वचनोंको वह सुनेगा ॥ १ ॥

हे इन्द्र! (देव-जामिः घोषः अयामि) देवोंके साथ सम्बन्ध रखनेवाली घोषणा हो चुकी है (विवाचि यत् शुरुधः इरज्यन्त) विरोधी लोगोंमें क्रोधको रोकनेवाले बल प्रकट होते हैं। (जनेषु स्वं आयुः न हि चिकिते) मनुष्योंमें अपनी आयुको कोई नहीं जानता। (तानि अंहांसि इत्) उन पाप (अस्मान् अति पर्षि) हमसे दूर कर ॥ २ ॥

(गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे) गौओंको ढूंढनेवाले तेरे रथको दो घोड़े मैं जोतता हूं। (ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः) हमारे स्तोत्र भजन करनेवाले इन्द्रके पास पहुंचे हैं। (स्यः महित्वा) वह इन्द्र अपने महत्वसे (रोदसी वि बाधिष्ट) द्युलोक और भूलोकको बांधता है। (इन्द्रः

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ ४ ॥
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ५ ॥
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥ (९०)

वृत्राणि अप्रती जघन्वान्) इन्द्रने वृत्रोंको अप्रतिम रीतिसे मारा है ॥ ३ ॥

(स्तर्यः गावः न) बंध्या गौओंके समान (आपः पिप्युः चित्) जलप्रवाह पुष्ट हुए हैं। हे इन्द्र! (ते जरितारः ऋतं नक्षन्) तेरी स्तुति करनेवाले सत्य यज्ञको प्राप्त होते हैं। (नः अच्छा नियुतः आ याहि) तू हमारे पास घोड़ा जोड़कर आ जाओ (वायुः न) जैसा वायु आता है। (त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे) तू अपने बुद्धियुक्त कर्मोंसे अन्नों और बलोंको बांटता है ॥ ४ ॥

हे इन्द्र! (ते मदाः) वे आनंददायक सोमरस (जरित्रे तुविराधसं शुष्मिणं त्वा) स्तोताके लिये पर्याप्त धन देनेवाले बलिष्ठ शक्तिमान् तुझको (मादयन्तु) आनन्दित करें। तू (एकः) अकेला ही (देवत्रा) देवोंमेंसे (मर्तान् दयसे हि) मानवोंपर दया करता है। हे शूर! (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस सोमयज्ञमें आनन्दित हो ॥ ५ ॥

(वज्रबाहुं वृषणं इन्द्रं) वज्र बाहुपर धारण करनेवाले बलवान् इन्द्रकी (वसिष्ठासः एव इत् अर्कैः) वसिष्ठ इस तरह स्तोत्रोंसे (अभ्यर्चन्ति) पूजा करते हैं। (नः स्तुतः) हमसे स्तुति किया गया वह इन्द्र (वीरवत् गोमत् धातु) वीर पुत्रों और गौओंके साथ रहनेवाला धन हमें देवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी कल्याणोंके साथ रक्षा करो ॥ ६ ॥

(ऋजीषी) सोमपान करनेवाला (वज्री) वज्र धारण करनेवाला (वृषभः) बैलके समान बलवान् (तुराषाट्) त्वरासे शत्रुओंको दबानेवाला (शुष्मी) बलवान् (राजा) शासक (वृत्रहा) वृत्रको मारनेवाला (सोमपावा) सोम पीनेवाला (हरिभ्यां युक्त्वा) दो घोड़ोंको जोड़कर (अर्वाङ् उप यासत्) हमारे पास आवे (इन्द्रः माध्यंदिने सवने मत्सत्) इन्द्र मध्यंदिनके सवनके समय आनन्दित हो जाय ॥ ७ ॥

इस सूक्तमें वीरके लक्षण ये कहे हैं—

१ इन्द्रं समर्ये महय— संग्राममें इन्द्रकी महिमा गाओ।

२ यः ओजसा विश्वानि आततान— वह अपने बलसे विश्वको फैलाता है।

३ इन्द्रः मे वचांसि उपश्रोता— प्रार्थना करनेवाले मेरा भाषण वह सुनता है।

४ हे इन्द्र! देवजामिः घोषाः अयामि— हे इन्द्र! तू देवोंका बन्धु है ऐसा आप सुनते हैं।

५ विषाचि शुरुधः यत् इरज्यन्त— विरुद्ध जानेवालोंको न थामें लोकको विराम करनेवाले कम होते हैं।

६ गवयन्तं रथं हरिभ्यां युजे— गौओंको ढूंढनेवाले रथको मैं दो घोड़े जोतता हूं।

७ ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः— स्तोत्र श्रवण करनेवालेके पास पहुंचे हैं।

८ स्व महिम्ना रोदसी वि बाधिष्ट— वह अपने सामर्थ्यसे दोनों लोकोंको भरता है।

९ इन्द्रः वृत्राणि अप्रती जघन्वान्— इन्द्र अप्रतिम रीतिसे वृत्रोंको मारता है।

१० नः अच्छ नियुतः आ याहि— हमारे पास घोड़ोंके साथ आओ।

११ त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे— तू अपने बुद्धियुक्त कर्मोंसे हमें बल देता है।

१२ शुष्मी— बलवान्

१३ तुविराधा— बहुत धनवाला

[सूक्त १३]

(ऋषिः — १ वामदेवः २ गोतमः ३ कुत्सः ४ विश्वामित्रः।
देवता — १ इन्द्राबृहस्पती २ मरुतः ३-४ अग्निः।)

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥ १ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ २ ॥
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ४ ॥ (६२)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥ १ ॥

---

१४ देवता एक अर्थात् दूयसे— देवोंमें अकेला तू मानवोंपर दया करता है।

१५ मदा त्वा मादयन्तु— ये सोमरस तुझे आनन्द देवें।

१६ शूर ! अस्मिन् सवने मादयस्व— हे शूर ! इस सवनमें आनन्द मना।

१७ वज्रबाहुः वृषण्वा— वज्रके समान कठिन बाहु वाला और बलवान्।

१८ सः न वीरवत् गोमत् धातु— वह हमें वीर पुत्रों और पौत्रोंके साथ रहनेवाला धन देवे।

१९ ऋजीषी— सोमरस पीनेवाला

२० वज्री— वज्र धारनेवाला

२१ तुराषाट्— त्वरासे शत्रुका पराभव करनेवाला

२२ राजा— शासक

२३ वृत्रहा— वृत्रको मारनेवाला

२४ सोमपावा— सोमरस पीनेवाला

२५ हरिभ्यां युक्त्वा— दो घोडोंको जोडकर।

(सूक्त १३)

हे बृहस्पते ! तू और इन्द्र (मन्दसाना वृषण्वसू) आनन्द मनाते हुए, बलवान् तथा निवास देनेवाले तुम दोनों (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (सोमं पिबतं) सोमरस पीओ। (सु-आभुवः इन्दवः) उत्तम रीतिसे सिद्ध हुए ये सोमरस (वां आ विशन्तु) तुम्हारे अन्दर जाय। (अस्मे सर्ववीरं रयिं नि यच्छतं) हमको सब पुत्रपौत्रोंसे युक्त धन दे दो ॥ १ ॥ (ऋ. ४।५०।१०)

(रघुष्यदः सप्तयः वः आ वहन्तु) शीघ्र चलनेवाले घोडे आपको इधर ले आवें। (रघु-पत्वानः बाहुभिः प्र जिगात) भुजाओंसे शीघ्र चलते हुए आगे बढो। (बर्हिः सीदत) आसनपर बैठो। (वः उरु सदः कृतं) तुम्हारे लिये विस्तृत स्थान किया है। हे मरुतो ! (मध्वः अन्धसः मादयध्वं) मधुर रससे आनन्दित हो जाओ ॥ २ ॥ (ऋ. १।८५।६)

(रथं इव) रथको सजाते हैं उस तरह (इमं स्तोमं) इस स्तोत्रको (अर्हते जातवेदसे) योग्य जातवेद अग्निके लिये (मनीषया सं महेम) बुद्धिसे सजाते हैं। (अस्य संसदि) इसके साथ बैठनेमें (नः भद्रा प्रमतिः) हमारी कल्याणकारिणी बुद्धि विकसित होती है। हे अग्ने ! (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरी मित्रतामें हम हानि न उठावें ॥ ३ ॥ (ऋ. १।९४।१)

हे अग्ने ! (एभिः सरथं अर्वाङ् आ याहि) इन देवोंके साथ एक रथपर बैठकर इधर आ। अथवा (नानारथं वा) अनेक रथोंपर बिठलाकर ले आ। (हि अश्वाः विभवः) क्योंकि आपके घोडे वेगवान् हैं। (पत्नीवतः) पत्नी योंके साथ (त्रिंशतं त्रीन् च देवान्) तीस और तीन देवोंको (अनु-स्वधं आ वह) उनको अपनी धारणाशक्ति

[सूक्त १४]

(ऋषिः — १-४ सोभरिः । देवता — इन्द्रः ।)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥ (५८)

अनुकूल रखकर यहां ले आ और (मादयस्व) हमको प्रसन्न कर ॥ ४ ॥ (ऋ. १।६।९)

इसमें इन्द्र बृहस्पति मरुत् और अग्निका वर्णन है। इनके गुण ये हैं—

१ मन्दसानः— आनन्दित रहनेवाले

२ वृषण्वसू— बल बढानेवाला धन अपने पास रखनेवाले।

३ सर्ववीरं रयिं नि यच्छतम्— वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला धन दो। पुत्रपौत्र जिससे बढते हैं ऐसा धन चाहिये। पुत्रहीन धन नहीं चाहिये।

४ रघुष्यदः रघुपत्वानः सप्तयः— घोडे जल्दी दौडनेवाले चाहिये।

५ जात-वेदाः— वेद जिससे हुए, ज्ञानप्रसारक

६ अस्य संसद् नः भद्रा प्रमतिः— इसके साथ रहनेमें कल्याण करनेवाली बुद्धि होती है।

७ तव सख्ये मा रिषाम— तेरी मित्रतामें हमें हानि न पहुंचे।

८ एभिः सरथं या नानारथं या याहि— इन देवोंके साथ एक रथमें या नाना रथोंमें बैठकर आओ। रथमें बैठकर देव आते हैं। अग्निके साथ देव आते हैं।

९ प्रभ्वा विभवः — जो सामर्थ्यवान् हैं वैभववान् हैं शोभती हैं।

१० पत्नीवतः त्रिंशतं त्रीन् च देवान् अनुष्वधं आ वह— पत्नीयों समेत ३३ देवोंको ले आओ। उनको जो अन्न चाहिये वह दो।

११ मादयस्व— उनको आनन्दित रख। सब आनन्द प्रसन्न रहें।

॥ यहां प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त १४)

हे (अ-पूर्व्य) अपूर्व इन्द्र! (कच्चित् स्थूरं न भरन्तः) कोई विशेष धन अपने पास न रखनेवाले परंतु (अवस्यवः) अपनी सुरक्षा चाहनेवाले (वयं) हम (चित्रं त्वा) आश्चर्यमय तुमको (वाजे उ हवामहे) युद्धमें सहायार्थ बुलाते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।२१।१)

(कर्मन् ऊतये त्वा) युद्धके कर्ममें रक्षाके लिये तुझे बुलाते हैं। (सः यः) वह तू (युवा) तरुण (उग्रः) उग्र वीर (धृषत्) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य धारण करने वाला (नः उप चक्राम) हमारे समीप आ। (त्वां इत् हि अवितारं ववृमहे) तुझे ही रक्षक करके हम स्वीकार करते हैं। हे इन्द्र! (सखायः सानसिं) हम साथी तुझ बडे दानीको हम अपना रक्षक करते हैं ॥ २ ॥ (ऋ ८।२१।२)

(यः नः इदं इदं वस्यः) जिसने हमारे पास यह इस उत्तम धन (पुरा प्र आनिनाय) पहिले लाया है (सखायः) मित्रो! (तं इन्द्रं उ) उसी इन्द्रकी (वः ऊतये स्तुषे) तुम्हारी रक्षाके लिये स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥ (ऋ ८।२१।९)

(हर्यश्वं) लाल घोडोंवाले (सत्पतिं) सज्जनोंका पालन करनेवाले (चर्षणी-सहं) शत्रु सैन्यको जीतनेवाले इन्द्रकी मैं स्तुति करता हूं। (सः हि यः अमन्दत स्म) वही है जो आनन्द मनाता है। (सः मघवा तु) वही धनवान् इन्द्र (नः स्तोतृभ्यः) हम स्तोताओंको (शतं गव्यं अश्व्यं आ वयति) सौ गौवों और घोडोंका समूह लाकर देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।२१।१०)

इस सूक्तमें वीर इन्द्रके जो गुण बताये हैं वे ये हैं—

[सूक्त १५]

(ऋषिः — १-६ गोतमः । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ. १।५७।१-६)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥

---

१ अपूर्व्यः— इसके समान दूसरा वीर नहीं हुआ।

२ वाजे चित्रं— युद्धमें आश्चर्यकारक वीरता को दिखाता है।

३ युवा— सदा तरुण आयु बडी होनेपर भी तरुण जैसा कार्य करनेवाला।

४ उग्रः— उग्र शूरवीर

५ धृषत्— शत्रुका पराभव करनेवाला धैर्यवान्।

६ कर्मन् ऊतये— प्रत्येक युद्धके कर्ममें रक्षा करनेवाला

७ अविता— संरक्षण करनेवाला

८ सानसिः— विशेष दान देनेवाला

९ यः न इदं वस्य आनिनाय— जो हमारे पास इस तरहका धन लाता है। वस्य धन वह है कि जो मानवोंका बसानेवाला है।

१० हर्यश्वः— लाल घोडोंवाला

११ सत्पतिः— सज्जनोंका रक्षक

१२ चर्षणी सहः— शत्रुके वीर मानवोंका पराभव करनेवाला

१३ मघवा गव्य अश्व्यं शतं ददाति— इन्द्र सैकडों गौओं और घोडोंके समूह देता है।

(सूक्त १५)

(मंहिष्ठाय) बडे महान, (बृहते) सबसे श्रेष्ठ (बृहद्रये) बडे धनवाले (सत्यशुष्माय) सच्चे बलवाले (तवसे) सामर्थ्यवाले इन्द्रके लिये (मतिं प्र भरे) स्तोत्र गाता हूं। (यस्य दुर्धरं राधः) जिसका अतुलनीय धन दान (प्रवणे अपां इव) नदरोंमें जलके पूरके समान (विश्व-आयु) सब मानवोंके लिये और (शवसे) बलके लिये (अपावृत) प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

(अध विश्वं ते इष्टये ह अनु असत्) अब सब विश्व तेरी इच्छा-तेरे यज्ञ के लिये अनुकूल रहता है। (आपः निम्ना इव) जलप्रवाह नीचाईकी ओर जाते हैं वैसे तथा (हविष्मतः सवना) हविवालोंके हवन तेरे पास जाते। (इन्द्रस्य हिरण्ययः हर्यतः वज्रः) इन्द्रका सुवर्णमय तेजस्वी वज्र (पर्वते यत् न समशीत) पर्वतपर भी मेघमें ही नहीं प्रभावित होता परंतु वह (श्नथिता) शत्रुको चूर्ण करनेमें समर्थ रहता है ॥ २ ॥

(अस्मै भीमाय पनीयसे) इस भयंकर तथा स्तुतिके योग्य इन्द्रके लिये (उषाः न) उषाके समान प्रकाशित (नमसा शुभ्रे अध्वरे सं आ भर) नमस्कारपूर्वक शुद्ध यज्ञमें हवि लाकर भर दे। (यस्य धाम नाम श्रवसे) जिसका स्थान और नाम यशके लिये तथा (इन्द्रियं ज्योतिः अकारि) इंद्रियकी ज्योति प्रकाशके लिये बनाई गयी है (हरितः न अयसे) जैसे घोडे गतिके लिये हैं ॥ ३ ॥

हे (पुरुष्टुत इन्द्र) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र! हे (प्रभूवसो) प्रभूत धनवाले! (इमे ते ते वयं) ये ये हम तेरे ही हैं। (ये त्वा आरभ्य चरामसि) जो तेरा सहारा लेकर फिरते हैं। हे (गिर्वणः) स्तुतिके स्वामिन्! (त्वत् अन्यः) तेरे सिवाय कोई दूसरा (गिरः नहि सघत्) हमारी स्तुतियोंको स्वीकार कर नहीं सकता। (क्षोणीः इव) प्रजाजनको जैसा राजा (नः तत् वचः प्रति हर्य) वैसा हमारे इस वचनको स्वीकार कर ॥ ४ ॥

भूरि॑ त इन्द्र वी॒र्यं१॒॑ तव॑ स्मस्य॒स्य स्तो॒तुर्म॑घव॒न्काम॒मा पृ॑ण ।
अनु॑ ते॒ द्यौर्बृ॑ह॒ती वी॒र्यं॑ मम इ॒यं च॑ ते पृथि॒वी ने॑म॒ ओज॑से ॥ ५ ॥

त्वं तमि॑न्द्र॒ पर्व॑तं म॒हामु॒रुं वज्रे॑ण वज्रिन्पर्व॒शश्च॑कर्तिथ ।
अवा॑सृजो॒ निवृ॑ताः॒ सर्त॒वा अ॒पः स॒त्रा विश्वं॑ दधिषे॒ केव॑लं॒ सहः॑ ॥ ६ ॥ (७४)

हे इन्द्र (ते वीर्यं भूरि) तेरा पराक्रम बड़ा है। (तव स्मसि) हम भी तेरे ही हैं। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (अस्य स्तोतुः कामं आ पृण) इस स्तोताकी इच्छा पूर्ण कर। (बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु) बड़ी द्यौ तेरे पराक्रमका अनुमान कराती है। (इयं च पृथिवी) और यह पृथिवी भी (ते ओजसे नेमे) तेरी शक्तिके सामने झुकी है ॥ ५ ॥

हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र! (त्वं तं महां उरुं पर्वतं) तूने उस महान् विशाल पर्वतको- मेघको- (वज्रेण पर्वशः चकर्तिथ) वज्रसे टुकड़े टुकड़े कर डाले। और (अपः) जलोंको जो (निवृताः) रुके पड़े थे उनको (सर्तवा अवासृजः) बहनेके लिये छोड़ दिया। (विश्वं केवलं सहः सत्रा दधिषे) संपूर्ण शक्तिको तू साथ साथ धारण करता है ॥ ६ ॥

इस सूक्तमें जो वीरके गुण बताये हैं वे ये हैं—

१ मंहिष्ठः— महान् श्रेष्ठ

२ बृहत्— बड़ा

३ बृहद्रयिः— बहुत धन जिसके पास है।

४ सत्य शुष्मः— सच्चा बल जिसके पास है अपने बलसे जो निःसंदेह अपना कर्तव्य करता ही रहता है।

५ तवस— शक्तिमान्

६ यस्य दुर्धरं राधः— जिसका दुर्धर अदम्य सामर्थ्य है सिद्धि प्राप्त करनेका सामर्थ्य जिसमें अटूट है।

७ विश्व आयु — सब मानवोंके हितके लिये जो कार्य करता है

८ राधः— सामर्थ्य बल

९ ते हर्यते विश्वं अनु असत् ह — तेरे हित करनेके लिये सब तैयार रहते हैं।

१ (अथर्व. मन्त्र भाष्य १)

१० इन्द्रस्य हिरण्ययः हर्यतः वज्रः श्नथितः— इन्द्रका तेजस्वी वज्र शत्रुका चूर्ण कर सकता है।

११ भीमः— भयंकर

१२ यस्य धाम नाम इन्द्रियं ज्योतिः श्रवसे अकारि— जिसका धाम और नाम इन्द्रके सामर्थ्यकी ज्योति यशके लिये प्रकट करता है।

१३ पुरुष्टुतः— बहुतों द्वारा प्रशंसित

१४ प्रभू-वसुः— बहुत धनवाला

१५ यं त्वा आरभ्य चरामसि— हम तेरे आधारसे चलते हैं।

१६ नहि त्वदन्यः गिरः सघत— तेरे सिवाय दूसरा कोई हमारी स्तुतियोंका स्वीकार कर नहीं सकता।

१७ गिर्वणः— प्रशंसाके योग्य।

१८ हे इन्द्र! ते वीर्यं भूरि— हे इन्द्र! तेरा पराक्रम बड़ा है।

१९ तव स्मसि— हम तेरे हैं।

२० हे मघवन्! स्तोतुः कामं आ पृण— हे इन्द्र! स्तोताकी इच्छा पूर्ण कर।

२१ बृहती द्यौः ते वीर्यं अनु— यह बड़ी द्यौ तेरे सामर्थ्यको प्रकाशित करती है।

२२ इयं पृथिवी ते ओजसे नेमे— यह पृथिवी तेरे सामर्थ्यके सामने नमती है।

२३ हे वज्रिन्! इन्द्र! त्वं तं महां उरुं पर्वतं वज्रेण पर्वशः चकर्तिथ— हे वज्रधारी इन्द्र! तूने उस बड़े महान् पर्वत-मेघ-के वज्रसे टुकड़े टुकड़े किये।

२४ विश्वं केवलं सहः सत्रा दधिषे— सब बल सामर्थ्य तू साथ साथ अपनेमें धारण करता है।

[सूक्त १६]

(ऋषिः — १-१२ अयास्यः। देवता — बृहस्पतिः।)
(ऋ० १०।६८।१-१२)

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥ १ ॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥ २ ॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥ ३ ॥

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥ ४ ॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत्।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥ ५ ॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥ ६ ॥

(सूक्त १६)

(उदप्रुतः वयः न) जलमें तैरनेवाले पक्षियोंकी तरह (रक्षमाणाः) अपनी रक्षा करते हुए (वावदतः अभ्रियस्य घोषाः इव) गर्जनेवाले मेघोंकी गर्जनाके समान और (गिरिभ्रजः मदन्तः ऊर्मयः न) पर्वतोंसे गिरनेवाले आनन्दपूर्ण जलप्रवाहोंके समान (अर्काः बृहस्पतिं अभि अनावन्) हमारे स्तोत्र बृहस्पतिकी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

(आङ्गिरसः गोभिः सं नक्षमाणः) अंगरस विद्याको जाननेवाला गौओंके साथ रहता है। (भगः इव अर्यमणं इत् निनाय) भगके- ऐश्वर्यवानके समान अर्यमाको- श्रेष्ठ मनवालेको हमारे पास लाता है। (जने मित्रः न) जनसमूहमें मित्रकी तरह (दंपती अनक्ति) पति पत्नी समानतर प्रकाशते हैं। (आजौ आशून् इव) युद्धमें घोड़ोंके समान हे बृहस्पते! (वाजय) हमें बलवान् बना ॥ २ ॥

(साधु-अर्याः) सज्जनोंके पास रहनेवाली (अतिथिनीः) अतिथिके पास ले जाने योग्य (इषिराः) [illegible] देनेवाली (स्पार्हाः) इच्छा करने योग्य (सुवर्णाः) उत्तम रंगवाली (अनवद्यरूपाः) अनिन्दनीय सुंदर रूपवाली (गाः पर्वतेभ्यः वितूर्य) गौओंको पर्वतोंसे लाकर (निः ऊपे) फैलाते हैं (स्थिविभ्यः यवं इव) कोठियोंसे बाहर जौ को जैसा फैलाते हैं ॥ ३ ॥

(अर्कः ऋतस्य योनिं मधुना अवक्षिपन्) सूर्य जैसा यज्ञके स्थानको मधुसे भरता है, (द्योः उल्कां इव) द्युलोकसे उल्काको नीचे फेंकता है वैसा बृहस्पति (आप्रुषायन्) सींचता है, (बृहस्पतिः अश्मनः गाः उद्धरन्) बृहस्पति पत्थरसे गौओंका उद्धार करता है (भूम्याः त्वचं उद्ना इव बिभेद) भूमिकी त्वचाको जलके समान तोड़ता है [जिससे पर्याप्त घास उत्पन्न होता है।] ॥ ४ ॥

(ज्योतिषा तमः अन्तरिक्षात् अप आजत्) प्रकाशसे अन्धकारको अन्तरिक्षसे हटाता है (वातः उद्नः शीपालं इव) वायु जैसा पानीसे शैवालको हटाता है, (बृहस्पतिः अनुमृश्य वलस्य गाः आ चक्रे) वैसा बृहस्पति विचार करके बलकी गौओंको बाहर फैलाता है (वातः अभ्रं इव) वायु जैसा मेघको फैलाता है ॥ ५ ॥

(यदा) जब (अग्नितपोभिः अर्कैः) अग्निके समान ताप करनेवाले अर्कोंसे मंत्रोंसे (पीयतः वलस्य जसुं

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥ ७ ॥
अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥ ८ ॥
सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥ ९ ॥
हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥ १० ॥
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥ ११ ॥
इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥ १२ ॥ (८३)

भेद) करनेवाले वलके बलको तोड दिया तब (दद्भिः परिविष्टं जिह्वा आदत्) दांतोंसे चबाये हुए अन्नको जिह्वा खाती है उस तरह (उस्रियाणां निधीः आविः अकृणोत्) गौओंके निधियोंको [जो वलके आधीन थे उनको सब लोगोंके हितार्थ] प्रकट किया ॥ ६ ॥

(बृहस्पतिः आसां स्वरीणां) बृहस्पतिने इन शब्द करनेवाली गायोंका (नाम अमत) नाम-पता-ज्ञान किया (यत् सदने गुहा) जो गुप्त सदनमें था (पर्वतस्य त्मना उस्रियाः उत् आजत्) पर्वतकी गुहामेंसे स्वयं गौओंको बाहर निकाला जैसा (शकुनस्य आण्डा भित्त्वा गर्भं) पक्षीके अण्डेको तोडकर बच्चा स्वयं बाहर आता है ॥ ७ ॥

(अश्ना पिनद्धं मधु) पत्थरसे ढके हुए मधुको- किलेमें बंद गौओंको- (पर्यपश्यत्) बृहस्पतिने वैसा देखा (दीने उदनि क्षियन्तं मत्स्यं न) थोडे जलमें रहनेवाले मत्स्यको जैसे देखते हैं। (बृहस्पतिः विरवेण विकृत्य) बृहस्पतिने विशेष शब्द करनेवाले शस्त्र- वज्र से किलेको- तोडकर (वृक्षात् चमसं न) वृक्षसे चमस बनाते हैं उस तरह उस किलेसे (तत् निः जभार) उस मधुको-गौओंको-बाहर निकाल लाया ॥ ८ ॥

(स उषां अविन्दत्) उस बृहस्पतिने उषाको प्राप्त किया (सः स्वः) उसने प्रकाशको और (सः अग्निं) उसने अग्निको प्राप्त किया पश्चात् (सः अर्केण तमांसि वि बबाधे) उसने सूर्यसे अन्धेरेको विनष्ट किया। (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (वलस्य गोवपुषः) वलके गोरूप धारण करनेवालेके शरीरसे (पर्वणः न) जोडोंसे चर्बी निकालते हैं वैसे (मज्जानं निर्जभार) चर्बीको निकाल लिया [अर्थात् वलको मारा।] ॥ ९ ॥

(हिमा इव) हिमकणोंसे (पर्णा मुषिता वनानि) पत्ते गिर पडे इस कारण वन [दुःखी दीखते हैं उस तरह] (बृहस्पतिना) बृहस्पतिने छीनी गई (गाः वलः कृपयत्) गौओंके लिये वल दुःखी हुआ। (अनानुकृत्यं अपुनः चकार) जिसका कोई अनुकरण न कर सके जो फिर होनेवाला नहीं ऐसा यह कर्म हुआ। (यात् सूर्यामासा मिथः उच्चरातः) सूर्य और चन्द्र जिसका कर्म बारबार उच्चारण करते हैं [ऐसा यह कर्म हुआ है।] ॥ १० ॥

(कृशनेभिः श्यावं अश्वं न) आभूषणोंसे श्याम घोडेको सजाते हैं वैसे (पितरः नक्षत्रेभिः द्यां अभि अपिंशन्) पितरोंने नक्षत्रोंसे द्युलोकको सजाया। (रात्र्यां तमः अदधुः) रात्रीमें अन्धकार और (अहन् ज्योतिः) दिनमें प्रकाशको रखा। (बृहस्पतिः अद्रिं भिनत्) बृहस्पतिने पर्वतको तोडा और (गाः विदत्) गौएं प्राप्त कीं ॥ ११ ॥

(इदं अभ्रियाय नमः अकर्म) यह हमने मेघको तोडने

वाले [बृहस्पति] के लिये नमस्कार किया (यः पूर्वीः अन्वानोनवीति) जो पूर्वके अनुक्रमसे उपदेश करता है (स बृहस्पतिः) वह बृहस्पति (गोभिः सः अश्वैः) गौओं और घोडों तथा (सः वीरेभिः सः नृभिः) वह वीरपुत्रों और नेताओंके साथ (नः वयः धात्) हमें दीर्घ आयु देवे ॥ १२ ॥

इस सूक्तमें जो वीरताके कर्मोंका वर्णन आया है वे वीर इन्द्रके कर्म बृहस्पतिने किये हैं । वह बृहस्पति इन्द्रके समान ही वज्रका प्रयोग करता है । इन्द्रके समान ही वलको मारता है और किलेमें बंद रही गौओंको मुक्त करता है ।

१ हे बृहस्पते ! वाश्रो आशूः इव नायय — हे बृहस्पते ! मुझमें योद्धोंकी तरह हमें बलवान् कर ।

२ पर्वतेभ्य गाः बृहस्पतिः निः ऊपे — पर्वतकी गुफासे बृहस्पतिने गौवें छुडाईं ।

३ साध्वर्या अतिथिनीः इषिराः स्पार्हाः सुवर्णाः अनवद्यरूपाः — सज्जनोंके पास रहने योग्य अतिथिके योग्य सुखकारक स्पृहणीय उत्तम (रूपवाली सुंदर रूपवाली) वे गौवें थीं । वे वलने चुराईं थीं उनको पर्वतकी गुफामें रखा था, वहांसे बृहस्पतिने छुडाईं ।

४ बृहस्पतिः अश्मनः गाः उदाजत् — बृहस्पतिने पत्थरोंकी गुफामेंसे गौवें छुडायीं ।

५ बृहस्पतिः अनुमृश्य वलस्य गाः आ आजे — बृहस्पतिने विचार करके वलकी अधीनतासे गौओंको छुडाया ।

६ बृहस्पतिः अग्नितपोभिः अर्कैः वलस्य परिधीन् अभिनत् — बृहस्पतिने अग्निके समान मन्त्रोंसे वलके परकोटका भेद किया ।

७ उस्रियाणां निधीः आविः अकृणोत् — गौओंके निधियोंको प्रकट किया । गौओंको बाहर निकाला ।

८ बृहस्पतिः अमत्यां उस्रियाणां सदने गुहा यत् नाम त्यत् अमत — बृहस्पतिने ध्यान करनेवाली गौओंका स्थान पर्वतकी गुफामें है यह जान लिया ।

९ उस्रिया पर्वतस्य त्मना आजत् — गौवें पर्वतकी गुफासे स्वयं बाहर आ गयीं ।

१० अश्ना पिनद्धं मधु पर्यपश्यत् बृहस्पतिः विरवेण विकृत्य तत् निः जभार — पत्थरसे मधु तथा है, गुफामें गौवें बंद हैं यह बृहस्पतिने देखा विशेष शब्द करनेवाले वज्रसे उस गुफाको तोडा और गौओंको बाहर निकाला ।

११ बृहस्पतिः गोवपुषः वलस्य मज्जानं पर्वाणि जभार — बृहस्पतिने गौओंको चुरानेवाले वलकी मज्जा बाहर निकाली और पर्व तोड दिये ।

१२ बृहस्पतिना गाः वलः अमुष्णत् — बृहस्पतिसे गौओंको मुक्त किया इससे वलको बडा दुःख हुआ ।

१३ अनानुकृत्यं अपुनः चकार यात् सूर्यामासा मिथः उच्चरातः — यह कर्म जो बृहस्पतिने किया उसका कोई अनुकरण कर नहीं सकता न कोई फिर ऐसा कर सकता है इसका वर्णन सूर्य और चन्द्र बारंबार करते हैं ।

१४ बृहस्पतिः अद्रिं भिनत् गाः विदत् — बृहस्पतिने पर्वतको तोडा और गौवें प्राप्त कीं ।

१५ इदं अभ्रियाय नमः अकर्म — यह हम अभ्रमें स्थित बृहस्पतिको नमस्कार करते हैं ।

१६ बृहस्पतिः गोभिः अश्वैः वीरेभिः नृभिः नः वयो धात् — बृहस्पति गौओं घोडों वीर पुत्रों और नेताओंके साथ हमें पूर्ण आयु देवे ।

इस सूक्तमें बृहस्पतिका यह प्रशंसनीय कर्म है ऐसा वर्णन है। यह बृहस्पति वज्र धरता है, किला तोडता है वलको मारता है और गौओंको मुक्त करता है। ऐसे ही इन्द्रके कर्म अन्यान्य वेदमन्त्रोंमें कहे हैं। बृहस्पतिको अभ्रिय १५ वें मंत्रमें कहा है। अभ्रमें रहनेवाला सूर्य होता है। विद्युत् भी मेघोंमें रहती है।

यह तथा ऐसे वर्णनके सूक्त आलंकारिक वर्णनके माने जाते हैं। वल मेघ है विद्युत् वज्र है सूर्य किरणें गौवें हैं। सबसे पूर्व मेघ सूर्यकिरण रूपी गौवें वलने अपने किलेमें बंद की थीं। यह ब्रह्मणस्पतिने तोडी और बाहर निकालीं।

स उषसा स्वर्विदत् स उषः सः अग्निं स अर्केण तमांसि वि बबाधे (मंत्र ९) — उस बृहस्पतिने उषा तथा पश्चात् प्रकाश अग्नि और पश्चात् सूर्य लाया और अन्धकारको दूर किया । इस मंत्रसे स्पष्ट है कि रात्रीके अन्धेरेने मेघोंने किरणोंको छिपाया था । सूर्य आनेसे वह वल राक्षस मर गया और आपकी किरणें स्वेच्छा विहार करने लगीं ।

यह सूक्त तथा ऐसे वर्णन करनेवाले अन्य सूक्त इस अर्थ अपने वर्णन समझने योग्य हैं ।

[सूक्त १७]

(ऋषिः — १-११ कृष्णः १२ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ १०।४३।१-११)

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥ १ ॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥ २ ॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥ ३ ॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥ ४ ॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥ ५ ॥

(सूक्त १७)

(मे मतयः) मेरी बुद्धिपूर्वक की हुई स्तुतियां (स्वर्विदः सध्रीचीः) आत्मज्ञानसे युक्त सीधी (विश्वाः उशतीः) सब कामना युक्त (अच्छा इन्द्रं अनूषत) अच्छी तरह इन्द्रको प्राप्त होती हैं। वे स्तुतियां (मघवानं ऊतये) इन्द्रको अपनी रक्षाके लिये [illegible] (शुन्ध्युं न मर्यं पतिं) [illegible] पवित्र मानव पतिको (यथा जनयः परि ष्वजन्ते) जैसी स्त्रियां आलिंगन देती हैं ॥ १ ॥

हे (पुरुहूत) सबके द्वारा जिसकी स्तुति होती है ऐसे इन्द्र! (मे मनः त्वद्रिक्) तेरा मन तेरे पास आकर (न घ अप वेति) [illegible] (त्वे इत् कामं शिश्रय) तेरे पास ही मैंने अपनी कामना रखी है। हे (दस्म) दर्शनीय! (राजा इव बर्हिषि अधि निषदः) [illegible] (अस्मिन् सोमे ते सु अवपानं अस्तु) इस सोम[illegible] उत्तम पान हो ॥ २ ॥

(अमतेः उत क्षुधः) दुर्बुद्धि और भूखसे (इन्द्रः विषूवृत्) इन्द्र [illegible] दूर करनेवाला है। (सः इत् मघवा वस्व रायः ईशते) वह इन्द्र निश्चय निवा-[illegible] स्वामी है। (इमे सप्त सिन्धवः) ये सात नदियां (प्रवणे) नीचेके मार्गमें बहती हुई (तस्य वृषभस्य शुष्मिणः इत्) उस बलवान् और [illegible] (वयः वर्धन्ति) [illegible] बढाती हैं ॥ ३ ॥

(सुपलाशं वृक्षं वयः आसदन् न) उत्तम पत्तोंवाले वृक्षपर पक्षी बैठते हैं इस तरह (मन्दिनः चमूषदः सोमासः इन्द्रं) आनंद बढानेवाले पात्रोंमें रखे सोमरस इन्द्रका आश्रय करते हैं। (एषां अनीकं शवसा प्रदविद्युतत्) इनका सैन्य बलसे चमकता रहा और (आर्यं ज्योतिः मनवे विदत्) [illegible] मनुष्यके लिये प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥

(देवने श्वघ्नी कृतं न विचिनोति) [illegible] इस प्रकार (यत् संवर्गं सूर्यं मघवा जयत्) [illegible] (मघवन्) हे इन्द्र! (न पुराणः न उत नूतनः) पुराना या नया (अन्यः ते तत् वीर्यं न अनुशकत्) [illegible] है ॥ ५ ॥

विश्वंविश्वं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥ ६ ॥

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ७ ॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥ ८ ॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥ ९ ॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥

(मघवा विश्वं विश्वं पर्यशायत) इन्द्र प्रत्येक प्रजा समूहको प्राप्त होता है (वृषा जनानां धेना अवचाकशत्) वह बलवान् इन्द्र लोगोंकी वाणीको सुनता है। (यस्य अह सवनेषु शक्रः रण्यति) जिसके सोमयागमें समर्थ इन्द्र आनन्द मनाता है (सः तीव्रैः सोमैः पृतन्यतः सहते) वह तीखे सोमरसोंसे शत्रुसेनाका पराभव करता है ॥ ६ ॥

(आपः न सिन्धुं अभि) जैसे जलप्रवाह नदीकी ओर जाते हैं और (कुल्याः ह्रदं इव) जैसे नाले तालाबके पास जाते हैं वैसे (सोमासः इन्द्रं समक्षरन्) सोमरस इन्द्रके पास बहते हैं। (सादने विप्राः अस्य महः वर्धयन्ति) यज्ञस्थानमें ब्राह्मण इस इन्द्रके महत्त्वको बढाते हैं, जैसी (दिव्येन दानुना वृष्टिः यवं न) आकाशसे दानरूप आयी वृष्टि जौको बढाती है ॥ ७ ॥

(क्रुद्धः वृषा न) क्रुद्ध हुए बैलके समान (रजःसु आ पतयत्) सारे स्थानोंमें जो पहुंचता है (यः इमाः अपः अर्यपत्नीः अकृणोत्) जिसने इन जलप्रवाहोंको आर्योंकी पत्नी जैसा बनाया– आर्योंके अधीन बनाया (सः मघवा) उस इन्द्रने (सुन्वते जीरदानवे हविष्मते मनवे) सोमयाग करनेवाले दान देनेवाले हवि अर्पण करनेवाले मनुष्यके लिये (ज्योतिः अविन्दत्) प्रकाश दिया ॥ ८ ॥

(ज्योतिषा सह परशुः उज्जायतां) ज्योतिके साथ परशु ऊपर उठे विजय प्राप्त करे; (ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् भूयाः) यज्ञकी सुखसे दोही जानेवाली पुरानी जैसी– वैसी होवे। (अरुषः शुचिः भानुना विरोचतां) तेजस्वी अग्नि अपने तेजसे प्रकाशे; उसी तरह (सत्पतिः स्वः न शुक्रं शुशुचीत) सज्जनोंका पालक इन्द्र सूर्यके समान दीप्तिसे चमके ॥ ९ ॥

हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र! (वयं गोभिः दुरेवां अमतिं तरेम) हम गौओंसे दुर्मति और निर्धनता पार करेंगे (विश्वां क्षुधं यवेन) सब भूखको जौसे दूर करेंगे (वयं राजभिः) हम राजाओंके साथ (प्रथमाः) मुखिया होकर (अस्माकेन वृजनेन धनानि जयेम) अपने निज बलसे धनोंको जीतेंगे ॥ १० ॥

(बृहस्पतिः नः अघायोः) बृहस्पति हमें पा[illegible] (पश्चात् उत्तरस्मात् अधरात्) पीछेसे ऊपरसे नीचेसे (परि पातु) बचावे। (नः सखा इन्द्रः) हमारा मित्र इन्द्र (पुरस्तात् उत मध्यतः) हमें सामनेसे [illegible]

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च॒ वस्वो॑ दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य ।
ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥ १२ ॥ (ऋ ७।९७।१०) (२८)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥ २ ॥

सबको बसाने वाला (सखिभ्यः वरिवः कृण्वत्) हमारे मित्रोंके लिये धन देवे ॥ ११ ॥

हे बृहस्पते ! (युवं इन्द्रः च) तू और इन्द्र दोनों (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः) दिव्य और पार्थिव धनके (ईशाथे) स्वामी हैं। इसलिये (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्त) स्तुति करनेवाले ज्ञानीके लिये धन दो। और (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हमारी शुभ कल्याणोंके साथ रक्षा करो ॥ १२ ॥ (ऋ. ७।९७।१०)

इस सूक्तमें बृहस्पति और इन्द्रके मनन करने योग्य जो बोध कहे हैं वे ये हैं—

१ प्र स्वर्विदः सध्रीचीः विश्वाः उशतीः मतयः इन्द्रं अच्छ अनूषत— आत्मज्ञानसे युक्त परस्पर युक्त तथा उत्साहवाली मेरी स्तुतियां इन्द्रकी ही होती हैं।

२ यथा जनयः शुन्ध्युं मर्यं पतिं परि ष्वजन्त— जैसी स्त्रियां शुद्ध मानव पतिको ही आलिङ्गन देती हैं उस तरह मेरी स्तुतियां इन्द्रकी ही स्तुति करती हैं।

३ मघवानं ऊतये— इन्द्रकी स्तुति हम अपनी रक्षाके लिये करते हैं।

४ हे पुरुहूत ! त्वे इत् मे मनः कामं शिश्रय, न घा त्वद्रिग् अपवेति— हे बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तेरे ऊपर मेरा मन यथेच्छ आश्रय करता है और वह तेरेसे कभी पीछे हटता नहीं।

५ हे इन्द्र ! राजा इव बर्हिषि अधि निषद— हे इन्द्र ! राजाके समान तू इस आसन पर बैठ।

६ इन्द्रः अमतेः उत क्षुधः वियूयत्— इन्द्र बुद्धिहीनता और भूखको दूर करता है।

७ सः मघवा वस्वः रायः ईशे— वह धनवान् इन्द्र निवास करनेवाले धनोंका स्वामी है।

८ इमे सप्त सिन्धवः प्रवणे वृषभस्य शुष्मिणः तस्य वयः वर्धन्ति— ये सात नदियां जैसी नीचेके स्थानमें बहती हैं उस तरह इस बलवान् समर्थ इन्द्रका बल बढाती हैं।

९ वयो अभिद्यं रायसा इविषुतम्— इसका तेज बढता है।

१० मनवे आर्यं स्वः ज्योतिः विदत्— मानवके लिये आर्य तेज प्राप्त किया।

११ मघवा सूर्यं जयत्— इन्द्रने सूर्यको प्राप्त किया।

१२ न पुराणः न उत नूतनः अन्यः ते तत् वीर्यं न अनुवाकत्— पुराना वा नया कोई दूसरा तेरे वीर्यका अनुकरण नहीं कर सकता।

१३ विशंविशं मघवा पर्यशायत— प्रत्येक मनुष्यमें इन्द्र रहता है।

१४ जनानां घोषा वृषा अचयाकरोत्— मनुष्योंका कहना बलवान् इन्द्र सुनता है।

१५ स पृतन्यतः सहते— वह सेना लेकर आनेवाले शत्रुका पराभव करता है।

१६ आदूने पितरः मदः यदागिन— यज्ञमें ज्ञानी इसका महत्त्व बढाते हैं।

१७ नु इद् वृषा न इन्द्र इ त्वा पतयत्— बैलके जैसे तरह वह सब स्थानोंमें जाता है।

१८ स मघवा मीळ्हानवे मनवे ज्योतिः अविन्दत्— वह धनवान् इन्द्र दानी मानवके लिये प्रकाश देता है।

१९ वरुणः ज्योतिषा सह उज्जायताम्— इन्द्र तेजसे विजयी हो।

२० आततस्य सुदुघा भूया— यज्ञकी धारें बहुत हों।

२१ प्रसितः भानुना अग्न्यः विरोचताम्— शुद्ध अपने तेजसे चमके।

२२ शश्वतीः अपः न भक्ष्य दानार्थात— सबके पालक आत्मज्ञानियोंका विशुद्ध दानोंमें प्रकाशना है।

२३ गोभिः दुरर्थां अमतिं तरेम— गौओंसे दरिद्रता और बुद्धिहीनताको दूर करेंगे।

२४ यवेन विश्वां क्षुधं तरेम— जौसे सब प्रकारकी भूखको दूर करेंगे।

२५ वयं राजभिः प्रथमा अस्माकेन वृजनेन धनानि जयेम— हम क्षत्रियोंके साथ रहकर पहिले हैं और हमारे अपने प्रयत्नसे धनोंको जीतेंगे।

२६ बृहस्पतिः अघायोः नः परि पातु— ज्ञानी पापीसे हमारी रक्षा करे।

[सूक्त १८]

(ऋषिः — १-३ मेधातिथिः प्रियमेधश्च; ४-६ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः । कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १ ॥
न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ । तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ २ ॥
इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति । यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥ ३ ॥
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥ ४ ॥
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥ ५ ॥
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥ ६ ॥ (१०७)

---

१७ इन्द्रः [illegible] — [illegible]

१८ [illegible] इन्द्रः [illegible] — [illegible]

१९ [illegible] — [illegible]

२० [illegible] — [illegible]

॥ यहां द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

(मन्त्र १८)

हे इन्द्र ! (वयं उ तत्-इत् अर्थाः) [illegible] (त्वायन्तः सखायः) [illegible] (कण्वाः उक्थेभिः जरन्ते) [illegible] (ऋ. ८।२।१६)

हे (वज्रिन्) [illegible] (अपसः नविष्टौ) [illegible] (तव इत् उ स्तोमं चिकेत) [illegible] (ऋ. ८।२।१७)

(देवाः सुन्वन्तं इच्छन्ति) [illegible] (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) [illegible] (अतन्द्राः प्रमादं यन्ति) [illegible] (ऋ. ८।२।१८)

हे इन्द्र ! हे (वृषन्) बलिष्ठ ! (वयं त्वायवः) [illegible] (अभि प्र णोनुमः) [illegible] हे (वसो) बसानेवाले ! (नः अस्य तु विद्धि) हमारे इस कर्मको जान ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।३१।४)

(अर्यः) तू श्रेष्ठ है, इसलिये (निदे वक्तवे) निंदा [illegible] और (अराव्णे) [illegible] (मा रन्धीः) [illegible] (मम क्रतुः त्वे अपि) मेरा [illegible] ॥ ५ ॥ (ऋ. ७।३१।५)

(त्वं सप्रथाः वर्म असि) तू मेरा [illegible] (वृत्रहन्) वृत्रके मारनेवाले इन्द्र ! तू (पुरो-योधः च) आगे बढकर युद्ध करनेवाला है। (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) तेरे साथ रहकर मैं शत्रुओंको उत्तर देता हूं ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।३१।६)

इस सूक्तके बोधप्रद वचन ये हैं—

१ वज्रिन्— [illegible]

२ वृषन्— [illegible]

३ वसु— बसानेवाला [illegible]

४ त्वं सप्रथाः वर्म असि— तू हमारा विस्तृत कवच है।

५ वृत्रहन्— [illegible]

६ पुरोयोधः— आगे होकर युद्ध करनेवाला [illegible]

[illegible]

[illegible] ये हैं—

१ वयं तदिदर्थाः त्वायन्तः सखायः — [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

[सूक्त १९]

(ऋषिः — १-७ विश्वामित्रः । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ० ३।३७।१-७)

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्तयामसि ॥ १ ॥
अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥ २ ॥
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे । इन्द्राभिमातिषाह्ये ॥ ३ ॥
पुरुष्टुतस्य धामभिः शतेन महयामसि । इन्द्रस्य चर्षणीधृतः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरुहूतमुप ब्रुवे । भरेषु वाजसातये ॥ ५ ॥
वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो । इन्द्र वृत्राय हन्तवे ॥ ६ ॥
द्युम्नेषु पृतनाज्ये पृत्सुतूर्षु श्रवःसु च । इन्द्र साक्ष्वाभिमातिषु ॥ ७ ॥ (१११)

---

४ तव स्तोमं चिकेत — तेरा स्तोत्र ही हम जानते हैं।
५ वयं स्तायवः अभि प्र णोनुमः — हम तेरे पास आते और तुझे ही प्रणाम करते हैं।
६ नः अस्य विद्धि — हमारे इस स्तोत्रको तू जान।
७ मम क्रतु त्वं अपि — मेरा यज्ञ तेरे लिये ही है।
८ इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं — देव यज्ञकर्ताको चाहते हैं।
९ स्वप्नाय न स्पृहयन्ति — देव सुस्तको चाहते नहीं।
१० अतन्द्राः प्र मादं यन्ति — उद्योगी विशेष आनन्दको प्राप्त करते हैं।
११ निदे वक्तवे अराव्णे नः मा रन्धीः — निन्दक मायी तथा कंजूसके आधीन हमें देकर हमारा नाश न कर।

(सूक्त १९)

(वार्त्र-हत्याय) शत्रुओंको मारनेके लिये (शवसे) बल बढानेके लिये (पृतनाषाह्याय) शत्रुसेनाओंको जीत लेनेके लिये हे इन्द्र ! (त्वा आ वर्तयामसि) तुझे हम अपनी ओर मोड लाते हैं ॥ १ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों शक्तियोंवाले इन्द्र ! (वाघतः) तेरे उपासक (ते मन उत चक्षुः) तेरे मनको और चक्षुको (अर्वाचीनं सु कृण्वन्तु) इधरकी ओर उत्तम रीतिसे करें ॥ २ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों शक्तियोंवाले इन्द्र ! (अभिमाति षाह्ये) शत्रुओंपर विजय पानेके लिये (विश्वाभिः गीर्भिः) सब वाणियोंसे (ते नामानि ईमहे) तेरे नामोंको हम लेते हैं ॥ ३ ॥

(पुरुष्टुतस्य) अनेकों द्वारा प्रशंसित (चर्षणी-धृतः) मनुष्योंको सहारा देनेवाले (इन्द्रस्य) इन्द्रके (शतेन धामभिः) सौ स्थानों या सामर्थ्योंसे (महयामसि) उसकी महिमा गाते हैं ॥ ४ ॥

(पुरुहूत इन्द्रं) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्रको (वृत्राय हन्तवे) शत्रुका मारनेके लिये और (भरेषु वाजसातये) युद्धोंमें धन प्राप्त करनेके लिये (उप ब्रुवे) बुलाते हैं ॥ ५ ॥

हे (शतक्रतो इन्द्र) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (वाजेषु सासहिः भव) तू युद्धोंमें शत्रुको जीतनेवाला हो। (वृत्राय हन्तवे) शत्रुको मारनेके लिये (त्वां ईमहे) तुझे बुलाते हैं ॥ ६ ॥

(द्युम्नेषु) धन प्राप्त करनेमें (पृतनाज्ये) सेनाके साथ युद्ध करनेके समय (पृत्सु तूर्षु) सेनाओंका शीघ्र पराभव करनेके समय (श्रवःसु च) यश प्राप्तिके समय (अभिमातिषु) शत्रुओंका सामना करनेके समय हे इन्द्र ! (साक्ष्व) हमारे साथ रह ॥ ७ ॥

इसमें वीरताके निर्देश ये हैं—

१ वार्त्र-हत्य— शत्रुको मारना
२ शवः— बल
३ पृतना-साह— शत्रुसेनाका पराभव करना
४ शतक्रतु— सैकडों शक्तिवाला
५ अभिमाति-साह— शत्रुका पराभव करना
६ चर्षणी धृत्— मनुष्योंका आधार
७ वृत्राय हन्तवे— इस शत्रुको मारना

[सूक्त १०]

(ऋषिः — १-४ विश्वामित्रः; ५-७ गृत्समदः। देवता — इन्द्रः।)

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु। इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ २ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम्। उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ ३ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः। उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ४ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद् भयमभी षदप चुच्यवत्। स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ५ ॥
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्। भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ६ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ ७ ॥ (११८)

---

८ भरेषु वाजसातये — युद्धमें धन प्राप्त करना
९ वाजेषु सासहिः — युद्धोंमें विजयी
१० पृतनाज्यं — शत्रुसेनाका पराभव
११ पृत्सु तूर्वे — शीघ्र पराभव करनेके लिये
१२ अभिमातिं — शत्रुको जीतना।

भक्ति — १ ते मनः चक्षुः अर्वाचीन कृण्वन्तु — तेरा मन और आंख हमारी ओर आकर्षित हो
२ ते नामानि ईमहे — तेरे नाम लेते हैं।
३ शवस धामभिः महयामसि — सबकी स्थानोंसे तेरी महिमा गाते हैं।
४ त्वां हवामहे — तेरी प्रार्थना करते हैं।
५ साहव — हमारे साथ रह।

(सूक्त १०)

हे (शतक्रतो इन्द्र) हे सैकडों सामर्थ्यवान् इन्द्र! (नः ऊतये) हमारी रक्षा करनेके लिये (शुष्मिन्तमं) बल बढानेवाले (द्युम्निनं) यशस्वी तेजस्वी (जागृविं सोमं) जगानेवाले रखनेवाले सोमरसको (पाहि) पी ॥ १ ॥ (ऋ. ३।३७।८)

हे शतक्रतो इन्द्र! (पञ्चसु जनेषु) पांच प्रकारके जनोंमें (या ते इन्द्रियाणि) जो तेरी शक्तियां हैं (तानि ते आ वृणे) उनको तुझसे मैं प्राप्त करता हूं ॥ २ ॥ (ऋ. ३।३७।९)

हे इन्द्र! (बृहत् श्रवः अगन्) तूने बडा यश प्राप्त किया है। (दुष्टरं द्युम्नं दधिष्व) दुस्तर तेजको धारण कर। (ते शुष्मं उत् तिरामसि) तेरे बलको हम बहुत बढाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ३।३७।१०)

हे (शक्र) सामर्थ्यवान्! (अर्वावतः नः आ गहि) पाससे हमारे पास आ (अथ उ परावतः) और दूरसे भी आ। हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रको हाथमें रखनेवाले इन्द्र! (यः ते उ लोकः) जो तेरा स्थान है (ततः इह आ गहि) वहांसे यहां आ ॥ ४ ॥ (ऋ. ३।३७।११)

हे (अंग) प्रिय! (इन्द्रः महत् भयं) इन्द्र बडे भयको (अभी-षत्) साथ मुकाबला करता है और उसको (अप चुच्यवत्) दूर भगाता है (हि सः स्थिरः विचर्षणिः) क्योंकि वह स्थिर है और उत्तम देखनेवाला है ॥ ५ ॥ (ऋ. २।४१।१०)

(इन्द्रः च नः मृळयाति) इन्द्र हमें सुखी करता है इसलिये (अघं नः पश्चात् न नशत्) पाप हमारे पीछे नहीं लगता और (भद्रं नः पुरः भवाति) कल्याण हमारे सन्मुख रहेगा ॥ ६ ॥ (ऋ. २।४१।११)

(इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) इन्द्र सब दिशाओंसे (अभयं करत्) निर्भयता करता है क्योंकि वह (शत्रून् जेता विचर्षणिः) शत्रुओंका जीतनेवाला और सबका विशेष रीतिसे देखभाल करनेवाला है ॥ ७ ॥ (ऋ. २।४१।१२)

इस सूक्तमें वीर इन्द्रके गुण ये वर्णन किये हैं—
१ शतक्रतुः — सैकडों शक्तियोंवाला, सैकडों कर्मोंका कर्ता
२ इन्द्रः — (इन् द्रः) शत्रुका विदारण करनेवाला
३ शक्रः — सामर्थ्यवान्
४ अंगः — प्रिय
५ नः ऊतये — हमारी रक्षा करनेके लिये बल दे

[सूक्त-२१]

(ऋषिः — १-११ सव्यः । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ १।५३।१-११)

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ २ ॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

---

६ पञ्चसु जनेषु ते इन्द्रियाणि आ वृणे— पञ्च जनोंमें जो तेरी शक्तियां हैं उनको मैं प्राप्त करता हूं ।

७ बृहत् श्रवः अगाम्— तुम्हारा यश बडा है ।

८ सुष्टुं शुष्मं दधीष्व — तू सुन्दर तेज धारण करता है ।

९ ते भूर्णं वच् तिरामसि— तेरे यशका हम बहुत वर्णन करके बढाते हैं ।

१० अद्रिवः— वज्रधारी किलेमें रहनेवाला

११ महत् भयं अमीवत् अप चुच्यवत्— बडे भयका मुकाबला करके उसको दूर करता है ।

१२ सः हि स्थिरः विचर्षणिः— वह स्थिर रहता है और सब प्रजाका विशेष निरीक्षण करता है ।

१३ इन्द्रः नः मृळयाति— इन्द्र हमें सुखी करता है ।

१४ अघं नः पश्चात् न नशत्— इस कारण पाप हमारा पीछा नहीं करता ।

१५ भद्रं भवाति नः पुरः— कल्याण हमारे सामने रहता है ।

१६ इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः अभयं करत्— इन्द्र सब दिशाओंसे निर्भयता करता है ।

१७ द्युम्नम् जेता विचर्षणिः— वह इन्द्र शत्रुओंको जीतनेवाला और सब प्रजाजनोंकी देखभाल करता है ।

सोमका वर्णन—

१ शुष्मिन्तमः— बल बढानेवाला

२ द्युक्षो— चमकीला तेजस्वी अंधेरेमें चमकनेवाला

३ मादयिष्णुः— आनन्द उत्पन्न करनेवाला दुःखको आने न देनेवाला । आवश्यक पीनेसे ये लाभ होते हैं ।

(सूक्त २१)

(महे वाचं नि सु प्र भरामहे) महान् इन्द्रके लिये हम उत्तम स्तुति करेंगे । (विवस्वतः सदने इन्द्राय गिरः) विवस्वान्के स्थानमें इन्द्रके लिये स्तुतियें होती रहती हैं । (ससतां इव) सोनेवालोंका रत्न जैसे चोर चुराता है उस तरह (नू चित् हि रत्नं अविदत्) शीघ्र ही उस भक्तने रत्न इन्द्रसे प्राप्त किया । (दुष्टुतिः द्रविणोदेषु न शस्यते) निन्दा धनका दान करनेवालोंके लिये योग्य नहीं होती ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! (अश्वस्य दुरः) तू घोडोंका दान करता है (गोः दुरः असि) तू गौओंका दाता है (यवस्य दुरः) तू अन्नका दाता है (वसुनः इनः पतिः) तू धनका स्वामी और रक्षक है (शिक्षानरः प्रदिवः) तू पुराने कालसे मानवोंका सहायक है (अ काम-कर्शनः) भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला तू (सखिभ्यः सखा) मित्रोंके लिये मित्र है अतः (तं इदं गृणीमसि) उसकी यह स्तुति हम गाते हैं ॥ २ ॥

हे (शचीवः पुरुकृत् द्युमत्तम इन्द्र) शक्तिमन् बहुत कर्मोंको करनेवाले तेजस्वी इन्द्र ! (तव इत् इदं वसु अभितः चेकिते) तेरा ही यह सब धन इधर उधर चारों ओर प्रतीत होता है । हे (अभिभूते) सबको पराभूत करनेवाले ! (अतः संगृभ्य आ भर) इसलिये उस धनको इकट्ठा करके भर दे । (त्वायतः जरितुः कामं मा ऊनयीः) तेरी भक्ति करनेवाले स्तोताकी कामनामें न्यूनता न कर ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥
ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥ ६ ॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥ ७ ॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ ८ ॥
त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥

(एभिः द्युभिः सुमनाः) इन तेजोंसे उत्तम मनवाले हों (एभिः इन्दुभिः) इन सोमरसोंसे प्रसन्नचित्त हो (गोभिः अश्विना अमतिं निरुन्धानः) गौओं और घोडोंके साथ हमारी निर्बुद्धतारूप दरिद्रताको प्रतिबंध कर। (इन्दुभिः दस्युं) सोमरसोंसे बलसे शत्रुको (इन्द्रेण) इन्द्रकी सहायतासे (दरयन्तः) फाडते हैं (युत-द्वेषसः इषा सं रभेमहि) और शत्रुओंको दूर करके अन्नके साथ हम संयुक्त होवें ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! (राया सं) हम धनसे युक्त हों (इषा सं रभेमहि) अन्नसे युक्त हों (अभिद्युभिः पुरुश्चन्द्रैः वाजेभिः सं) तेजस्वी आल्हाददायक अन्नोंके साथ हम युक्त हों तथा (गो-अग्रया अश्वावत्या वीरशुष्मया) गौओंकी प्रधानता और घोडोंसे युक्त तथा वीरोंके बलसे प्रभावी (देव्या प्रमत्या सं रभेमहि) ज्ञानमयी दिव्यशक्तिसे हम संयुक्त हों ॥ ५ ॥

हे (सत्पते) सज्जनोंके स्वामी ! (वृत्रहत्येषु) शत्रुके मारनेके कर्मोंमें (ते मदाः ते सोमासः त्वा अमदन्) उन आनन्ददायक सोमरसोंने तुम आनन्द दिया और (तानि वृष्ण्या) उन वीरोचित कर्मोंने तुम प्रसन्न किया। (यत् कारवे बर्हिष्मते) जो तू यज्ञकर्ता स्तोताके लिये (दश सहस्राणि वृत्राणि) दस हजार इन शत्रुओंको (अप्रति नि बर्हयः) अप्रतिम रीतिसे मार डाला ॥ ६ ॥

तू (युधा युधं धृष्णुया) युद्ध करनेके उत्साहसे युद्धके प्रति शत्रुको धर्षण करनेकी तैयारीसे (उप इत् घ एषि) जाता है। (पुरा इदं पुरं ओजसा सं हंसि) अपने किलेसे शत्रुके इस किलेको अपने बलसे तोडता है। हे इन्द्र ! (यत् नम्या सख्या) शत्रुको नमानेवाले मित्रके साथ (परावति) दूर रहनेवाले (नमुचिं नाम मायिनं) कपटी नमुचिको (नि बर्हयः) मार डाला ॥ ७ ॥

(अतिथिग्वस्य वर्तनी) अतिथिग्वके मार्गमें जानेवाले (करञ्जं उत पर्णयं) करञ्जको और पर्णयको (त्वं तेजिष्ठया वधीः) तूने तेज शस्त्रसे मार डाला। (ऋजिश्वना परिषूता) ऋजिश्वाने प्रेरित हुए (अनानुदः वङ्गृदस्य) असाधारण वंगृदके (शता पुरः) सौ किले (त्वं अभिनत्) तूने तोड दिये ॥ ८ ॥

(अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः) मित्र रहित सुश्रवाने हमला किये हुए (एतान् द्विः दश जन राज्ञः) इन बीस जनराजाओं तथा उनके (षष्टिं सहस्रा नवतिं नव) साठ हजार निन्नानवे सैनिकोंको (दुष्पदा रथ्या चक्रेण) अगम्य रथचक्रसे तुमने (नि अवृणक्) मार डाला इसलिये (श्रुतः) तुम्हारी ख्याति हुई ॥ ९ ॥

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ११ ॥ (११९)

(त्वं तव ऊतिभिः) तू अपनी रक्षासाधनोंसे (सुश्रवसं आविथ) सुश्रवाकी रक्षा की और हे इन्द्र ! (तव त्रामभिः तूर्वयाणं) तूने अपनी रक्षाओंसे तूर्वयाणकी रक्षा की। (त्वं अस्मै महे यूने राज्ञे) तूने इस महान तरुण राजाका हित करनेके लिये (कुत्सं अतिथिग्वं आयुं) कुत्स अतिथिग्व आयुको (अरन्धनायः) वशमें किया ॥ १० ॥

हे इन्द्र ! (उदृचि) वेदमंत्रके पाठमें (ये देवगोपाः) तुझ देवके द्वारा सुरक्षित हुए जो (ते सखायः) तेरे मित्र हम हैं वे (शिवतमाः असाम) उत्तम कल्याणसे युक्त हों। (त्वां स्तोषामः) हम तेरी स्तुति करते हैं। (त्वया सुवीराः) तेरे साथ रहनेसे उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम (द्राघीयः आयुः प्रतरं दधानाः) दीर्घ आयुको अधिक लंबी बनाकर धारण करनेवाले हों ॥ ११ ॥

इस सूक्तमें वीरताका वर्णन करनेवाले ये मंत्रभाग हैं—

१ अश्वस्य दुरः गोः दुरः असि यवस्य दुरः— घोडे गायें और जौका तू देनेवाला है।

२ वसुनः इनस्पतिः— धनका तू स्वामी है।

३ शिक्षानरः प्रदिवः अकामकर्शन — सतत मानवोंका सहायक और उनके कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला है।

४ सखिभ्यः सखा— मित्रोंका तू मित्र है।

५ शचीव इन्द्र ! पुरुकृत् द्युमत्तम — हे शक्तिमान् तेजस्वी इन्द्र ! अनेक कर्मोंके कर्ता तू हो।

६ तव इत् इदं अभितः वसु चेकिते— यह जो चारों ओर धन है वह तेरा ही है ऐसा सब जानते हैं।

७ अतः संगृभ्य हे अभिभूत ! आ भर— इसलिये जमा करके हे वीर ! हमें धन लाकर भर दे।

८ स्तोतृभ्यः जरितुः कामं मा ऊनयीः — तेरे काम्य मनमें भरे स्तोताकी इच्छामें न्यून न हो।

९ एभिः द्युभिः सुमनाः— इन तेजस्वी विचारोंसे उत्तम मनवाला हो।

१० अमतिं गोभिः निरन्धयन् — दरिद्रताको गौओंसे प्रतिबन्धित कर।

११ दस्युं इन्दयन्त— शत्रुको हम मारते हैं।

१२ युतद्वेषसः इषा संरभेमहि— द्वेषियोंको दूर करके अन्नको प्राप्त करेंगे।

१३ राया सं इषा सं रभेमहि— धन और अन्नसे हम युक्त हों।

१४ अभिद्युभिः पुरुश्चन्द्रैः वाजेभिः सं रभेमहि— दिव्य तेजस्वी बलोंके साथ हम युक्त हों।

१५ गो अग्रया अश्वावत्या वीरशुष्मया देव्या प्रमत्या स रभेमहि— गाएं जिसमें अग्रस्थान रखती हैं घोडोंसे जो युक्त है वीरोंके बलसे युक्त दिव्य बुद्धिसे हम संपन्न हों।

१६ हे सत्पते ! वृत्रहत्येषु तानि ते वृष्ण्या ते अमदन्— हे सज्जनोंके पालक ! शत्रुओंको मारनेके समय तेरे पौरुष कर्म तुझे आनन्दित करते हैं।

१७ यस्कारवे बर्हिष्मते दश सहस्राणि वृत्राणि अप्रति नि बर्हयः— जो तूने यज्ञकर्ता कविके हित करनेके लिये दस हजार शत्रु सैन्योंको अप्रतिम रीतिसे मारा।

१८ युधा युधं धृष्णुया उप एषि— एक युद्धसे दूसरे युद्धके प्रति तू धर्षक जाता है।

१९ पुरा इदं पुरं ओजसा सं हंसि— एक किलेसे दूसरे किलेको बलसे तोडता है।

२० हे इन्द्र ! सख्या नम्या परावति मायिनं नमुचिं नि बर्हयः— मित्रके साथ दूर रहे मायावी-कपटी नमुचिको तूने मारा।

२१ त्वं करञ्जं उत पर्णयं तेजिष्ठया वर्तनी— तूने करंज और पर्णयको तेजस्वी शस्त्रसे मारा।

२२ त्वं वङ्गृदस्य ऋजिश्वना परिषूता शता पुरः अभिनत्— तू वंगृदके ऋजिश्वाने घेरी हुई सौ नगरें तोड दी।

२३ त्वं एतान् जनराज्ञः द्विः दश अबन्धुना सुश्रवसा उपजग्मुषः षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतः चक्रेण दुष्पदा नि अवृणक्— तूने इन २० जन राजा और उनके साथ आनेवाले ६० हजार ९९ वीरोंको तथा सहाय

[सूक्त २२]

(ऋषिः — १-३ त्रिशोकः ४-६ प्रियमेधः। देवता — इन्द्रः।)

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये । तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ १ ॥
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्। माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २ ॥
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे । सरो गौरो यथा पिब ॥ ३ ॥
अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ ५ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥ (१३५)

साठ हजार निन्यानवे सैनिकोंको अपना रथ चलाके मारके मार डाला।

१४ त्वं सुश्रवसं तवोतिभिः आविथ— तूने अपनी रक्षा साधनोंसे सुश्रवाकी रक्षा की।

१ तव त्रामभिः तूर्वयाणं— तेरे रक्षा साधनोंसे तूर्वयाणकी रक्षा की।

१६ त्वं कुत्सं अतिथिग्वं आयुं अस्मै महे यूने राज्ञे अरन्धयः— तूने कुत्स अतिथिग्व और आयुको इस बडे तरुण राजाके लिये मारा।

१७ हे इन्द्र! देवगोपाः ते सखायः शिवतमा असाम— हे इन्द्र! देवोंसे सुरक्षित हुए हम उत्तम कल्याणसे युक्त हों।

१८ त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः— तुम्हारी सहायतासे हम उत्तम वीर और पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर अपनी दीर्घ आयुको अधिक दीर्घ बनाकर धारण करेंगे।

इनमें वीररसके निर्देश पाठक देखें।

(सूक्त २२)

हे (वृषभ) बलिष्ठ इन्द्र! (अभि सुते) बनाये सिद्ध होनेपर (पीतये) पीनेके लिये (त्वा सुतं सृजामि) तेरे पास इस रसको भरता हूं। (तृम्प) इससे तृप्त हो (मदं व्यश्नुहि) आनन्ददायक इस रसको पी ॥ १ ॥
(ऋ. ८।४५।२२)

(अविष्यवः मूराः) अपना रक्षण चाहनेवाले मूढ (त्वा मा दभन्) तुझे कष्ट न देवें। (उपहस्वानः मा आ दभन्) उपहास करनेवाले तुझे न दबावें। (ब्रह्मद्विषः माकीं वनः) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंके तुझे न प्राप्त कर सकें ॥ २ ॥
(ऋ. ८।४५।२३)

हे इन्द्र! (इह) यहां (गोपरीणसा त्वा) गौदुग्धसे मिश्रित सोमरससे तुझे (महे राधसे मन्दन्तु) बडे धन प्राप्तिके लिये प्रसन्न करें। (गौरः यथा सरः) मृग जैसा तालाबपर पीता है वैसा तू इस रसको (पिब) पी ॥ ३ ॥
(ऋ. ८।४५।२४)

(गोपतिं) गौओंके पालक (सत्यस्य सूनुं) सत्यके प्रेरक (सत्पतिं) सज्जनोंके पालक (इन्द्रं) इन्द्रकी (गिरा अभि प्र अर्च) अपनी वाणीसे स्तुति कर (यथा विदे) जैसी जानते हैं ॥ ४ ॥
(ऋ. ८।६९।४)

(अरुषीः हरयः आ ससृज्रिरे) लाल घोडे जोते जा रहे हैं। (बर्हिषि अधि) वह आसन आसनपर बैठा है। (यत्र अभि संनवामहे) जहां हम मिलकर उसकी स्तुति गाते हैं ॥ ५ ॥
(ऋ. ८।६९।५)

(वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिये (गावः मधु आशिरं दुदुह्रे) गौवें मधुर दूध दुहती हैं। (यत् सीं उपह्वरे विदत्) जो उसको समीपमें पाया ॥ ६ ॥
(ऋ. ८।६९।६)

इस सूक्तमें वीरताका वर्णन यह है—

१ वृषभः— बैल जैसा बलिमान् इन्द्र।

२ गोपतिः— गौओंका पालक।

३ सत्यस्य सूनुः— सत्यका प्रचारक

४ सत्पतिः— सज्जनोंका पालक

५ वज्री इन्द्रः— वज्रधारी इन्द्र

६ वज्रिणे इन्द्राय गावः मधु आशिरं दुदुह्रे— वज्रधारी इन्द्रके लिये गौवें मीठा दूध देती हैं।

[सूक्त २१]

(ऋषिः — १-९ विश्वामित्रः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ. ३।४१।१-९)

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥ १ ॥
सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् । अयुज्रन्प्रातरद्रयः ॥ २ ॥
इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद । वीहि शूर पुरोळाशम् ॥ ३ ॥
रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ ४ ॥
मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् । इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥ ५ ॥
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ ६ ॥
वयमिन्द्र त्वायवो हविष्मन्तो जरामहे । उत त्वमस्मयुर्वसो ॥ ७ ॥
मारे अस्मद्वि मुमुचो हरिप्रियार्वाङ् याहि । इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह ॥ ८ ॥
अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे वहतामिन्द्र केशिना । घृतस्नू बर्हिरासदे ॥ ९ ॥ (१४४)

(सूक्त २१)

हे (अद्रिवः इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र ! (नः सोमपीतये हुवानः) हमारे सोमपानके लिये बुलाया हुआ तू (मद्र्यक्) मेरे पास (हरिभ्यां आ याहि) घोडोंसे आ जाओ ॥ १ ॥

(नः ऋत्वियः होता) हमारा ऋत्विक् होता (सत्तः) बैठ गया है (बर्हिः आनुषक् तिस्तिरे) आसन योग्य रीतिसे फैलाया है, (प्रातः अद्रयः अयुज्रन्) प्रातःकालमें ही पत्थर [सोमरस निकालनेके लिये] जोडे गये हैं ॥ २ ॥

हे (ब्रह्मवाहः) मन्त्रोंके धारक ! (इमा ब्रह्म क्रियन्ते) ये मन्त्र पाठ किये जाते हैं (बर्हिः आ सीद) आसनपर बैठ। हे शूर ! (पुरोळाशं वीहि) इस अन्नको खा ॥ ३ ॥

हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (नः एषु) हमारे इन (सवनेषु स्तोमेषु उक्थेषु) यज्ञों स्तोत्रों और गीतोंमें (रारन्धि) आनन्द प्राप्त कर ॥ ४ ॥

(मातरः वत्सं न) माताएं बछडेको प्यार करती हैं उस तरह (सोमपां) सोमरस पीनेवाले (उरुं शवसस्पतिं) विशाल बलके स्वामी इन्द्रको (मतयः रिहन्ति) स्तुतियें चाटती हैं। प्यार करती हैं ॥ ५ ॥

(सः अन्धसः मन्दस्व हि) वह तू इस सोमरससे आनन्दित हो (तन्वा महे राधसे) शरीरसे बडे धनके लिये यत्नवान् बन। (स्तोतारं निदे न करः) स्तुति करनेवालेकी निन्दा हो ऐसा न कर ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! (वयं त्वायवः हविष्मन्तः जरामहे) हम तेरा आश्रय करके हवि लेकर तेरी स्तुति करते हैं। हे (वसो) बसानेवाले ! (उत त्वं अस्मयुः) तू हमारा सहायक हो ॥ ७ ॥

हे (हरि-प्रिय) घोडोंसे प्यार करनेवाले ! (मा आरे अस्मत् मुमुचः) हमको हमसे दूर न छोड (अर्वाङ् याहि) पास आ। हे (स्वधावः इन्द्र) अपनी धारक शक्तिसे रहनेवाले इन्द्र ! (इह मत्स्व) यहां आनन्दित हो ॥ ८ ॥

हे इन्द्र ! (केशिना घृतस्नू) बडे बालोंवाले और जिनके शरीरसे रस टपकता है ऐसे घोडे (बर्हिः आसदे) आसन पर बैठनेके लिये (सुखे रथे) सुखकारक रथमें (त्वा अर्वाञ्चं वहतां) तुझे इधर लावें ॥ ९ ॥

१ अद्रिवः — वज्रधारी अथवा पहाडी किलेमें रहनेवाला
२ शूरः — शूरवीर
३ वृत्रहन् — वृत्रको मारनेवाला
४ शवसः पतिः — बलका स्वामी
५ वसु — बसानेवाला
६ हरिप्रियः — घोडोंपर प्रेम करनेवाला
७ स्व-धा-वः — निज शक्तिसे युक्त।

[सूक्त २४]

(ऋषिः — १-९ विश्वामित्रः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ० ३।४२।१-९)

उप नः सुतमा गहि सोममिन्द्र गवाशिरम् । हरिभ्यां यस्ते अस्मयुः ॥ १ ॥
तमिन्द्र मदमा गहि बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम् । कुविन्न्वस्य तृष्णवः ॥ २ ॥
इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ ४ ॥
इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो । जठरे वाजिनीवसो ॥ ५ ॥
विद्मा हि त्वा धनंजयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ६ ॥
इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरं च नः पिब । आगत्या वृषभिः सुतम् ॥ ७ ॥
तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोमं चोदामि पीतये । एष रारन्तु ते हृदि ॥ ८ ॥
त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥ ९ ॥ (१४१)

(सूक्त २४)

हे इन्द्र ! (नः सुतं गवाशिरं सोमं) हमारे निचोडे दूध मिलाये सोमरसके समीप (हरिभ्यां) तुम्हारे दो घोडोंके साथ (उप आ गहि) आओ (यः ते अस्मयुः) जो तेरा हमारे पास आनेका स्वभाव है ॥ १ ॥

हे इन्द्र (बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतं) आसनपर रख पत्थरोंसे कूटे (तं मदं आ गहि) उस आनन्ददायक सोम रसके समीप आओ। (कुविद् नु अस्य तृष्णवः) इसके तृप्त होनेवाले बहुत हैं ॥ २ ॥

(इतः इषिताः मम गिरः) यहांसे भेजी मेरी स्तुतियां (इत्था इन्द्रं अच्छ अगुः) इस तरह इन्द्रके पास सीधी पहुंची हैं (आवृते सोमपीतये) उसको इधर लाने और सोम पीनेके लिये ॥ ३ ॥

(इन्द्रं सोमस्य पीतये) इन्द्रको सोमके पीनेके लिये (स्तोमैः इह हवामहे) स्तोत्रोंसे यहां हम बुलाते हैं। (उक्थेभिः कुवित् आगमत्) स्तोत्रोंसे बुलानेपर वह बहुत बार आया है ॥ ४ ॥

हे (शतक्रतो वाजिनीवसो इन्द्र) सैकडों कर्म करनेवाले सेनारूप धन देनेवाले इन्द्र ! (इमे सोमाः सुताः) ये सोमरस तैयार हैं। (तान् जठरे दधिष्व) उनको पेटमें धारण कर ॥ ५ ॥

हे (कवे) ज्ञानी ! (त्वा धनंजयं) तुझे हम धनको जीतनेवाला और (वाजेषु दधृषं) युद्धोंमें शत्रुको परास्त करनेवाला (विद्मा) जानते हैं (अधा ते सुम्नं ईमहे) इसलिये तुमसे सुख मांगते हैं ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! (इमं नः गवाशिरं यवाशिरं च) इस हमारे गायका दूध मिलाये सत्तु मिलाये (वृषभिः सुतं) बलवानोंने निचोडे सोम रसको (आगत्य पिब) आकर पी ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! (स्वे ओक्ये) अपने स्थानमें (पीतये) पीनेके लिये (तुभ्य इत् सोमं चोदामि) तेरे लिये सोमको प्रेरित करता हूं। (ते हृदि एष रारन्तु) यह तेरे हृदयमें आनन्द देवे ॥ ८ ॥

(अवस्यवः कुशिकासः) अपनी सुरक्षा चाहनेवाले कुशिक गोत्री हम (सुतस्य पीतये) निचोडे सोमरसको पीनेके लिये हे इन्द्र ! (प्रत्नं त्वां हवामहे) तुझ पुरातन वीरको हम बुलाते हैं ॥ ९ ॥

इस सूक्तमें वीरके लिये वचन बोधक हैं—

१ शतक्रतुः— सैकडों कर्म करनेवाला वीर

२ वाजिनीवसुः— सेनाको बसानेवाला, अन्नकी व्यवस्था करनेवाला, सेनाका संचालन करनेवाला।

३ धनंजयः— शत्रुसे जीतकर धन लानेवाला

[सूक्त २५]

(ऋषिः — १-५ गोतमः, ७ [illegible] । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ० १।८३।१-६)

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥

आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥

---

४ वाजय दपृषे— [illegible]

५ ऋषि — [illegible]

६ ब्रह्मा— [illegible]

[illegible]—

१ [illegible]— [illegible]

२ [illegible]— [illegible]

३ [illegible]— [illegible]

४ [illegible]— [illegible]

५ यथाभितः— [illegible]

६ [illegible]— [illegible]

(सूक्त २५)

हे इन्द्र ! (तव ऊतिभिः) [illegible] (सुप्रावीः [illegible]) [illegible] ([illegible]) [illegible] (यथा सिन्धुं आपः [illegible]) [illegible] ॥ १ ॥

(देवीः आपः न) [illegible] (होत्रियं [illegible]) [illegible]

[illegible] है। (यथा रजः विततं) [illegible] (अवः पश्यन्ति) [illegible] है। (देवयुं देवासः प्राचैः प्र णयन्ति) [illegible] (ब्रह्मप्रियं वरा इव जोषयन्ते) [illegible] है ॥ २ ॥

(द्वयोः अधि उक्थ्यं वचः अदधाः) [illegible] (या मिथुना यतस्रुचा सपर्यतः) [illegible] (असंयत्तः ते व्रते क्षेति पुष्यति) [illegible] (सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः) [illegible] ॥ ३ ॥

(अङ्गिराः आत् प्रथमं वयः दधिरे) [illegible] (ये इद्धाग्नयः) [illegible] (शम्या सुकृत्यया) [illegible] (नरः) [illegible] (अश्वावन्तं गोमन्तं पशुं [illegible]) [illegible] (पणेः [illegible]) [illegible]

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥
बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।१०४।१) (१९०)

(अथर्वा यज्ञैः प्रथमः पथः तते) अथर्वाने पहिले यज्ञोंसे मार्ग फैलाया। (ततः व्रतपाः वेनः सूर्यः आजनि) पश्चात् व्रतपालक तेजस्वी सूर्य प्रकट हुआ। (काव्यः उशनाः सचा गाः आ आजत्) कविपुत्र उशनाने उस सूर्यके साथ गौओंको चलाया। इस तरह (यमस्य जातं अमृतं यजामहे) नियमोंसे कार्य करनेसे उत्पन्न हुए अमृतरूपी यज्ञ कर्म हम करते हैं ॥ ५ ॥

(यत् बर्हिः स्वपत्याय वृज्यते) जब कुश उत्तम कर्म करनेके लिये काटते हैं (अर्कः वा श्लोकं दिवि आघोषते) जब सूक्त बोलनेवाले अपने मंत्रको द्युलोकमें घोषित करते हैं (यत्र कारुः उक्थ्यः ग्रावा वदति) जहां निपुण स्तोता जैसा पत्थर [सोम कूटनेका] शब्द करता है (इन्द्रः तस्य अभिपित्वेषु) इन्द्र उसके समीप रहनेमें (रण्यति) आनन्द मनाता है ॥ ६ ॥

हे (हर्यश्व) लाल घोडोंवाले इन्द्र ! (वृष्णे तुभ्यं) बलवान् तुम (सत्यां उग्रां पीतिं) सच्चे उत्साह वर्धक सोम पानके पास (प्रयै प्र इयर्मि) आनेके लिये मैं प्रेरित करता हूं। हे इन्द्र ! (धेनाभिः इह मादयस्व) स्तुतियोंसे यहां आनन्दित हो (विश्वाभिः धीभिः) सारी बुद्धियों सहित (शच्या गृणानः) शक्तिके साथ तुम्हारी स्तुति होती है ॥ ■

इस सूक्तमें इन्द्रके बोधप्रद ये वचन हैं—

१ हे इन्द्र ! तव ऊतिभिः सुप्राचीः मर्त्यः अश्वावति गोषु प्रथमः गच्छति— हे इन्द्र ! तेरी सुरक्षाओंसे सुरक्षित हुआ मनुष्य घोडों और गौओंवालोंमें पहिला होकर जाता है

२ तं इत् मर्त्य वसुना पृणक्षि— उस मनुष्यको तू धनसे भर देता है।

३ विततं अवः पश्यन्ति— तेरा रक्षण सामर्थ्य चारों ओर फैल रहा है वह सब देखते हैं। चारों ओरसे तू रक्षण करता है वह सब जानते हैं।

४ देवासः देवयुं प्राचैः प्र णयन्ति— देव दर्शन प्राप्त करनेकी इच्छावालेको सीधे मार्गोंसे आगे ले जाते हैं।

५ ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते— ज्ञान पर प्रेम रखनेवालेका आदर रखते हैं।

६ असंयतः ते व्रते क्षेति पुष्यति— जो संयम रहित है वह तेरे नियममें रहता है और पुष्ट होता है।

७ भद्रा शक्तिः यजमानाय— यज्ञकर्ता यजमानको कल्याणकारी शक्ति प्राप्त होती है।

८ अंगिरसः प्रथमं वयः दधिरे— अंगिरसोंने प्रथम शक्ति प्राप्त की।

९ ये इद्धाग्नयः सुकृत्यया शम्या— जो अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञ करते हैं वे अपने शुभ कर्मसे शान्ति स्थापन करते हैं।

१० नरः पणेः अश्वावन्तं गोमन्तं पशुं सर्वं भोजनं समविन्दन्त— वीर नेता यज्ञ पणिके घोडों गौओं और पशु आदि सब भोग भोजन आदि अपने कब्जेमें करते रहे। पणियोंसे ये भोग अंगिरसोंने वीरतासे प्राप्त किये।

११ अथर्वा यज्ञैः प्रथमः पथः तते— अथर्वाने यज्ञोंसे प्रथमतः मार्ग फैलाया। लोगोंको यज्ञका मार्ग बताया।

१२ काव्यः उशना सचा गाः आ आजत्— कवि पुत्र उशनाने साथ गौएं भी चलाईं।

१३ अमृतं यजामहे— अमर देवका हम यज्ञ कर रहे हैं।

१४ हे हर्यश्व इन्द्र ! सत्यां सुतस्य उग्रां पीतिं वृष्णे तुभ्यं इयर्मि— हे घोडोंवाले इन्द्र ! उग्र सोमरसका सच्चा पान तेरे पास मैं भेजता हूं।

१५ शच्या गृणानः— इन्द्र सामर्थ्यवान है ऐसी स्तुति होती है।

[सूक्त २६]

(ऋषिः — १-३ शुनःशेपः, ४-६ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ १।३०।७-९)

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ १ ॥

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः । वाजेभिरुप नो हवम् ॥ २ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् । यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ३ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ४ ॥ (ऋ १।६।१-३)

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ५ ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथा ॥ ६ ॥ (१९६)

[सूक्त २७]

(ऋषिः — १-६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

(ऋ ८।१४।१-६)

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् । स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

(सूक्त २६)

(सखायः) हम सब मित्र मिलकर (योगे योगे) प्रत्येक संयोगमें (वाजे वाजे) प्रत्येक संग्राममें (तवस्तरं) अधिक शक्तिमान (इन्द्रं) इन्द्रको (ऊतये हवामहे) हमारी रक्षा करनेके लिये बुलाते हैं ॥ १ ॥

(यदि श्रवत्) यदि वह हमारी प्रार्थना सुनेगा तो वह (सहस्रिणीभिः ऊतिभिः) हजारों संरक्षण सामर्थ्योंके और (वाजेभिः) बलोंके साथ (नः हवं उप आ गमत् घ) हमारी प्रार्थनाके पास वह निःसन्देह आ जायगा ॥ २ ॥

(प्रत्नस्य ओकसः) पुराने परिचित देश मेरे घरके पास (तुविप्रतिं नरं अनु हुवे) बहुतोंका सामना करनेवाले नेता इन्द्रको मैं बुलाता हूं (यं ते) जिस तुझको (पिता) मेरे पिताने (पूर्वं हुवे) पहिले बुलाया था ॥ ३ ॥

(तस्थुषः परि चरन्तं) स्थावरके चारों ओर घूमनेवाले तेजस्वी (अरुषं ब्रध्नं युञ्जन्ति) तेजस्वी सूर्यको जोड़ते जाते हैं। (रोचना दिवि रोचन्ते) वे किरण द्युलोकमें प्रकाशते हैं ॥ ४ ॥

(अस्य रथे विपक्षसा) इसके रथमें दोनों ओर (शोणा धृष्णू नृवाहसा काम्या हरी युञ्जन्ति) लाल रंगके [illegible] ले जानेवाले सुंदर घोड़े जोतते हैं ॥ ५ ॥

(अकेतवे केतुं कृण्वन्) अज्ञानीके लिये ज्ञान और (अपेशसे पेशः) रूपरहित को रूप बनाते हुए, हे (मर्याः) मानवो ! (उषद्भिः सं अजायथाः) उषाओंके साथ सूर्य उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

इस सूक्तमें वीरताके मन्त्रभाव ये हैं—

१ सखायः योगे योगे वाजे वाजे ऊतये तवस्तरं इन्द्रं हवामहे— हम सब एक विचारके लोग एक स्थानपर मिलकर प्रत्येक संग्राममें तथा प्रत्येक धनके प्राप्तिमें हमारी सुरक्षाके लिये शक्तिमान् इन्द्रको सहायतार्थ बुलाते हैं।

२ यदि श्रवत् सहस्रिणीभिः ऊतिभिः वाजेभिः नः हवं घ उप आ गमत्— यदि वह हमारी प्रार्थना सुनेगा तो हजारों सुरक्षा साधनोंके साथ और बलोंके साथ वह हमारे समीप निःसन्देह आ जायगा।

३ यं ते पूर्वं पिता हुवे प्रत्नस्य ओकसः तुविप्रतिं नरं अनु हुवे— जिस तुझे मेरे पिताने बुलाया था उस तेरे परिचित मेरे स्थानके पास अनेक शत्रुओंका सामना [illegible] उस इन्द्र वीरको मैं बुलाता हूं।

४ अस्य रथे विपक्षसा शोणा धृष्णू नृवाहसा काम्या हरी युञ्जन्ति— इसके रथमें दोनों ओर लाल रंगके [illegible] जाते हैं।

५ अकेतवे केतुं कृण्वन्— अज्ञानीको ज्ञान देना [illegible] है [illegible]।

६ अपेशसे पेशः कृण्वन्— [illegible]।

(सूक्त २७)

[illegible] ! (यथा त्वं) जैसा तू वैसा (यत् अहं वस्वः एक इत् ईशीय) यदि मैं धनका अकेला ही स्वामी

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे । यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥
धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥
न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः । यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥
यज्ञ इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥ ५ ॥
वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः । ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥ (१७२)

[सूक्त २८]

(ऋषिः — १-४ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ ७।१४।७-१०)

व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ १ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ २ ॥

होऊं तो (मे स्तोता गोषखा स्यात्) मेरा स्तोता गौओंका स्वामी होगा ॥ १ ॥

यत् अहं गोपतिः स्याम्) यदि मैं गौओंका स्वामी होऊं हे (शचीपते) शक्तिके स्वामी इन्द्र ! (अस्मै शिक्षेयं) इसको धन दूं और (मनीषिणे दित्सेय) मनन करनेवालेको भी दे दूं ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (सुन्वते यजमानाय) सोमयाजी यजमानके लिये (ते सूनृता धेनुः) तेरी सत्यप्रिय वाणी है । (पिप्युषी गां अश्वं दुहे) वह पुष्ट होकर गौ और घोडा देती है ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (न देवः न मर्त्यः) न देव और न ही मर्त्य (ते राधसः वर्ता अस्ति) तेरे दानका रोकनेवाला कोई है (स्तुतः यत् मघं दित्ससि) जब स्तुति करनेपर तू धन देना चाहता है ॥ ४ ॥

(यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत्) यज्ञने इन्द्रका महात्म्य बढाया (यत् भूमिं व्यवर्तयत्) जो इन्द्र भूमिको उपजाऊ बनाता है (दिवि ओपशं चक्राण) और द्युलोकमें अपना सामर्थ्य प्रकट करता है ॥ ५ ॥

हे इन्द्र ! (वावृधानस्य) बढनेवाला और (विश्वा धनानि जिग्युषः) सब धनोंको जीतनेवाला ऐसे तेरी (ते ऊतिं) सुरक्षा हमें मिले ऐसा (आ वृणीमहे) हम मांगते हैं ॥ ६ ॥

इस सूक्तके मन्त्र भावके अन्य मार्गोंमें प्रकट होता है —

इन्द्र ! न [illegible] तेरे राधसे वर्ता अस्ति [illegible] देव और नाही मर्त्य तेरे [illegible] करनेवाला [illegible] धन

१ यज्ञः इन्द्रं अवर्धयत् — यज्ञ इन्द्रकी महिमा बढाता है

३ भूमिं व्यवर्तयत् — इन्द्रने भूमिको अधिक उपजाऊ बनाया है

४ दिवि ओपशं चक्राण — इन्द्रने द्युलोकमें अपना सामर्थ्य प्रकट किया है ।

५ हे इन्द्र ! विश्वा धनानि जिग्युषः वावृधानस्य ते ऊतिं आ वृणीमहे — हे इन्द्र ! सब धनोंको जीतनेवाले और अपनी महिमाको बढानेवाले तेरा रक्षण हमें प्राप्त हो यह हमारी मांग है ।

प्रथम और द्वितीय मंत्रमें तेरे जैसा मैं यदि धनोंका स्वामी बनूं तो मैं सबका दान करूंगा ऐसा कहकर इन्द्रसे भक्त स्पर्धा कर रहा है । यह भावभक्ति का एक उत्तम उदाहरण है । मेरा स्तोता गौओंका स्वामी होगा । यह वाक्य भी इन्द्रकी बराबरी करनेवाला भक्तका वाक्य है तृतीय मंत्रमें पुष्ट गाय गौ और घोडा देती है इसमें गायके बदले घोडा मिलता है ऐसा समझना योग्य है ।

(सूक्त २८)

(इन्द्रः) इन्द्रने (सोमस्य मदे) सोमरस पीनेसे उत्पन्न हुए उत्साहमें (अन्तरिक्ष) अन्तरिक्षको तथा (रोचना) प्रकाशित स्थानोंको (व्यतिरत्) पार किया (यत् वलं अभिनत्) और तब वलको तोड दिया ॥ १ ॥

(अंगिरोभ्यः) अंगिरोंके लिये (गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन्) गुहामें रहनेवाली गायोंको बाहर निकालकर (उत् आ आजत्) प्रकट किया और (वलं अर्वाञ्चं नुनुदे) वलको नीचे गिरा दिया ॥ २ ॥

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ३ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ ४ ॥ (१०३)

[सूक्त २९]

(ऋषिः — १-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)
(ऋ. ८।१४।११-१५)

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥ १ ॥
इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥ २ ॥
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ३ ॥
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥ ४ ॥
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः । सोमपा उत्तरो भवन् ॥ ५ ॥ (१-२)

(इन्द्रेण दिवः) इन्द्रने द्युलोकमें (रोचना दृळ्हानि दृंहितानि च) चमकनेवाले बलवान सुदृढ कर स्थापित किये हैं (स्थिराणि न पराणुदे) स्थिर किये और वे हटाये नहीं जा सकते ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (अपां ऊर्मिः इव) जलोंकी लहरके समान (स्तोमः मदन् इव) यह स्तोत्र आनन्द बढाता हुआ (अजिरायते) वेगसे बाहर आ रहा है, और इससे (ते मदाः वि अराजिषुः) तेरे आनन्द विराजते हैं ॥ ४ ॥

वीरकथा वर्णन यह है—

१ वलं अभिनत्— इन्द्रने वलको तोड दिया।

२ वलं अवाञ्चं नुनुदे— इन्द्रने वलको नीचे गिराया।

३ अंगिरोभ्यः गुहा सतीः गाः आविष्कृण्वन् अजत्— [वलने गौवें पकड कर अपनी गुहामें बंद करके रखी थीं] उन गौओंको अंगिरा ऋषियोंके लिये इन्द्रने गुहासे उनको बाहर निकाला और अंगिराके पास ले जानेके लिये हांका।

४ इन्द्रेण दिवः रोचना दृळ्हानि दृंहितानि स्थिराणि न पराणुदे— इन्द्रने द्युलोकमें चमकदार नक्षत्र दृढतासे स्थिर किये, उनको दूसरा कोई हटा नहीं सकता। [यहां यह इन्द्र परमात्मा ही है।]

(सूक्त २९)

हे इन्द्र ! (त्वं हि स्तोमवर्धनः) स्तोत्रों द्वारा जिसका महत्त्व बढता है ऐसा तू है और (उक्थवर्धनः) स्तुतियोंसे जिसका बल बढता है ऐसा है। और तू (स्तोतॄणां उत भद्रकृत्) स्तोताओंका कल्याण करनेवाला है ॥ १ ॥

(केशिना हरी) बालवाले दो घोडे (इन्द्रं सोमपेयाय वक्षतः) इन्द्रको सोमपानके लिये ले जाते हैं। (सुराधसं यज्ञं उप) उत्तम दाता इन्द्रको यज्ञके पास ले जाते ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (नमुचेः शिरः) तुमने नमुचिका सिर (अपां फेनेन) जलोंके झागसे (उदवर्तयः) उखाड दिया। (यत् विश्वाः स्पृधः अजयः) तब सब शत्रुओंको जीता ॥ ३ ॥

हे इन्द्र ! (द्यां आरुरुक्षतः) द्युलोकपर चढनेकी इच्छा करनेवाले और (मायाभिः) कपटोंसे (उत्सिसृप्सतः) छिपनेकी इच्छावाले (दस्यून्) शत्रुओंको तूने (अव अधूनुथाः) नीचे गिरा दिया ॥ ४ ॥

हे इन्द्र ! (असुन्वां संसदं) सोमयाग न करनेवालोंकी सभाको (विषूचीं व्यनाशयः) तूने छिन्न भिन्न करके विनष्ट किया और (सोमपाः उत्तरः भवन्) सोमरस पीकर तू विजयी हो गया ॥ ५ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके विषयमें मंत्रभाग ये हैं—

१ हे इन्द्र ! स्तोतॄणां भद्रकृत्— हे इन्द्र ! तू स्तोताओंका कल्याण करता है।

२ स्तोमवर्धन उक्थवर्धनः— स्तोत्रोंसे इन्द्रका बल बढता है।

३ सुराधाः— उत्तम धन देनेवाला।

४ नमुचेः शिरः अपां फेनेन इन्द्र ! उदवर्तयः— नमुचिका सिर जलोंके झागसे इन्द्रने उखाड दिया।

[सूक्त ३०]

(ऋषिः — १-४ बरुः सर्वहरिर्वा । देवता — हरिः (इन्द्रः) ।)

(ऋ. १०।९६।१-४)

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥ १ ॥
हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥ २ ॥
सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥ ३ ॥
दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः ॥ ४ ॥

न मुचि – वह रोग या रोगकृमि जो मनुष्यको अपनी पकड़से छोड़ता नहीं। अपां फेनः – समुद्र झाग अर्थात् जलोंकी झाग यह औषध है जिससे पूर्वोक्त रोग दूर होता है।

५ विश्वाः स्पृधः अजय — सब शत्रुओंको जीत लिया।

६ दस्यून् अव अधूनुथाः— शत्रुओंको नीचे गिरा दिया, दूर किया।

७ अयज्वनां सत्रं विषूचीः व्यनाशय— अयाज्ञिकोंकी सभाको विनष्ट कर दिया।

८ सोमपा उत्तर भवन्— सोमयाजक उच्च स्थानपर गये।

अपां फेनः समुद्र झाग यह औषध है, इससे नमुचि नामक रोग दूर होता है। यह औषध महत्त्वका है। वैद्योंको इसका विचार करना चाहिये।

(सूक्त ३०)

(हे हरी) हे दोनों घोड़ोंसे युक्त (महे विदथे प्र शंसिष) बड़े यज्ञमें मैं प्रशंसा करता हूं। (ते वनुषः हर्यतं मदं प्र वन्वे) तुझे इस आनन्ददायी रसको मैं तैयार करता हूं। (घृतं न) घी के समान (यः हरिभिः चारु सेचते) जो घोड़ोंके साथ प्रेमसे बलको सींचता है (हरिवर्पसं त्वा गिरः आ विशन्तु) ऐसे सुन्दर रूपवाले तुझमें हमारी स्तुतियां प्रविष्ट हों ॥ १ ॥

(हरिं योनिं ये हि अभि समस्वरन्) जो ऋषि इन्द्रके आगमनके मूल कारण इन घोड़ोंकी स्तुति करते थे (यथा दिव्यं सदः हिन्वन्तः हरी) क्योंकि दिव्य घर स्थानके पास इन्द्रको ये ही घोड़े लाते हैं। (यं हरिभिः न धेनवः आ पृणन्ति) जिसको घोड़ोंके समान गौवें पुष्ट करती हैं उस (इन्द्राय हरिवन्तं शूषं अर्चत) इन्द्रके संतोषके लिये घोड़ोंवाले बलकी पूजा करो ॥ २ ॥

(सः अस्य वज्रः) वह इस इन्द्रका वज्र (हरितः यः आयसः) पीला और फौलादका है (हरिः निकामः) प्राण हरण करनेवाला वज्र इसको बड़ा प्यारा है (हरिः आ गभस्त्योः) भुजाओंमें यह इन्द्र इस वज्रको पकड़ता है। (द्युम्नी सुशिप्रः) तेजस्वी उत्तम हनु या शिरस्त्राण युक्त है (हरि-मन्यु-सायकः) शत्रुके प्राण हरण करनेवाले तीक्ष्ण बाणको धारण करनेवाले (इन्द्रे हरिता रूपा मिमिक्षिरे) इन्द्रमें ओर सबका रूप मिले हैं ॥ ३ ॥

(दिवि हर्यतः केतुः अधि धायि न) द्युलोकमें सुन्दर ध्वज जैसा लगाते हैं वैसा यह (वज्रः हरितः रंह्या न विव्यचत्) सुवर्णका वज्र मानो वेगसे चमकता है (यः आयसः हरिशिप्र अहिं तुदत्) जिस फौलादके वज्रसे सुवर्णके शिरस्त्राणको धारण करनेवाले इन्द्रने अहि नामक शत्रुको मारा। तब (हरिंभरः सहस्रशोकाः अभवत्) सुवर्णसे भरा यह वज्र सहस्र दीप्तिवाला हो गया ॥ ४ ॥

त्वम॑हर्यथा उप॑स्तुतः पूर्वे॑भिरिन्द्र हरिकेश यज्व॑भिः।
त्वं ह॑र्यसि तव॒ विश्व॑मु॒क्थ्य१॒॑मसा॑मि॒ राधो॑ हरिजात ह॒र्यत॑म् ॥ ५ ॥ (१८६)

[सूक्त ३१]

(ऋषिः — १-५ वरुः सर्वहरिर्वा। देवता — हरिः [इन्द्रः]।)
(ऋ १०।९६।६-१०)

ता व॒ज्रिणं॑ म॒न्दिनं॒ स्तोम्यं॒ मद॒ इन्द्रं॒ रथे॑ वहतो हर्य॒ता हरी॑।
पु॒रूण्य॑स्मै॒ सव॑नानि॒ हर्य॑त॒ इन्द्रा॑य॒ सोमा॒ हर॑यो दधन्विरे ॥ १ ॥
अरं॒ कामा॑य॒ हर॑यो दधन्विरे स्थि॒राय॑ हिन्व॒न्हर॑यो॒ हरी॑ तु॒रा।
अर्व॑द्भि॒र्यो हरि॑भि॒र्जोष॒मीय॑ते॒ सो अ॑स्य॒ कामं॒ हरि॑वन्तमानशे ॥ २ ॥

हे (हरिकेश इन्द्र) सुनहरी बालोंवाले इन्द्र ! (पूर्वेभिः यज्वभिः उपस्तुतः) पूर्व समयके याजकोंने स्तुति किया हुआ (त्वं त्वं अहर्यथाः) तू ही स्तुतिके लिये योग्य है। (तव विश्वं उक्थ्यं) तेरी सब स्तुतिके लिये (त्वं हर्यसि) तू योग्य है। हे (हरिजात) हे दुःख हरण करनेवालोंमें प्रसिद्ध ! (हर्यतं राधः असामि) तेजस्वी धन तेरा ही है ॥ ५ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रकी वाचकताका वर्णन अब देखिये—

१ इन्द्राय हरिवन्तं शूषं अर्चत— इन्द्रके शत्रुबल हरनेवाले बलकी पूजा करो।

२ अस्य वज्रः हरितः आयसः हरिः निकामः— इस इन्द्रका वज्र सुवर्णसे सुशोभित फौलादका है वह शत्रुको दूर करनेवाला है इस कारण प्रिय है।

३ हरिः मा गभस्त्योः — वह शत्रुका हरण करनेवाला वज्र दोनों हाथोंमें वह पकडता है।

४ द्युम्नी सुशिप्रः हरि मन्यु-सायकः — वह इन्द्र तेजस्वी उत्तम शस्त्र धारण करनेवाला शत्रुके प्राण हरण करनेवाला क्रोधः बाण जिसका ऐसा रहता है।

५ इन्द्रे हरिता रूपा मिमिक्षिरे— इन्द्रमें सब वर्णोंके रूप रहे हैं।

६ दिवि हर्यतः केतुः न अधि धायि— आकाशमें सुवर्णका ध्वज जैसा रखते [वैसा इन्द्रका वज्र चमक रहा है।]

७ हरितः वज्रः हरः न विव्यचत्— सुवर्णका वज्र तेजसे चमका।

८ हरिशिप्रः यः आयसं अहिं तुरत्— सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाला इन्द्र अपने फौलादके वज्रसे अहिनामक अपने शत्रुको मारा।

९ हरिमरः सहस्रशोकः अभवत्— सुवर्णसे भरा हुआ वह वज्र सहस्र तेजोंसे चमकनेवाला हुआ।

१० त्वं त्वं अहर्यथाः— तू ही स्तुतिके लिये योग्य है।

११ त्वं हर्यसि तव विश्वं उक्थ्यं— तू स्तुतिके लिये योग्य है सब स्तुति तुम्हारी है।

१२ हे हरिजात ! हर्यतं असामि राधः— हे शत्रुके प्राण हरण करनेवालोंमें प्रसिद्ध इन्द्र ! तेरा धन वर्णनीय है।

इस सूक्तमें इन्द्र के लिये हरि-केश कहा है। सुवर्णके रंगके केशवाला इन्द्र है। सुवर्णके बालोंवाले लोग बड़े होते हैं वहांका यह वीर है। तैत्तिरीय संहितावालोंको हिरण्यकेशी कहते हैं। वही भाव हरि केश में दीखता है।

(सूक्त ३१)

(ता हर्यता हरी) वे दोनों प्रिय घोडे (वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं इन्द्रं) वज्रधारी आनन्द युक्त स्तुतिके योग्य इन्द्रको (मदे) आनन्द प्राप्त करनेके लिये (रथे वहतः) रथमें ले जाते हैं। (अस्मै हर्यते इन्द्राय) इस इच्छा करनेवाले इन्द्रके लिये (पुरूणि सवनानि) बहुतसे सवन और (हरयः सोमाः) तेजस्वी सोमरस (दधन्विरे) रहते हैं ॥ १ ॥

(कामाय हरयः अरं दधन्विरे) इन्द्रकी कामनानुसार सोमरस पूर्णतया रहे। (स्थिराय हरयः हरी तुरा हिन्वन्) स्थिर इन्द्रके लिये वेगवान मैसर्गीन दोनों घोडोंको लगाके चलाया। (अर्वद्भिः हरिभिः यः जोषं ईयते) वेगवाले घोडोंसे जो सुखसे जाता है (सः अस्य हरिवन्तं कामं आनशे) वह सब इस इन्द्रको कामनाकी प्राप्तिके पाता है ॥ २ ॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥ ३ ॥
स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥ ४ ॥
उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥ ५ ॥ (१९९)

[सूक्त ३२]

(ऋषिः — १-३ बरुः सर्वहरिर्वा । देवता — हरिः [इन्द्रः] ।)

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥ १ ॥

(हरि-श्मशारुः) पीली मूछोंवाला (हरि-केशः) पीले बालोंवाला (आयसः) फौलादका जैसा बना (तुरस्पेये यः हरिपा अवर्धत) त्वरासे पीनेमें भी घोडोंका पालनकर्ता बढता है, (अर्वद्भिः हरिभिः यः) वेगवान् घोडोंसे जो (वाजिनी-वसुः) सेनाको बसाता है वह (हरी) दोनों घोडोंको (विश्वा दुरिता अति पारिषत्) सारी कठिनाइयोंके पार ले गया ॥ ३ ॥

(स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः) दो स्रुवोंके समान जिसके दोनों जबडे अलग अलग चलते हैं। (शिप्रे हरिणी वाजाय दविध्वतः) दोनों जबडे वेगके लिये वह जब कंपाता है (यत्कृते चमसे) जिसके लिये चमस तैयार हुए उस (मदस्य हर्यतस्य अन्धसः पीत्वा) आनंददायक प्रिय अन्नरसको पीकर वह अपने (हरी मर्मृजत्) दोनों घोडोंको पोंछता है ॥ ४ ॥

(उत हर्यतस्य पस्त्योः सद्म स्म) यदि इच्छा करनेवाले इन्द्रका घर द्यौ और पृथिवीमें है, तो जैसा (अत्यः वाजं न) घोडा जैसा युद्धमें जाता है वैसा वह (हरिवान् अचिक्रदत्) घोडोंवाला इन्द्र जाता है (मही धिषणा चित्) बडी स्तुतिने (ओजसा अहर्यत्) बलसे उसकी इच्छा की है। और (हर्यतः चित् बृहत् वयः आ दधिषे) उस इच्छा करनेवालेने बडी आयु धारण की ॥ ५ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके और वर्णन ये हैं—

१ हरी यस्मिन् इन्द्रं रथे वहतः— दो घोडे बलशाली इन्द्रको रथमें बिठाकर ले जाते हैं।

२ स्थिरस्य हरी युजा हिन्वन्— युद्धमें स्थिर रहनेवाले इन्द्रको दो घोडे त्वरासे ले चलते हैं।

३ अर्वद्भिः हरिभिः यः जोषं ईयते— वेगवान् घोडोंसे वह सत्वर जाता है।

४ अर्वद्भिः हरिभिः यः वाजिनी-वसुः— वेगवान् घोडोंसे जो सेनाको बसाता है।

५ हरी विश्वा दुरिता अति पारिषत्— दो घोडे सब संकटोंसे पार करते हैं।

६ अत्यः वाजं न हरिवान् अचिक्रदत्— घोडा युद्धमें जाता है उस तरह इन्द्र जाता है।

इन्द्रका वर्णन—

१ हरिश्मशारु — सोनेके रंगके मूछोंवाला
२ हरिकेशः — सोनेके रंगके बालोंवाला
३ आयसः — फौलादका वज्र धारण करता है
४ हरिपा — घोडोंका पालन करनेमें कुशल
५ वाजिनी-वसुः — सेनाओंको अच्छी तरह बसानेवाला
६ बृहत् वयः दधिषे — बडी आयु धारण करता है।

(सूक्त ३२)

तू (महित्वा) अपनी महिमासे (रोदसी आ हर्यमाणः) द्युलोक और पृथिवीको भर देता है। तथा (नव्यंनव्यं प्रियं मन्म) नवीन नवीन प्रिय स्तोत्रको तू (हर्यसि) चाहता है। हे (असुर) जीवन शक्ति देनेवाले इन्द्र! (हरये सूर्याय) तू दोषहरण करनेवाले सूर्यके लिये (गोः हर्यतं पस्त्यं) गौओंके सुहावने बाडेको (प्र आविष्कृधि) प्रकट कर ॥ १ ॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥ २ ॥
अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृष जठर आ वृषस्व ॥ ३ ॥ (१०४)

[सूक्त ३३]

(ऋषिः — १-३ अष्टकः । देवता — इन्द्रः ।)

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥ १ ॥
प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥ २ ॥
ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥ ३ ॥ ऋ. १०।१०४।२-४ (१०७)

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥ ३ ॥

महित्वा रोदसी आ दधमाणः— वीर अपनी महिमासे विश्वको भर दे।

मध्य प्रिय मध्म दधासि— मधुर प्रिय रस देके स्तोत्र पाते जाते हैं।

दस्य सूर्याय गोः दयत पराये प्र मायिन्नृ पि— [illegible] सूर्य प्रकाशमें [illegible] । सूर्य प्रकाशमें [illegible] देना कर।

हे इन्द्र ! (जनानां प्रयुजः) [illegible] (हरिशिप्र त्वा) तुम्हारे [illegible] (रथे आ वहन्तु) रथमें बिठाकर ले जावें। (सधमादे) साथ साथ बैठकर आनन्द होनेके [illegible] (दशोणिं यज्ञं हर्यन्) [illegible] (प्रतिभृतस्य मध्वः) [illegible] मधुर रसका (यथा पिब) यथेच्छ पान कर ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! (हरिवः) घोडोंवाले वीर ! (पूर्वेषां सुतानां अपाः) [illegible] (अथो इदं सवनं ते केवलं) और यह [illegible] हे इन्द्र ! (मधुमन्तं सोमं ममद्धि) [illegible] (जठरे) अपने पेटमें (वृषं सत्रा आ वृषस्व) [illegible] ॥ ३ ॥

१ (अथर्व [illegible])

जनानां प्रयुजः हरिशिप्रं त्वा रथे आ वहन्तु— लोगोंके [illegible] रथमें बिठाकर [illegible] ।

सधमादे— साथ साथ बैठें और आनंद [illegible] ।

हरिवः— घोडोंवाले वीर हो।

(सूक्त ३३)

हे (हरिवः) घोडोंवाले वीर ! (अप्सु धूतस्य) जलोंमें मिलाये सोमरसका (इह पिब) यहां पान कर। (नृभिः सुतस्य) मानवोंने निचोड़ा [illegible] (जठरं पृणस्व) पेटको भर ॥ १ ॥

हे (हरि-अश्व) [illegible] इन्द्र ! (वृष्णे तुभ्यं सुतस्य) [illegible] (उग्रां सत्यां पीतिं) [illegible] (प्रयै प्र इयर्मि) [illegible] हे इन्द्र ! (धेनाभिः इह मादयस्व) [illegible] (विश्वाभिः धीभिः) [illegible] (शच्या गृणानः) [illegible] ॥ २ ॥

(अथर्व [illegible] देखें)

हे (शचीवः) [illegible] इन्द्र ! (तव ऊती) [illegible] (तव वीर्येण) [illegible] (वयः दधानाः) [illegible] (उशिजः ऋतज्ञाः) [illegible]

[सूक्त ३४]

(ऋषिः — १-१८ गृत्समदः। देवता — इन्द्रः।)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥

ज्ञानी लोग मिलें। हे इन्द्र! (प्रजावत्) प्रजासे युक्त होकर (सधमाद्यास गृणन्तः) एकत्र आनन्दसे रहनेवाले तेरी स्तुति करते हुए (मनुषः दुरोणे तस्थुः) मानवोंके घरमें योग्य कर्म करते रहें ॥ १ ॥

हरिवः— घोडोंके साथ रहनेवाला वीर

शचीवः— सामर्थ्यवान् वीर

तव ऊती तव वीर्येण वयः वृधानाः— तेरे रक्षणसे सुरक्षित और तेरे पराक्रमसे वर्धिष्णु होनेवाले वीर हों।

वसिष्ठाः ऋताज्ञाः— प्रेमसे साथ बैठकर श्रेष्ठ कर्म करनेवाले हों और वे सत्यका तत्त्व जाननेवाले हों।

प्रजावत्— संतानोंसे युक्त हों कोई संतानहीन न हो।

सधमाद्यासः गृणन्तः मनुषः दुरोणे तस्थुः— एकत्र रहकर आनंद बढानेवाले ईश्वरकी स्तुति करनेवाले लोग मानवोंके घरमें योग्य कर्म करते रहें। उत्तम और परम आनन्दसे रहें।

॥ यहां तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ३४)

(यः मनस्वान् प्रथमः देवः) जो बुद्धिमान् पहिला देव (जातः एव) प्रकट होते ही (क्रतुना देवान् पर्यभूषत्) अपने कर्मसे सब देवोंको सुभूषित करता है, (यस्य शुष्मात्) जिसके बलसे और (नृम्णस्य मह्ना) वीर्यकी महिमासे (रोदसी अभ्यसेताम्) दोनों लोक कांपते हैं हे (जनासः) लोगो! (सः इन्द्रः) वह इन्द्र है ॥ १ ॥ (ऋ. २।१२।१)

(यः व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत्) जिसने कांपनेवाली पृथिवीको दृढ बनाया (यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्) जिसने प्रकुपित पर्वतोंको रमणीय बनाया, (यः अन्तरिक्षं वरीयः विममे) जिसने अन्तरिक्षको विस्तृत बनाया (यः द्यां अस्तभ्नात्) जिसने द्युलोकको स्थिर बनाया है लोगो! वह इन्द्र है ॥ २ ॥ (ऋ. २।१२।२)

(यः अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्) जिसने मेघको मार कर सात नदियोंको बहाया (यः वलस्य अपधा गा उदाजत्) जिसने बलकी गुहासे गौओंको ऊपर निकाला (यः अश्मनः अन्तः अग्निं जजान) जिसने पत्थरोंके अन्दर अग्निको उत्पन्न किया जो (समत्सु संवृक्) जो संग्रामोंमें शत्रुको घेरता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ३ ॥ (ऋ. २।१२।३)

(येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि) जिसने ये सब भुवन हिलनेवाले बनाये हैं (यः दासं वर्णं अधरं गुहा अकः) जिसने दास वर्णको नीच और गुहामें रहनेवाला किया है, (यः अर्यः जिगीवान्) जो श्रेष्ठ विजयी होकर (श्वघ्नी इव लक्षं पुष्टानि आदत्) व्याधके समान लक्ष्यको और पोषक धनोंको प्राप्त करता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ४ ॥ (ऋ. २।१२।४)

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥

(यं घोरं) जिस भयानकके विषयमें (पृच्छन्ति) पूछते हैं कि (सः कुह इति) वह कहाँ रहता है (उत एनम् आहुः) और इसके विषयमें कहते हैं कि (न एषः अस्ति इति) वह है ही नहीं। (सः अर्यः) वह श्रेष्ठ (विज इव पुष्टीः आमिनाति) [illegible] पुष्टि [illegible] करता है (अस्मै श्रत् धत्त) इसपर श्रद्धा धारण करो हे लोगो! वही इन्द्र है ॥ ५ ॥ (ऋ. २।१२।५)

(यः रध्रस्य) जो [illegible] (यः कृशस्य) जो कृश (यः ब्रह्मणः) जो ज्ञानी का और (नाधमानस्य कीरेः) याचना करनेवाले कवि का (चोदिता) प्रेरक होता है (युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य यः अविता) जो पत्थरोंको [illegible] रक्षक है जो (सुशिप्रः) [illegible] है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ६ ॥

(ऋ. २।१२।६)

(यस्य प्रदिशि) जिसके अधिकारमें (अश्वासः) घोडे हैं (यस्य गावः) जिसकी गौएं हैं (यस्य ग्रामाः) जिसके ग्राम हैं (यस्य विश्वे रथासः) जिसके सब रथ हैं (यः सूर्यं उषसं जजान) जिसने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया है (यः अपां नेता) जो जलोंका नेता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ७ ॥ (ऋ. २।१२।७)

(संयती क्रन्दसी यं विह्वयेते) आपसमें युद्ध [illegible] हुई सेनाएं जिसको बुलाती हैं। (परे अवरे उभयाः अमित्राः) श्रेष्ठ और कनिष्ठ दोनों प्रकारके शत्रु जिसको बुलाते हैं (समानं रथं चित् आतस्थिवांसा) समान रथपर बैठनेवाले वीर (नाना हवेते) जिसको नाना प्रकार बुलाते हैं हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ८ ॥ (ऋ. २।१२।८)

(यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते) जिसकी सहायताके बिना लोग विजय नहीं प्राप्त कर सकते (युध्यमानाः अवसे यं हवन्ते) युद्ध करनेवाले अपने रक्षणके लिये जिसको बुलाते हैं (यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव) जो विश्वका आदर्श [illegible] हुआ है (यः अच्युतच्युत्) जो न हिलनेवालोंको हिलानेवाला है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ ९ ॥

(ऋ. २।१२।९)

(यः शर्वा) जिस शस्त्रधारीने [illegible] (मही एनः दधानान्) बडे पाप करनेवाले (अमन्यमानान्) [illegible] (जघान) मारा। (यः शर्धते) [illegible] (शृध्यां न अनुददाति) [illegible] नहीं [illegible] (यः दस्योः हन्ता) [illegible] हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ १० ॥

(ऋ. २।१२।१०)

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

यः शम्बरं पर्यतरत्कसीभिर्योऽचारुकास्नापिबत्सुतस्य ।
अन्तर्गिरौ यजमानं बहुं जनं यस्मिन्नामूर्छत्स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १५ ॥

जातो व्यख्यत्पित्रोरुपस्थे भुवो न वेद जनितुः परस्य ।
स्तविष्यमाणो नो यो अस्मद्व्रता देवानां स जनास इन्द्रः ॥ १६ ॥

(यः पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं) जिसने पर्वतोंमें रहने वाले मेघको (चत्वारिंश्यां शरदि) चालीसवें वर्ष (अन्वविन्दत्) ढूंढ निकाला (यः ओजायमानं अहिं) जिसने बल बढानेवाले अहिको-मेघको को (दानुं शयानं) दानी और विश्राम करनेवाला था उसको (जघान) मारा है लोगो! वह इन्द्र है ॥ ११ ॥ (ऋ. २।१२।११)

(यः कसीभिः शम्बरं पर्यतरत्) जिसने कर्मोंसे शंबरको-मेघको जीत लिया (यः अचारुक-अस्ना) जो सुन्दर मुखसे (सुतस्य अपिबत्) सोमरसको पीता है (बहुं जनं यजमानं) यज्ञ करनेवाले बहुत लोगोंको (अन्तः गिरौ यस्मिन् आ मूर्छत्) जिस पर्वतमें इकट्ठा बढाता है लोगो! वह इन्द्र है ॥ १२ ॥

(यः सप्तरश्मिः वृषभः) जो सात किरणोंवाला बलवान् (तुविष्मान्) सामर्थ्यवान् देव (सप्त सिन्धून्) सात नदियोंको (सर्तवे अवासृजत्) बहनेके लिये छोड देता है। (यः वज्रबाहुः) जिस वज्रधारीने (द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत्) द्युलोकपर चढनेवाले रौहिणको कम्पित किया है, हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ १३ ॥ (ऋ. २।१२।१२)

(द्यावा पृथिवी अस्मै चित् नमेते) द्युलोक और पृथिवी इसके सामने नम्र होते हैं (अस्य शुष्मात् चित् पर्वता भयन्ते) इसके बलसे पर्वत भयभीत होते हैं। (यः सोमपाः) जो सोमपान करनेवाला (यः वज्रबाहुः वज्रहस्तः निचितः) जो वज्रके समान बाहुवाला और हाथमें वज्र धारण करनेवाला प्रसिद्ध है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ १४ ॥ (ऋ. २।१२।१३)

(यः सुन्वन्तं अवति) जो सोमरस निकालनेवालेकी रक्षा करता है (यः पचन्तं) जो अन्न पकानेवालेकी रक्षा करता है (यः शंसन्तं) जो मंत्र बोलनेवालेकी (यः शशमानं) जो अपने रक्षणके साथ दान देता है उसकी रक्षा करता है (ब्रह्म यस्य वर्धनं) ज्ञान जिसके यशका वर्धन करता है, (सोमः यस्य) सोम जिसका बलवर्धन करता (इदं राधः यस्य) यह हवि जिसका वर्धन करता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ १५ ॥ (ऋ. २।१२।१४)

(जातः) प्रकट होते ही (पित्रोः उपस्थे व्यख्यत्) मातापिताकी गोदमें रहकर जो प्रसिद्ध होता है (यः भुवः) जो भूमिको और (परस्य जनितुः न वेद) श्रेष्ठ उत्पादक को भी नहीं जानता। (यः नः स्तविष्यमाणः) जो हमसे स्तुति होनेपर (अस्मत् देवानां व्रता) हमारे देवोंके व्रतोंको पूर्ण करता है हे लोगो! वह इन्द्र है ॥ १६ ॥

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद्रेजन्ते भुवनानि विश्वा ।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः ॥ १७ ॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १८ ॥ (११५)

(यः सोमकामः) जो सोम चाहता है। जो (हर्यश्वः) भूरे रंगके घोडोंवाला (सूरिः) ज्ञानी है, (यस्मात् विश्वा भुवनानि रेजन्ते) जिससे सब भुवन कांपते हैं (यः शंबरं जघान) जिसने शंबरको मारा (यः च शुष्णं) जिसने शुष्णको मारा (यः एकवीरः) जो एक मात्र वीर है हे जनो ! वह इन्द्र है ॥ १७ ॥

(यः दुध्रः चित्) जो दुर्धष होनेपर भी (सुन्वते पचते वाजं आ दर्दर्षि) सोमरस निकालनेवाले और अन्न पकानेवालेके लिये बल तथा अन्न देता है (सः सत्यः किल असि) वह निःसंदेह सत्य है। हे इन्द्र ! (वयं ते विश्वह प्रियासः) हम तेरे सर्वदा प्रिय होकर (सुवीरासः) उत्तम वीर पुत्रोंके समेत (विदथं आ वदेम) तेरे गीत गाते रहेंगे ॥ १८ ॥ (ऋ. २।१२।१५)

इस सूक्तमें इन्द्रके गुणों और कार्योंका वर्णन किया है जो गुण देखकर इन्द्रको भक्त पहचान सकते हैं। वे गुण ये हैं—

१ यः जातः एव प्रथमः मनस्वान्— जो बुद्धिमान पहिला देव है। वह पहिला देव है। इससे पूर्व कोई देव नहीं है। सबमें जो आदिम देव है वह यह है। यह मनस्वान् मनन पूर्वक पूर्ण आयोजनापूर्वक सब कार्य करता है।

२ यः जातः एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत्— जो प्रकट होते ही [सब देवोंको उत्पन्न करके] अपने सामर्थ्यसे उन सब देवोंको सुन्दर सुभूषित करता है। वह (प्रथमः देवः) पहिला देव है इससे पूर्व कोई देव था ही नहीं इसलिये इसको पहिला देव कहा है। इसने सब देव उत्पन्न किये और इनको सुन्दर भी बनाया। सुभूषित भी किया। अर्थात् सब देवोंमें इस पहिले देवकी शक्ति ही कार्य करती रही जिससे सब अन्य देव शक्तिमान दीखने लगे।

३ यस्य शुष्मात् नृम्णस्य मह्ना रोदसी अभ्यसेतां— इस देवकी शक्तिसे इसके वीरत्वकी महिमासे द्यावापृथिवी भयभीत होकर अपने अपने कार्य करनेमें दत्तचित्त रहते हैं। अभ्यसन – का अर्थ वारंवार वही कार्य करना। भूमण्डल तथा आकाशमें वारंवार वे वे कार्य होते रहते हैं। नियमपूर्वक कार्य होते रहते हैं सूर्यका उदयास्त वायुका बहना वृष्टिका होना आदि जो कार्य वारंवार हो रहे हैं वे इस आदिदेवकी आयोजनासे ही हो रहे हैं। और होते रहेंगे ॥ १ ॥

४ यः व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत्— जो दुःखी हुई पृथिवीको दृढ बनाता है। इससे स्पष्ट होता है कि पृथिवी प्रारंभमें कम्प देनेवाली थी। उस पृथिवीको उस देवने (अदृंहत्) सुदृढ बनाया। यह पृथिवी आजके समान दृढ नहीं थी। पीछेसे दृढ हुई है।

५ यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्— जो प्रकु पित पर्वतोंको रमणीय बनाता है। जब ज्वालामुखी पर्वत थे उनको शान्त तथा रमणीय इसी देवने बनाया।

इस कथनसे भूमि प्रथम परमागरम थी पर्वत ज्वाला फेंकने वाले थे पीछेसे भूमि और पर्वत रमणीय हुए। हरियाली पीछेसे हुई ऐसा दीखता है ॥ २ ॥

६ यः अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्— जिसने अहिको मारा और सात नदियोंको बहाया। अहि मेघका नाम है अहि नामक एक जाति भी थी। अहि'- अ-हि न हटनेवाला अ-हि पर्वतपर पडे बरफका भी नाम है। इस पर्वतपर पडे बरफको पिघलाकर नदियोंको बहादुर करना इन्द्रका या सूर्यका कार्य है।

७ यः गाः वलस्य अपधा उदाजत्— जिसने बलने छिपाकर रखी गौवें बाहर निकालीं। बल कौन है इसकी खोज करनी चाहिये। गौवें यहां सूर्यकी प्रकाश किरणें हैं ऐसा प्रतीत होता है। उत्तरध्रुवमें प्रकाश किरणें नीचे रहती हैं वे ऊपर जाती हैं। बल अन्धकार होना। उसने प्रकाश किरणें नीचे रखी थीं उनको उदय होनेपर सूर्यदेवने ऊपर लायी यह रूपक अलंकार यहां होगा।

८ यः अश्मनोः अन्तः अग्निं जजान— जिसने पत्थरोंमें अग्नि उत्पन्न किया है। दो पत्थर एक दूसरेपर आघात करनेपर उनसे अग्नि उत्पन्न होता है। दो मेघ आपसमें टकराते हैं तो उनमें विद्युत् अग्नि प्रकट हुए होता है। यह उस पहिले देवका सामर्थ्य है।

९ समरत्नु सपत्नान्— यह पदिका देव समामोंमें शत्रुओंको घेर कर उनका नाश करता है। समामोंमें वीरोंमें यह उत्साह करता है जिस बलसे वीर शत्रुको घेरते और उनका नाश कर सकते हैं ॥ ३ ॥

१० यत इमा विश्वा भुवना कृतानि— जिसने ये सब सूर्य चन्द्र भूमि आदि घूमनेवाले बनाये हैं। इस देवकी शक्तिसे यह सब विश्व नियत गतिसे घूम रहा है।

११ यः दासं वर्णं अधरं गुहा कः— जिसने दासको नीच और गुहा निवासी बनाया है। दास अज्ञानी है इस कारण नीच है। संस्कारहीन होनेके कारण गुहामें रहता है।

१२ विजिगीवान्— आर्यको विजयी बनाया है। यहां आर्य और दास का वर्णन है। आर्य विजयी है और दास नीच होते हैं। आगे बढनेवाले और पीछे रहनेवाले यहां उत्कर्षके कारण जानेवाले गुण हैं।

१३ श्वघ्नी इव लक्षं पुष्टानि आदत्— व्याधके समान अपने लक्ष्यपर मन रखता है और पोषक पदार्थ प्राप्त करता है। यही श्रेष्ठ मनुष्यका स्वभाव है अपने लक्ष्यपर ध्यान रखना और पोषक धन प्राप्त करना। इससे प्रयत्न करनेवाला श्रेष्ठ बनता है विजयी बनता है।

१४ यं घोरं पृच्छन्ति स कुह इति— इस महा भयंकर सामर्थ्यवानके विषयमें पूछते हैं कि यह कहां रहता है। अल्पशक्तिवाले ज्ञानी यह प्रथम प्रश्न पूछते हैं देव कहां रहता है इसीका विचार करते रहते हैं।

१५ उत एनं आहुः एषः न अस्ति इति— कई अविचारी लोग कहते हैं कि यह प्रथम प्रश्न हुआ ऐसा कोई देव है ही नहीं।

१६ अस्मै श्रत् धत्त— इस अधिदेवपर श्रद्धा धारण करो इससे श्रेष्ठता प्राप्त होती है।

१७ स अर्यः— वह श्रेष्ठ होता है जो इस प्रथम देवपर श्रद्धा रखता है वह श्रेष्ठ होता है और—

१८ विज इव पुष्टीः आमिनाति— पक्षीके समान वह पोषक अन्न प्राप्त करता। विज् पक्षी। पक्षी अल्पसे अपने लिये पुष्टिकारक अन्न प्राप्त करता है वैसा श्रद्धावान् मानव अपने लिये पोषणके साधन प्राप्त करेगा ॥ ५ ॥

१९ यः रध्रस्य कृशस्य नाधमानस्य ब्रह्मणः कीरेः चोदिता— जो उपासक कृश प्रार्थना करनेवाले ज्ञानी कविको प्रेरणा करनेवाला है। रध्र - भक्ति करनेवाला निर्धन उपासक। नाधमान- उपासक प्रार्थना करनेवाला। कीरि- स्तोता ऋषि। प्रार्थना, प्रार्थना करनेवाला।

२० सुशिप्रः— उत्तम हनुवाला उत्तम सारा शोभनेवाला।

२१ युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य यः अविता— यह पत्थरोंका संरक्षक। पत्थरोंसे सोमरस निकाल कर जो यज्ञ करता है उसका रक्षक। सोमयज्ञ करनेवालेका रक्षक ॥ ६ ॥

सोमयागमें धर्मसभा होती है और उसमें जनकल्याणके साधनोंका विचार होता है। इस कारण सोमयागका विचार प्रभु करता है। अर्थात् इससे जनसमुदायका कल्याण होता है।

२२ यस्य प्रशिषि ग्रामाः विश्वे रथासः अश्वाः गावः— जिसकी आज्ञामें सब गांव सब घोडे और गौवें रहती हैं। जिसकी आज्ञा सबको माननी पडती है। ऐसा जिसका सामर्थ्य है।

२३ यः सूर्यं उषसं जजान— जिसने उषा और सूर्यको बनाया।

२४ यः अपां नेता— जो जलोंको चलानेवाला है जिसकी आज्ञासे नदियां बह रही है और वृष्टि होती है वह अधिदेव है ॥ ७ ॥

२५ यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते— परस्पर युद्ध करनेवाली सेनाएं जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाती हैं।

२६ परे अवरे उभया अमित्रा (यं विह्वयेते)— श्रेष्ठ और कनिष्ठ दोनों प्रकारके शत्रु जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं।

२७ समानं रथं आतस्थिवांसा नाना हवेते— समान रथपर बैठनेवाले वीर जिसको अपनी सहायताके लिये बुलाते हैं ॥ ८ ॥

२८ यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते— जिसकी सहायता न हुई तो वीर लोगोंको जय प्राप्त नहीं होता।

२९ युध्यमानाः अवसे यं हवन्ते— युद्ध करनेवाले वीर जिसको सहायताके लिये बुलाते हैं।

३० यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव— जो विश्वका आदर्श नमूना हुआ है।

३१ यः अच्युत-च्युत्— जो कभी न हिलनेवालोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है ॥ ९ ॥

३२ यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् जघान— जो बडा भारी पाप करनेवाले अविश्वासी नास्तिकोंको नाश करता है।

३३ यः शर्धते शृध्यां न अनुददाति— जो घमंडीको घमंडको नहीं सहता उसकी घमंड उतार देता है,

३४ यः दस्योः हन्ता — जो दुष्टोंका विनाश करता है ॥ १० ॥

३५ पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं चत्वारिंश्यां शरदि अन्वविन्दत् — पर्वतोंमें रहनेवाले मेघको-शंबरको चालीसवें वर्षमें जिसने प्राप्त किया।

यहां चालीसवें वर्ष मेघको प्राप्त किया इसका तात्पर्य ध्यानमें नहीं आता। विज्ञानकी दृष्टिसे इसकी खोज वैज्ञानिक करें। शंबर का अर्थ मेघ हिम वर्फ आदि प्रसिद्ध है परन्तु इससे यहां कुछ भी बोध नहीं प्राप्त होता है। वैज्ञानिक विज्ञानकी दृष्टिसे इस विषयकी खोज करें।

३६ यः ओजायमानं दानुं शयानं अहिं जघान — बलवान् होनेवाले दानी सोनेवाले अहिको मारा। अहि का अर्थ- सर्प मेघ वक्र शत्रु है। या शत्रु अपना बल बढाता था या बलका इन्द्रने मारा। अहि एक मानव जातीका भी नाम है। अहिके विषयमें भी खोज होनी चाहिये ॥ ११ ॥

३७ यः वज्रेभिः शंबरं पर्वतरात् — जिसने वज्रोंसे शंबरको मारा। यदि शंबर मेघ है तो अनेक वज्र उसके मारनेके लिये विद्युत् काममें आते हैं। (३५ वीं टिप्पणी देखिये।)

३८ यः [illegible] सुतस्य अपिबत् — जो सुन्दर मुखसे सोमरस पीता है।

३९ यस्मिन् गिरौ आस्थाः पचमानं बहुलम् अमूर्छत् — जिस पर्वतके अन्दर बैठकर यज्ञ करनेवाले बहुत शत्रुओंको जिसने बढाया। मूछ्- शक्ति प्राप्त करना बढना ॥ १२ ॥

४० यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत् — जो सात किरणोंवाले बलवान्, सामर्थ्यवान्ने सात नदियोंको बहनेके लिये छोड दिया। सप्तरश्मिः - सूर्य सात किरण जिसमें हैं। (टिप्पणी ६ देखो) सूर्य प्रकाशता है और उसकी गर्मीसे बर्फ पिघलकर नदियां बहती हैं।

४१ यः वज्रबाहुः द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत् — जिस वज्रधारीने द्युलोकपर चढनेवाले सूर्यको स्फुरण बढाया। रौहिण सूर्य ग्रह अग्नि आदि ॥ १३ ॥

४२ द्यावापृथिवी अस्मै चित् नमेते — द्यावा पृथिवी इसके सामने नम्र हैं। इसके सामने शक्तिहीन दीखते हैं।

४३ अस्य शुष्मात् पर्वता भयन्ते — इसके बलसे पर्वत भयभीत होते हैं।

४४ यः सोमपाः वज्रबाहुः वज्रहस्तः निचितः — जो सोमरस पीनेवाला वज्रसमान बाहुवाला वज्र हाथमें लेनेवाला प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

४५ यः सुन्वन्तं पचन्तं शंसन्तं शशमानं अवति — जो याजक पाचक, स्तुति करनेवाले और शान्तका रक्षण करता है।

४६ यस्य ब्रह्म सोमः राधः वर्धनम् — जिसका वर्धमान ज्ञान यज्ञ और हवि वर्धन करते हैं ॥ १५ ॥

४७ मातुः पित्रोः उपस्थे व्यख्यत् — जो प्रकट होते ही मातापिताकी गोदमें दीप्तिमान होता है।

४८ यः भुवः परस्य अवितुः न वेद ? — जो भूमिका और श्रेष्ठ रक्षकका भी नहीं जानता ? अवश्य जानता है।

४९ नः स्तविष्यमाणः यः अस्मत् देवानां व्रता — जिसकी हमारे द्वारा स्तुति होनेपर सब देवोंके व्रतोंको वह परिपूर्ण करता है ॥ १६ ॥

५० सोमकामः हर्यश्वः सूरिः — जो सोमपर प्यार करता है जिसके भूरे रंगके घोडे हैं वह ज्ञानी है। यहां घोडोंके अर्थ किरण लेना उचित है।

५१ यः शंबरं जघान यः शुष्णं — जो शंबरको और शुष्णको मारता है। (टिप्पणी ३५-३७ देखो)

५२ यः एकवीरः — जो एक वीर है ॥ १७ ॥

५३ यः दुध्रः चित् सुन्वते पचते वाजं आदर्दर्षि — जो दुर्धर्ष प्रबल वीर है और यज्ञकर्ता और अन्नदान करनेवालोंके लिये बलपूर्वक अन्न देता है।

५४ सः सत्यः किल असि — वही एक सत्यका रक्षक है। उसे अपयश कभी प्राप्त नहीं होता।

५५ वयं ते विश्वह प्रियासः सुवीरासः विदथं आ वदेम — हम तेरे प्रभुके-सदा प्रिय हों उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त हों और तेरे गीत गाते रहें ॥ १८ ॥

इस सूक्तका विशेष मनन

यह सूक्त 'हे जनासः ! स इन्द्रः' हे लोगो ! वह इन्द्र यह है। इस तरह इन्द्रका स्वरूप बतानेवाला है। इसमें इन्द्रके गुण बताये हैं और इन्द्रका वर्णन भी किया है। इन्द्रका स्वरूप निश्चित करनेमें यह सूक्त बडी सहायता करनेवाला है।

१ पहिला देव इन्द्र है।

मनस्वान् प्रथमः देवः (मं १) बुद्धिमान् प्रथम देव इन्द्र है। सब देवोंमें जो प्रथम प्रकट हुआ वह यह इन्द्र है। इससे पूर्व और कोई देव प्रकट नहीं हुआ। सबके आदिमें

यह देव प्रकट हुआ है इसलिये हम इसको आदिदेव भी कह सकते हैं।

जात एव क्रतुना देवान् पर्यभूषत् (मं १) प्रकट होते ही अपने पुरुषार्थसे अन्य देवोंको उत्पन्न करके उन देवोंको सुभूषित भी इसीने किया। अग्निका तेज, जलमें शान्ति, वायुमें जीवनशक्ति, सूर्यमें तेज, चन्द्रमें आल्हाददायक शान्त और रमणीय प्रकाश रखकर इन देवोंको सुभूषित इस आदि देवने किया है। ये देव इन गुणोंके कारण उपयोगी तथा सुभूषित हुए हैं।

यस्य शुष्मात् नृम्णस्य मह्ना रोदसी अभ्यसेताम् (मं १)— इसके बलसे और पौरुषकी महिमासे द्यु और भूमि अपने अपने कार्य बारबार उसीके नियममें रहकर करते रहते हैं। जैसा कोई किसी विषयका अभ्यास करता है वैसा ये देव अपने अपने कर्मका अभ्यास करते हैं। बारबार वही कर्म करते जाते हैं।

व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत् प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात् (मं २)— प्रथम पृथिवी व्यथा देनेवाली थी आज जैसी शांत है वैसी नहीं थी और पर्वत भी ज्वालामुखी जैसे थे। इस आदि देवने पृथिवीको सुदृढ और शांत बना दी और पर्वतोंको शांती उत्पन्न करके रमणीय बनाया। ऐसा होनेके लिये कितने युग गये होंगे इसका अनुमान विज्ञानवेत्ता ही कर सकते हैं। पर्वत प्रकुपित थे वे रमणीय हुए हैं। यह सब आदि देवने ही बनाया है। ऐसा कोई दूसरा नहीं कर सकता।

अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात् (मं ३)— अहिको मारकर सात सिन्धुको बहाया। नदियां भरकर बहने लगीं। मेघको वृष्टि करके या बर्फको पिघलाकर नदियोंको बहाया।

वलस्य अपधा गाः उदाजत् (मं ३)— वलने छिपाई गौवें उसके बाडेसे हांककर ऊपर लाया। सूर्यकी किरणें ये गायें हैं। उषःकालमें सूर्य किरणें ऊपर आने लगती हैं। तबतक वे नीचे रहती हैं। उत्तर ध्रुव प्रदेशमें यह दृश्य अधिक सुंदर दीखता है। वह मास २ दिनतक रहता है। इस समय प्रकाश किरण और अन्धकारका युद्ध हो रहा है और अन्धेरेको नष्ट करके प्रकाशके किरण बाहर आ रहे हैं। यह एक युद्धसा ही होता है। गायें यहां किरणें हैं।

अश्मनोः अन्तः अग्निं जजान (मं ३)— पत्थरोंमें अग्नि रखा है। दो पत्थर एक दूसरेपर मारनेसे अग्नि उत्पन्न होता है। दो मेघोंमें विद्युत् चमकता है। यह सब आदि देवका सामर्थ्य है।

समत्सु संवृक् (मं ३)— संग्रामोंमें शत्रुनाश करता है। वीरोंके अन्दरका सामर्थ्य इन्द्रसे प्राप्त हुआ सामर्थ्य है। इन्द्र ऐसा करता है।

इमा विश्वा च्यवना कृतानि (मं ४)— ये सब विश्व घूमनेवाले बनाये ये इस आदि देवने ही बनाये हैं। ये सब विश्व अपनी नियत गतिसे घूम रहा है यह आदि देवकी योजनाके अनुसार ही है।

दासं वर्णं गुहा अधरं कः (मं ४)— दासको नीच स्थानमें रहनेवाला बनाया। दास वह है कि जो अपने अज्ञानपनके कारण दासत्वको प्राप्त होता है। इस कारण जो अज्ञानी होता है वह गुहामें रहता है। बडे घर बना कर रहना यह ज्ञानके बिना नहीं हो सकता। इसलिये दासको गुहामें रखा है। जो अज्ञानी होंगे वे नीचे ही रहेंगे।

यः सूर्यं य उषसं जजान, यः अपां नेता (मं ७)— जिसने सूर्य और उषाको बनाया जो जलोंको चलाता है मेघोंको चलाता है।

यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव (मं ९)— जो विश्वके लिये आदर्श नमूना हुआ है। जो 'अच्युतच्युत्' स्थिरोंको भी उखाडकर फेंक देता है ऐसा जो सामर्थ्यवान् है।

यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत् (मं ११)— जो सप्त किरणोंवाला बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसने सात नदियोंको बहनेके लिये छोड दिया। जिसके सामर्थ्यसे ये सात नदियां प्रवाहित हो रही हैं। मानव देहमें दो आंख दो कान दो नाक और एक मुख ये सात इंद्रियां भी सात आत्मशक्तिके प्रवाह हैं। आत्मा बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसमें सात किरण हैं और उससे ये सात प्रवाह चल रहे हैं। **सप्त आपः स्वपतो लोकमीयुः तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥** (यजु ३४।५५)— सात नदियां सोनेके पश्चात् सोनेवाले आत्माके लोकमें जाती हैं उस समय दो देव प्राण और अपान जो इस यज्ञभूमिमें– इस शरीरमें– यज्ञके रक्षणके लिये दिनरात जागते हैं। ऐसा अध्यात्म सात प्रवाहोंका वर्णन आता है वह भी यहां देखने योग्य है। अध्यात्म क्षेत्रमें ये सात ज्ञानशक्तियोंके प्रवाह आत्मिक बलसे चलते हैं।

यः वज्रबाहुः द्यां आरोहन्तं रौहिणं अस्फुरत् (मं ११)— जिस वज्रधारी इन्द्रने द्युलोकपर चढनेवाले सूर्यको स्फुरण दिया है। प्रकाशित किया है।

'द्यावा पृथिवी अस्मै नमेते' (मं १४)— द्युलोक और पृथिवी इस आदि देवके सामने नम्र होकर रहते हैं। तथा 'अस्य शुष्मात् पर्वता भयन्ते' (मं १४)— इस आदि देवके भयसे पर्वत भी भयभीत होते हैं इस प्रकार रहते हैं।

उसपर श्रद्धा रखो

इस तरह इस आदि देवका वर्णन इस सूक्तमें है। इस आदि देवके विषयमें लोग पूछते हैं कि 'यं घोरं पृच्छन्ति स कुह इति' (मं ५) इस भयंकर शक्तिमान आदि देवके विषयमें पूछते हैं कि वह कहां रहता है? ऐसा प्रश्न करना योग्य है, पर इस विषयमें श्रद्धा रखनी चाहिये। 'अस्मै श्रद् धत्त' (मं ५)— इस आदि देवपर श्रद्धा रखिये। श्रद्धा रखनेसे आपका वह भला करेगा। कई नास्तिक कहते हैं कि 'उत ईं आहुः एषः न अस्ति इति' (मं ५)— इस आदि देवके विषयमें कई नास्तिक कहते हैं कि वह है ही नहीं। ऐसी अश्रद्धा रखना योग्य नहीं है क्योंकि वह—

'स रध्रस्य कृशस्य नाधमानस्य ब्रह्मणः कीरेः चोदिता' (मं ६)— वह निर्धन कृश प्रार्थना करनेवाले ज्ञानी कविके लिये उत्तम प्रेरणा देनेवाला है। उसकी प्रेरणाएं जब होती हैं उनको श्रद्धासे सुनना चाहिये।

'स अर्यः' (मं ५), 'जिगीवान्' (मं ४)— वह श्रेष्ठ है और सदा विजयी है। 'विज इव पुष्टीः आ मिनाति' (मं ५)— जैसे जेता अपने लिये पुष्टिकारक धन प्राप्त करता है, उस तरह उसका भक्त उसकी शुभ प्रेरणासे अपनी उन्नतिके साधन प्राप्त करता है। 'श्वघ्नी इव लक्षं पुष्टानि आददत्' (मं ४)— व्याधके समान अपने लक्ष्यका वेध करके इससे वह अपने पोषक धन भरपूर प्राप्त करता है। अपना लक्ष्य ठीक तरह अपने सामने रखना चाहिये और उसे प्राप्त करना चाहिये।

'यः अविता' (मं ६)— सबका संरक्षक है यज्ञकर्ताका वह अवश्य संरक्षण करता है। इसलिये 'यस्य प्रदिशि ग्रामाः विश्वे रथासः अश्वासः गावः' (मं ७)— उसके आदेशमें सब गांव रथ घोडे और गौवें अर्थात् संपूर्ण विश्व रहता है। इसीलिये 'यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते' (मं ८)— दोनों युद्धमान सेनाएं अपनी सहायतार्थ इसको बुलाती हैं तथा 'परे अवरे अमित्राः (यं विह्वयन्ते)' (मं ८)— दूरके और पासके शत्रु जिसको अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं। 'समानं चित् रथं आतस्थिवांसा नाना हवन्ते' (मं ८)— समान रथपर बैठनेवाले नाना प्रकारके वीर युद्धमें सहायार्थ जिसको बुलाते हैं। 'युध्यमानाः यं अवसे हवन्ते' (मं. ९)— युद्ध करनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके लिये जिसकी प्रार्थना करते हैं। 'यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते' (मं ९)— जिसकी सहायता न मिली तो युद्धमें वीर विजयी नहीं होते। ऐसा यह आदिम देवका सामर्थ्य है। इस कारण उसपर विश्वास रखना योग्य है।

पापीयोंको वह मारता है

'यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् जघान' (मं १०)— जो बलवान् हमेशा पापी आचरण करनेवालोंको और अविश्वासियोंको मारता है। 'शर्धते शृध्यां न अनु ददाति' (मं १०)— घमंडीका घमंड नहीं सहता घमंड उतार देता है। 'यः दस्योः हन्ता' (मं १०)— दुष्टोंका विनाशक है।

'शंबरं अन्वविन्दत्, अहिं जघान' (मं ११); 'शंबरं पर्वतेषु' (मं १२)— शंबर और अहिको इसने मारा। इस तरह दुष्टोंको भी मारता है।

'अस्य ब्रह्म सोमः राधः वर्धनं' (मं १५)— इसका ज्ञान यज्ञ और हवि संवर्धन करते हैं यानी इसके भक्तको बढाते हैं। 'स्तविष्यमाणः यः अस्माकं देवानां भक्ता' (मं १६)— हमारे द्वारा स्तुति हुई तो हमारे अन्दरके सब देवोंके अंशोंका पालन वह करता है। हमारे देहमें जो देव हैं उनसे हमारी उन्नतिमें आवश्यक सहायता प्राप्त होती है और उससे हमारी निःसंदेह उन्नति होती है। यह आदि देव 'स सत्यः किल असि' (मं १८)— वह सच्चा निःसंदेह है। इस कारण 'वयं ते विश्वहा प्रियासः सुवीरासः विदथं आ वदेम' (मं १८)— हम सब सर्वदा तेरे लिये प्रिय होकर रहेंगे और उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंके साथ तुम्हारे ही गीत गाते रहेंगे।

इस आदि देवकी भक्ति करिये। इस तरह इस सूक्तमें इस आदि देवका वर्णन मनन करने योग्य है।

• (अथर्व भाष्य काण्ड २)

यह देव प्रकट हुआ है इसलिये हम इसको आदिदेव भी कह सकते हैं।

स्वात एष क्रतुना देवान् पर्यभूषत् (मं १)— प्रकट होते ही अपने पुरुषार्थसे अन्य देवोंको उत्पन्न करके उन देवोंको सुभूषित भी इसीने किया अग्निमें तेज वायुमें जीवनशक्ति सूर्यमें तेज चन्द्रमें आल्हाददायक शान्त और रमणीय प्रकाश रखकर इन देवोंको सुभूषित इस आदि देवने किया है। ये देव इन गुणोंके कारण उपयोगी तथा सुभूषित हुए हैं।

यस्य शुष्मात् शुष्मस्य महा रोदसी अभ्यसेताम् (मं १)— इसके बलसे और पौरुषकी महिमासे द्यु और भूमि अपने अपने कार्य वारंवार उसीके नियममें रहकर करते रहते हैं। जैसा कोई किसी विषयका अभ्यास करता है वैसा ये देव अपने अपने कार्यका अभ्यास करते हैं। वारंवार वही कार्य करते जाते हैं।

व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत् प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात् (मं १)— प्रथम पृथिवी व्यथा देनेवाली थी आज जैसी शांत है वैसी नहीं थी और पर्वत भी ज्वालामुखी जैसे थे। इस आदि देवने पृथिवीको सुदृढ और शांत बना दी और पर्वतोंको शांत स्वरूप करके रमणीय बनाया। ऐसा होनेके लिये कितने वर्ष गये होंगे इसका अनुमान विज्ञानवेत्ता ही कर सकते हैं। पर्वत प्रकुपित थे वे रमणीय हुए हैं। यह सब आदि देवने ही बनाया है। ऐसा कोई दूसरा नहीं कर सकता।

अहिं हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात् (मं ३)— अहिको मारकर सात सिन्धुओंको महापूर बहाया। नदियां भरकर बहने लगीं। मेघकी वृष्टि करके या बर्फको पिघलाकर नदियोंको बहाया।

वलस्य अपधा गा उदाजत् (मं ३)— वलके छिपाई गौवें उसके बाडेको तोडकर ऊपर लाया। सूर्यकी किरणें ये गायें हैं। ध्रुवप्रदेशमें सूर्य किरणें ऊपर आने लगती हैं। अन्य समय वे नीचे रहती हैं। उत्तर ध्रुव प्रदेशमें यह दृश्य अधिक सुंदर दीखता है। वह प्रायः ३ दिनतक रहता है। इस समय प्रकाश किरण और अन्धकारका युद्ध हो रहा है और अन्धेरको नष्ट करके प्रकाशके किरण बाहर आ रहे हैं। यह एक युद्धसा ही दीखता है। गौवें यहां किरणें हैं।

अश्मनः अन्तः अग्निं जजान (मं ३)— पत्थरोंसे अग्नि होता है। दो पत्थर एक दूसरेपर मारनेसे अग्नि उत्पन्न होता है। दो मेघोंमें विद्युत् भी चमकता है। यह सब आदि देवका आश्चर्य है।

समत्सु संवृक् (मं ३)— संग्रामोंमें शत्रु करता है। वीरोंके अन्दरका सामर्थ्य इससे प्राप्त हुआ है। इन्द्र ऐसा करता है।

इमा विश्वा च्यवना कृतानि (मं ४)— विश्व घूमनेवाले बनाये ये इस आदि देवने ही बनाये हैं सब विश्व अपने नियत गतिसे घूम रहा है यह आदि योजनाके अनुसार ही है।

दासं वर्णं गुहा अधरं कः (मं ४)— नीच स्थानमें रहनेवाला बनाया। दास वह है कि जो अज्ञानके कारण गुलामी प्राप्त होता है। इस कारण जो होता है वह गुहामें रहता है। वहां पर बना रह ज्ञानके बिना नहीं हो सकता। इसलिये दासको र रखा है। जो अज्ञानी होंगे वे नीचे ही रहेंगे।

यः सूर्यं उषसं जजान यः अपां नेता जिसने सूर्य और उषाको बनाया जो जलोंको चलाने वालोंको चलाता है।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव (मं ... जिसके लिये आदर्श नमूना हुआ है। जो अच्युत स्थिरोंको भी हिलाकर फेंक देता है, ऐसा जो ...

यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् ... सर्तवे सप्त सिन्धून् (मं ११)— जो ... बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसने सात नदियोंको छोड दिया। जिसके सामर्थ्यसे ये सात नदियां बह रही हैं। मानव देहमें दो आंख दो कान दो नाक त्वचा ये सात इंद्रियां भी सात आत्मशक्तिके ... बलवान् और सामर्थ्यवान् है उसमें सात ... ये सात प्रवाह चल रहे हैं। सप्त ... रक्षन्ति सदम् अप्रमादम् ... (यजु. ३४।५५)— सात नदियां ... अभ्यासके क्षेत्रमें जाती हैं उस समय ... जो इस यज्ञभूमिमें— इस शरीरमें जाग्रत हैं। ऐसा अन्यत्र सात ... यहां देखने योग्य है। आध्यात्म ... प्रवाह आत्मिक बलसे च...

'यो वज्रबाहुः ... (मं ११)— जि... सूर्यको स्फुरण ...

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥
अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

(कियेधाः ईशानः) अनेक भूमियोंमें रहनेवाले ईश्वर इन्द्रने (येन तूतुजानः तुजान्) जिस वज्रको फेंकनेके समय (वृत्रस्य मर्म विदत्) वृत्रका मर्मस्थान पहचाना था ॥ ६ ॥ (ऋ. १।६१।६)

(अस्य इत् उ मातुः सवनेषु) इसके माताके यज्ञोंमें (सद्यः) तत्काल ही (महः पितुं पपिवान्) बडे सोम रसको इसने पीया और (चारु अन्ना) उत्तम अन्न खावे । (सहीयान् विष्णुः) बलिष्ठ विष्णुने (पचतं मुषायत्) पकनेवालेको चुरा लिया (अद्रिं अस्ता) वज्रको फेंकनेवालेने (वराहं तिरो विध्यत्) वराहको-मेघको बीचमें बींधा ॥ ७ ॥ (ऋ. १।६१।७)

(अस्मै इत् उ इन्द्राय) इसी इन्द्रके लिये (देवपत्नीः ग्नाः चित्) देवपत्नी स्त्रियोंने भी (अहिहत्ये अर्कं ऊवुः) अहिका वध करनेके समयमें मंत्र बोले । (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोकपर (उर्वी परि जभ्रे) इसने बडा प्रहार किया (ते अस्य महिमानं न परि स्तः) ये दोनों लोक इसकी महिमाको घेर सकते नहीं ॥ ८ ॥ (ऋ. १।६१।८)

(अस्य इत् एव महित्वं) इसकी महिमा (दिवः पृथिव्याः अन्तरिक्षात्) द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्षसे भी (परि प्र रिरिचे) बढ गई है । (विश्वगूर्तः स्वराट् इन्द्रः) सबके द्वारा स्तुति किया हुआ यह स्वराट् इन्द्र (दमे) अपने घरमें (स्वरिः अमत्रः) शक्तिमान और सामर्थ्यवान् होकर (रणाय आ ववक्षे) युद्धके लिये तैयार रहता है ॥ ९ ॥ (ऋ. १।६१।९)

(अस्य इत् एव शवसा) इसके अपने बलसे (वज्रेण) वज्रसे (शुषन्तं वृत्रं) जलते हुए वृत्रके (इन्द्रः वि वृश्चत्) इन्द्रने टुकडे कर डाले । (व्राणाः गाः न) रोकी हुई गौओंकी जैसे मुक्ति करते हैं उस तरह (सचेताः दावने) चेतनेमें चतुर वह इन्द्रने (श्रवः) यशके लिये (अवनीः अभि अमुञ्चत्) नदियोंको बहाया ॥ १० ॥ (ऋ. १।६१।१०)

(अस्य इत् उ त्वेषसा) इसीके बलसे (सिन्धवः रन्त) नदियां रमणीय बनीं (यत् वज्रेण सीं परि अयच्छत्) जब वज्रसे उनकी चारोंओरसे मर्यादा बनाई । (ईशानकृत्) राजाओंको बनानेवाले (दाशुषे दशस्यन्) दाताको धन देनेवाले (तुर्वणिः) त्वरासे कार्य करनेवाले इन्द्रने (तुर्वीतये गाधं कः) तुर्वीतिके लिये जलको गाध बनाया ॥ ११ ॥ (ऋ. १।६१।११)

(ईशानः कियेधाः) स्वामी और बलवान (तूतुजानः) त्वरा करनेवाला तू इन्द्र (अस्मै इत् उ वृत्राय) इसी वृत्रके ऊपर (वज्रं प्र भर) वज्रका प्रहार कर । (गोः न पर्व) गायके पर्वोंकी तरह (अपां चरध्यै)

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥ (११)

शत्रुओंके मारनेके लिये (शत्रोः इष्यन्) शत्रुओंको इच्छा करता हुआ तू (तिरश्चा वि वृक्ष) शत्रुके तिरछा ऊपर मार ॥ १२ ॥ (ऋ. १।६१।१२)

(अस्य तुरस्य इत् उ) इस त्वरासे कार्य करनेवाले इन्द्रके (पूर्व्याणि कर्माणि) पूर्व समयके वीरताके कर्मोंकी (प्र ब्रूहि) स्तुति कर और (उक्थैः नव्यः) स्तोत्रोंसे स्तुति करने योग्य है । (युधे यत् इष्णानः) युद्धमें जब इच्छा करता है तब (आयुधानि ऋघायमाणः) शस्त्रोंको प्रेरित करता है तब वह (शत्रून् नि रिणाति) शत्रुओंको नीचे गिराता है ॥ १३ ॥ (ऋ. १।६१।१३)

(अस्य इत् उ भिया) इसके भयसे (गिरयः च दृळ्हाः) पर्वत दृढ हुए और (द्यावा च भूमा) द्युलोक और भूलोक ये (जनुषः तुजेते) जन्मसे ही कांपते रहे हैं । (वेनस्य ओणिं) इस स्तुतियोग्यकी रक्षाशक्तिकी (उप उ जोगुवानः) स्तुति करनेवाला (नोधाः सद्यः वीर्याय भुवत्) स्तोता तत्काल वीरताके कर्म करनेके लिये योग्य हुआ ॥ १४ ॥ (ऋ. १।६१।१४)

(अस्मै इत् उ) इसके लिये ही (त्यत् अनु दायि) इसमें यह एक स्तोत्र दिया गया गाया गया । (भूरेः एकः ईशानः यत् वव्ने) बहुत धनके एक स्वामी इन्द्रने याचना सुनी स्वीकारा । (इन्द्रः) इन्द्रने (सुष्विं एतशं) उत्तम रसको निकालनेवाले एतशको (प्र आवत्) रक्षा की (सौवश्व्ये सूर्ये पस्पृधानं) जब अपनी वेगवान सूर्यसे स्पर्धा कर रहा था ॥ १५ ॥ (ऋ. १।६१।१५)

६ (हारियोजन इन्द्र) घोडोंको जोतनेवाले इन्द्र ! (गोतमासः ते एव सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन्) गौतमोंने तेरे लिये ही उत्तम भावकी प्रार्थनाएं की हैं । (एषु विश्वपेशसं धियं आधाः) इनमें सब प्रकारकी अच्छी बुद्धि धारण कर । (धियावसुः प्रातः मक्षु आजगम्यात्) बुद्धिसे बसनेवाला इन्द्र प्रातःकाल शीघ्र ही आ जाय ॥ १६ ॥ (ऋ. १।६१।१६)

इस सूक्तमें इन्द्रका वर्णन इन शब्दोंसे हुआ है—

१ तवसे तुराय महिनाय ऋचीषमाय अध्रिगवे इन्द्राय शंतमा ब्रह्माणि प्र हर्मि (मं. १)— बलवान त्वरा करनेवाले महिमायुक्त मंत्रोंकी चाहनेवाले, आगे बढनेवाले इन्द्रके लिये हम स्तोत्र करते हैं ।

२ अस्मै प्रयः अस्मै इन्द्राय वाचे सुवृक्ति आंगूषं प्र भरामि (मं. २)— प्राचीन कालसे ऐसे इन्द्रके लिये बुरे विचार दूर करनेके लिये स्तोत्र करता हूं । इस स्तोत्रके पढने पाठकके मनमें रहनेवाले सब बुरे विचार दूर हो जाते हैं और अच्छे विचार उसके मनमें आ जाते हैं । वेदके मंत्रोंमें इस तरह विचारोंको परिमार्जित करनेकी शक्ति है ।

३ हृदा मनसा मनीषा धियः अञ्जयन्त (मं. ३) हृदय मन मनकी इच्छा और बुद्धियोंको वे स्तोता परिशुद्ध करते हैं ।

४ मनीषा मंहिष्ठं सूरिं सुवृक्तिभिः [illegible] वावृधध्यै (मं. ४)— बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विद्वान् बुरे दुःखोंको दूर करनेवाले वचनोंसे हम बढाते हैं । यह स्तोत्र हमारे दुःखोंको दूर करता है और हमारे अन्दर अच्छे भाव उत्पन्न कर सकता है ।

५ तष्टा रथं तरिसनाय म (मं. ५)— सुथार जैसा अपने स्वामीके लिये रथ बनाता है उस तरह हम ([illegible]

हसे मेधिराय इन्द्राय सुवृक्ति विश्वं इन्द्र स्तोमं गिरः स हिनोमि)— स्तुतियोग्य बुद्धिमान् इन्द्रके लिये उत्तम वचनोंवाला सुख देनेवाला स्तोत्र हम अपनी भाषामें बोलते हैं। ईशस्तुतिका स्तोत्र मनुष्यमें विचारोंकी शुद्धता करता है, इसलिये उसके पाठसे मनुष्यका लाभ होता है।

६ वीरं दानौकसं गूर्तश्रवसं पुरां दर्माणं वन्दध्यै अर्कं जुह्वा समञ्जे (मं ५)— वीर दानी यशस्वी शत्रुके नगरोंका तोडनेवाले इन्द्रकी वन्दना करनेके लिये स्तोत्र हम अपनी जिह्वासे बोलते हैं। ऐसे सूक्त बोलनेसे हमारेमें सच्ची वीरता आती है।

७ कियेधाः ईशानः तुजता तुजन् वृत्रस्य मर्म विदत् (मं ६)— अनेक स्थानोंमें रहनेवाला इन्द्र वज्रको शत्रुपर फेंकनेके समय उसका मर्मस्थान जानता है और उस मर्मस्थानपर अपना वज्र फेंकता है। इसी तरह शत्रुके मर्मस्थानपर ही वीर अपना शस्त्र फेंके। शत्रुको मारनेकी यह विद्या है।

८ अद्रिं अस्ता वराहं तिरो विध्यत् (मं ७)— वज्र फेंकनेवाला इन्द्र वराहरूपी शत्रुपर तिरछा वज्र फेंकता है। वराह (वर+आहर)— उदक के लानेवाला मेघ। शत्रु। शत्रुपर अपने शस्त्रास्त्र योग्य रीतिसे फेंकने चाहिये।

९ ते द्यावा पृथिवी अस्य महिमानं न परि स्तः (मं ८)— द्युलोक तथा भूलोक इस प्रभुकी महिमाको घेर नहीं सकते। इसकी महिमा द्यावा पृथिवीसे अधिक बडी है।

१० अस्य महित्वं दिवः अन्तरिक्षात् पृथिव्याः परि प्र रिरिचे—(मं ९) इस प्रभुकी महिमा द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवीसे बडी है।

११ शवसा इन्द्रः वज्रेण वृत्रं विवृश्चत् अवनीः अमुञ्चत् (मं १०)— बलसे इन्द्रने वज्रसे वृत्रको काटा और अपना भाग जलप्रवाहोंके रूपसे पृथ्वी पर छोडा।

मेघोंको विनष्ट किया और वृष्टि द्वारा नदियां बहने लगीं। यहां प्रमुख यह है। मेघके युद्धसे युद्ध करनेकी रीति बताई है।

११ अस्य त्वेषसा सिन्धवः रन्त (मं ११)— इसके बलसे नदियां बहने लगीं।

१३ ईशानकृत् दाशुषे दशस्यन् तुर्वणिः तुर्वीतये गाधं कः (मं ११)— दाताओंको बनानेवाला प्रभु दाताको धन देता है त्वरासे कार्य करनेवालेके लिये पार जाने लायक जलप्रवाह बनाता है। अर्थात् पुरुषार्थ करनेवालेके लिये सर्वत्र सुगम मार्ग होता रहता है।

१४ अस्य तुरस्य पूर्व्याणि कर्माणि प्र ब्रूहि (मं १३)— इस त्वरासे कार्य करनेवाले इसके पूर्व कर्मोंका वर्णन कर।

१५ युधे इष्णानः आयुधानि ऋघायमाणः शत्रून् नि रिणाति (मं १३)— युद्धकी इच्छा करनेवाला वीर आयुधोंको शत्रुपर फेंकता हुआ शत्रुओंको गिराता है। युद्ध ऐसे करने चाहिये।

१६ वेनस्य ओणिं उप जोगुवानः नोधाः सद्यः वीर्याय भुवत् (मं. १४)— प्रशंसनीय वीरकी संरक्षण शक्तिका वर्णन करनेवाला कवि उसके स्तोत्र गानसे तत्काल वीरताके कर्म करनेके लिये योग्य होता है। वीर इन्द्रके काव्यका यह प्रभाव है कि जो यह काव्य पढेगा वह स्वयं वीर बनकर वीरोचित काम करने लगेगा।

१७ इन्द्रः सुष्विं सौवश्व्ये प्र आवत् (मं. १५)— इन्द्र यज्ञकर्ताकी सुरक्षा करता है। वह यज्ञकर्ता सौवश्व्ये सूर्यं पस्पृधानः (मं १५)— सूर्यके साथ स्पर्धा करता है। सूर्य जैसा नियमानुसार सब कार्य करता है वैसा जो कार्य करेगा उसकी सुरक्षा प्रभु अवश्य करेगा। सूर्य हमारा आदर्श है।

१८ गोतमासः ते सुवृक्ति ब्रह्माणि अक्रन् (मं १६)— गोतमोंने तेरी उत्तम भावनावाले स्तोत्र किये हैं। इनके पाठसे पढनेवालेके मनमें उत्तम भाव स्थिर होते हैं और वह पाठक श्रेष्ठ बनता है। इस तरह मंत्रपाठ मनुष्यको श्रेष्ठ बनानेवाला है।

१९ एषु विश्वपेशसं धियं धाः (मं १६)— इन मंत्रोंमें अपनी सब कार्य करनेवाली बुद्धिको स्थिर रख। इससे मानव उन्नतिको प्राप्त होगा।

२० धियावसुः प्रातः मक्षु आजगम्यात् (मं १६)— बुद्धियोंके साथ बसनेवाला प्रातः जल्दी उठे और काम करनेके लिये आवे। कर्म शुरू करे। प्रातःकाल जल्दी उठकर अपने कार्यमें लगना चाहिये।

इस सूक्तमें अनेक बोध दिये हैं। पाठक उनको अपने जीवनमें धारण करें

स वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

(स्वोजाः) अपनी शक्तिसे बलवान् (विराप्शिन्) महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र ! तूने (मन्युना चित् वीळिता दृळ्हा) न हिलनेवाली बलवाली और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) धर्षक शक्तिसे भग्न किया तोड डाला ॥ ६ ॥

१ हे स्व-तवः ! मनोजुवा पर्वतेन वयसा वाधानं त्वं वि वृश्चः— हे निज सामर्थ्यवान् इन्द्र ! मनके समान अत्यन्त वेगसे शत्रुपर प्रहार करनेवाले पर्ववान् वज्रसे अपने बलके कारण बढनेवाले उस शत्रुको तुमने नाश किया ।

स्व-तवः अपने निज सामर्थ्यसे युक्त । पर्वत — (पर्ववान्) जिसमें पर्व हैं ऐसा वज्र जिसमें गांठें और तथा धाराएँ अनेक होती हैं वह वज्र । धारावाला वज्र ।

१ हे स्वोजः विराप्शिन् ! मन्युना वीळिता दृळ्हा धृषता विरुजः— हे अपने बलसे बलवान् और महाप्रतापी इन्द्र ! न हिलनेवाले सुस्थिर बलवान् और सुदृढ शत्रुके नागरिक वीरोंको अपने धर्षक सामर्थ्यसे तुमने तोड दिये ।

इस मन्त्रमें युद्धनीति कही है । शत्रुको अतितीक्ष्ण शस्त्रसे मारना योग्य है । तथा शत्रुके नागरिकोंको भी तोडना तथा अपने आधीन करना उचित है । इस मंत्रके पद वीरकी शक्तिका वर्णन करनेवाले हैं ।

(नव्यस्या धिया) इस नयी बुद्धिपूर्वक की गई स्तुतिके द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं वः त) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिके अनुसार और बढकर विस्तार करनेके लिये मैं प्रयत्न करता हूं । इससे सुन्दर (अनिमानः सुवह्मा) अपार महिमावाला सुन्दर वाहनवाला (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे ॥ ७ ॥

१ नव्यसा धिया तं शविष्ठं प्रत्नं वः प्रत्नवत् परितंसयध्यै— नयी और बुद्धियुक्त स्तुति इस स्तोत्रसे उस बलवान् पुरातनपुरुष इन्द्रका प्राचीनों जैसा यश फैलानेके लिये मैं प्रयत्न करता हूं ।

२ इस स्तोत्रका सुनकर अनिमानः सुवह्मा सः इन्द्रः विश्वानि दुर्गहाणि नः अति वक्षत् — अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें बचाकर पार ले जावे ।

हे इन्द्र ! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंका द्रोह करनेवाले दुष्टोंके हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त करो । हे (वृषन्) बलवान् देव ! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपाओ । (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंको दग्ध करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपाओ ॥ ८ ॥

दुष्ट जहां होंगे वहांसे उनको हटानेका प्रयत्न करना चाहिये । और उनको पीडित करना चाहिये जिससे वे वहां न रहें ।

(त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) दीप्तिमान् जरारहित इन्द्र ! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य लोगोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीपरके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है । (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दाहिने हाथमें वज्रको धारण कर । और (विश्वाः मायाः वि दयसे) सब दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजयुक्त दीखनेवाला जरा-क्षय आदि रहित इन्द्र है ।

२ दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका तू ही राजा हुआ है ।

३ दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व— अपने दाहिने हाथमें वज्र धारण कर और अपने—

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥ (१४१)

[सूक्त ३७]

(ऋषिः — १-११ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥

---

४ विश्वाः मायाः वि वृषसे— शत्रुके सब कपट कर्मोंका नाश कर ।

यह मंत्र राज्यशासनका उपदेश कर रहा है । अपने पास शस्त्रास्त्रोंका सुयोग्य संग्रह करना और शत्रुके कपट प्रयोगोंको दूर करना चाहिये ।

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (शत्रु-तूर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी अविनाशी (संयतं स्वस्तिं) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे । हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र ! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहजहीसे नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतूर्याय बृहतीं अमृध्रां संयतं स्वस्तिं नः आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल अविनाशी स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे दो ।

२ यया दासानि आर्याणि करः— जिससे दासोंको आर्य किये जाते हैं । दास — दास सेवक दस्यु शूद्र । इनको श्रेष्ठ आर्य नागरिक बनाया जाता है । राज्यशासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था ऐसी चाहिये कि जिससे शूद्र मनुष्य श्रेष्ठ आर्य नागरिक बन जाय ।

३ नाहुषा वृत्रा सुतुका— मानवोंको घेरनेवाले शत्रु दूर किये जाँय । वे फिरसे मनुष्योंको कष्ट न दे सकें ऐसी अवस्थामें वे पहुंचाये जांय ।

शूद्रोंको आर्य बनानेका भाव यहां है वह मनन करने योग्य है । प्रथम यह प्रयत्न किया जाय । उसमें यश न मिला तो शूद्रोंको दण्ड देना योग्य है ।

हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र ! (सः) तू (विश्ववाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आओ । (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता (आभिः तूयं आ) उन घोडोंसे शीघ्र ही (मद्र्यद्रिक् आ याहि) मेरे पास आओ ॥ ११ ॥

रथके घोडे अच्छे हों । उत्तम शिक्षित हों जिससे उनकी उत्तम प्रशंसा होती रहे ।

(सूक्त ३७)

(यः तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है । (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है वह (सुष्वितराय वेदः प्रयन्ता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।१९।१)

मानवधर्म— वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान् और भयंकर हो । वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे । कोई शत्रु अपने स्थानपर स्थिर न रह सके । कंजूस तथा अनुदार लोगोंके स्थान भी स्थिर न हों । ऐसे लोग राष्ट्रमें बलवान् न होने पावें । जो यज्ञ करता है और दान देता है उसको पर्याप्त धन प्राप्त हो ।

१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति— अकेला वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे हटा देता है ।

[सूक्त ३६]

(ऋषिः — भरद्वाजः। देवता — इन्द्रः।)

(ऋ. ६।२२।१-३)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १ ॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २ ॥

तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥ ३ ॥

(सूक्त ३६)

(यः इन्द्रः) जो इन्द्र (एक इत् आभिः गीर्भिः हव्यः) एक ही निश्चयसे इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है। (तं इन्द्रं अभ्यर्चे) उस इन्द्रकी अर्चना करता हूं। (यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः) जो बल देनेवाला स्वयं बलवान् और सत्यनिष्ठ है और (सत्वा पुरुमायः सहस्वान् पत्यते) अपने बलसे अनेक कौशल्यसे कर्म करने वाला और शत्रुओंका पराभव करनेवाला है उस इन्द्रकी स्तुति की जाती है ॥ १ ॥

१ एकः इन्द्रः इत् आभिः गीर्भिः हव्यः— एक ही प्रभु इन स्तुतियोंसे प्रार्थना करने योग्य है।

२ तं इन्द्रं अभ्यर्चे— उस इन्द्रकी मैं अर्चना करता हूं।

३ यः वृषभः वृष्ण्यावान् सत्यः— वही अद्वितीय बलवान् तथा सामर्थ्यवाला है और वही सत्य है।

४ सत्वा पुरु-मायः सहस्वान् पत्यते— वह बल वान् अनेक कौशल्योंसे युक्त, शत्रुका पराभव करनेवाला होनेके कारण वही सबका स्वामी हुआ है। वही स्तुति करने योग्य है।

मनुष्य बलवान्, सामर्थ्यवान्, सत्यनिष्ठ, सत्त्ववान् तथा अनेक कौशल्यके कार्य करनेवाला बने।

(पूर्वे नव-ग्वाः) पुरातन नव महिनेका यज्ञ करनेवाले (सप्त विप्रासः) सात बुद्धिमान् ज्ञानी (वाजयन्तः) हविष्यान्न सिद्ध करनेवाले (नः पितरः) हमारे पितरोंने (नक्षत्-दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठां) शत्रुनाशक तारक और पर्वतपर रहनेवाले (अद्रोघ-वाचं शविष्ठं तं उ) द्रोह रहित भाषण करनेवाले अतिशय बलवान् ऐसे उस इन्द्रकी (मतिभिः अभि) बुद्धिपूर्वक स्तुति की थी ॥ २ ॥

नक्षत्-दाभ आक्रमणकारी शत्रुके दबानेवाला। ततुरिः - तारक तारनेवाला। अ-द्रोह-वाच् - द्रोहरहित भाषण करनेवाला। नव ग्वाः - नौ गौवें जिसके पास हैं, नौ मास तक यज्ञ करनेवाला। नौ मासका हिसाब ऐसा है- १ मास पूर्व प्रकाशके और प्रारंभिक तथा और अन्तिम सायंकालके प्रकाशके १ मास मिलकर प्रकाशके १ महिने उत्तर ध्रुवके पास होते हैं। १ मास पूर्व मिलके हैं और १ महिने उषःप्रकाश तथा सायं प्रकाशके मिलकर १ इसीसे यज्ञ करनेके समझनेवाले नव-ग्व कहलाते थे। इसी तरह दश-ग्व भी थे जो दस मास यज्ञ करते थे। अर्थात् ये एक मास और एक मास किंचित् प्रकाशका स्वीकार करते थे। और दस मास यज्ञ करते थे। नव-ग्व और दश-ग्व ये दो पक्ष थे यज्ञ विधिके संबंधमें। प्रकाशकी संभावना इस परिवर्तक ही थी। इसके पश्चात् पूरे दो मास दीर्घतम-रात्र अन्धकार रहता था। इस कालमें पानीका प्रवाह बंद होना, बर्फसे भूमि आच्छादित होना आदि कष्ट होता था। वह आतुर समय था। वह अयज्ञीय समय था। इस समय गौएं बाडेमें बंद रहती थीं। तब प्रकाशके आनेके साथ गौएं खुली की जाती थीं। गौएं इसी समय छुडायी जाती थीं जिसको रात्रकर्मकर्ता गौवोंके छुडाना कहते थे। ये सब बातें मन्त्रोंमें पाठक देख सकते हैं। नव ग्वः - नौ गौवें जिसके पास हैं, दश-ग्व - दस गौवें जिसके पास हैं।

'नक्षत्-दाभं ततुरिं पर्वते स्थां अद्रोघवाचं शविष्ठं तं मतिभिः अभि अर्च— शत्रुका दबानेवाले तारक पर्वतपर रहनेवाले द्रोहरहित भाषण करनेवाले बलिष्ठ उस वीरकी बुद्धिपूर्वक उपासना कर। ऐसे वीरका सत्कार करना चाहिये।

(पुरु वीरस्य नृ-वतः पुरु क्षोः अस्य) बहुत वीरोंसे युक्त, बहुत नायकोंसे युक्त बहुत अन्नसे युक्त इस (रायः) धनको (तं इन्द्रं ईमहे) उस इन्द्रके पास हम

तक्षो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४ ॥
तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥
अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६ ॥

मांगते हैं। हे (हरिवः) अश्वयुक्त इन्द्र! (यः अस्कृधोयुः अजरः स्वर्वान्) जो धन अविनाशी क्षीण न होनेवाला और सुख देनेवाला है। (तं मादयध्यै आ भर) वह धन हमें हर्षोत्पादनके लिये भरपूर भर दे ॥ ३ ॥

१ तं इन्द्रं पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः अस्य रायः ईमहे— उस प्रभुके पास हम ऐसा मांगते हैं कि जिसके साथ बहुत वीर रक्षणके लिये रहते हों जो अनेक सहायकोंको अपने पास रखता है और जिसके साथ पर्याप्त अन्न होता है अर्थात् हमें धन चाहिये अन्न चाहिये सहायक चाहिये और इनके संरक्षणके लिये संरक्षक वीर भी चाहिये।

२ वह धन (अ-स्कृधोयुः) विनष्ट न होनेवाला, (अ-जरः) क्षीण न होनेवाला और (स्वः-वान्) सुख बढानेवाला हो। इस धनसे (मादयध्यै) हमारा आनन्द बढता जाय। हमें किसी तरह दुःख न हो। ऐसा धन हमें चाहिये।

हे (इन्द्र) इन्द्र! (यदि ते जरितारः पुरा चित्) जो तेरे स्तोताओंने पहिले समयमें (सुम्नं आनशुः) सुख प्राप्त किया था (तत् नः वि वोचः) तो वह सुखका मार्ग हमें बताओ। हे (दुध्र) दुर्धर! (खिद्वः) शत्रुओंका नाश करनेवाले (पुरु-हूत) बहुतोंसे बुलाये जानेवाले (पुरु-वसो) बहुत ऐश्वर्यवाले इन्द्र! (असुर-घ्नः ते) असुरोंका नाश करनेवाला तेरा (कः भागः वयः किं) यज्ञभागका कौनसा भाग है तथा सामर्थ्यका भाग भी कौनसा है। यह भी कहो ॥ ४ ॥

१ ते जरितारः सुम्नं आनशुः— तेरे स्तोतागण उत्तम मन प्राप्त करते हैं। प्रभुकी स्तुति गानेसे शोभन विचार वाला मन होता है।

२ दुध्र खिद्-वः पुरु-हूत पुरु-वसो! असुर-घ्नः ते कः भागः? — शत्रुके लिये असह्य शत्रुनाशक, बहुतोंसे प्रशंसित, बहुत धनवाले वीर! तेरे पास जो असुरोंका नाश करनेवाला सामर्थ्यका भाग है वह कौनसा है? तुम जिस सामर्थ्यसे असुरोंका नाश करते हैं वह तुम्हारा सामर्थ्य कौनसा है?

३ ते वयः किं? — तेरी आयु क्या थी तेरा सामर्थ्य कौन-सा था जिससे तुम शत्रुका नाश करते हो?

मनुष्य अपना मन शुभ विचारवाला करे शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य प्राप्त करे बहुत धन कमावे असुरोंका नाश करे।

(वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं) हाथमें वज्र धारण करनेवाले रथारूढ बहुत शत्रुओंको पकडनेवाले बहुत कर्म करनेवाले बल देनेवाले उस इन्द्रकी (पृच्छन्ती वेपी) अर्चना करनेवाली यज्ञादि कर्म करनेवाली (वक्वरी गीः) गुणोंका वर्णन करनेवाली इस प्रकार स्तुति (यस्य) जिस यजमानकी होती है। वह (गातुं इषे) सुखको प्राप्त होता है और (तुम्रं अच्छ नक्षते) शत्रुका सामना करता है ॥ ५ ॥

१ वज्रहस्तं रथेष्ठां तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां तं इन्द्रं पृच्छन्ती वेपी वक्वरी गीः यस्य सः गातुं इषे तुम्रं अच्छ नक्षते— वज्र हाथमें धारण करनेवाला रथपर आरूढ होकर लडनेवाला अनेक शत्रुओंको एक ही समयमें पकडनेवाला अनेक प्रकारके कर्म करनेवाला बल बढानेवाला यह इन्द्र है इस तरह उस इन्द्रकी अर्चना जो करती है तथा साथ साथ यज्ञ कर्मोंको करती है ऐसी स्तुति जिसकी वाणी करती है वह सुख प्राप्तिके मार्गसे जाता है और सुख प्राप्त करता है और शत्रुका पराभव करनेका मार्ग भी ठीक तरह जानता है। तथा शत्रुका पराभव भी करता है।

इस प्रकारके गुणोंका ध्यान करनेसे वे गुण मनके अन्दर आते हैं वह उन गुणोंसे युक्त होता है और उनसे वह गुणी होता है और शत्रुको दूर करके विजय देता है। ईश्वरके गुणोंसे मनुष्यकी उन्नति इस तरह होती है।

हे (स्व-तवः) अपने निज बलसे युक्त इन्द्र! (मनोजुवा पर्वतेन) मनोवेगी अपने आयुध वज्रसे (अया मायया वावृधानं त्यं) अपने कपट बलसे बढनेवाले उस शत्रुका तुमने (वि रुजः) विशेष प्रकारसे वध किया। हे

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७ ॥
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८ ॥
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९ ॥

(स्तोजाः) अपनी शक्तिसे बलवान् (विरप्शिम्) महान् सामर्थ्यवान् इन्द्र! तूने (अच्युता चित् वीळिता दृळ्हा) न हिलनेवाली बलवाली और दृढ शत्रुकी पुरियोंको (धृषता) धर्षक शक्तिसे नम्र किया तोड डाला ॥ ६ ॥

१ हे स्व-तवः! मनोजुवा पर्वतेन वज्रेण वावृधानं त्वं वि वृश्चः— हे निज सामर्थ्यवान् इन्द्र! मनके समान अत्यन्त वेगसे शत्रुपर प्रहार करनेवाले पर्ववान् वज्रसे अपने बलके कारण बढनेवाले उस शत्रुको तुमने नाश किया।

स्व-तवः अपने निज सामर्थ्यसे युक्त। पर्वत — (पर्ववान्) जिसमें पर्व हैं ऐसा वज्र जिसमें कांटे नोंकें तथा धाराएँ अनेक होती हैं वह वज्र। धारावाला वज्र।

२ हे स्तोजः विरप्शिम्! अच्युता वीळिता दृळ्हा धृषता विदर्शः— हे अपने बलसे बलवान् और महाप्रतापी इन्द्र! न हिलनेवाले सुस्थिर बलवान् और सुदृढ शत्रुके नागरिक कीलोंको अपने धर्षक सामर्थ्यसे तुमने तोड दिये।

इस मन्त्रमें युद्धनीति कही है। शत्रुको अतितीक्ष्ण शस्त्रसे मारना योग्य है। तथा शत्रुके नगरियोंको भी तोडना तथा अपने आधीन करना उचित है। इस मंत्रके पद वीरकी शक्तिका वर्णन करनेवाले हैं।

(नव्यस्या धिया) इस अपूर्व बुद्धिपूर्वक की गई स्तुति द्वारा (शविष्ठं प्रत्नं यः तं) अत्यन्त बलवान् पुरातन उस इन्द्रका (प्रत्नवत् परितंसयध्यै) प्राचीन रीतिके अनुसार और उसका विचार करनेके लिये मैं प्रसन्न करता हूं, इससे सुनकर (अनिमानः सुवह्मा) अपार महिमावाला सुन्दर वाहनवाला (सः इन्द्रः) वह इन्द्र (विश्वानि दुर्गहाणि) समस्त संकटोंसे (नः अति वक्षत्) हमें पार ले जावे ॥ ७ ॥

१ नव्यसा धिया तं शविष्ठं प्रत्नं यः प्रत्नवत् परितंसयध्यै— नूतन और बुद्धिपूर्वक किये इस स्तोत्रसे उस बलवान् पुरातन इन्द्रका प्राचीनों जैसा सब [illegible] लिये मैं आह्वान करता हूं।

२ इस स्तोत्रको सुनकर अनिमानः सुवह्मा सः इन्द्रः विश्वानि दुर्गहाणि नः अति वक्षत् — अपार महिमावाला और सुन्दर रथवाला वह इन्द्र सब प्रकारके संकटोंसे हमें सुरक्षित पार ले जावे।

हे इन्द्र! (द्रुह्वणे जनाय) सज्जनोंका द्रोह करनेवाले दुष्टोंके हटानेके लिये (पार्थिवानि दिव्यानि) पृथिवी और द्युलोक (अन्तरिक्षा) और अन्तरिक्षके स्थानोंको (आ दीपयः) अत्यन्त तप्त करो। हे (वृषन्) बलवान् देव! (विश्वतः तान्) चारों ओरसे उन दुष्टोंको (शोचिषा तप) अपने तेजसे तपाओ। (ब्रह्मद्विषे क्षां च अपः) ज्ञानके द्वेषियोंका दमन करनेके लिये पृथिवी और जलोंको भी तपाओ ॥ ८ ॥

दुष्ट जहां होंवे वहांसे उनको हटानेका प्रयत्न करना चाहिये। और उनका दमन करना चाहिये जिससे वे वहां न रहें।

(त्वेषसंदृक् अ-जुर्य इन्द्र) दीप्तिमान् जरारहित इन्द्र! (दिव्यस्य जनस्य) दिव्य जनोंका और (पार्थिवस्य जगतः) पृथ्वीपरके लोगोंका भी (राजा भुवः) तू राजा है। (दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व) दायें हाथमें वज्रको धारण कर। और (विश्वाः मायाः वि दयसे) सब दुष्टोंके कपटजालोंका नाश कर ॥ ९ ॥

१ त्वेषसंदृक् अजुर्य इन्द्र— तेजयुक्त दीखनेवाला जरा-क्षय आदि रहित इन्द्र है।

२ दिव्यस्य जनस्य पार्थिवस्य जगतः राजा भुवः— द्युलोकमें तथा भूलोकमें रहनेवाले लोगोंका तू ही राजा हुआ है।

३ दक्षिणे हस्ते वज्रं धिष्व— अपने दाहिने हाथमें वज्र धारण कर और उससे—

मा संयतमिन्द्र नः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १० ॥
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ ॥ (१४१)

[सूक्त ३७]

(ऋषिः — १-११ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १ ॥

---

४ विश्वाः मायाः वि दयसे— शत्रुके सब कपट कार्योंका नाश कर।

यह मंत्र राज्यशासनका उपदेश कर रहा है। अपने पास कलाकारोंका सुयोग्य संग्रह करना और शत्रुके कपट प्रयोगोंको दूर करना चाहिये।

हे (इन्द्र) इन्द्र! (शत्रु-तूर्याय) शत्रुओंके नाश करनेके लिये (बृहतीं अ-मृध्रां) बडी अविनाशी (संयतं स्वस्ति) संयममें रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति (नः आ भर) हमें दे। हे (वज्रिन्) वज्रधारी इन्द्र! (यया दासानि आर्याणि करः) जिससे दासोंको आर्य बनाया जाता है और (नाहुषाणि) मनुष्योंके (वृत्रा) घेरनेवाले शत्रुओंको (सुतुका) सहजहीसे नष्ट-भ्रष्ट किया जाता है ॥ १० ॥

१ शत्रुतूर्याय बृहती अमृध्रा संयतं स्वस्ति नः आ भर— शत्रुओंका नाश करनेके लिये विशाल अविनाशी स्वाधीन रहनेवाली और कल्याण करनेवाली संपत्ति हमें दे दो।

२ यया दासानि आर्याणि करः— जिससे दासोंको आर्य किये जाते हैं। दास — दास सेवक दस्यु, शूद्र। इनको श्रेष्ठ आर्य नागरिक बनाया जाता है। राज्यशासन व्यवस्था और समाज व्यवस्था ऐसी चाहिये कि जिससे शूद्र मनुष्य श्रेष्ठ आर्य नागरिक बन जाय।

३ नाहुषा वृत्रा सुतुका— मानवोंको घेरनेवाले शत्रु दूर किये जावें। वे फिरसे मनुष्योंको कष्ट न दें उन्हें ऐसी अवस्थामें ले पहुंचाये जांय।

शूद्रोंको सज्जन बनानेका भाव यहां है वह मनन करने योग्य है। प्रथम यह प्रयत्न किया जाय। उसमें यश न मिला तो शूद्रोंको दण्ड देना योग्य है।

हे (पुरुहूत) बहुत लोगोंसे बुलाने योग्य (वेधः) विधाता (प्रयज्यो) विशेष पूजनीय इन्द्र! (सः) तू (विश्ववाराभिः नियुद्भिः) सब लोगोंसे प्रशंसित अश्वोंसे (नः आ गहि) हमारे पास आओ। (अदेवः) असुर (याः न वरते) जिन घोडोंको रोक नहीं सकता। (देवः न) और देव भी नहीं रोक सकता (आभिः तूयं आ) उन घोडोंसे शीघ्र ही। (मद्र्यद्रिक आ याहि) मेरे पास आओ ॥ ११ ॥

इसके घोडे अच्छे हों। उत्तम शिक्षित हों जिससे उनकी उत्तम प्रशंसा होती रहे।

(सूक्त ३७)

(यः तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है। (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थानभ्रष्ट कर देता है वह (सुष्वितराय वेदः प्रयन्ता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।१९।१)

मानवधर्म— वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान् और भयंकर हो। वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे। कोई शत्रु अपने स्थानपर स्थिर न रह सके। कंजूस तथा अनुदार लोगोंके स्थान भी स्थिर न हों। एवं अन्य राष्ट्रमें बलवान् न होने पावें। जो यज्ञ करता है और दान देता है उसको पर्याप्त धन प्राप्त हो।

१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति— अकेला वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है।

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २ ॥
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३ ॥
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४ ॥

१ मदाशुपः शाश्वतः रायस्य व्यावायिता— कंजूस-के धनोंको छुडानेवाला वीर हो। कंजूस राष्ट्रमें न रहें।

१ सुष्वितराय वेदः मर्पता— यज्ञकर्ताको धन दो। सब लोग यज्ञकर्ताको धनका दान करते रहें। धनके अभावके कारण यज्ञ बंद करना न पडे। राष्ट्रके दाता लोग राष्ट्रमें यज्ञ होते रहें इतना दान यज्ञकर्ताओंको देवें।

हे इन्द्र! (त्वं ह त्यत् तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने उस अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की। (यत् आर्जुनेयाय अस्मै शिक्षन्) जब अर्जुनीके पुत्र कुत्सको धन दिया और (दासं शुष्णं कुयवं नि अरन्धयः) दास शुष्ण और कुयवका नाश किया ॥ २ ॥ (ऋ. ७।१९।२)

दास उसको कहते हैं कि जो (दस उपक्षये) नाश करता है घातपात करता है लोगोंको नष्टभ्रष्ट करता है। समाजमें उपद्रव मचाता है। शुष्ण वह है कि जो लोगोंके धनों भोगों और सुखोंका शोषण करता है। अपने सुखके लिये दूसरोंका नाश करता है। कुयव वह है कि जो अपने बुरे धान्य बोकर अन्न बनाकर लोगोंको देता है। इससे खानेवालोंके आरोग्यका बिगाड होता है। इनका समाजके हितके लिए नाश करना चाहिये।

१ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये कुत्सं आवः— स्वयं अपने प्रयत्नसे युद्धमें अपने अनुयायी कुत्सकी रक्षा की। अपने अनुयायी होंगे उनकी सुरक्षा करनी चाहिये।

२ दासं शुष्णं कुयवं निरन्धयः— घातपाती शोषक तथा बुरे धान्य लाकर अन्नका व्यवहार करनेवालोंका नाश कर। समाजसे इनको दूर कर।

३ शिक्षन्— इनका दमन किया था। उनपर ऐसा नियंत्रण कर कि जिससे वे फिर समाजके धनका नाश न कर सकें ऐसा कर।

हे (धृष्णो) शत्रुधर्षक इन्द्र! तूने (धृषता वीतहव्यं सुदासं) अपने बलसे अन्नका दान करनेवाले सुदासका (विश्वाभिः ऊतिभिः प्र आवः) अनेक संरक्षणोंके साथ योग्य संरक्षण किया। (वृत्रहत्येषु क्षेत्रसाता) वृत्र वध करनेके युद्धमें तथा क्षेत्रका बंटवारा करनेके समय (पौरुकुत्सिं त्रसदस्युं पूरुं च प्र आवः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु तथा पुरुका संरक्षण किया ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।१९।३)

१ धृषता विश्वाभिः ऊतिभिः प्रावः— शत्रुको दबानेके बलसे सब सुरक्षाके साधनों द्वारा प्रजाका संरक्षण करो। अर्थात् शत्रुका दबाव हो और अपनोंके सामर्थ्यसे प्रजाका संरक्षण करो।

हे (नृ-मणः) मनुष्योंके मनोंको आकर्षित करनेवाले इन्द्र! अथवा जिसका मन मनुष्योंका हित करनेमें लगा है ऐसे इन्द्र! (देववीतौ त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि) युद्धमें तू अपने वीरोंके द्वारा बहुत शत्रुओंका मारता है। हे (हर्यश्व) हरिद्वर्णके घोडोंवाले इन्द्र! तूने (दभीतये सुहन्तु) दभीतिके लिये वज्रके द्वारा दस्यु, चुमुरि और धुनिको (नि अस्वापयः) सुलाया था ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।१९।४)

नृ-मणाः — मनुष्योंका प्रजाजनोंका हित करनेमें जिसका मन तत्पर रहता है इसलिए प्रजाजनोंका मन जिसमें लगा है जिसने प्रजाओंका मन आकर्षित किया है। देव-वीती — जहां देवोंका परस्पर होता है व्यवहार करनेवाले जहां एकत्रित होते हैं और जहां एकत्रित होते हैं। यज्ञ तथा अथवा युद्ध। हर्यश्व — हरे रंगके घोडे जिसके रथको जोते हैं। सु हन्तु — जिससे शत्रु अच्छी तरह मारे जाते हैं वह शस्त्र वज्र मारनेवाला शस्त्र। दस्यवः — घातपात करनेवाला। चुमुरिः — चुम चुमकर खा के देकर नाश करनेवाला धुनिः — हिलानेवाला कंपानेवाला या अपने स्थानपर सामने सुखसे रहने नहीं देता ये सब समाजके शत्रु हैं। इनको दूर

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहं च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५ ॥
सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६ ॥
मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७ ॥

करना चाहिये। 'द्र-भीतिः' – दमनके कारण जो भयभीत हुआ है।

१ नृ-मनः— मनुष्योंका हित करनेके लिये अपना मन लगा। प्रजाका हित करनेमें तत्पर हो। प्रजाके मनोंको आकर्षित कर।

२ देववीतौ भूमिः भूरीणि हंसि— युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत शत्रुओंका नाश कर।

३ दस्युं चुमुरिं धुनिं नि स्वापय— घातपाती घबराने और पबराहट करनेवाले शत्रुओंका वध कर। वे फिरसे न उठें ऐसा कर।

४ दभीतये भूरीणि हंसि— दमनके कारण जो भयभीत हुआ है उसकी सुरक्षा करनेके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर। जिससे कोई दमन न करे ऐसा कर।

हे (वज्रहस्त) वज्रधारी इन्द्र! (तव तानि च्यौत्नानि) तेरे वे प्रसिद्ध बल हैं कि जो (यत् नव नवतिं च पुरः सद्यः) तूने शत्रुके नौ और नब्बे नगरोंका भेदन तत्काल ही किया था और (निवेशने शततमा अविवेषीः) अपने ठहरनेके लिये जब सौवीं नगरीमें तूने प्रवेश किया उसी समय (वृत्रं च अहन्) वृत्रको तूने मारा और (उत नमुचिं अहन्) नमुचिको भी मारा ॥ ५ ॥

(ऋ. ७।१९।५)

भावार्थ— शत्रुके किलों, प्रासादों तथा नगरोंका नाश करना चाहिये और उनपर अपना स्वामित्व स्थापन करना चाहिये। तथा उनमें जा जाना करोंमें बढ़ देनेवाले शत्रु रहते हों उनका नाश करना चाहिये।

वज्र हस्त— हाथमें वज्र तीक्ष्ण धारावाला शस्त्र धारण करनेवाला वीर। यह वीर नव च नवतिं पुरः शत्रुके स्थानके नगरियोंका भेदन करता है नगरोंके अन्दरके किले तथा उनके प्रासादोंका नाश करके निवासार्थ अब अन्दर

●

सौवींमें प्रवेश करता है और जब सौवीं नगरीमें प्रवेश करके वहां रहता है। वृत्र' (आवृणोति) जो घेरकर हमला करता है और न मुचि (न मुञ्चति) जो प्रसन्न करनेपर भी छोड़ता नहीं किसी न किसी रूपमें वहां रहता है और वह वैसा ही रहता है वह नमुचि है। ये सब शत्रु हैं। इनका नाश इन्द्र करता है।

हे इन्द्र! (ते रातहव्याय दाशुषे सुदासे) तुझे हव्य देनेवाले दानी सुदासके लिये (ता भोजनानि सना) जो तूने भोगने योग्य धन दिये वे सदा टिकनेवाले थे। हे (पुरु शाक) बहुत शक्तिमान् वीर! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तुझे लानेके लिये रथको (वृषणा हरी युनज्मि) बलशाली घोड़े जोतता हूं। (ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) स्तोत्र बलशाली ऐसे तेरे पास पहुंचें ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।१९।६)

१ दाशुषे सना भोजनानि— दाताके लिये उपभोग करने योग्य शाश्वत टिकनेवाला भोग दो।

२ पुरु शाकः— बहुत शक्तिमान् बन। अपनेमें बहुत सामर्थ्य बढाओ। वृषा – बलवान् बैल जैसा शक्तिमान्।

३ वाजं ब्रह्माणि व्यन्तु— बलवान् वीरके पास प्रशंसा के वचन पहुंचें। बलवान्की ही प्रशंसा होती रहे।

४ वृषणा हरी रथे युनज्मि— बलवान् घोड़े मैं रथको जोतता हूं। रथमें बलवान् घोड़े जोतने चाहिये।

हे (सहसावन् हरिवः) बलशाली और घोडोंवाले इन्द्र! (तव अस्यां परिष्टौ) तेरी इस प्रशंसामें (परादै अघाय मा भूम) दूसरोंके अधीन ऐसा पाप हमसे न हो। (न अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व) हमें कपट न करनेवाले संरक्षक साधनोंसे बचाओ। (सूरिषु तव प्रियासः स्याम) ज्ञानियोंमें हम तेरे प्रिय बनें ॥ ७ ॥

(ऋ. ७।१९।७)

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८ ॥
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९ ॥
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १० ॥

मानवधर्म— मनुष्य पवित्रताका धर्मे। दूसरेकी सहायता से ही सब कार्य करनेका काम कोई न करें। अपनी शक्तिसे अपने कार्य करें। स्वावलम्बनशील बनें। क्रूरता रहित संरक्षक साधनोंसे प्रभावशाली बनाव होता रहे और ज्ञानियोंमें भी अधिक विद्वान् बनकर प्रभुके प्यारे भक्त बनें।

१ सहसावान्— परिश्रम करनेकी शक्ति, मनुष्य पराक्रम करनेकी शक्ति ऐसी अनेक शक्तियोंसे युक्त। हरिवः — घोडे पास रखनेवाला वीर।

२ परावे अभाय मा भूम— दूसरोंसे सहायता लेकर ही अपने काम करनेकी स्थिति (पर-मा भूः) यह अत्यन्त निकृष्ट स्थिति है। अतः यह पापकी अवस्था है। ऐसी स्थितिमें हमें रहना न पडे। अर्थात् हम अपनी शक्तिसे ही अपने सब कार्य करें इतनी हमारी शक्ति बढ जाये।

३ अवृकेभिः वरूथैः पायस्व— वृक क्रूरताका रूप है। अवृकसे क्रूरता रहित वीरताका बोध होता है। वरूथ संरक्षणके साधनोंका नाम है। क्रूरता रहित रक्षाके साधनोंसे हमारा रक्षण हो।

४ सूरिषु तव प्रियासः स्याम— हम ज्ञानियोंमें अधिक ज्ञानी बनें और इस हमारे ज्ञानकी अधिकताके कारण हम प्रभुके प्यारे बनें।

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते अभिष्टौ) तेरी स्तुति करते हुए (नरः सखायः प्रियासः शरणे इत् मदेम) हम सब नेता समान कार्य करनेवाले तुम्हें प्रिय होकर अपने घरमें आनन्दसे रहें। (अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्) अतिथिसत्कार करनेवालेके लिये प्रशंसनीय सुखको करता निर्माण करके (तुर्वशं याद्वं नि नि शिशीहि) तुर्वश और याद्व इन शत्रुओंको अपने वशमें कर ॥ ८ ॥ (ऋ. १९।१८)

भावार्थ— भगवान् सब कर्मोंके करनेमें सब कार्य [illegible] है। अपने देशमें सुखसे रहो। अपने ही देशमें दुःख भोग नेता अवसर न आवे। अतिथिसत्कार करो। शत्रुओंको वशमें रखो। उनको बढने न दो।

१ मघवन्— धनवान् अथवा धनिक क्योंकि धनसे ही सब कार्य होते हैं। मघवन् इन्द्र ही [illegible] सेवकों कार्य करनेवाला होता है।

२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम— हम सब एक कार्य करनेवाले परस्पर प्रीति करनेवाले नेता अथवा होकर कर्मको संपन्न करनेवाले होकर अपने स्थानमें आनंदसे रहें। दुःखमें न रहें। हमें अपने देशमें दुःख भोगना न पडे।

३ अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्— अतिथिसत्कार करनेवालेका हित करो।

४ तुर्वशं याद्वं नि शिशीहि— त्वरासे वशमें होनेवाले तथा क्रूरकर्मी शत्रुओंको दूर करो। याद्वः (यादोपाद) जलोंमें जिसका स्थान है ऐसा रहनेवाला शत्रु।

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते नु अभिष्टौ) तेरी स्तुति करनेके कार्यमें (उक्थशासः ये नरः) स्तोत्र गानेवाले जो नेता (सद्यः चित् उक्था शंसन्ति) शीघ्र ही स्तोत्रोंका बोलते हैं। (ते हवेभिः पणीन् वि अदाशन्) जिन्होंने अपने दानोंसे पणि व्यवहारोंको भी दान करनेवाला बना दिया है। (तस्मै युज्याय अस्मान् वृणीष्व) उस मित्रताके लिये हमारा स्वीकार कर ॥ ९ ॥ (ऋ. १९।१९)

पणी न देते हैं कि ना धन करते हैं। वस्तुका क्रयविक्रय करते हैं। व्यापार-व्यवहार करनेवाले ये होते हैं। ये अपना धन बढाना चाहते हैं। ऐसे लोगोंसे भी (पणीन् वि अदाशन्) धन व्यवहार कर दानोंको भी दाता बना दिया। यह परिणाम स्तुतिके कारण पढनेसे हुआ। इसीलिये इन्द्रकी स्तुति करनी तथा पढनी चाहिये।

हे (नृतम इन्द्र) नेताओंमें अत्यन्त श्रेष्ठ इन्द्र! (तुभ्यं एते स्तोमाः मघानि ददतः) तुम्हें ये स्तोत्र धन देते हुए (अस्मद्र्यञ्चः) हमारी ओर आ रहे हैं। (तेषां वृत्रहत्ये

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥ (१५३)

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

[सूक्त ३८]

(ऋषिः — १-३ इरिम्बिठिः ४-६ मधुच्छन्दाः। देवता — इन्द्रः।)

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम्। एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना। उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

शिवा भूः) उनके लिये अनुकूल भाग करनेके युद्धमें तुम कल्याण करनेवाला हो तथा तुम (नृणां सखा च शूरः अविता च) मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो ॥ १० ॥ (ऋ. ४।१९।१०)

मानवधर्म— मनुष्योंमें श्रेष्ठ बन। धनका दान कर। युद्धके समय मनुष्योंकी सहायता करके उनका कल्याण कर। मनुष्योंका संरक्षण कर और इसके लिये शूर बन तथा मनुष्योंके साथ मित्रवत् व्यवहार कर।

१ नृतमः— नेताओंमें श्रेष्ठ नेता बन।

२ मघानि ददतः अस्माकं मघ:— धन देते हुए ये नेता हमारी ओर आ रहे हैं। हमें भी ये धन देंगे और उस धनसे हम बढ़ेंगे।

३ वृत्रहत्ये तेषां शिवाः भूः— युद्धमें उन दाताओंका कल्याण हो ऐसा करो। युद्धमें उनका नाश न हो।

४ नृणां सखा शूरः अविता च भूः— मानवोंका मित्र तथा शूर संरक्षक हो।

हे शूर इन्द्र! (स्तवमानः ब्रह्मजूतः) स्तुतिसे और ज्ञानसे प्रेरित होकर (तन्वा ऊती वावृधस्व) अपने शरीरसे और संरक्षण शक्तिसे बढ़ता जा। (नः वाजान् उप मिमीहि) हमें अन्न और बल दो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित करो ॥ ११ ॥ (ऋ. ४।१९।११)

मानवधर्म— मनुष्य शूर हो। देवताकी स्तुतिसे और ज्ञान विज्ञानसे उसको उत्तमोत्तम कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती रहे। शरीर स्वस्थ नीरोग और बलवान् बने और उनमें संरक्षण करनेका सामर्थ्य बढ़े। अन्न ऐसे प्राप्त हों कि जिससे बल बढ़े। रहनेके लिये उत्तम घर हों। मानवोंका कल्याण हो और उनका संरक्षण भी हो।

१ शूरः— नेता शूर हो भीरु न हो।

२ स्तवमानः ब्रह्मजूतः— स्तुति और ज्ञानसे उनको प्रेरणा मिले। महान कर्म करनेकी प्रेरणा उसको (स्तव) ईश स्तुतिसे मिले। ईश्वर स्तुतिसे मैं ईश्वर जैसा बनूंगा इस भावसे सत्कर्मकी प्रेरणा मिलती है। वैसी प्रेरणा मिले।

३ तन्वा ऊती वावृधस्व— अपना शरीर और अपने कुटुम्बकी संरक्षण करनेकी शक्ति बढ़ायी जाय। देवताकी स्तुति और ज्ञानसे अपने शरीरके संवर्धनके उपाय तथा संरक्षणकी शक्ति बढ़ानेके उपाय विदित होते हैं।

४ वाजान् नः उप मिमीहि— अन्न और बल हमें प्राप्त हों। उत्तम बल बढ़ानेवाले अन्न हमें मिलें और अन्न मिलनेपर उससे हमारे बल बढ़ें। अन्नका उपयोग ऐसा किया जावे कि शरीरका बल बढ़े पर कभी न घटे।

५ स्तीन् उप मिमीहि— रहनेके लिये घर हों। बिना घरके जीवित रहना पड़े ऐसा कभी न हो।

६ स्वस्तिभिः नः पात— कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी सुरक्षा हो। ऐसा न हो कि हम सुरक्षित तो हों पर हमारी हानि ही हानि होती जाय। तात्पर्य हमारा कल्याण भी हो और हमारा उत्तम संरक्षण भी हो।

॥ यहां चतुर्थ अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ३८)

हे इन्द्र! (आ याहि) आ (ते हि सुषुम) हमने तेरे लिये सोमरस निचोड़ा है। (इमं सोमं पिब) इस सोमको पी। (मम इदं बर्हिः) मेरा यह आसन है (आ सदः) इस पर बैठ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१७।१)

हे इन्द्र! (केशिना) बालोंवाले (ब्रह्मयुजा हरी) इशारेसे जुड़नेवाले दो घोड़े (त्वा आ वहतां) तुम्हें यहां ले आवें। (नः ब्रह्माणि उप शृणु) हमारी प्रार्थनाओंको सुन ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१७।२)

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥ (२९१)

[सूक्त १९]

(ऋषिः — १ मधुच्छन्दाः २-५ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १ ॥
व्य१न्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥ २ ॥
उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः । अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ३ ॥
इन्द्रेण रोचना दिवो दृढानि दृंहितानि च । स्थिराणि न पराणुदे ॥ ४ ॥
अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते । वि ते मदा अराजिषुः ॥ ५ ॥ (२९६)

हे इन्द्र ! (वयं सोमिनः ब्रह्माणः) हम सोम करनेवाले ब्राह्मण (सुतावन्तः) सोमरस निचोडनेपर (त्वा सोमपां युजा हवामहे) तुझ सोम पीनेवालेको अपने यज्ञके साथ बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।११।७।१)

कोई अतिथि आया तो (इदं बर्हिः । मं. १) यह आसन आपके लिये है ऐसा बोलकर उसको बैठनेके लिये आसन देना चाहिये ।

ऋजिना ब्रह्मयुजा हरी (मं. २)— जो वाक्यसे इशारेसे रथके साथ जुडनेवाले घोडे हों । घोडे ऐसे सिखाये जाय ।

(गाथिनः इन्द्रं इत्) गाथा पढनेवाले इन्द्रका ही (बृहत्) बडे स्वरसे गान करते हैं । (अर्किणः अर्केभिः इन्द्रं) मंत्रपाठ करनेवाले सूक्तोंसे इन्द्रकी ही स्तुति गाते हैं । (वाणी इन्द्रं अनूषत) हमारी वाणियां इन्द्रकी ही स्तुति गाती हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. १।७।१)

(इन्द्रो वज्री हिरण्ययः) इन्द्र वज्र धारण करता है और सुवर्णसे शोभायमान करता है वह इन्द्र (वचोयुजा आ संमिश्लः) वाणीके साथ जुडनेवाले (हर्योः सचा इत्) दो घोडोंका साथी ही है ॥ ५ ॥ (ऋ. १।७।२)

इन्द्रने (दीर्घाय चक्षसे) दूरतक देखनेके लिये (सूर्यं दिवि आ रोहयत्) सूर्यको द्युलोकमें चढाया है और (गोभिः) गौओंसे किरणोंसे (अद्रिं वि ऐरयत्) पर्वतको-मेघको दूर किया ॥ ६ ॥ (ऋ. १।७।३)

१ इन्द्रः वज्री हिरण्ययः— इन्द्र वज्र धारण करता है और सुवर्णके भूषण धारण करता है या सुवर्ण जैसा चमकनेवाला शोभायमान करता है ।

२ इन्द्रः हर्योः सचा— इन्द्र घोडोंका मित्र है, घोडोंके पास रहनेवाला है । वचोयुजा आ संमिश्लः – इशारेसे जुडनेवाले घोडोंके साथ वह रहता है ।

घोडे पालनेवाले घोडोंको अपने साथी समझें । घोडोंको ऐसे शिक्षित करें कि जिससे वे इशारेसे रथके साथ जुड जांय ।

३ इन्द्रः दीर्घाय चक्षसे सूर्यं दिवि आ रोहयत्— इन्द्रने दूरतक दृश्य देखनेके लिये सूर्यको द्युलोकमें ऊपर चढाया है । इससे सूर्यसे इन्द्र पृथक् है यह सिद्ध होता है । इन्द्रने सूर्यको द्युलोकमें स्थापित किया है । सूर्यसे इन्द्र अधिक सामर्थ्यवान है ।

४ गोभिः अद्रिं वि ऐरयत्— किरणोंसे मेघको दूर किया । गौ– किरण जल भूमि । अद्रि– पर्वत वज्र मेघ । इस मंत्रभागका अर्थ समझना विचारणीय है । सहज समझने योग्य यह मंत्र नहीं है ।

(सूक्त १९)

(विश्वतः परि जनेभ्यः) सब ओरसे लोगोंसे पूर्ण करके (वः इन्द्रं हवामहे) तुम्हारे लिये हम बुलाते हैं । (केवलः अस्माकं अस्तु) वह केवल हमारा होकर रहे ॥ १ ॥ (ऋ. १।७।१)

२-५ (२९३-२९६) मंत्र अथर्व २०।२८।१-४ देखो ।

[सूक्त ४०]

(ऋषिः — १-३ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः मरुतश्च १-३ मरुतः ।)

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ १ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ ॥ (१९७)

[सूक्त ४१]

(ऋषिः — १-३ गोतमः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ २ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ ३ ॥ (१७०)

(सूक्त ४०)

(अबिभ्युषा इन्द्रेण संजग्मानः) निडर इन्द्रके साथ जानेवाला (सं दृक्षसे हि) तू दीखता है। (मन्दू समानवर्चसा) आनन्ददायक और समान कान्तिवाले तुम दोनों हो ॥ १ ॥ (ऋ. १।६।७)

(अनवद्यैः) दोष रहित (अभिद्युभिः) तेजस्वी और देखनेवाले (इन्द्रस्य काम्यैः गणैः) इन्द्रके प्रिय गणोंके साथ (मखः सहस्वत् अर्चति) यज्ञ बल बढानेवाले गीत गाता है। यज्ञमें बल बढानेवाले स्तोत्र गाये जाते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।६।८)

(आत् अह पुनः) इसके अनंतर पुनः (स्वधां अनु) अपनी धारण शक्तिके अनुसार वे (यज्ञियं नाम दधानाः) पूज्य नाम धारण करते हुए (गर्भत्वं एरिरे) गर्भ भावको प्राप्त हुए ॥ ३ ॥ (ऋ. १।६।४)

१ अबिभ्युषा इन्द्रेण— निडर इन्द्र है। वैसा निडर वीर हो।

२ अबिभ्युषा संजग्मानाः— निडर वीरके साथ जाना योग्य है।

३ मन्दू समानवर्चसा— हर्षित और तेजस्वी वीर हों।

४ अनवद्यैः अभिद्युभिः गणैः— निर्दोष और तेजस्वी मित्रवर्गोंके साथ रहना योग्य है।

५ मखः सहस्वत् अर्चति— यज्ञमें बलयुक्त गीत गाये जाते हैं।

६ यज्ञियं नाम दधानाः— पवित्र नाम धारण करके रहना उत्तम है।

यह मरुतोंका वर्णन है। मरुत् इन्द्रके साथ रहते हैं और वे युद्धादि करते हैं।

(सूक्त ४१)

(इन्द्रः अप्रतिष्कुतः) जिसका कोई सामना नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रने (दधीचो अस्थिभिः) दधीचकी हड्डियोंसे (नवतीः नव वृत्राणि जघान) निन्यानवे वृत्रोंको मारा ॥ १ ॥ (ऋ. १।८४।१३)

(पर्वतेषु अपश्रितं) पर्वतोंमें पडा हुआ (यत् अश्वस्य शिरः इच्छन्) जो घोडेका सिर था उसको प्राप्त करना चाहा। (तत् शर्यणावति विदत्) उसको शर्यणावतीमें पाया ॥ २ ॥ (ऋ. १।८४।१४)

(इत्था चन्द्रमसो गृहे) इस तरह चन्द्रमाके घरमें (अत्र अह) यहीं (त्वष्टुः अपीच्यं गोः नाम) त्वष्टाकी- सूर्यकी गौ (किरण) के (अमन्वत) गत है ऐसा माना ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८४।१५)

१ दधीचके हड्डियोंका वज्र बनाकर निन्यानवे वृत्रोंको मारा। दधीच (दधि-अच्) दही जिससे होता है वह दूध है। दूध पीनेवालेकी हड्डी वेदना निनानवे रोगोंको दूर करती है। दूध पीनेवालेकी हड्डीका वज्र औषधके रूपमें काम आता है। निनानवे रोग वे निर्बल मेघ नहीं हैं। इनमें भी वज्र बल नहीं

[सूक्त ४२]

(ऋषिः — १-३ कुरुसुतिः । देवता — इन्द्रः ।)

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात्परि तन्वं ममे ॥ १ ॥
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ २ ॥
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥ ३ ॥ (१०१)

[सूक्त ४३]

(ऋषिः — १-३ त्रिशोकः । देवता — इन्द्रः ।)

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ १ ॥
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ २ ॥
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ॥ ३ ॥ (१०४)

सकता । यह औषध चिकित्सा विषयक मंत्र है । वैद्योंको इसका विचार करना चाहिये ।

२ पर्वतोंमें पड़ा औषधका चिर सर्वव्यापकतामें मिला । यह भी वैसी ही गूढ विद्या है । इसकी खोज होनी चाहिये ।

३ चन्द्रमसः गृहे त्वष्टुः अपीच्यं गोः नाम अमन्वत— चन्द्रमाके घर त्वष्टाका गुप्त रखा किरण मिल गया । सूर्यका किरण चन्द्रमामें पहुंचता है और वह किरण चन्द्रमाके घर मिलता है ।

यह सूक्त गूढ अर्थ बतानेवाला है अतः इसके विज्ञानकी खोज विशेष होनी अत्यंत आवश्यक है ।

(सूक्त ४२)

(अष्टापदीं) आठ पदवाली (नव-स्रक्तिं) नौ कोनोंवाली (ऋत-स्पृशं) सत्यको स्पर्श करनेवाली (तन्वं वाचं) सूक्ष्म वाणीको (इन्द्रात् परि ममे) इन्द्रसे सब ओरसे मापा है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।७६।१२)

हे इन्द्र ! (यत् दस्युहा अभवः) जब तू दस्युओंका मारनेवाला हुआ तब (उभे रोदसी) दोनों द्यु और भूलोक (त्वा) तुझ (क्रक्षमाणं अनु अकृपेतां) कड़क शब्द करनेवालेके पीछे कांप गये ॥ २ ॥ (ऋ. ८।७६।११)

हे इन्द्र ! (सुतं सोमं चमू पीत्वी) सोमरसको चमसोंमें डाले हुएको पीकर (ओजसा सह उत्तिष्ठन्) बलके साथ उठते हुए तुमने (शिप्रे अवेपयः) दोनों हनुओंको कंपाया ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।७६।१०)

१ अष्टापदीं नव-स्रक्तिं ऋतस्पृशं वाचं परि ममे— आठ चरणवाली नौ प्रकारकी रचनावाली सत्य कथन करनेवाली कविताकी वाणी— काव्य रचनाको मापकर बनाता हूं । कवित्व इस तरह योग्य मापसे बनानी चाहिये । चरणोंमें अक्षर, ह्रस्व दीर्घ मात्रा चरणोंकी संख्या इनका विचार पद्यरचनामें करना आवश्यक होता है ।

२ यत् दस्युहा अभवः उभे रोदसी त्वा क्रक्षमाणं अनु अकृपेतां— जब इन्द्र दस्युओंको मारने लगा तब उसके पराक्रमको देखकर द्यावा पृथिवी कांपने लगी । शूर वीरको पराक्रम इस तरह करने चाहिये ।

३ सुतं सोमं चमू पीत्वी ओजसा सह उत्तिष्ठन् शिप्रे अवेपयः— सोमरस चमसोंसे पीकर जब इन्द्र बलसे उठने लगा तब उसके दोनों ऊपर और नीचेके हनु कांपने लगे ।

शिप्र का अर्थ हनु और नासिका ये दो हैं । यहां द्विवचनमें शिप्रे दोनों शिप्र हैं इस कारण यहां शिप्र का अर्थ हनु लगता है । वेगसे उठनेसे जबड़ा या हनु कांपते हैं ।

(सूक्त ४३)

(विश्वा द्विषः अप भिन्धि) सब शत्रुओंको चारों ओरसे भेद डाल । (बाधः मृधः परि जहि) बाधा करनेवाले शत्रुओंको मारकर हटा (तत् स्पार्हं वसु आ भर) इच्छा करने योग्य धन लाकर भर दो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।४५।४०)

हे इन्द्र ! (यत् वीळौ) जो बलवाली कामनामें (यत् स्थिरे) जो स्थिर स्थानमें (यत् पर्शाने) जो भूमिमें रखा (पराभृतं) हुआ है वह इच्छा करने योग्य धन लाकर भर दो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।४५।४१)

(यस्य ते भूरेः दत्तस्य) जो तेरे दिये गये बहुत धनको (विश्वमानुषः वेदति) सब मनुष्य जानता है । वह इच्छा करने योग्य धन लाकर भर दो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।४५।४२)

[सूक्त ४४]

(ऋषिः — १-३ इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥ (१७५)

[सूक्त ४५]

(ऋषिः — १-३ शुनःशेपो देवरातापरनामा । देवता — इन्द्रः ।)

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १ ॥
स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २ ॥

---

१ विश्वाः द्विषः अप सिन्धि।— सब शत्रुओंको काट डालो।

२ विश्वाः बाधः मृधः परि जहि— सब बाधा करनेवाले युद्ध करनेवाले शत्रुओंको पराजित करके दूर भगा दो।

३ यत् वीळौ स्थिरे पर्शाने पराभृतं— जो धन बलवाले स्थानमें सुस्थिर स्थानमें और भूमिमें रखा है।

४ तत् स्पार्हं वसु आ भर— वह स्पृहणीय धन लाकर भर दो।

५ यस्य ते भूरेः वृत्तस्य विश्वमानुषः वेदति— जिस तेरे दिये गये धनको सब मनुष्य जानते हैं कि यह धन मिला है। वैसा धन हमें लाकर भर दो। धन इच्छा करने योग्य उन्नति करनेवाला हो। विनाशकारी न हो।

(सूक्त ४४)

(चर्षणीनां सम्राजं) प्रजाजनोंके सम्राट् (नृषाहं मंहिष्ठं नरं) शत्रुके वीरोंको दबानेवाले बडे सामर्थ्यवान् वीर (नव्यं इन्द्रं) स्तुत्य इन्द्रकी (गीर्भिः स्तोता) वाणीसे स्तुति करो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१६।१)

(यस्मिन्) जिस इन्द्रमें (श्रवस्या विश्वानि उक्थानि) यश देनेवाले सारे स्तोत्र (रण्यन्ति) रमणीय होते हैं (अपां अवो समुद्रे न) जैसे जलोंके प्रवाह समुद्रमें जाकर मिलते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१६।२)

(तं ज्येष्ठराजं) उस बडे राजा (भरे कृत्नुं) युद्धमें कुशल (सनिभ्यः महो वाजिनं) दानोंके लिये बडे बलवान् (तं सुष्टुत्या विवासे) उस इन्द्रको उत्तम स्तुतिसे प्रशंसित करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१६।३)

१ (अथर्व भाष्य काण्ड १)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण कहे हैं—

१ चर्षणीनां सम्राजं— लोगोंका सम्राट्

२ नृ-षाहं— शत्रुके वीरोंका पराभव करनेवाला

३ मंहिष्ठं नरं— बडा श्रेष्ठ वीर

४ ज्येष्ठ राजं— श्रेष्ठ राजा

५ भरे कृत्नु— युद्ध करनेमें अत्यंत कुशल

६ महो वाजिन— बडा बलवान्

७ यस्मिन् विश्वा उक्थानि श्रवस्या रण्यन्ति— इस इन्द्रमें जो भी स्तुतिकी जाय वह यहां उसके यशका वर्णन करनेवाली होनेके कारण वह स्तोत्र रमणीय ही होते हैं। वे सब उसमें सार्थ होते हैं जैसे (अपां अवो समुद्रे न) जलोंके प्रवाह समुद्रमें अधिक नहीं होते। वे प्रवाह समुद्रमें मिल जाते हैं वैसी ही वीर इन्द्रकी स्तुतियां इन्द्रमें उसकी सब सार्थ होती हैं।

(सूक्त ४५)

(अयं उ ते) यह सोम तेरा है (सं अतसि) इसको प्राप्त कर। (कपोतः गर्भधिं इव) जैसे कबूतर अपनी स्त्रीके पास जाता है (नः तत् वचः) हमारे इस वचनका (ओहसे) तू प्यार करता है ॥ १ ॥ (ऋ. १।३०।४)

हे (राधानां पते) धनोंके स्वामी (गिर्वाहः) स्तुतिके स्वीकार करनेवाले (वीर) वीर इन्द्र ! (यस्य ते स्तोत्रं) जिस तेरा स्तोत्र (सूनृता विभूतिः अस्तु) हमारे लिए सच्ची सत्यकी विभूति हो ॥ २ ॥ (ऋ. १।३०।५)

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३ ॥ (१८१)

[सूक्त ४६]

(ऋषिः — १-३ इरिम्बिठिः । देवता — इन्द्रः ।)

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १ ॥
स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २ ॥
स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३ ॥ (१८४)

[सूक्त ४७]

(ऋषिः — १-३ सुकक्षः ७-९ इरिम्बिठिः ४-६ १०-१२ मधुच्छन्दाः १३-२१ प्रस्कण्वः । देवता — इन्द्रः १३-२१ सूर्यः ।)

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १ ॥

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (अस्मिन् वाजे) इस युद्धमें (नः ऊतये) हमारी रक्षाके लिये (ऊर्ध्वः तिष्ठ) खडा रह (समन्येषु सं ब्रवावहै) अन्योंकी उस स्थितिमें भी हम तेरी ही प्रशंसा करेंगे ॥ ३ ॥ (ऋ. १।३०।६)

१ राधानां पतिः— धनोंका स्वामी इन्द्र है।

२ वीर ! यस्य ते स्तोत्रं सूनृता विभूतिः अस्तु— हे वीर इन्द्र ! तेरा स्तोत्र हमारे लिये सच्ची विभूतिके रूपमें हमारे सामने रहे।

३ शतक्रतो— सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र।

४ अस्मिन् वाजे नः ऊतये ऊर्ध्वः तिष्ठ— इस युद्धमें हमारी रक्षा करनेके लिये खडा रह और हमारी रक्षा करनेके लिये जो करना योग्य है वह सब कर।

५ समन्येषु सं ब्रवावहै— अन्य लोग उपस्थित हों तो भी हम ऐसा ही तेरे विषयमें आदर भावके वचन ही बोलेंगे।

(सूक्त ४६)

(वस्यो अच्छ प्रणेतारं) जो उत्तम वस्तुकी ओर ले चलता है (समत्सु ज्योतिः कर्तारं) संग्रामोंमें ज्योति करता है, और (युधा अमित्रान् सासह्वांसं) युद्धसे शत्रुओंको परास्त करता है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१६।१०)

(सः पुरुहूतः) वह अनेकों द्वारा प्रार्थित हुआ (पप्रिः इन्द्रः) प्रतिपालक इन्द्र (नावा) नौकासे (नः स्वस्ति पारयाति) हमें कल्याणके लिये पार ले जाता है (विश्वा द्विषः अति) सब शत्रुओंको दूर करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१६।११)

हे इन्द्र ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः च गातुया च) अन्नोंसे और मार्गसे (दशस्य) परिपूर्ण कर (नः अच्छ सुम्नं नेषि) और हमें आनन्दकी ओर ले जा ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१६।१२)

१ वस्यो अच्छ प्रणेतारं— इन्द्र उत्तमताकी ओर पहुंचाता है।

२ समत्सु ज्योतिः कर्तारं— युद्धोंमें ज्योति प्रकाश विजयका मार्ग दर्शाता है।

३ युधा अमित्रान् सासह्वांसं— युद्धसे शत्रुओंको परास्त करता है।

४ सः पुरुहूतः— वह इन्द्र अनेकोंके द्वारा प्रार्थित होता है।

५ पप्रिः इन्द्रः— वह सच्चा पालक है।

६ नावा नः स्वस्ति पारयाति— नौकासे हमें कल्याणके लिये पार ले जा।

७ विश्वा द्विषः अति— सब शत्रुओंको दूर कर।

८ सः त्वं वाजेभिः गातुया च दशस्य— वह तू अन्नोंसे तथा मार्गसे हमें परिपूर्ण कर।

९ नः अच्छ सुम्नं नेषि — हमें आज आनंदकी ओर ले जा।

(सूक्त ४७)

(महे वृत्राय हन्तवे) बडे वृत्रके मारनेके लिये (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको हम बढाते हैं (सः वृषा वृषभः भुवत्) वह बलिष्ठ और वीर होवे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९३।७)

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३ ॥
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६ ॥
आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ ७ ॥
आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ ८ ॥
ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ॥ ९ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १० ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ११ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ १२ ॥
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १३ ॥
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ १४ ॥
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ १५ ॥
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचन ॥ १६ ॥
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषीः । प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥ १७ ॥

(इन्द्रः स दामने कृतः) वह इन्द्र दानके लिये ही प्रसिद्ध है (ओजिष्ठः स मदे हितः) वह बलवान् और आनन्दमें रहता है। (द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः) वह तेजस्वी यशस्वी और सोमके योग्य है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९३।८)

(गिरा वज्रः संभृतः न) स्तुतिसे वज्र जैसा वह तैयार हुआ है (स बलः अनपच्युतः) वह बडे बलवान् और न गिरनेवाला है (ऋष्वः अस्तृतः ववक्षे) वह बडा न क्षीण हुआ और ऊँचा है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९३।९)

४-६ देखो १।३८।४-६। ७-९ देखो १।३८।१-३। १०-११ देखो १।३६।४-६।

(केतवः त्यं जातवेदसं देवं सूर्यं) किरण उन बने हुए पदार्थोंके जाननेवाले सूर्य देवको (विश्वाय दृशे) समस्त लोगोंके देखनेके लिये (उत् उ वहन्ति) ऊंचे स्थानमें प्रकाशित करते हैं ॥ १३ ॥

(ऋ. १।५०।१; यजु. ७।४१; अथर्व. १३।२।१६)

(यथा त्ये तायवः) जैसे वे चोर (नक्षत्रा अक्तुभिः अप यन्ति) वे नक्षत्र रात्रीके साथ भाग जाते हैं और (विश्वचक्षसे सूराय) विश्वको प्रकाशित करनेवाले सूर्यके लिये स्थान करते हैं ॥ १४ ॥

(ऋ. १।५०।२; अथर्व. १३।२।१७)

(यथा भ्राजन्तः अग्नयः) जैसे चमकनेवाले अग्नि होते हैं (अस्य केतवः रश्मयः) इसके ध्वज रूपी किरण (जनान् अनु वि अदृश्रन्) लोगोंके प्रति जाते हुए दीखते हैं ॥ १५ ॥

(ऋ. १।५०।३; यजु. ८।४०; अथर्व. १३।२।१८)

हे (रोचन सूर्य) हे प्रकाशक सूर्य! तू (तरणिः विश्वदर्शतः) तारक और विश्वका दर्शनीय है तथा (ज्योतिष्कृत् असि) प्रकाश करनेवाला है। (विश्वं आभासि) तू जगत्‌को प्रकाशित करता है ॥ १६ ॥

(ऋ. १।५०।४)

(देवानां विशः प्रत्यङ्) देवोंकी प्रजाओंके प्रति और (मानुषीः प्रत्यङ् उदेषि) मानवी प्रजाओंके प्रति उदित

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥ १८ ॥
वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥ १९ ॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षणम् ॥ २० ॥
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः । ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ २१ ॥ (१०९)

[सूक्त ४८]

(ऋषिः — (१-३) खिलम् ४-६ सर्पराज्ञी । देवता — सूर्यः, गौः ।)

अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः । अभि वत्सं न धेनवः ॥ १ ॥
ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः । जातं जात्रीर्यथा हृदा ॥ २ ॥
वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन् । मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३ ॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ ४ ॥
अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः । व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५ ॥

होता है तथा (स्वः विश्वं प्रत्यङ्) प्रकाशके दर्शनके लिये सब विश्वके प्रति तू जाता है ॥ १७ ॥ (ऋ. १।५०।५)

१८ (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ देव! (येन चक्षसा) जिस आंखसे (त्वं जनान् भुरण्यन्तं अनु पश्यसि) तू मनुष्योंमें भरण-पोषण करनेवाले मनुष्यको देखता है उससे मुझे देख ॥ १८ ॥ (ऋ. १।५०।६)

सूर्य! (अक्तुभिः अहा मिमानः) रात्रियोंसे दिनोंको मापता हुआ (पृथु रजः द्यां एषि) विस्तृत अन्तरिक्ष आकाश और द्युलोकको प्राप्त होता है और (जन्मानि पश्यन्) सब जन्म लेनेवालोंको देखता है ॥ १९ ॥ (ऋ. १।५०।७)

हे सूर्य देव! (सप्त हरितः) सात किरण (शोचिष्केशं विचक्षणं त्वा) तेजरूप बालोंवाले किरण तथा दर्शक ऐसे तुझे (रथे वहन्ति) रथमें चलाते हैं ॥ २० ॥ (ऋ. १।५०।८)

(सूरः रथस्य) ज्ञानमय देवने (नप्त्यः सप्त शुन्ध्युवः अयुक्त) रथ के शुद्ध करनेवाले सात किरण जोडे हैं। (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उनसे अपनी योजना से वह जाता है ॥ २१ ॥ (ऋ. १।५०।९)

इन मन्त्रोंमें १-१० मंत्र इन्द्र देवताके हैं और ११-२१ तकके मंत्र सूर्य देवताके हैं।

(सूक्त ४८)

(आचरण्यवः) बारबार प्राप्त होनेवाली (गिरः) हमारी स्तुतियां (वर्चसा त्वा सिञ्चन्तीः) तेजसे तेरे पास सिंचन करती हैं (वत्सं धेनवः अभि न) बछडेके पास जैसी गौवें बारबार जाती हैं ॥ १ ॥

(जातं जात्रीः यथा हृदा) उत्पन्न हुए बच्चेसे जैसी माताएं हृदयके साथ मिलाती हैं उस तरह हमारी स्तुतियां (वर्चसा पृञ्चन्तीः) तेजसे संयुक्त होती हैं (प्रियाः शुभ्रियः ताः अर्षन्ति) और प्रिय शुभ स्तुतियां प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

(वज्रापवसाध्यः) वज्र आकाशस्थान आदि (कीर्तिः) तथा कीर्ति (म्रियमाणं आवहन्) मरनेवालेके पास आती हैं। (मह्यं आयुः घृतं पयः) मुझे दीर्घ आयु घी और दूध मिले ॥ ३ ॥

(आयं गौः) यह गतिमान् चमकता (मातरं पुरः असदत्) अपनी माता भूमिका आगे बैठा है (पितरं च प्रयन्) और अपने पिता स्वर्ग प्रकाशी सूर्यकी ओर और चलता हुआ (पृश्निः आक्रमीत्) आकाशमें चलता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१८९।१)

(अस्य रोचना) इसकी चमक (प्राणात् अपानतः) प्राण और अपान करनेवालोंके (अन्तः चरति) अन्दर

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत्। प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥ (११९)

[सूक्त ४९]

(ऋषिः — १-३ शिरिम्बिठः। ४-५ नोधाः; ६-७ मेध्यातिथिः।)

यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः । सं देवा अमदन्वृषा ॥ १ ॥
शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि । मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन्विराजति । विमदन्बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥ (११९)

संचार करती है और वह (महिषः स्वः वि अख्यत्) बडे तेजस्वी सूर्यको ही प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

(ऋ० १० ।१८९।२)

(वस्तोः त्रिंशत् धाम) अहोरात्रके तीस धाम अर्थात् मुहूर्त (अहः द्युभिः प्रति वि राजति) दिनभर इसके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। उसकी प्रशंसाके लिये (वाक् पतङ्गः अशिश्रियत्) हमारी वाणी सूर्यका आश्रय करती है ॥ ६ ॥

(ऋ० १० ।१८९।३)

चन्द्र भूमिके चारों ओर भ्रमण करता है और भूमि सूर्यके चारों ओर घूमता है। इस प्रकार भूमि सहित चन्द्र सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है और अपने मार्गमें आकाशमें संचार करता है।

इसके लिए सब स्थावर जङ्गमके ऊपर प्रकाशित होते हैं और वे सूर्य प्रकाशके महत्त्वको व्यक्त करते हैं।

अहोरात्रके तीस मुहूर्तोंमें इसीका प्रकाश अपना तेजस्वी बनाता है। इसलिए इस सूर्यकी प्रशंसा हमारी वाणी करती रहती है।

(सूक्त ४९)

(यत् शक्रा वाचं आरुहन्) जब शक्तिवालोंने वाणीपर आरोहण किया (अन्तरिक्षं सिषासथः) अन्तरिक्षको जीतना चाहा तब (वृषा देवाः सं अमदन्) बलवान् देवोंने आनन्द मनाया ॥ १ ॥

(शक्रः वाचं अधृष्टाय) शक्तिवालेने वाणीको धैर्यवाली बनाया (उरुवाचः अधृष्णुहि) बडी वाणीको प्रबल बनाया। (मंहिष्ठः दिवि आ मदः) बडेने द्युलोकमें हर्ष बनाया ॥ २ ॥

(शक्रो वाचं अधृष्णुहि) शक्तिवालेने वाणीको प्रबल बनाया (धामधर्मन् विराजति) प्रति स्थानपर वह शासन करता है। (विमदन् बर्हिः आसरन्) आनन्द मनाता हुआ वह आसनपर बैठा है ॥ ३ ॥

४-७ देखो (१ ।११ ४)

१ शक्रा वाचं आरुहन्— शक्तिवाले वक्तृत्व करें। वक्तामें शक्ति रहनी चाहिए। शक्तिहीन वक्ता वक्तृत्व करे नहीं तो वक्तामें बडा नाश ही उत्पन्न होता है।

येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भुर॒ण्यन्तं॒ जनाँ॒ अनु॑ । त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ १८ ॥
वि द्यामे॑षि॒ रज॑स्पृ॒थ्वह॒र्मिमा॑नो अ॒क्तुभिः॑ । पश्य॒ञ्जन्मा॑नि सूर्य ॥ १९ ॥
स॒प्त त्वा॑ ह॒रितो॒ रथे॒ वह॑न्ति देव सूर्य । शो॒चिष्के॑शं विचक्षण ॥ २० ॥
अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युवः॒ सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्यः॑ । ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः ॥ २१ ॥ (१०५)

[सूक्त ४८]

(ऋषिः — (१-३) खिलम् ४-६ सर्पराज्ञी । देवता — सूर्यः गौः ।)

अ॒भि त्वा॒ वर्च॑सा गिरः॒ सिञ्च॑न्ती॒राच॑र॒ण्यवः॑ । अ॒भि व॒त्सं न धे॒नवः॑ ॥ १ ॥
ता अ॑र्षन्ति शु॒भ्रियः॑ पृ॒ञ्चन्ती॒र्वर्च॑सा प्रि॒यः । जा॒तं जा॒त्रीर्यथा॑ हृ॒दा ॥ २ ॥
वज्रा॑पव॒साध्यः॑ की॒र्तिर्म्रि॒यमा॑ण॒माव॑हन् । मह्य॒मायु॑र्घृ॒तं पयः॑ ॥ ३ ॥
आयं गौः पृश्नि॑रक्रमी॒दस॑दन्मा॒तरं॑ पु॒रः । पि॒तरं॑ च प्र॒यन्त्स्वः॑ ॥ ४ ॥
अ॒न्तश्च॑रति रोच॒ना अ॒स्य प्रा॒णाद॑पान॒तः । व्य॑ख्यन्महि॒षः स्वः॑ ॥ ५ ॥

होता है तथा (क्षाः मिमे मिमानः अक्तुभिः) अक्तके दर्शनके लिये सब विश्वके प्रति तू जाता है ॥ १७ ॥ (ऋ. १।५०।७)

हे (पावक वरुण) पवित्र करनेवाले श्रेष्ठ देव ! (येन चक्षसा) जिस आंखसे (त्वं जनान् भुरण्यन्तं अनु पश्यसि) तू मनुष्योंमें भरण-पोषण करनेवाले मनुष्यको देखता है उससे मुझे देख ॥ १८ ॥ (ऋ. १।५०।६)

सूर्य ! (अक्तुभिः अहः मिमानः) रात्रियोंसे दिनको मापता हुआ (पृथु रजः द्यां एषि) विस्तृत अन्तरिक्ष लोकको और द्युलोकको प्राप्त होता है और (जन्मानि पश्यन्) सब जन्म लेनेवालोंको देखता है ॥ १९ ॥ (ऋ. १।५०।७)

हे सूर्य देव ! (सप्त हरितः) सात किरण (शोचिष्केशं विचक्षणं त्वा) शुद्ध करनेवाले किरण तथा दर्शक ऐसे तुमको (रथे वहन्ति) रथमें चलाते हैं ॥ २० ॥ (ऋ. १।५०।८)

(सूरः रथस्य) ज्ञानमय रथको (नप्त्यः सप्त शुन्ध्युवः अयुक्त) सात शुद्ध करनेवाले किरण जोडे हैं। (ताभिः स्वयुक्तिभिः याति) उनसे अपनी योजनाओंसे वह जाता है ॥ २१ ॥ (ऋ. १।५०।९)

इस सूक्तमें १-१२ मंत्र इन्द्र देवताके हैं और १३-२१ तकके मंत्र सूर्य देवताके हैं।

(सूक्त ४८)

(आचरण्यवः) वारंवार प्राप्त होनेवाली (गिरः) हमारी स्तुतियां (वर्चसा त्वा सिञ्चन्तीः) तेजसा तेरे पास सिंचन करती हैं (वत्सं धेनवः अभि न) बछडेके पास जैसी गौवें वारंवार जाती हैं ॥ १ ॥

(जातं जात्रीः यथा हृदा) उत्पन्न हुए बच्चेको जैसी माताएं हृदयके साथ मिलाती हैं उस तरह हमारी स्तुतियां (वर्चसा पृञ्चन्तीः) तेजसे संयुक्त होती हैं (प्रियः शुभ्रियः ताः अर्षन्ति) और प्रिय शुभ्र वचन मानो प्रकट करती हैं ॥ २ ॥

(वज्रापवसाध्यः) वज्र अथवा रोग आदि (कीर्तिः) तथा कीर्ति (म्रियमाणं आवहन्) मरनेवालेके पास आते हैं। (मह्यं आयुः घृतं पयः) मुझे दीर्घ आयु घी और दूध मिले ॥ ३ ॥

(अयं गौः) यह गतिशील सूर्य (मातरं पुरः असदत्) अपनी माता भूमिको आगे करता है (पितरं च प्रयन्) और अपने पिता स्वर्ग प्रकाशी द्युलोकमें जाते और घूमता हुआ (पृश्निः आक्रमीत्) आकाशमें भ्रमण करता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१८९।१)

(अस्य रोचना) इसकी ज्योति (प्राणात् अपानतः) प्राण और अपान करनेवालोंके (अन्तः चरति) अन्दर

त्रिंशद्धामा वि राजति वाक्पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६ ॥ (११२)

[सूक्त ४९]

(ऋषिः — १-७ खिलम् । ४-५ गोषाः ५-७ मेध्यातिथिः ।)

पञ्छक्का वायुमारुहन्नन्तरिक्षं सिपासथः । स देवा अमदन्वृषा ॥ १ ॥
शक्रो वायुमसृष्टायोरुवायो अपृण्णुहि । महिष्ठ आ मधुर्दिवि ॥ २ ॥
शक्रो वायुमपृण्णुहि धामंधर्मन्विराजति । विमदन्बर्हिरासरन् ॥ ३ ॥
य यो दुस्समृतीषह वसोर्मन्दानम न्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ ४ ॥
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ५ ॥
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६ ॥
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न सन्नशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७ ॥ (११९)

संचार करती है और वह (महिषः स्वः वि अचकत्) बडे तेजस्वी सूर्यको ही प्रकाशित करती है ॥ ५ ॥

(ऋ. १०।१८९।२)

(पतङ्गः त्रिंशत् धाम) अहोरात्रके तीस धाम अर्थात् मुहूर्त (अहः द्युभिः प्रति वि राजति) नियमसे इसके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं। उसकी प्रशंसाके लिये (वाक् पतङ्गः अशिश्रियत्) हमारी वाणी सूर्यका आश्रय करती है ॥ ६ ॥

(ऋ. १०।१८९।३)

यह भूमिके चारों ओर भ्रमण करता है और भूमि सहित यह सूर्यके चारों ओर घूमता है। इस प्रकार भूमि सहित यह सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है और अपने मार्गसे आकाशमें संचार करता है।

इसके किरण इस प्रकार क्रमसे ऊपर प्रकाशित होते हैं और वे इस प्रभुके महत्त्वको व्यक्त करते हैं।

अहोरात्रके तीस मुहूर्तोंमें इसीका प्रकाश सबको तमसे बचाता है। इसलिये इस सूर्यकी प्रशंसा हमारी वाणीका करती रहती है।

(सूक्त ४९)

(यत् द्राक्षा वायुं आरुहन्) जब पक्षियोंने वायुपर आरोहण किया (अन्तरिक्षं सिपासथः) अन्तरिक्षको जीतना चाहा तब (वृषा देवाः स अमदन्) बलवान् देवोंने आनंद मनाया ॥ १ ॥

(शक्रः वायुं असृष्टाय) शक्तिमानने वायुको पैदा करनेवाली बनाया, (उरुवायः अपृणुहि) बडी वायुको भरपूर बनाया। (मंहिष्ठः दिवि आ मदः) बडेने द्युलोकमें हर्ष बनाया ॥ २ ॥

(शक्रो वायुं अपृण्णुहि) शक्तिमानने वायुको प्रबल बनाया (धामधर्मन् विराजति) वह स्थानपर वह शासन करता है। (विमदन् बर्हिः आसरन्) आनन्द मनाता हुआ वह आसनपर बैठा है ॥ ३ ॥

४-७ देखो (१ । ११ । ४)

१ द्राक्षा वायुं आरुहन्— पक्षी वायुपर चढे। वायुमें शक्ति रहनी चाहिये। अन्यथा पक्षी वायुपर चढ नहीं सकते। वायुमें बडा सामर्थ्य रहता है।

[सूक्त ५०]

(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

कन्नव्यो॑ अत॒सीनां॑ तु॒रो गृ॑णीत॒ मर्त्यः॑ ।
न॒ही न्व॑स्य महि॒मान॑मिन्द्रि॒यं स्व॑र्गृ॒णन्त॑ आन॒शुः ॥ १ ॥
कदु॑ स्तु॒वन्त॑ ऋतयन्त दे॒वत॒ ऋषि॒ः को विप्र॑ ओहते ।
क॒दा हवं॑ मघवन्निन्द्र सुन्व॒तः कदु॑ स्तुव॒त आ ग॑मः ॥ २ ॥ (११९)

[सूक्त ५१]

(ऋषिः — १-२ प्रस्कण्वः ३-४ पुष्टिगुः । देवता — इन्द्रः ।)

अ॒भि प्र वः॑ सु॒राध॑स॒मिन्द्र॑मर्च॒ यथा॑ वि॒दे ।
यो ज॑रि॒तृभ्यो॑ म॒घवा॑ पुरू॒वसु॑ः स॒हस्रे॑णेव॒ शिक्ष॑ति ॥ १ ॥

---

२ अन्तरिक्षे सिषासथः— अन्तरिक्षमें जीतनेकी शक्ति वाणीमें रहती है ।

३ कृपा देवा सं अमदन्— अन्नसे देव इससे हर्ष करते हैं । किसीकी वाणीमें शक्ति उत्पन्न हुई तो देवता उससे हर्षित होते हैं और वे उसकी सहायता करते हैं । उसकी वाणीमें दैवी शक्ति उत्पन्न होती है ।

४ शाक्मा वाचं अधूषत— सामर्थ्यवान अपनी वाणीको शक्तिशाली बनाता है ।

५ उक्थावाचः अधृष्णुहि— वाणीकी अपनी शक्ति है उसको जो बढाता है वह शक्तिशाली होता है ।

६ मंहिष्ठं निधि आमहः— शक्तिशाली पुरोभागमें हर्षसे बढता है । अपनी सामर्थ्यवाली वाणीसे पुरोभागमें भी हर्ष बढता है ।

७ शाक्मा वाचं अधृष्णुहि— सामर्थ्यवानने अपनी वाणीको बलवती बनाया ।

८ धामधमम् पितावसी— उसके स्थान स्थानपर वह अपना शासन चलाता है ।

९ विभवन् बर्हि आसदम्— आसीन होकर वह आसनपर बैठता है अतः स्थानपर विराजता है ।

(सूक्त ५०)

(तुरः मर्त्यः) त्वरासे काम करनेवाला मनुष्य (मर्त्यः) नवीन और (कत् अतसीनां गृणीत) किस रूपसे प्रेरित होते हुए पावेगा ? (अस्य महिमानं इन्द्रियं गृणन्तः) इसकी महिमा और शक्तिका गान करते हुए कौन (स्वः नहि आनशुः) स्वर्गधाम नहीं पाता ? ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३।१३)

त्वरासे कार्य करनेवाला भक्त अपनी बुद्धियोंसे नवीन गीत गाता है और उस प्रभुकी महिमाका गान करके वह भक्त स्वर्गधामको प्राप्त करता है । सुख प्राप्त करता है । मंत्रोंका गान करनेसे मनुष्य सुखी होता है ।

(कत् उ स्तुवन्तः) कब स्तुति करनेवाले (ऋतयन्तः) सत्यकी उपासना करनेवाले (देवता ऋषिः) देवता और ऋषि (कः विप्रः ओहते) कौन विशेष ज्ञानी तुम्हें बुलाते हैं ? हे इन्द्र ! हे (मघवन्) धनवन् ! (कदा सुन्वतः हवं) कब सोमरस निचोडनेवालेकी प्रार्थना सुनकर (कत् उ स्तुवतः आगमः) कब तुम स्तुति करनेवालेके पास आते हो ? (ऋ. ८।३।१४)

(सूक्त ५१)

(वः) तुम्हारे हितके लिये (सुराधसं इन्द्रं) जो धनी इन्द्रका (यथा विदे) जैसा मालूम है वैसा उसका (अभि प्र अर्च) स्तोत्र गाओ । (यः पुरुवसुः मघवा) जो बहुत धनवाला इन्द्र (जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति) स्तोताओंको सहस्र गुना देता है ॥ १ ॥
(ऋ. ८।४९।१)

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥
प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३ ॥
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४ ॥ (११५)

[सूक्त ५१]

(ऋषिः — १-३ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

उप यं त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

(शतानीक इव) सैकडों सैनिक जिसके साथ हैं ऐसे वीरके समान (धृष्णुया प्र जिगाति) धैर्यसे वह आगे बढता है और (दाशुषे वृत्राणि हन्ति) दाताके लिये शत्रुओंको मारता है। (गिरेः रसाः इव) पर्वतसे जल आता है उस तरह (अस्य पुरुभोजसः दत्राणि प्र पिन्विरे) इस बहुत भोग देनेवाले इन्द्रके दान फैलते हैं ॥ २ ॥

(ऋ. ८।४९।२)

(श्रुतं सुराधसं शक्रं) प्रसिद्ध दानी इन्द्रकी (अभिष्टये) मिलनेके लिये (प्र सु अर्च) अर्चना उत्तम प्रकार कर। (यः) जो (सुन्वते स्तुवते) सोमरस निकालनेवाले और स्तुति करनेवालेको (काम्यं वसु) इष्ट धन (सहस्रेण इव मंहते) सहस्र गुना देता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।५ ।१)

(अस्य इन्द्रस्य) इस इन्द्रकी (महीः दुष्टराः) बडी तथा दुस्तर (समिषः) इच्छाएं तथा (शतानीकाः हेतयः) सैकडों नोकोंवाले इसके शस्त्र हैं। (यत् ईं सुताः अमन्दिषुः) जब इस इन्द्रको सोमरस आनन्द देते हैं तब (गिरिः न) पर्वतके समान वह (मघवत्सु भुज्मा पिन्वते) दानियोंको भोग देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।५ ।२)

१ सुराधसं इन्द्रं यथा विदे अभि प्र अर्च — उत्तम दान देनेवाले इन्द्रकी जैसी जानी है वैसी स्तुति गाओ। उसका गुणवर्णन करो।

२ पुरुवसुः मघवा जरितृभ्यः सहस्रेण इव शिक्षति — बहुत धनवाला इन्द्र है वह स्तोताओंको सहस्र प्रकारसे धन देता है। अतः उसकी स्तुति करना लाभदायक है।

३ शतानीक इव धृष्णुया प्र जिगाति — सैकडों सैनिकोंको अपने साथ रखनेवाला वीर जैसा धैर्यसे शत्रुसैन्यमें घुसता है वैसा यह इन्द्र युद्धमें घुसता है।

४ दाशुषे वृत्राणि हन्ति — दाताकी रक्षा करनेके लिये शत्रुको मारता है और दाताकी रक्षा करता है।

५ गिरेः रसाः इव अस्य पुरुभोजसः दत्राणि प्र पिन्विरे — पर्वतसे जैसा जल निकलता है उस तरह इस बहुत भोग देनेवाले इन्द्रसे प्राप्त होनेवाले दान चारों ओर फैल रहे हैं।

६ श्रुतं सुराधसं शक्रं अभिष्टये प्र सु अर्च — सुप्रसिद्ध उत्तम दान देनेवाले इन्द्रकी अपने कल्याणके लिये उत्तम अर्चना कर।

७ यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेण इव मंहते — जो इन्द्र सोमरस निकालनेवाले स्तोताके लिये इष्ट धन सहस्र प्रकारसे देकर उसको बडा महान् बनाता है।

८ अस्य इन्द्रस्य महीः दुष्टराः समिषः शतानीकाः हेतयः — इस इन्द्रके बडे दुस्तर मनोभाव हैं और सैकडों सैनिकोंके साथ रहनेवाले शस्त्र भी इसके साथ हैं।

९ यत् ईं सुताः अमन्दिषुः गिरिः न मघवत्सु भुज्मा पिन्वते — जब इस इन्द्रको सोमरस आनन्दित करते हैं तब वह पहाडके समान दानियोंको अनेक भोग देता है। पर्वत जैसे फल मूल फूल देता है वैसा यह इन्द्र भी नाना भोग देता है।

(सूक्त ५१)

(उप सुतावन्तः वृक्तबर्हिषः) हम सोमरस लिये आसन बिछाकर (स्तोतारः) तेरे स्तोतागण (पवित्रस्य

स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥ (११८)

[सूक्त ५३]

(ऋषिः — १-३ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ २ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३ ॥ (१२१)

प्रस्रवणेषु) पवित्र जलधाराएं जहां बहती हैं वहां हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले ! (आपः न) जलोंके समान (त्वा च परि आसते) तेरे चारों ओर बैठते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३३।१)

हे (वसो) निवासक ! (उक्थिनः एके नरः) स्तोत्र पाठ करनेवाले कई मनुष्य (सुते) सोमरस निकलने पर (त्वा निः स्वरन्ति) तुझे प्रेमसे बुलाते हैं । हे इन्द्र ! (कदा सुतं तृषाण) कब सोमरसके लिए प्यासा होकर (स्वब्दी वंसगः इव) सुन्दर शब्द करनेवाले बैलकी तरह (ओकः आगमः) घरमें तू आ जायगा ॥ २ ॥ (ऋ. ८।३३।२)

हे (धृष्णो धृषत्) वीरोंके साथ वीर ! (कण्वेभिः सहस्रिणं वाजं आ दर्षि) कण्वोंके द्वारा प्रार्थित होनेपर तू सहस्र गुणा अन्न आ देता है । हे (विचर्षणे मघवन्) ज्ञानी शक्तिमान् इन्द्र ! हम (पिशङ्गरूपं गोमन्तं) पीले रंगवाले सोनेके समान गौओंसे युक्त धन (मक्षू ईमहे) शीघ्र मिले ऐसा चाहते हैं ॥ ३ ॥

१ धृष्णो धृषत्— वीरके साथ वीर इन्द्र ।

२ विचर्षणे मघवन्— बुद्धिमान् धनवान् इन्द्र ।

३ पिशङ्गरूपं गोमन्तं मक्षू ईमहे— सोना और गौवें हमें शीघ्र मिलें ऐसा चाहते हैं । पिशङ्गरूप - पीले रंगवाला सुवर्ण हमें चाहिये । गौवें भी चाहिये ।

(सूक्त ५३)

(सुते सचा पिबन्तं ईं कः वेद) सोमरस साथ बैठकर पीनेवालेको कौन ठीक तरह जानता है ! (कद् वयः दधे) उसने किस शक्तिको धारण किया है ! (अयं यः ओजसा पुरः विभिनत्ति) यह जो बलसे शत्रुके नगरोंके किलोंको तोडता है वह (शिप्री अन्धसः मन्दानः) सुन्दर शिरस्त्राणवाला सोमरससे आनन्दित होनेवाला है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३३।७)

(वारणः मृगः न) मस्त हाथीकी तरह (दाना) मदमस्त होनेके कारण (पुरुत्रा चरथं दधे) इधर उधर भ्रमण करता है । (सुते आ गमः) सोमरसके स्थानपर तू आ गया तो (त्वा न किः आ नि यमत्) तुझे कोई रोक नहीं सकता । (महान् ओजसा चरसि) बडा होकर बलसे तू घूमता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।३३।८)

(यः उग्रः सन्) जो उग्रवीर है, (अनिष्टृतः) और स्पर्धासे पीछे हटाया नहीं जा सकता (स्थिरः रणाय संस्कृतः) स्थिर रहकर संग्रामके लिये तैयार है । (मघवा) धनवान् इन्द्र (यदि स्तोतुः हवं शृणवत्) यदि वह स्तोताकी प्रार्थना सुनता है (इन्द्रः न योषति) तो इन्द्र दूर नहीं रहेगा (आ गमत्) पास आवेगा ही ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।३३।९)

[सूक्त ५४]

(ऋषिः — १-३ रेभः । देवता — इन्द्रः ।)

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ॥ १ ॥
समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ २ ॥
नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ ३ ॥ (१३४)

---

१ कद् यया: वृधे— वह इन्द्र किस तरहका सामर्थ्य धारण करता है वह (कः वेद) कौन जानता है । उसके सामर्थ्यको कोई नहीं जानता ।

२ अय ओजसा पुरः बिभिनत्ति— वह इन्द्र अपने सामर्थ्यसे शत्रुकी नगरियोंका छेदता है उनपर अपना प्रभुत्व स्थापन करता है । पहिले शत्रुकी नगरियों की शत्रुका पराभव करके उनके किले तोडे ।

३ वारणः न पुरुधा चरथ वृधे— हाथीके समान वह इन्द्र चारों ओर घूमता है ।

४ त्वा न किः आ नि यमत्— तुझे कोई रोक नहीं सकता ।

५ महान् ओजसा चरसि— तू बडा शक्तिसे विचरता है । वीरकी ऐसी शक्ति चाहिये । जिसे कोई कभी रोक न सके ।

६ यः उग्रः सन् अनिष्टतः— जो वीर है और उसे कोई रोक नहीं सकता ।

७ स्थिरः रणाय संस्कृतः— वह वीर युद्धमें स्थिर रहकर युद्ध करनेमें तैयार होता है । कुशलतासे युद्ध करता है ।

८ मघवा इन्द्रः स्तोतुः हवं शृणवत् न योषति आ गमत्— इन्द्र धनवान् है जब वह किसीकी पुकार सुनता है वह ठहरता नहीं तत्काल उसके पास पहुंचता है । वीर ऐसे होने चाहिये ।

(सूक्त ५४)

(विश्वाः पृतनाः अभिभूतरं नरं) सब शत्रुकी सेना-ओंका पराभव करनेवाले नेता (इन्द्रं सजूः ततक्षुः) इन्द्रको देवोंने मिलकर उत्पन्न किया और (राजसे जजनुः च) राज्यशासन करनेके लिये बनाया । (वरः क्रत्वा वरिष्ठ) श्रेष्ठ कर्मोंसे श्रेष्ठ बने उस (आमुरिं) शत्रुको मारनेवाले (उत उग्रं) उग्रवीर (ओजिष्ठं तवसं तरस्विनं) बलवान सामर्थ्यवान् और साहसी युक्त ऐसा यह इन्द्र है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९७।१०)

(ईं स्वर्पतिं इन्द्रं) इस स्वर्गके पति इन्द्रकी (सोमस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिये (रेभासः सं अस्वरन्) स्तोताओंने मिलकर स्तुति की । (यत् धृतव्रतः ओजसा ऊतिभिः स वृधे) तब नियमोंके अनुसार चलनेवाला बलसे और संरक्षक साधनोंसे आगे बढा ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९७।११)

(अभिस्वरा विप्राः) एक स्वरसे ब्राह्मण लोग (चक्षसा) अपनी दृष्टिसे (मेषं नेमिं नमन्ति) उस वीरको अपना प्रेरक बनाते हैं । (सुदीतयः अद्रुहः) दीप्तिमान् द्रोहरहित (तरस्विनः समृक्वभिः) बलवान् स्तोताओंके साथ (वः कर्णे) आपके कानमें सुनाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९७।१२)

वीर इन्द्र इन गुणोंसे युक्त है—

१ विश्वाः पृतनाः अभिभूतरं नरं इन्द्रं सजूः ततक्षुः— सब शत्रुसेनाओंका पराभव करनेवाले नेता इन्द्रको सब देवोंने मिलकर एकमतसे अपना अग्रगामी बना दिया ।

२ राजसे जजनुः— राज्यशासन करनेके लिये निर्माण किया । चुनाव करके सबने एकमतसे पसंद किया ।

३ क्रत्वा वर वरिष्ठं आमुरिं उग्रं ओजिष्ठं तवसं तरस्विनं ततक्षुः— पुरुषार्थके श्रेष्ठ कर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ शत्रुका वध करनेवाला वीर उग्र सामर्थ्यवान् बलवान् शीघ्र कार्य करनेवाले देव वीर इन्द्रको सब देवोंने अपना राज्य शासन करनेके लिये चुनकर रखा ।

४ धृतव्रतः ओजसा समूतिभिः ईं स्वर्पतिं वृधे नियमोंके अनुसार चल रहे अपने तेजस्वी साथ ले

[सूक्त ५५]

(ऋषिः — १-३ रेभः। देवता — इन्द्रः।)

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १ ॥
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ २ ॥
यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन्तं धेहि मा पणौ ॥ ३ ॥ (११७)

युक्त ऐसे सर्वके राज्यके शासनपर अपनी वृद्धि हो इस इच्छासे देवोंने एकमतसे इन्द्रको नियुक्त किया।

५ अभिस्वरा विप्राः चक्षसा मेषं नेमि अभ्यनूषत— एक स्वरसे ज्ञानी लोग अपनी दृष्टिसे भाग देनेवालेको एकत्र नियुक्त करते हैं।

४ सुदीतयः अद्रुहः तपस्विनः सुमृकमिः वाः कर्मे— उत्तम तेजस्वी आपसमें द्रोह न करनेवाले देववान् इन सबोंको आपके कार्यमें कहते हैं कि यह इन्द्र श्रेष्ठ है।

(सूक्त ५५)

(तं मघवानं) उस धनवान् (उग्रं सत्रा शवांसि दधानं) उग्रवीर सदा बलोंको धारण करनेवाले (अप्रतिष्कुतं) पीछे न हटनेवाले (इन्द्रं जोहवीमि) इन्द्रको मैं बार बार बुलाता हूं। (मंहिष्ठ) वह महान् (यज्ञियः) पूजनीय इन्द्र (नः राये) हमें धनादि देनेके लिये (गीर्भिः आ ववर्तत्) स्तुतियोंसे हमारी ओर आ जाय। वह (वज्री) वज्रधारी (नः विश्वा सुपथा कृणोतु) हमारे सब मार्ग उत्तम बनावे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९७।१३)

हे (स्वर्वान् इन्द्र) तेजस्वी इन्द्र ! (या भुजः असुरेभ्यः आभरः) जो भोग तूने असुरोंसे लाये हैं हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (स्तोतारं अस्य वर्धय) स्तोत्रपाठ करनेवालेके लिये इन भोगोंका वर्धन कर तथा (ये च त्वे वृक्तबर्हिषः) जो तेरे लिये आसन देते हैं ॥ २ ॥

(ऋ. ८।९७।१)

हे इन्द्र ! (यं त्वं) जिसको तू (अश्वं गां अव्ययं भागं दधिषे) घोडा गौ तथा अक्षय भाग धारण करता है (तस्मिन् दक्षिणावति सुन्वति यजमाने) दक्षिणा देनेवाले सोमरस निकालनेवाले यजमानमें (तं धेहि) उसको दे। (मा पणौ) पण्य व्यवहार करनेवालेको न दे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९७।२)

१ तं उग्रं शवांसि सत्रा दधानं अप्रतिष्कुतं इन्द्रं जोहवीमि— उस उग्रवीर सब बलोंको साथ साथ धारण करनेवाले पीछे न हटनेवाले इन्द्रको बारबार मैं बुलाता हूं। उसकी मैं बारबार स्तुति करता हूं।

२ मंहिष्ठः यज्ञियः नः राये गीर्भिः आ ववर्तत्— महान् पूजनीय वह इन्द्र हमें धन देनेके लिये हमारी स्तुतियोंसे हमारी ओर आ जाय।

३ वज्री नः विश्वा सुपथा कृणोतु— वह वज्रधारी इन्द्र हमारे उन्नतिके सब मार्ग उत्तम निष्कंटक हमारे लिये कर बना दे।

४ स्वर्वान् इन्द्र ! या भुजः असुरेभ्यः आभरः— हे तेजस्वी इन्द्र ! जो भोग तू असुरोंसे लाये हैं। स्तोतारं अस्य वर्धय— स्तुति करनेवालोंको ये भाग अधिक प्रमाणमें मिलें ऐसा कर।

५ ये च त्वे वृक्तबर्हिषः— जो तेरे लिये आसन देते हैं उनको भी ये भाग अधिक प्रमाणमें मिलें।

शत्रुओंका पराभव करके उनका इन्द्र हरे और जो भोग मिले वे भाग अपने अनुयायियोंको देवे।

६ यं त्वं अव्ययं भागं गां अश्वं दधिषे तं यजमाने धेहि मा पणौ— जिस भागको जो अब अविनाशी तू धारण करता है वह आप यज्ञकर्ताको ही दे दो। कंजूसको न दो। दान देनेवालेको दो दान न देनेवालेको केवल व्यापार करनेवालेको ही न दे।

[सूक्त ५९]

(ऋषिः — १-६ गोतमः । देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६ ॥ (३४१)

(सूक्त ५९)

(नृभिः) मनुष्योंने (वृत्रहा इन्द्रः) शत्रुको मारनेवाले इन्द्रको (शवसे मदाय वावृधे) बल और आनन्दके लिये बढाया है । (तं इत् महत्सु आजिषु) उसको हम बडे युद्धोंमें (उत ईं अर्भे) और उसे छोटे युद्धोंमें (हवामहे) बुलाते हैं (सः वाजेषु नः प्र अविषत्) वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करता है ॥ १ ॥ (ऋ. १।८१।१)

हे वीर ! तू (सेन्यः असि हि) अकेला सेनाके बराबर है । (भूरि पराददिः) तू बहुत शत्रुओंको दूर करनेवाला है । तू (दभ्रस्य वृधः चित् असि) छोटेको बढानेवाला है । (यजमानाय शिक्षसि) यजमानके लिये तू धन देता है । (सुन्वते ते भूरि वसु) सोमरस निचोडनेवालेके लिये तेरे पास बहुत धन है ॥ २ ॥ (ऋ. १।८१।२)

(यत् आजयः उदीरत) जब संग्राम शुरू होते हैं (धना धृष्णवे धीयते) तब धन वीरके लिये रखे जाते हैं । (मदच्युता हरी युक्ष्व) मद गिरानेवाले दो घोडोंको जोत (कं हनः) किसको तूने मारा ? (कं वसौ दधः) किसको धनमें रखा ? हे इन्द्र ! (अस्मान् वसौ दध) हमें धनमें रख दे ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८१।३)

हे (ऋजुक्रतुः) सरल इन्द्र ! (मदेमदे) प्रसन्न होने पर तू (गवां यूथा नः ददिः हि) गौओंके झुण्डोंको देता है । (उभया हस्त्या) दोनों हाथोंसे (पुरू शता) सैकडों प्रकारका (वसु) धन (सं गृभाय) इकट्ठा कर (शिशीहि) हमें तीक्ष्ण बुद्धिमान् कर और हमें (रायः आ भर) धन लाकर दे ॥ ४ ॥ (ऋ. १।८१।७)

(सुते मादयस्व) सोमरस निचोडनेपर अपनेको हर्षित कर दे । हे शूर ! (शवसे राधसे सचा) बल और धन देनेके लिये साथ साथ तैयार रह । (त्वा पुरूवसुं विद्म हि) हम तुझे धनवाला करके जानते हैं । (कामान् उप ससृज्महे) अपनी कामनाएं तेरे पास रखी हैं । (अथ नः अविता भव) अब हमारा रक्षक हो ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८१।८)

हे इन्द्र ! (ते एते जन्तवः) ये तेरे उपासक लोग (विश्वं वार्यं पुष्यन्ति) सब स्वीकार करने योग्य धनको बढाते हैं । (जनानां अर्यः) तू जनोंका स्वामी है । (अदाशुषां जनानां वेदः) कंजूस मानवोंके पासका धन (अन्तः ख्यः हि) तू देखता है (तेषां वेदः नः आ भर) उनका धन हमारे लिये भर दे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।८१।९)

[सूक्त ५७]

(ऋषिः — १-३ मधुच्छन्दाः। ४-७ विश्वामित्रः ८ १० गृत्समदः, ११-१६ मेध्यातिथिः।
देवता — इन्द्रः।)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

---

१ नृभिः वृत्रहा इन्द्रः शवसे मदाय वावृधे— मनुष्य शत्रुनाशक इन्द्रकी बल और आनंद बढानेके लिये महिमा गाते हैं। जो इस इन्द्रकी स्तुति गाते हैं उनका बल बढता है और बल बढनेसे हर्ष भी बढता है।

२ तं महत्सु आजिषु उत अर्भे हवामहे— उस इन्द्रको जैसे हम बडे युद्धोंमें बुलाते हैं वैसी तरह छोटी स्पर्धामें भी सहायताके लिये बुलाते हैं।

३ सः वाजेषु नः प्र अविषत्— वह युद्धोंमें हमारी रक्षा करता है।

४ हे वीर! सेन्यः असि— हे वीर! तू अकेला होता हुआ सैन्य जैसा प्रभावी है। एक सैन्यकी शक्ति तुम्हारी अकेलेकी शक्तिके बराबर है।

५ भूरि पराददिः— बहुत शत्रुओंको दूर तू करता है।

६ वृधस्य वृधः असि— श्रेष्ठ सामर्थ्यवालेका सामर्थ्य बढानेवाला तू है।

७ सुन्वते यजमानाय भूरि वसु शिक्षसि— यज्ञ करनेवालेको तू बहुत धन देता है।

८ यत् आजयः उदीरते धना धृष्णवे धीयते— जब युद्ध छिड जाते हैं तब धन शूर वीरके लिये ही रखा जाता है। शूरका विजय होता है इसलिये उसका ही धन मिलता है।

९ कं हनः?— किस शत्रुको तूने मारा?

१० कं वसौ दधः?— किसको धनमें रखा है?

११ हे इन्द्र! अस्मान् वसौ दधः— हे इन्द्र! तूने हमें धनमें रखा है।

१२ हे ऋजुक्रतुः! मदेमदे गवां यूथा नः ददि— हे सरल कर्मवाले इन्द्र! प्रत्येक हर्षके समय गौओंके झुण्ड तूने हमें दिये।

१३ उभया हस्त्या पुरुशता वसु सं गृभाय— दोनों हाथोंसे सैकडों प्रकारके धन इकट्ठा करके हमें दे।

१४ शिशीहि, रायः आ भर— हमें तीक्ष्ण बुद्धिमान कर और हमें धन लाकर भर दे।

१५ शवसे राधसे सखा— बल और धनके लिये तू तैयार है।

१६ त्वा पुरूवसुं विद्म— तुझे बडा धनवान हम जानते हैं।

१७ कामान् उप ससृज्महे— हमारी इच्छाएं तुम्हारे सामने रखते हैं।

१८ नः अविता भव— हमारा रक्षक हो।

१९ हे इन्द्र! ते एते अस्तवाः विश्वं वार्यं पुष्यन्ति— हे इन्द्र! तेरे ये उपासक सब प्रकारके धनको बढाते हैं।

२० जनानां अर्यः अदाशुषां वेदः अस्तः आ। तेषां वेदः आ भर— तू जनोंका स्वामी है। कंजूसोंका धन ढूंढ निकाल और वह धन हमें दे दो। हम इस धनसे वे वे यज्ञ करेंगे जिनसे जनताका कल्याण होगा।

(सूक्त ५७)

(गोदुहे सुदुघां इव) दोहन करनेके समय जिस तरह उत्तम दूध देनेवाली गौको बुलाते हैं उस तरह (द्यवि द्यवि) प्रतिदिन हम (सुरूपकृत्नुं ऊतये जुहूमसि) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्रको हम अपनी सुरक्षा करनेके लिये बुलाते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।४।१)

(नः सवना उप आ गहि) हमारे यज्ञोंमें आओ। तू (सोमपाः) सोम पीनेवाला है अतः (सोमस्य पिब) सोमरस पी। (रेवतः मदः गोदा इत्) धन वैसे धनवानका हर्ष गौओंको देनेवाला है ॥ २ ॥ (ऋ. १।४।२)

(अथ ते अन्तमानां सुमतीनां विद्याम) अब हम तेरी अन्दरकी सुमतियोंको हम प्राप्त करें। (नः मा अति ख्यः) हमें परे न रख (आ गहि) हमारे पास आ ॥ ३ ॥ (ऋ. १।४।३)

शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ५ ॥
अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६ ॥
अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः । उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७ ॥
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८ ॥
इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९ ॥
इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥ १० ॥

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ ११ ॥
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥ १२ ॥
य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ १३ ॥
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्परि स्तोतार आसते ॥ १४ ॥
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ १५ ॥
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ १६ ॥ (१५१)

[सूक्त ५८]

(ऋषिः — १-४ नृमेधः । ४ जमदग्निः । देवता — १-३ इन्द्रः । ४ सूर्यः ।)

भायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ १ ॥

४-६ [illegible] अथर्व० [illegible] १-३ ।
११-१२ देखो अथर्व० [illegible] १-२ ।
१३-१६ देखो अथर्व० [illegible] १-३ ।

१ इन्द्र [illegible] — [illegible] है [illegible] है ।

२ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि — [illegible] है ।

१ देवताः मद्राः गावाः — [illegible] होता है ।

(मन्त्र ५८)

(सूर्यं भायन्त इव) [illegible] (इन्द्रस्य विश्वा वसूनि इत् भक्षत) [illegible] (जाते जनमाने) [illegible] (प्रति भागं न) [illegible] (ओजसा दीधिम) [illegible] है ॥ १ ॥
(ऋ० ८। [illegible] ।१)

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २ ॥
बण्महाँ असि सूर्य बळादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३ ॥
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४ ॥ (१११)

[सूक्त ५९]

(ऋषिः — १-३ मेध्यातिथिः ; ४ वसिष्ठः । देवता — इन्द्रः ।)

उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥ १ ॥
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ २ ॥
उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३ ॥

(अनर्शरातिं वसुदां उप स्तुहि) जिसके दानको कभी हानि नहीं पहुंचती उस धनदाताकी स्तुति कर। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान उत्तम हैं। (मनः दानाय चोदयन्) अपने मनको वह दानके लिये प्रेरित करता है इस कारण (अस्य कामं विधतः) इसकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेवाले पर वह (न रोषति) क्रोध नहीं करता ॥ २ ॥

(ऋ. ८।९९।४)

हे सूर्य ! (बट् महाँ असि) तू निःसंशय बडा है। हे आदित्य ! (बट् महाँ असि) तू निश्चयसे बडा है। (ते सतः महः महिमा) तुझ बडेकी महिमा महान् (पनस्यते) गाया जाता है। हे देव ! (अद्धा महाँ असि) तू निश्चय बडा है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१०१।११; अथर्व १३।२।२९)

हे सूर्य (श्रवसा बट् महाँ असि) यशसे तू बडा है। हे देव (सत्रा महाँ असि) तू सदा महान् है। (मह्ना) महत्त्वसे (देवानां असुर्यः पुरोहितः) तू देवोंका हितकारी अग्रणी हुआ है ऐसी (ज्योतिः) तेरा प्रकाश (अदाभ्यं विभु) न दबनेवाली और व्यापक है ॥ ४ ॥

(ऋ. ८।१०१।१२)

१ दान अभिमानसे अभिमानके साथ हृदयमें दम्भ हुए तथा करते हैं। इस कारण भावसे उसमें वैसा धारण करते हैं वैसा हम सबके सबको धारण करें। सबमें ही सबकी धारणा हो सकती है।

१ अनर्शरातिं वसुदां उप स्तुहि — जिसके दानमें कभी भी कमी नहीं होती वैसा धनदाता इन्द्रकी स्तुति कर।

२ इन्द्रस्य भद्राः रातयः — इन्द्रके दान कल्याण करनेवाले हैं।

४ मनः दानाय चोदयन् — मन दानके लिये प्रेरित कर।

५ अस्य कामं विधतः न रोषति — इस इन्द्रके अनुकूल कार्य करनेवाले पर वह कदापि रोष नहीं करता।

६ महान् असि — तू बडा है।

७ देवानां असुर्यः पुरोहितः अदाभ्यं विभु ज्योतिः — देवोंका वह कल्याणकारी अग्रेसर है, उसका तेज न दबनेवाला और चारों ओर फैला है।

(सूक्त ५९)

१-२ देखो (अथर्व २०।१०।१-२) (ऋ. ८।३।१५-१६)

(अस्य अंशः उत् रिच्यते इत् नु) इसका भाग बढता ही जाता है मानो ! (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान। (यः इन्द्रः हरिवान्) जो इन्द्र घोडोंवाला है (तं रिपः न दभन्ति) उस इन्द्रको शत्रु नहीं

मन्द्रमक्षरं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४ ॥ (१७०)

[सूक्त ६०]

(ऋषिः — १-३ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ४-६ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः । एवा ते राध्यं मनः ॥ १ ॥
एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः । अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २ ॥
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते । मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥ (१७६)

पता चलता। वह (सोमिनी दक्षं दधाति) सोमयाग करनेवालोंमें शक्ति रखता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।३२।१२)

(मन्द्रं सुधितं सुपेशसं मन्त्रं) उत्तम ऊंचा और सुन्दर रूपवाला मंत्र (यज्ञियेषु आ दधात) यज्ञकर्मोंमें प्रयुक्त करो। (ये इन्द्रे कर्मणा भुवत्) जो इन्द्रमें कर्मसे आश्रित होते हैं वे (पूर्वीः प्रसितयः चन तरन्ति) बहुतसे बन्धनोंको पार करते हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।३२।१३)

१ त्रिष्टुभः धर्म न अस्य मंहः अद् रिक्षपते— जिसकी वीरता मन करता है उस तरह इस इन्द्रका मन करता ही जाता है। क्योंकि वह इन्द्र सदा विजयी रहता है।

२ त रिपः न दमन्ति— उसको शत्रु नहीं दबाते क्योंकि वह विजयी शूर है।

३ ये इन्द्रे कर्मणा भुवत् पूर्वीः प्रसितयः तरन्ति— जो इन्द्रमें शुभ कर्म आश्रय करते हैं उनके सब पूर्वके बन्धन दूर होते हैं। यह इन्द्रका प्रभाव है।

(सूक्त ६०)

(एव वीरयुः हि असि) ऐसा तू वीरके साथ रहनेवाला है। (शूरः उत स्थिरः एव) तू शूर और स्थिर है। (एवा ते मनः राध्यं) ऐसा तेरा मन आराधनीय है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९२।२८)

हे (तुवीमघ) बहु धनवाले! (विश्वेभिः धातृभिः) सब धारण करनेवालोंने (एवा रातिः धायि) तेरी इस दानकी धारणा की है हे इन्द्र! (अधा मे सखा चित्) तू अब मेरे साथ रह ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९२।२९)

हे (वाजानां पते) बलोंके स्वामिन्! (ब्रह्मा इव) ब्रह्माके समान (तन्द्रयुः मा सु भुवः) आलसी न हो। (गोमतः सुतस्य मत्स्व) दूधसे मिले सोमरससे आनन्दित हो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९२।३०)

(पक्वा शाखा न) पके फलोंवाली शाखाकी तरह (दाशुषे) दाताके लिये (अस्य सूनृता विरप्शी मही गोमती एव) इस इन्द्रकी शुभ वाणी, महिमावाली और बडी गौओंवाली होती है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।८।८)

हे इन्द्र! (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) दाताके लिये (ते विभूतयः ऊतयः) तेरी विभूतियां और रक्षाएं (एवा ते सद्यः चित् सन्ति) निःसंदेह तत्काल प्राप्त होनेवाली हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८।९)

(सोमपीतये इन्द्राय) सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये (अस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या एव) इसके लिये स्तोत्र और गीत गाने योग्य हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. १।८।१०)

१ वीरयुः शूरः उत स्थिरः असि— हे इन्द्र! तू वीरोंके साथ रहनेवाला शूर और युद्धमें स्थिर रहकर युद्ध करनेवाला है।

२ एवा ते मनः राध्य— ऐसा तेरा मन आराधनीय है।

३ हे तुवीमघ! विश्वेभिः धातृभिः एवा रातिः धायि— हे बहुधनवाले इन्द्र! सब धारकोंने तेरी दानकी धारणा की है। धारकोंका तेरी दान शक्तिपर विश्वास है।

४ अधा मे सखा चित्— अब मेरा मित्र होकर तू रह।

[सूक्त ९१]

(ऋषिः — १-६ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

त ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् । उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ १ ॥
येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ । मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ २ ॥
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा । वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ३ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ४ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी । गिरींरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ ५ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ६ ॥ (१०७)

---

५ तम्रयुः मा मुचः— आलसी न बन । उद्यमी होकर रह ।

६ पका शाखा न दाशुषे अस्य सूनृता विरप्शी मही गोमती एव— पके फलोंसे युक्त शाखाके समान दाताके लिये इसकी सुवृत्ति बडी आनंददायक और गौवें देनेवाली होती है ।

७ हे इन्द्र ! मावते दाशुषे ते विभूतयः ऊतयः सद्यः चित् सन्ति— हे इन्द्र ! मेरे जैसे दाताके लिये तेरी विभूतियां और तेरे संरक्षण तत्काल प्राप्त होते हैं ।

(सूक्त ९१)

हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (ते तं मदं गृणीमसि) हम तेरे उस आनन्दकी प्रशंसा करते हैं कि जो (वृषणं) बलवान्, (पृत्सु सासहिं) युद्धोंमें विजयी (लोककृत्नुं) स्थानके लिये आश्रय देनेवाला और (हरिश्रियं) जो सुवर्णकी शोभावाला है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१५।४)

(येन ज्योतींषि) जिससे तेज (आयवे मनवे च विवेदिथ) आयु और मनुके लिये दिया था (मन्दानो) तू आनंदित होकर (अस्य बर्हिषो विराजसि) इस आसन पर विराजमान हो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१५।५)

(तद् अद्य) जो आज (उक्थिनः पूर्वथा अनु स्तुवन्ति) स्तोत्रपाठक पूर्वकी तरह स्तुति गाते हैं तू (दिवे दिवे वृषपत्नीः अपः जय) प्रतिदिन बलवानोंके पालन करनेवाले जल पर जय कर ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१५।६)

(तं उ पुरुहूतं पुरुष्टुतं) उस अनेकों द्वारा बुलाये और अनेकों द्वारा स्तुत्य (इन्द्रं) इन्द्रकी (गीर्भिः तविषं) स्तोत्रोंसे स्तुति किये हुए की (आ विवासत) पूजा करो ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१५।१)

(यस्य द्विबर्हसः बृहत् सहः) जिस द्विगुणित बलवाले इन्द्रके बडे सामर्थ्यने (रोदसी दाधार) द्युलोक और भूलोकका धारण किया है और (वृषत्वना) जिसकी शक्तिने (गिरीन् अज्रान्) पर्वतों और मैदानोंको (अपः स्वः) जलों और तेजको धारण किया है ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।१५।२)

(स राजसि) वह तू अकेला शासन करता है । हे (पुरुष्टुत) बहुतों द्वारा स्तुति किये गये (एकः वृत्राणि जिघ्नसे) तू अकेला शत्रुओंको मारता है । हे इन्द्र ! (जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे) विजय और यशके लिये ही यह तू करता है ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।१५।३)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण कहे हैं—

१ अद्रिवः वृषणं पृत्सु सासहिं, लोककृत्नुं हरिश्रियं— वज्रधारी बलवान् युद्धोंमें विजयी लोकोंको आश्रयस्थान देनेवाला और सुवर्णकी कान्तिवाला इन्द्र है ।

२ यस्य बृहत् सहः रोदसी दाधार— जिसके बलने द्युलोक और भूलोकका धारण किया है ।

३ वृषत्वना गिरीन् अज्रान् अपः स्वः— जिसने सामर्थ्यसे पर्वत मैदान जलप्रवाह और ज्योतिका धारण किया है ।

४ स राजसि— वह इन्द्र तू शासन करता है ।

५ पुरुष्टुत ! एकः वृत्राणि जिघ्नसे— हे अनेकों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! तू अकेला ही अनेक शत्रुओंको- अनेक शत्रुओंको मारता है ।

६ जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे— विजय और यश प्राप्त करता है ।

[सूक्त ६२]

(ऋषिः — १-४ सोभरिः; ५-७ नृमेधः; ८-१० गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः । वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे । सखाय इन्द्रमूतये ॥ ३ ॥
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥ ४ ॥
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् । धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः । विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ ६ ॥
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ७ ॥
तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् । इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ ८ ॥
यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी । गिरीँरज्राँ अपः स्व१र्वृषत्वना ॥ ९ ॥
स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे । इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ १० ॥ (१८९)

[सूक्त ६३]

(ऋषिः — १-३ भुवनः साधनो वा ३ (द्वि०) भरद्वाजः; ४-६ गोतमः; ७-९ पयतः । देवता — इन्द्रः ।)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ।
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥

(सूक्त ६०)

१-४ देखो अथर्व २ ।१४।१- ।

(इन्द्राय साम गायत) इन्द्रके लिये सामगान करो। (बृहते विप्राय) बडे ज्ञानी (धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे) धर्मका आचरण करनेवाले ज्ञानी तथा स्तुतिके योग्यके लिये (बृहत्) बृहत् नामक साम गाओ ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९८।१)

हे इन्द्र! (त्वं अभिभूः असि) तू विजयी है (त्वं सूर्यं अरोचयः) तूने सूर्यको प्रकाशित किया है तू (विश्वकर्मा) तू सबका बनानेवाला (विश्वदेवः महान् असि) तू सब दिव्य देव और बडा है ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९८।२)

(ज्योतिषा विभ्राजन्) ज्योतिसे चमकते हुए (दिवः रोचनं स्वः अगच्छः) द्यौके चमकनेवाले तेजस्वी स्थानको तू पहुंचा है। हे इन्द्र! (देवाः ते सख्याय येमिरे) सब देव तेरी मित्रताके लिये यत्न करते हैं ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।९८।३)

८-९ देखो अथर्व २ ६।१४-६ ।

इन्द्रके ये गुण हैं—

१ धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे विप्राय— धर्मका आचरण करनेवाला ज्ञानी स्तुत्य विद्वान्।

२ अभिभूः विश्वकर्मा विश्वदेवः महान् असि— तू विजयी विश्वका निर्माण करनेवाला विश्वका उपास्य देव और बडा इन्द्र है।

३ देवाः ते सख्याय येमिरे— सब देव मित्रता करना चाहते हैं।

(सूक्त ६१)

(इन्द्रः विश्वे च देवाः) इन्द्र और सब देव तथा हम (इमा भुवना कं सीषधाम) इन भुवनोंको आनंदयुक्त बनाकर बढावें। (इन्द्रः आदित्यैः सह) इन्द्र आदित्योंके साथ (यज्ञं) यज्ञको (नः तन्वं) हमारे शरीरको

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ।
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥ २ ॥
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ३ ॥
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे । ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ४ ॥
कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् । कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ५ ॥
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति । उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ६ ॥
य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति । येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥ ७ ॥
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम् । येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥ ८ ॥
येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः । पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ९ ॥ (१९१)

(प्रजां च) और प्रजाको (चीक्लृपाति) समर्थ बनावे ॥ १ ॥ (ऋ. १।१५७।१)

(आदित्यैः) आदित्योंके साथ (मरुद्भिः सगणः इन्द्रः) मरुतोंके गणोंके साथ इन्द्र (अस्माकं तनूनां अविता भूतु) हमारे शरीरोंका रक्षक होवे। (देवा असुरान् हत्वाय) देवोंने असुरोंको मारकर (यदा आयन्) जब आये तब (देवत्वं अभिरक्षमाणाः देवाः) देवोंने अपने देवत्वकी रक्षा की ॥ २ ॥ (ऋ. १।१५७।२)

(शचीभिः प्रत्यञ्चं अर्कं अनयन्) अपनी शक्तियोंके साथ न हटनेवाले इधर आये (आत् इत् इषिरां स्वधां पर्यपश्यन्) इसके पश्चात् प्रिय स्वधाको उन्होंने देखा। (अया देवहितं वाजं सनेम) इससे देवोंके रखे हुए अन्नको कर्मोंसे प्राप्त किया (सुवीराः शतहिमाः मदेम) अच्छे पुत्रपौत्रोंके साथ सौ वर्ष आनंदसे रहें ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१५७।३)

(दाशुषे मर्ताय) दानी मनुष्यके लिये (यः एकः इत्) जो अकेला ही (वसु विदयते) धन देता है (अप्रतिष्कुतः ईशानः इन्द्रः अङ्ग) हे प्रिय ! वही किसीसे पराजित न होनेवाला ईश्वर इन्द्र ही है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।८४।७)

(अङ्ग) प्रिय ! (कदा अराधसं मर्तं) कब दान न देनेवाले मनुष्यको (पदा क्षुम्पं इव स्फुरत्) पांवसे कुकुरमुत्तेके समान वह कुचल देगा ? (इन्द्रः कदा नः गिरः शुश्रवत्) इन्द्र कब हमारी स्तुतियां सुनेगा ? ॥ ५ ॥ (ऋ. १।८४।८)

(यः चित् हि) जो कोई (बहुभ्यः) बहुतोंमेंसे (सुतावान् त्वा आ आविवासति) एक सोमवाला तेरी सेवा करता है (तत् उग्रं शवः इन्द्रः पत्यते) तब उग्र बलका स्वामी वह इन्द्र होता है (अङ्ग) प्रिय ! ॥ ६ ॥ (ऋ. १।८४।९)

हे इन्द्र ! (यः सोमपातमः शविष्ठः मदः चेतति) जो तेरा सोमपान करनेसे बलशाली आनन्द प्रकट होता है (येन अत्रिणं नि हंसि) जिससे तू खानेवाले शत्रुको मारता है (तं ईमहे) उस सामर्थ्यकी हम मांग करते हैं ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।१२।१)

(येन दशग्वं अध्रिगुं) जिससे दशग्व अध्रिगुको (वेपयन्तं स्वः नरं) शत्रुको कंपानेवाले प्रकाशके नेता वीरको तथा (येन समुद्रं आविथ) जिससे समुद्रकी सुरक्षा की (तं ईमहे) वह सामर्थ्य हम मांगते हैं ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।१२।२)

(येन सिन्धुं महीः अपः) जिससे सिन्धु तथा जलप्रवाहोंको (रथान् इव) रथोंके समान (ऋतस्य पन्थां यातवे) सत्यके मार्गपर जानेके लिए (प्रचोदयः) प्रेरित किया (तं ईमहे) उस शक्तिकी मांग हम करते हैं ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।१२।३)

१ इन्द्रः नः पशवे तन्वे प्रजायै च चीक्लृपाति— इन्द्र हमारे पशुओं हमारे शरीरोंको और प्रजाको समर्थ बनाता है।

२ इन्द्रः अस्माकं तनूनां अविता भूतु— इन्द्र हमारे शरीरोंका संरक्षक बने।

३ असुरान् हत्वाय देवत्वं अभिरक्षमाणा देवाः

[सूक्त ६४]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः; ४-६ विश्वमनाः । देवता — इन्द्रः ।)

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः । गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ १ ॥
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी । इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ २ ॥
त्वं हि शश्वतीनामिन्द्र दर्ता पुरामसि । हन्ता दस्योर्मनोर्वृधः पतिर्दिवः ॥ ३ ॥
एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः । एवा हि वीर स्तवते सदावृधः ॥ ४ ॥
इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् । उदानंश शवसा न भन्दना ॥ ५ ॥
तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ ६ ॥ (४०४)

यथा नायम्— असुरोंको मार कर देवताकी रक्षा करनेवाले देव बल धारण करें ।

४ यथा द्युवादितं वाजं सनेम— इससे देवताका बल प्राप्त करेंगे ।

५ सुवीराः शतहिमा मदेम— उत्तम बालकोंके साथ सौ वर्ष आनंदसे हम रहें ।

६ दाशुषे मर्ताय च एकः वसु विदयते— दान देनेवाले मानवके लिये वह अकेला ही इन्द्र धन देता है ।

७ अप्रतिष्कुतः ईशानः इन्द्रः— वह किसीसे पराजित न होनेवाला इन्द्र है ।

८ कदा अराधसं मर्तं पदा स्फुरत्— कब दान न देनेवाले मानवको पांवसे वह दबाता है ?

९ इन्द्रः कदा नः गिरः शुश्रुवत्— इन्द्र कब हमारी प्रार्थना सुनेगा ?

१० इन्द्रः शर्म शवः पत्यते— इन्द्र सुख बल प्राप्त करता है ।

११ यः शविष्ठः मघवा ओजसि येन आविर्णं मिहासि तं ईमहे— जो सामर्थ्यवान् आनन्द प्रदान करता है जिससे जानेवाले शत्रुको वह मारता है वह बल हम मांग रहे हैं ।

१२ येन आविथ तं ईमहे— जिससे सुरक्षा करता है वह बल हम प्राप्त करना चाहते हैं ।

१३ येन यतस्य पन्थां यातवे प्रचोदयः तं ईमहे— जिससे पक्ष मार्ग पर चलनेकी प्रेरणा वह लोगोंको देता है वह बल हम मांगते हैं ।

(सूक्त ६४)

हे इन्द्र ! (आ गहि) हमारे पास आ । तू (प्रियः) हम प्रिय है (सत्राजित्) तू सदा जीतनेवाला (अगोह्यः) छिपकर न रहनेवाला (गिरिः न विश्वतः पृथुः) पर्वतके समान चारों ओरसे पुष्ट (दिवः पतिः) द्युलोकका पति है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९८।४)

हे (सत्य सोमपा) सच्चे सोमके पीनेवाले इन्द्र ! (उभे रोदसी अभि बभूथ हि) तुम दोनों भू आर भू लोकोंको पराजित करता है । हे इन्द्र ! तू (दिवः पतिः) द्युलोकका पति और (सुन्वतः वृधः) सोमयाग करनेवालोंको बढानेवाला है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९८।५)

हे इन्द्र ! (त्वं शश्वतीनां पुरां दर्ता असि हि) तू शत्रुके सारे किलोंको तोडनेवाला है (दस्योः हन्ता) शत्रुओंको मारनेवाला (मनोः वृधः) मनुष्यको बढानेवाला और (दिवः पतिः) द्युलोकका पालक है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९८।६)

हे (अध्वर्यो) अध्वर्यु ! (अन्धसः मध्वः मदिन्तरं आ सिञ्च इत् उ) मधुर सोमरसके अधिक मीठे भागको इसमें डाल । (सदावृधः वीरः एवा हि स्तवते) सदा बढानेवाला वीर इन्द्र इसी तरह प्रशंसित होता है ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९८।१६)

हे (हरीणां स्थातः इन्द्र) हे घोडोंके स्वामी इन्द्र ! (ते पूर्व्यस्तुतिं) तेरी पुरानी स्तुतिको (न किः शवसा उदानंश) बलसे कोई नहीं पा सकता (न भन्दना) न प्रशंसासे पा सकता है ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९८।१७)

(श्रवस्यवः) यश चाहनेवाले हम (अप्रायुभिः यज्ञेभिः वावृधेन्यम्) सदा चलनेवाले यज्ञोंसे बढानेवाले (तं वाजानां पतिं) उस बलोंके स्वामी इन्द्रको (अहूमहि) बुलाते हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।९८।१८)

[सूक्त ६५]

(ऋषिः — १-३ विश्वमनाः । देवता — इन्द्रः ।)

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् । कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १ ॥
अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः । घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २ ॥
यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ ३ ॥ (४००)

[सूक्त ६६]

(ऋषिः — १-३ विश्वमनाः । देवता — इन्द्रः ।)

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् । अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ १ ॥

इन्द्रके ये गुण इन सूक्तोंमें कहे हैं—

१ प्रियः सत्राजित् अगोह्यः विभूतः पृथुः विश्पतिः— इन्द्र सबका प्रिय सर्वदा विजयी छिपकर न रहने वाला चारों ओरसे युक्त पुत्रोंका स्वामी है। अ-गोह्यः किसी तरह छिपकर न रहनेवाला सदा प्रकट होनेवाला इन्द्र है।

२ शश्वतीनां पुरां दर्ता असि— शाश्वत नगरियोंको शत्रुके किलोंको तोडनेवाला है।

३ दस्योः हन्ता— शत्रुको मारनेवाला

४ मनोवृधः— मननशील मानवोंका संवर्धन करने वाला है।

५ सदावृधः वीरः एव शस्यते— जो सदा बढने वाला वीर है उसकी ही प्रशंसा होती है।

६ हरीणां स्थाता इन्द्रः— घोडोंका रक्षक इन्द्र है। घोडोंकी पालना करनेकी विद्या वह जानता है।

७ ते पूर्व्यस्तुतिं न किः शवसा सदानशे न मघ्मना— तेरे जैसी स्तुतिको कोई बलसे नहीं प्राप्त कर सकता न धनसे प्राप्त कर सकता है। तेरी जैसी प्रशंसा प्राप्त करना किसीको भी अशक्य है।

८ श्रवस्यवः वाजानां पतिं त्वा हूमहे— अन्न चाहनेवाले हम सब अन्नोंके स्वामी इन्द्रको ही अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं।

(सूक्त ६५)

हे (सखायः) हे मित्रो! (आ इत नु) आओ। (स्तोम्यं नरं स्तवाम) स्तुतिके योग्य वीर इन्द्रकी स्तुति करें। (यः एकः इत्) जो अकेला ही (विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्ति) सब मनुष्योंपर विराजता है ॥ १ ॥

(ऋ. ८।२४।१९)

(अ-गो-रुधाय) जो कभी गायोंको रोकता नहीं और (गविषे) गौओंकी खूब इच्छा करनेवाला है (द्युक्षाय) द्युलोकमें रहनेवालेके लिये (घृतात् मधुनः च स्वादीयः) घी और शहदसे अधिक स्वादु (दस्म्यं वचः वोचत) सुन्दर स्तुतिके वचन कहो ॥ २ ॥

(ऋ. ८।२४।२०)

(यस्य अमितानि वीर्या) जिसके अपरिमित पराक्रम हैं (यस्य राधः न पर्येतवे) जिसके धन दान घेरे नहीं जाते जिसकी (दक्षिणा ज्योतिः न) दक्षिणा ज्योतिके समान (विश्वं अभ्यस्ति) सबके ऊपर व्यापती है ॥ ३ ॥

(ऋ. ८।२४।२१)

१ हे सखायः! स्तोम्यं नरं स्तवाम— हे मित्रो! आओ प्रशंसनीय वीरकी ही प्रशंसा हम गाते हैं तुम भी इसमें शामिल हो जाओ।

२ यः एक इत् विश्वाः कृष्टीः अभ्यस्ति— जो अकेला ही सब मानवोंके ऊपर रहता है।

३ अ गो रुधाय गविषे द्युक्षाय— जो गायोंको रोकता नहीं परन्तु गौओंको चाहकर कामोंमें आता है। जो द्युलोकमें रहता है।

४ दस्म्यं वचः वोचत— उसकी स्तुति सुंदर वाणीसे करो।

५ अस्य अमितानि वीर्या— इस इन्द्रके पराक्रम अपरिमित हैं।

६ यस्य राधः न पर्येतवे— जिसके धन घेरे नहीं जाते इतने वे अपरिमित हैं।

७ दक्षिणा ज्योतिः न विश्वं अभ्यस्ति — दक्षिणा ज्योतिके समान उसका तेज सर्वत्र फैलता है।

(सूक्त ६६)

(व्यश्ववत्) व्यश्वकी तरह (अनूर्मिं वाजिनं यमं) शोक रहित बलवान् और नियन्ता (इन्द्रं स्तुहि) इन्द्रकी स्तुति कर, जो (दाशुषे) दाताको (अर्यः) श्रेष्ठ (मंहमानं गयं) बडा घर (वि) देता है ॥ १ ॥

(ऋ. ८।२४।२२)

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् । सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २ ॥

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् । अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ ३ ॥ (४१०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥५॥

[सूक्त ६७]

(ऋषिः — १-२ परुच्छेपः ४-७ गृत्समदः । देवता — १ इन्द्रः २ मरुत् ३ अग्निः ।)

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः ।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः ।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ १ ॥

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः ।
यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् ।
अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ २ ॥

हे (वैयश्व) व्यश्वके पुत्र ! (नवं दशमं) जो नववां या दसवां है तथा जो (सुविद्वांसं चरणीनां चर्कृत्यं) उत्तम विद्वान् है और प्रयत्नशील मानवोंके स्तुतिके योग्य है (एवा नूनं उप स्तुहि) उसकी निश्चयसे स्तुति कर ॥ २ ॥

(ऋ. ८।२४।२३)

हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र ! तू (निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ हि) आपत्तियोंका परिमार्जन करनेके उपायको जानता ही है (परिपदां अहः अहः शुन्ध्युः इव) पांवसे चले मलको जिस तरह प्रतिदिन शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥

(८। ४।२४)

१ अनूर्मि वाजिनं यमं इन्द्रं स्तुहि— जिसमें लहरियोंके समान क्षोभ नहीं जो बलवान् और नियामक है उस इन्द्रकी स्तुति कर। अन्-ऊर्मिः – जिसमें लहरियां नहीं जो क्षुब्ध नहीं होता जो शान्त रहता है।

२ शत्रुवे महमानं अर्यः। गर्यं चित्— जो शत्रुके लिये अनुष्य वश कर देता है। अर्यः – अरि = शत्रु। अर्यः।- शत्रुका।

३ नवं दशमं सुविद्वांसं चरणीनां चर्कृत्यं उप स्तुहि— नवम या दशम स्थान (९ वें या १० वें पद) में विद्यमान उत्तम विद्वान् और कार्यकर्ताओंमें उत्तम प्रयत्नशील जो है उसकी स्तुति कर।

४ हे वज्रहस्त ! निर्ऋतीनां परिवृजं वेत्थ— हे वज्रधारी ! तू आपत्तियोंको दूर करनेका उपाय जानते हो।

५ परिपदां अहः अहः शुन्ध्युः— पांवपर मल जमा हो जैसा प्रतिदिन शुद्ध करते हैं वैसे प्रतिदिन प्रयत्न करनेवाले आपत्तियां दूर कर सकते हैं।

॥ यहां पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ६७)

(सुन्वन् हि परीणसः क्षयं वनोति) सोमयाग करनेवाला बड़ा सुख घरको प्राप्त करता है। (सुन्वानः हि) सोमयाग करनेवाला ही (द्विषः अव यजति स्म) शत्रुओंको दूर करता है (देवानां द्विषः अव) देवोंके शत्रुओंको दूर करता है। (सुन्वानः अवृतः वाजी) सोमयाग करनेवाला शत्रुसे घेरा न जाता हुआ बलवान् बनकर (सहस्रा सिषासति इत्) सहस्रों प्रकारके धनोंको भोगना चाहता है। (इन्द्रः सुन्वानाय आभुवं रयिं ददाति) इन्द्र सोमयाग करनेवालेको बहुत धन देता है (आभुवं ददाति) पर्याप्त धन देता है ॥ १ ॥

(ऋ. १।१३३।७)

(अस्मत् अभि) हमारे सामने (वः तानि पौंस्या) आपके वे पौरुष कर्म (सना मा उ षु भुवन्) पुराने न हों (उत द्युम्नानि मा जारिषुः) और तुम्हारे तेज जीर्ण न हों। (अस्मत् पुरः उत जारिषुः) हमारे सामने जीर्ण न हों। (यत् वः चित्रं युगे युगे नव्यं) जो आपका आश्चर्यकारक कर्म युगयुगमें नया होता रहता है, (अमर्त्यं घोषात्) वह तुम्हारे देवत्वकी घोषणा करे। हे मरुतो ! (यत्

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ३ ॥
यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥ ४ ॥
आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥ ५ ॥
एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥ ६ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ७ ॥ (९१०)

च दुष्टर अस्मासु विभृत) जो दुस्तर वर्म है वह हममें स्थापित करो। (यत् च दुष्टरं) जो दुष्प्राप्य है वह हममें रखो ॥ २ ॥ (ऋ. १।१३९।८)

(अग्निं होतारं मन्ये) अग्निको मैं होता मानता हूं। (दास्वन्तं वसुं सहसः सूनुं) वह दान देनेवाला धनवान् बलका पुत्र (जातवेदसं) उत्पन्न हुएको जानने वाला (जातवेदसं विप्रं न) ज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण जैसा वह है। (यः ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा स्वध्वरः देवः) जो ऊंचे दैवी सामर्थ्यसे युक्त उत्तम यज्ञ करनेवाला देव है। (आ जुह्वानस्य सर्पिषः शोचिषा) हवन किये गये घीके तेजसे (घृतस्य विभ्राष्टिं अनु वष्टि) घीकी तेजस्विताको प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१२७।१)

(यज्ञैः संमिश्लाः) यज्ञोंमें लगे हुए (पृषतीभिः ऋष्टिभिः यामन्) चितकबरी घोडियोंपर ऋष्टियोंके साथ बैठकर जानेवाले (अञ्जिषु शुभ्रासः) आभूषणोंमें चमकने वाले (उत प्रियाः) और प्यारे मित्र (भरतस्य सूनवः) भरतके पुत्रो! हे (दिवः नरः) दिव्य नेताओ! (बर्हिः आसद्य) आसनपर बैठकर (पोत्रात् सोमं आ पिबत) पोताके पात्रसे सोमरसको पीओ ॥ ४ ॥ (ऋ. २।३६।२)

(देवान् इह आ वक्षि) देवोंको यहां ले आओ। हे (विप्र) ज्ञानी! (यक्षि च) उनका यजन कर। हे (होतः) होता! (त्रिषु योनिषु आ निषद) तीनों स्थानोंमें बैठ। (प्रस्थितं सोम्यं मधु प्रति वीहि) तैयार किये गये मीठे सोमका स्वीकार कर। (आग्नीध्रात् पिब) आग्नीध्रके पात्रसे सोम पी और (तव भागस्य तृप्णुहि) अपने भागसे तृप्त हो ॥ ५ ॥ (ऋ. २।३६।४)

(एषः स्यः) यह वह (ते तन्वः नृम्णवर्धनः) तेरे शरीरका पौरुष बढानेवाला है (सहः ओजः प्रदिवि बाह्वोः हितः) बल और सामर्थ्य सदा तेरी बाहुओंमें रखा है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (तुभ्यं सुतः) यह सोमरस तेरे लिये निचोडा है (तुभ्यं आभृतः) तुम्हारे लिये भरकर रखा है। (अस्य ब्राह्मणात्) इस ब्राह्मणके पात्रसे (त्वं आ तृपत् पिब) तू तृप्त होनेतक पी ॥ ६ ॥ (ऋ. २।३६।५)

(यं उ पूर्वं हुवे) जिसको मैंने पहिले बुलाया था (तं इदं हुवे) उसको इस समय मैं बुलाता हूं। (स इत् उ हव्यः) वही बुलाने योग्य है (ददिः) वह दाता है (यः नाम पत्यते) वह प्रसिद्ध होके शासन करता है। (अध्वर्युभिः सोम्यं मधु प्रस्थितं) अध्वर्युओंसे यह मधुर सोमरस तैयार किया गया है। हे (द्रविणोदः) धनके दाता! (ऋतुभिः पोत्रात् सोमं पिब) ऋतुओंके साथ पोताके पात्रसे सोम पी ॥ ७ ॥ (ऋ. २।३७।२)

[सूक्त ६८]

(ऋषिः — १-११ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम् । यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत । दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥
उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखाय स्तोमवाहसः ॥ ११ ॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ १२ ॥ (४१९)

(सूक्त ९८)

१-३ देखो मन्त्र २।५७।१-३।

(विग्रम् अस्तृतं परा इहि) ज्ञानी अपराजितके पास जा। (विपश्चितं इन्द्रं पृच्छ) ज्ञानी इन्द्रसे पूछ। (यः ते सखिभ्यः वरं आ) जो तेरे मित्रोंमें श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।४।४)

(नः निदः उत ब्रुवन्तु) हमारे निन्दक लोग कि (अन्यतः चित् निः आरत) यहांसे निकल जाओ (इन्द्रे इत् दुवः दधानाः) क्योंकि तुम इन्द्रमें भक्ति रखते हो ॥ ५ ॥ (ऋ. १।४।५)

हे (दस्म) दर्शनीय! (कृष्टयः) मनुष्य तथा (अरिः) शत्रु भी (उत नः सुभगान् वोचेयुः) हमें सौभाग्यवाले कहें, तथापि (इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) हम इन्द्रके ही आश्रयमें रहेंगे ॥ ६ ॥ (ऋ. १।४।६)

(यज्ञश्रियं) यज्ञकी शोभा बढानेवाले (नृमादनं) वीरोंको आनंदित करनेवाले (पतयत् मन्दयत्सखं) प्रगति करनेवाले और मित्रोंका आनंद बढानेवाले (ईं आशुं) इस तेजस्वी सोमको (आशवे भर) तेजस्वी इन्द्रके लिये भर दे ॥ ७ ॥ (ऋ. १।४।७)

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (अस्य पीत्वा) इस सोमको पीकर (वृत्राणां घनः अभवः) शत्रुओंको तू मारनेवाला हुआ है अब (वाजेषु वाजिनं प्रावः) संग्रामोंमें वीरोंकी रक्षा कर ॥ ८ ॥ (ऋ. १।४।८)

हे (शतक्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः) उस तुमको संग्राममें बलवान बनाते हैं। हे इन्द्र! (धनानां सातये) धनोंके दानके लिये यह हम करते हैं ॥ ९ ॥ (ऋ. १।४।९)

(यः रायः महान् अवनिः) जो धनोंका बडा रक्षक है (सुन्वतः सुपारः सखा) सोमयागीको दुःखसे पार करनेवाला मित्र है (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके लिये स्तोत्र गान करो ॥ १० ॥ (ऋ. १।४।१०)

हे (स्तोमवाहसः सखायः) स्तोत्रोंके गानेवाले मित्रो! (आ तु इत) आओ (नि षीदत) बैठो (इन्द्रं अभि प्र गायत) इन्द्रका गायन करो ॥ ११ ॥ (ऋ. १।५।१)

(पुरूणां पुरूतमं) बलियोंमें बली (वार्याणां ईशानं) स्वीकार करने योग्य वस्तुओंके स्वामी (इन्द्रं) इन्द्रके स्तोत्र (सोमे सचा सुते) सोमरस तैयार होनेपर गाते रहो ॥ १२ ॥

[सूक्त ६९]

(ऋषिः — १-१२ मधुच्छन्दाः। देवता — इन्द्रः।)

स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरंध्याम्। गमद्वाजेभिरा स नः ॥ १ ॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ २ ॥
सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥ ३ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ४ ॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ५ ॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ६ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥ ७ ॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥ ८ ॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ९ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ १० ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ११ ॥
आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १२ ॥ (४४१)

(सूक्त ६९)

(सः घ नः योगे आ भुवत्) वह हमारे ध्यानमें साथ रहे (सः राये) वह धनमें तथा (स पुरंध्यां) वह बड़ी महत्त्वाकांक्षाओंमें हमारे साथ रहे (सः वाजेभिः नः आ गमत्) वह शक्तियोंके साथ हमारे पास आ जावे ॥ १ ॥ (ऋ. १।५।३)

(शत्रवः) शत्रु (समत्सु) युद्धोंमें (यस्य संस्थे हरी न वृण्वत) जिसके साथ घोड़ोंको नहीं रोक सकते (तस्मै इन्द्राय गायत) उस इन्द्रके गीत गाओ ॥ २ ॥ (ऋ. १।५।४)

(इमे दध्याशिरः शुचयः सोमासः सुताः) ये दही मिलाये हुए पवित्र हुए सोमरस (सुतपाव्ने वीतये यन्ति) सोम पीनेवाले इन्द्रके भावके लिये जाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. १।५।५)

हे (सुक्रतो इन्द्र) उत्तम कर्म करनेवाले इन्द्र! (ज्येष्ठ्याय) श्रेष्ठ होनेके लिये और (सुतस्य पीतये) सोमरस पीनेके लिये (सद्य वृद्ध अजायथाः) तत्काल बड़ा हो गया है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।५।६)

हे (गिर्वणः इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र! (आशवः सोमासः त्वा विशन्तु) शीघ्र सोम तेरे अन्दर प्रवेश करें। (ते प्रचेतसे शं सन्तु) तुझ ज्ञानवान्के लिये वे कल्याण करनेवाले हों ॥ ५ ॥ (ऋ. १।५।७)

(स्तोमाः त्वां अवीवृधन्) स्तोत्रोंने तुझे बढाया है हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करनेवाले इन्द्र (उक्था त्वां) उक्थोंने तेरा वर्धन किया है। (नः गिरः त्वां वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां तुझे बढावें ॥ ६ ॥ (ऋ. १।५।८)

(यस्मिन् विश्वानि पौंस्या) जिसमें सारे बल हैं (इमं सहस्रिणं वाजं) यह वह सहस्रों बलोंसे बढानेवाला सोमरस (अक्षितोतिः इन्द्रः सनेत्) जिसका रक्षण कभी कम नहीं होता वह इन्द्र स्वीकार करे ॥ ७ ॥ (ऋ. १।५।९)

हे (गिर्वणः) स्तुत्य इन्द्र! (मर्ताः नः तनूनां मा अभिद्रुहन्) मानव हमारे शरीरोंका द्रोह न करें। तू (ईशानः) ईश्वर है (वधं यवय) वध हमसे दूर कर ॥ ८ ॥ (ऋ. १।५।१०)

९-११ देखो अथर्व २०।२६।४-६।
१२ देखो अथर्व २०।४०।३।

[सूक्त ७०]

(ऋषिः — १-१० मधुच्छन्दाः। देवता — इन्द्रः।)

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥ १ ॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ २ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ३ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ४ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ५ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥ ६ ॥
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ७ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ८ ॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ९ ॥
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ १० ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ११ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ १२ ॥
तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ १३ ॥

(सूक्त ७०)

(वीळु चित् आरुजत्नुभिः वह्निभिः) सुदृढोंको भी तोडनेवाले और वहन करनेवाले मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्र! (उस्रिया गुहा अनु अविन्द) गौओंको गुहामेंसे प्राप्त किया ॥ १ ॥ (ऋ. १।६।५)

(देवयन्तः गिरः) देवताकी भक्ति करनेवालोंकी वाणियोंने (विदद्वसुं महां श्रुतं) धन प्राप्त करनेवाले बडे कीर्तिमान इन्द्रकी (यथा मतिं अच्छ अनूषत) यथामति स्तुति की है ॥ २ ॥ (ऋ. १।६।६)

३-४ देखो अथर्व २०।४०।१-२ (ऋ. १।६।७-८)

हे (परिज्मन्) घूमनेवाले! (अतः आ गहि) यहांसे आ। (रोचनात् दिवः वा अधि) अथवा तेजकी द्युलोकसे आ (अस्मिन् गिरः समृञ्जते) यहां हमारी स्तुतियां उत्तम रीतिसे चल रही हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १।६।९)

(इतः पार्थिवात् अधि) यहां पृथिवीसे अथवा (दिवः वा) द्युलोकसे अथवा (महः रजसः वा) बडे अन्तरिक्षसे (इन्द्रं सातिं ईमहे) इन्द्रसे धन मांगते हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. १।६।१०)

७-९ देखो अथर्व २०।३८।४-६ । (ऋ. १।७।१-३)

(हे उग्र इन्द्र) प्रवीर इन्द्र! (उग्राभिः ऊतिभिः) वीरतावाले संरक्षणोंसे (सहस्रप्रधनेषु वाजेषु नः अव) सहस्रों प्रकारके धन जिसमें मिलते हैं उन युद्धोंमें हमारी रक्षा कर ॥ १० ॥ (ऋ. १।७।४)

(इन्द्रं वयं महाधने) इन्द्रको हम बडे संग्राममें (इन्द्रं अर्भे हवामहे) इन्द्रको छोटे युद्धमें भी सहायतार्थ बुलाते हैं (वृत्रेषु युजं वज्रिणं) शत्रुओंको वज्रसे मारनेवाले हमारे मित्र इन्द्रको हम बुलाते हैं ॥ ११ ॥ (ऋ. १।७।५)

हे (नः सत्रादावन् वृषन्) हमारे लिये सदा देनेवाले बलवान् वीर! (सः) वह तू (अस्मभ्यं) हमारे लिये (अमुं चरुं अपा वृधि) इस मेघको खोल दे (अप्रतिष्कुतः) तेरा प्रतिकार करनेवाला कोई नहीं है ॥ १२ ॥ (ऋ. १।७।६)

(वज्रिणः इन्द्रस्य) वज्रधारी इन्द्रके (तुञ्जे तुञ्जे ये उत्तरे स्तोमाः) प्रत्येक युद्धमें जो ऊंचे स्तोत्र हैं उनमें (अस्य सुष्टुतिं न विन्धे) इसके योग्य स्तुतिको मैं प्राप्त नहीं करता ॥ १३ ॥ (ऋ. १।७।७)

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ १४ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ १५ ॥
इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १६ ॥
एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् । वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १७ ॥
नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ १८ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ १९ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम् । सासह्याम पृतन्यतः ॥ २० ॥ (४११)

(वृषा वंसगः यूथा इव) जैसा बलवान् बैल गौओंके झुण्डमें होता है वैसा ही (ओजसा कृष्टीः इयर्ति) बलसे सब मनुष्योंपर रहता है वह (अप्रतिष्कुतः ईशानः) प्रतिकार जिसका नहीं होता वैसा यह ईश्वर इन्द्र है ॥ १४ ॥ (ऋ. १।७।८)

(यः एकः) जो अकेला इन्द्र (पञ्च क्षितीनां) पांचों प्रकारके मानवोंका (चर्षणीनां वसूनां इरज्यति) धन मानवोंके धनोंका स्वामित्व करता है ॥ १५ ॥ (ऋ. १।७।९)

१६ देखो अथर्व. २०।३९।१। (ऋ. १।७।१०)

हे इन्द्र ! (सानसिं) लाभ देनेवाले (सजित्वानं सदासहं रयिं) विजयी शत्रुको पराभूत करनेवाले (वर्षिष्ठं) श्रेष्ठ धनको (ऊतये आ भर) हमारी सुरक्षाके लिये लाकर भर दे ॥ १७ ॥ (ऋ. १।८।१)

(येन मुष्टिहत्यया) जिससे मुष्टिप्रहारसे (वृत्रा नि रुणधामहै) शत्रुओंको रोक देते हैं (त्वा ऊतासः अर्वता नि) तुमसे सुरक्षित किये घोडेसे हम शत्रुको रोक दें ॥ १८ ॥ (ऋ. १।८।२)

हे इन्द्र ! (त्वोतासः वयं) तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम (घना वज्रं आ ददीमहि) मारक वज्र पकडते हैं और उससे (युधि स्पृधः सं जयेम) युद्धमें शत्रुओंको जीतेंगे ॥ १९ ॥ (ऋ. १।८।३)

हे इन्द्र ! (वयं अस्तृभिः शूरेभिः) हम अस्त्र फेंकनेवाले वीरोंके साथ तथा (त्वया युजा वयं) तेरे साथ हम रहकर (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाके साथ चढाई करनेवाले शत्रुओंका पराभव करेंगे ॥ २० ॥ (ऋ. १।८।४)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ देवयन्तः गिरः विश्वासु महां श्रुतं मघवानं अनूषत — देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली हमारी वाणियां धनी और बडे प्रसिद्ध वीर इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं।

२ हे उग्र इन्द्र ! उग्राभिः ऊतिभिः सहस्रप्रधनेषु वाजेषु नः अव — हे वीर इन्द्र ! वीरताके संरक्षण साधनोंसे सहस्रों प्रकारके धन जहां मिलते हैं उन युद्धोंमें हमारी रक्षा कर। सहस्रप्रधनं वाज — युद्धमें हजारों प्रकारके धन मिलते हैं ये धन शत्रुसे लडनेसे मिलते हैं। इस लिये युद्धका नाम धन भी है और महाधन भी है।

३ वयं वृत्रेषु युजं वज्रिणं इन्द्रं महाधने अर्भे च हवामहे — हम शत्रुके ऊपर वज्र फेंकनेवाले इन्द्रको बडे और छोटे युद्धमें सहायताके लिये बुलाते हैं।

४ सत्रादावन् वृषन् ! अप्रतिष्कुतः अस्मभ्यं अमुं चरुं अपा वृधि — हे सदा दान देनेवाले बलवान् वीर ! प्रतिबंध रहित होकर हमारे लिये यह सोम खुला कर दो। जिससे हम उसका प्राशन करके उसका उपभोग लेंगे।

५ वृषा वंसगः यूथा इव अप्रतिष्कुतः ईशानः ओजसा कृष्टीः इयर्ति — बलवान् बैल जैसा गौओंके झुण्डमें जाता है उस तरह जिसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता ऐसा ईश्वर यह इन्द्र अपनी शक्तिसे शत्रुके सैनिकोंका पराभूत करता है।

६ यः एकः पञ्च क्षितीनां चर्षणीनां वसूनां इरज्यति — जो अकेला वीर इन्द्र पांचों मानवोंके धनोंका स्वामित्व करता है। सबके धनोंपर इसी अकेलेका अधिकार है।

७ हे इन्द्र ! सानसिं सजित्वानं सदासहं वर्षिष्ठं रयिं ऊतये आ भर — हे इन्द्र ! भजनीय विजयी शत्रुका पराभव करनेवाले शक्तिशाली धनको हमारी सुरक्षाके लिये लाकर भर दो। धन ऐसा हो कि जो विजय देनेवाला शत्रुका पराभव करनेवाला और श्रेष्ठ हो और वह हमारी रक्षा करनेवाला हो।

८ येन मुष्टिहत्यया वृत्राणि न्यरुणधामहै त्वा ऊतासः अर्वता नि — जिससे हम मुष्टियुद्धसे शत्रुको मारते

[सूक्त ७१]

(ऋषिः — १-१६ मधुच्छन्दाः । देवता — इन्द्रः ।)

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥ २ ॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ३ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ४ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ५ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥ ६ ॥
इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ ७ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ८ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभि स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ९ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ १० ॥

है और उसके सहायता किये वीरोंसे हम शत्रुको दूर करते हैं। ऐसी शक्ति हमारे पास हो।

९ हे इन्द्र ! त्वोतासः वयं घना वज्र आ ददीमहि युधि स्पृधः सं जयेम— हे इन्द्र ! तेरे द्वारा सुरक्षित हुए हम भयंकर वज्र पकडते हैं और उससे युद्धमें शत्रुओंको जीतते हैं।

१० हे इन्द्र ! अस्माभिः शूरेभिः वयं त्वया युजा पृतन्यतः सासह्याम— हे इन्द्र ! अस्त्र फेंकनेवाले वीरोंके साथ रहकर हम तेरी सहायतासे शत्रुओंको पराभूत करेंगे।

(सूक्त ७१)

(इन्द्रः महान् परः च नु) इन्द्र महान है और श्रेष्ठ भी है। (वज्रिणे महित्वं अस्तु) वज्रधारी इन्द्रके लिये महत्व प्राप्त हो (द्यौः न शवः प्रथिना) द्युलोकके समान इसका बल फैला है ॥ १ ॥ (ऋ. १।८।५)

(ये समोहे आशत) जो युद्धमें लगे रहते हैं (तोकस्य सनितौ वा ये नरः) अथवा पुत्रोंकी प्राप्तिमें जो लग रहते हैं (धियायवः विप्रासः वा) या बुद्धिके अर्थ ज्ञानी यत्न करते हैं (वे इन्द्रकी स्तुति करते हैं) ॥ २ ॥ (ऋ. १।८।६)

(यः सोमपातमः कुक्षिः) जो अधिक सोम पीने वाला पेट है (समुद्र इव पिन्वते) समुद्रके समान बढ़ता है (काकुदः उर्वीः आपः न) जिह्वामेंसे बड़े जलप्रवाह जैसे जाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८।७)

४-६ देखो अथर्व २०।६०।४-६।

हे इन्द्र (आ इहि) आओ (अन्धसः विश्वेभिः सोमपर्वभिः) और सोमके भागोंसे (मत्सि) आनंदित हो। तू (ओजसा महान् अभिष्टिः) बलसे बड़े शत्रुको दबानेवाला है ॥ ७ ॥ (ऋ. १।९।१)

(सुते) रस निकलने पर (मन्दिने इन्द्राय) आनंदित होनेवाले (विश्वानि चक्रये) सब कार्य करनेवाले इन्द्रके लिये (एनं मन्दिं चक्रिं ई आ सृजत) इस आनंददायक तथा उत्साहवर्धक रसको दे दो ॥ ८ ॥ (ऋ. १।९।२)

हे (सुशिप्र विश्वचर्षणे) उत्तम हनुवाले और सब मनुष्योंके स्वामिन् इन्द्र ! (एषु सवनेषु आ सच) इन यज्ञोंमें आकर संमिलित हो। और (मन्दिभिः स्तोमेभिः मत्स्व) हर्ष देनेवाले स्तोत्रोंसे आनन्दित हो ॥ ९ ॥ (ऋ. १।९।३)

हे इन्द्र ! (ते गिरः असृग्रम्) तेरे लिये स्तोत्र रचे हैं। (त्वां प्रति उदहासत) तेरे पास वे जाते हैं (अजोषाः वृषभं पतिं) जैसी अतृप्त स्त्री बलवान् पतिके पास जाती है ॥ १० ॥ (ऋ. १।९।४)

स चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ११ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ १२ ॥
स गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ १३ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ १४ ॥
वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम् । होम गन्तारमूतये ॥ १५ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः । इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १६ ॥ (७०७)

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र! (चित्रं वरेण्यं राधः) विलक्षण श्रेष्ठ धन हमारे (अर्वाक् सं चोदय) पास भेज दो। (ते विभु प्रभु असत् इत्) तेरे पास वह पर्याप्त और सामर्थ्यवान् है ॥ ११ ॥ (ऋ. १।९।५)

हे (तुविद्युम्न इन्द्र) बडे तेजस्वी इन्द्र! (रभस्वतः यशस्वतः अस्मान्) प्रयत्नशील और यशस्वी हमको (तत्र राये सु चोदय) वहां धन प्राप्त करनेके लिये प्रेरित कर ॥ १२ ॥ (ऋ. १।९।६)

हे इन्द्र! (अस्मे बृहत् पृथु श्रवः) हमें बडा विस्तृत यश दे जो (गोमत् वाजवत्) गौ आदि पशुओंसे तथा बलसे पूर्ण है। (विश्वायुः अक्षितं धेहि) जो संपूर्ण आयुतक रहनेवाला और समाप्त न होनेवाला हो ॥ १३ ॥ (ऋ. १।९।७)

हे इन्द्र! (सहस्रसातमं द्युम्नं बृहत् श्रव) हजारों आनंद देनेवाला तेजस्वी बडा यश तथा (रथिनीः ताः इषः) रथोंके साथ रहनेवाले वे अन्न (अस्मे धेहि) हमें दे ॥ १४ ॥ (ऋ. १।९।८)

(वसोः वसुपतिं) धनके स्वामी (ऋग्मियं) स्तुति योग्य (ऊतये गन्तारं इन्द्रं) रक्षण करनेके लिये जानेवाले इन्द्रको (गीर्भिः गृणन्त होम) स्तुति करते हुए हम बुलाते हैं ॥ १५ ॥ (ऋ. १।९।९)

(सुते सुते) प्रत्येक सवनमें (बृहते न्योकसे इन्द्राय) बडे घरवाले इन्द्रके लिये (बृहत् शूषं) बडा स्तोत्र (अरिः आ अर्चति इत्) भक्त गाता है ॥ १६ ॥ (ऋ. १।९।१०)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ इन्द्रः महान् परः च— इन्द्र बडा श्रेष्ठ है।

२ वज्रिणे महित्वं अस्तु— वज्रधारी इन्द्रका महत्त्व प्रकट हो।

३ द्यौः न शवः प्रथिना— द्युलोकके समान अपना बल फैला है।

४ ओजसा महान् अभिष्टिः— तू अपने बलसे शत्रुको दबाता है।

५ विश्वानि कर्तवे वाजि आ मत्सत्— सब पुरुषार्थ करनेवालेके लिये स्तुतिका बल बढाओ।

६ सुशिप्र विश्वचर्षणे— सुन्दर हनुवाला या सुन्दर साफा बांधनेवाला और मानवोंका हित करनेवाला स्वामी इन्द्र है।

७ वृषभः पतिः— बलवान् स्वामी।

८ ते विभु प्रभु चित्रं वरेण्यं राधः अस्मान् अर्वाक् सं चोदय— तेरे पास व्यापक प्रभुत्व विलक्षण श्रेष्ठ धन है वह हमारे पास भेजो।

९ अस्मे गोमत् वाजवत् बृहत् प्रभु श्रवः विश्वायुः अक्षितं धेहि— हमें गौओंवाला बलवाला बडा श्रेष्ठ और संपूर्ण आयुतक रहनेवाला अक्षय धन अन्न या यश दे दो।

१० सहस्रसातमं द्युम्नं बृहत् श्रवः रथिनीः इषः अस्मे धेहि— हजारों आनंद देनेवाला बडा यशस्वी तथा रथके साथ रहनेवाला अन्न हमें दे दो।

॥ यहां षष्ठ अनुवाक समाप्त ॥

[सूक्त ७२]

(ऋषिः — १-३ परुच्छेपः। देवता — इन्द्रः।)

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्स्वः सनिष्यवः पृथक्।
तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ १ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ २ ॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः।
यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ३ ॥ (४८०)

[सूक्त ७३]

(ऋषिः — १-३ वसिष्ठः, ४-६ वसुक्रः। देवता — इन्द्रः।)

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि। त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥ १ ॥

(सूक्त ७२)

(विश्वेषु सवनेषु) सब सोम यज्ञोंमें (त्वा समानं एकं) तुम एकको ही (पृथक् पृथक्) अलग अलग (वृषमण्यवः) बलयुक्त मनवाले (स्वः सनिष्यवः) स्वर्ग प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले लोग (तुञ्जते) प्रशंसित करते हैं। (तं त्वा) उस तुमको ही (पर्षणिं नावं न) पार ले जानेवाली नौकाके समान मानकर (शूषस्य धुरि धीमहि) बलके केन्द्र करके तुझे ही अपने ध्यानके लिये धरते हैं। (आयवः यज्ञैः चितयन्तः) मनुष्य यज्ञोंसे चेतना देते हुए (इन्द्रं न) इन्द्रकी ही जैसी स्तुति करते हैं वैसी (आयवः स्तोमेभिः इन्द्रं चितयन्तः) मनुष्य स्तोत्रोंसे इन्द्रकी ही प्रशंसा करते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।१३१।१)

(अवस्यवः मिथुना) संरक्षणकी इच्छा करनेवाले पति पत्नीके जोडे सब (त्वा वि ततस्रे) तुझे स्तुतिसे उत्तेजित करते हैं। (गव्यस्य व्रजस्य साता) गौओंके बाडेको बाहर लाने हे इन्द्र! सब (निः सृजः सक्षन्ते) भेंट देते हैं सब (निः सृजः) तुझे भेंट देते हैं। (यत् गव्यन्ता स्वर्यन्ता द्वा जना) जब गौओंको चाहनेवाले स्वर्ग प्राप्त करनेवाले दो जनोंको (समूहसि) तू इकट्ठा करता है तब (वृषणं सचाभुवं वज्रं) बलवान् साथ रहनेवाले वज्रको (सचाभुवं) साथ रहनेवाले वज्रको तू (आविः करिक्रत्) प्रकट करता है ॥ २ ॥ (ऋ १।१३१।२)

(अस्याः उषसः) इस उषाका (उत उ नः जुषेत) वह हमें प्रेम करो, (हवीमभिः हविषः अर्कस्य बोधि) हमारे बुलावोंके साथ हवि और स्तोत्रको वह स्वीकार। (हवीमभिः स्वर्षाता) बुलावोंके साथ स्वर्गकी प्राप्तिके लिये वह स्तोत्रको स्वीकारे। हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र! (यत् वृषा मृधः हन्तवे चिकेतसि) जब बलसे शत्रुओंको मारनेके लिये तू इच्छित है तब (मे अस्य नवीयसः वेधसः मन्म श्रुधि) मेरे इस नवीन ऋषिके स्तोत्रको तू सुन (नवीयसः) नवेको तू सुन ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१३१।६)

(सूक्त ७३)

हे शूर इन्द्र! (इमा सवना) ये यज्ञ (तुभ्य इत्) तेरे लिये ही हैं। (विश्वा ब्रह्माणि) सब स्तोत्र (तुभ्यं वर्धना कृणोमि) तुम्हारी महिमा बढानेके लिये करता हूँ। (त्वं विश्वधा नृभिः हव्यः असि) तू सब प्रकारसे मानवोंके द्वारा बुलाने योग्य है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।२२।७)

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र । न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥ २ ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥ ३ ॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥ ४ ॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५ ॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥ ६ ॥ (४८१)

हे (दस्म उग्र इन्द्र) दर्शनीय उग्र इन्द्र ! (ते मन्यमानस्य) तेरी स्तुति होनेपर (नु चित् नु) निश्चयसे (महिमानं न अश्नुवन्ति) तेरी महिमाको कोई प्राप्त नहीं होते (न वीर्यं) तेरे पराक्रमको और (न ते राधः) न तेरे धनदानको कोई दूसरे पहुंचते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२२।८)

(वः महे महिवृधे प्र भरध्वं) आपके बड़े बड़े महत्त्वके स्तोत्र करनेवालेके लिये आप दान दे दो (प्रचेतसे सुमतिं प्र कृणुध्वम्) विशेष बुद्धिमान् इन्द्रके लिये स्तोत्र बनाओ। (चर्षणिप्राः) प्रजाओंका पालनेवाला इन्द्र (पूर्वीः विशः प्र चर) पहिली प्रजाओंके पास उनकी रक्षाके लिये जाता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।११।१)

(यदा हिरण्यं वज्रं इत्) जब सोनेके वज्रको इन्द्र धारण करता है (अथा यमस्य रथं हरी वहतः) तब उस नियामकके रथको दो घोडे ले जाते हैं। (वाजस्य दीर्घश्रवसः पतिः) बलका और बडे यशका स्वामी (सनश्रुतः मघवा इन्द्रः) चिरकाल दानी धनवान् इन्द्र (सूरिभिः आ वि तिष्ठति) ज्ञानियोंके साथ उस रथपर चढकर बैठता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।२२।२)

(वृष्टिः चित् नु) वृष्टि (यूथ्या) यूथके समान आती है तब (इन्द्रः स्वा हरिता श्मश्रूणि सचा) इन्द्र अपने हरे रंगवाले श्मश्रुओंके साथ साथ (अभि प्रुष्णुते) सोमको पिलाता है। (सुते सुक्षयं अव वेति) सोमका रस निकालनेपर वह उत्तम स्थानपर पहुंचता है (मधु इत् धूनोति) उस मधुर रसको वह हिलाता है (यथा वातः वनं) जैसा वायु वनको हिलाता है ॥ ५ ॥ (ऋ. १।२।१४)

(वाचा विवाचः) विरुद्ध बोलनेवाले (मृध्रवाचः) असत्य भाषण करनेवाले (पुरू सहस्रा अशिवाः) सहस्रों सहस्रों अशुभ बोलनेवालोंको (यः जघान) जिसने मारा है (तत् तत् इत् पौंस्यं) वह इसका पौरुष (गृणीमसि) हम प्रशंसित करते हैं (यः) जो (पिता इव) पिताके समान (तविषीं शवः वावृधे) शक्तिको तथा बलको बढाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. १।१३।५)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ हे दस्म उग्र इन्द्र ! ते महिमानं वीर्यं राधः न कत् अश्नुवन्ति— हे दर्शनीय उग्र इन्द्र ! तेरे महिमा, पराक्रम तथा धनदानकी कोई बराबरी नहीं कर सकता।

२ चर्षणिप्राः ! पूर्वीः विशः प्र चर— हे प्रजापालक ! तू पूर्व प्रजाजनोंके पास जाकर उनका निरीक्षण करता रह।

३ यदा हिरण्यं वज्रं यमस्य रथं हरी वहतः सनश्रुतः वाजस्य दीर्घश्रवसः पतिः, मघवा इन्द्रः सूरिभिः आ वि तिष्ठति— जब सुवर्णमय वज्र धारण करता है तब उस नियामकके रथको दो घोडे खींच जाते हैं तब प्रसिद्ध बल और यशका स्वामी धनवान् इन्द्र ज्ञानियोंके साथ उस रथपर चढकर बैठता है।

४ वाचा विवाचा मृध्रवाचा पुरू सहस्रा अशिवाः यः जघान तत् इत् अस्य पौंस्यं गृणीमसि यः पिता इव तविषीं शवः वावृधे— असत्यभाषी सहस्रों अशुभ दुष्टोंको जिसने मारा वह इसका पौरुष हम वर्णन करते हैं। वह पिताके समान शक्ति और सामर्थ्य बढाता है।

[सूक्त ७४]

(ऋषिः — १-७ शुनःशेपः । देवता — इन्द्रः ।)

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥
शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥
नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥
ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥
समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ७ ॥ (७९१)

(सूक्त ७४)

हे (सत्य सोमपाः) सच्चे सोम पीनेवाले इन्द्र! (यत् चित् हि) जो भी (अनाशस्ता इव स्मसि) हम निराश से हुए हैं, हे (तुवीमघ इन्द्र) बहुत धनवाले इन्द्र! (गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु) गौओं और घोडोंमें तथा हजारों तेजस्वी पशुओंमें (नः तू आ शंसय) हमें तू कल्याणयुक्त बनाओ। ॥ १ ॥ (ऋ. १।२९।१)

हे (शिप्रिन् वाजानां पते शचीवः) उत्तम ठुड्डीवाले अन्नोंके सामर्थ्यवान् इन्द्र! (तव दंसना) तेरे अद्भुत कर्म हैं। ॥ २ ॥ (ऋ. १।२९।२)

(मिथूदृशा नि ष्वापय) परस्पर वैरभावसे देखनेवाले दोनोंको सुला। (अबुध्यमाने सस्ताम्) वे न जानते हुए सो जावें। ॥ ३ ॥ (ऋ. १।२९।३)

(त्या अरातयः ससन्तु) वे शत्रु सोवें। हे शूर! (रातयः बोधन्तु) दान देनेवाले जागें। ॥ ४ ॥ (ऋ. १।२९।४)

(अमुया पापया नुवन्तं) इस पापमय स्तुति करनेवाले हे इन्द्र! (गर्दभं सं मृण) गदहेको नष्ट करो। ॥ ५ ॥ (ऋ. १।२९।५)

(कुण्डृणाच्या दूरं पताति) कुटिल शत्रु दूर जावे (वातः वनात् अधि) वायु जैसा वनसे दूर जाता है। ॥ ६ ॥ (ऋ. १।२९।६)

(सर्वं परिक्रोशं जहि) सब आक्रोश करनेवाले शत्रु नष्ट कर (कृकदाश्वं जम्भय) छिपकर मारनेवालेका नाश कर। ॥ ७ ॥ (ऋ. १।२९।७)

हे इन्द्र! तू हमें कल्याणित कर, निराशाको दूर कर।

[सूक्त ७५]

(ऋषिः — १-३ परुच्छेपः। देवता — इन्द्रः।)

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः।
यद्गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ १ ॥
विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ २ ॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ३ ॥ (७३१)

[सूक्त ७६]

(ऋषिः — १-८ वसुक्रः। देवता — इन्द्रः।)

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १ ॥

(सूक्त ७५)

१ देखो अथर्व २०।७२।१ (ऋ. १।१३१।३)

हे इन्द्र! (पूरवः ते अस्य वीर्यस्य विदुः) मानव तेरे इस वीरताके कर्मको जानते हैं। हे इन्द्र! (शारदीः पुरः अवातिरः) जो शरदके किलोंको तूने नाश किया (सासहानः अवातिरः) विजय करते हुए शत्रुका नाश किया। हे (शवसस्पते इन्द्र) बलवान् इन्द्र! (तं अयज्युं मर्त्यं शासः) यज्ञ न करनेवाले मनुष्यको तूने दण्ड दिया। (महीं पृथिवीं) बडी पृथिवीको और (इमाः अपः अमुष्णाः) इन जलप्रवाहोंको (अमुष्णाः) अपने आधीन कर लिया। हे (मन्दसान) आनंदमें रहने वाले इन्द्र ॥ २ ॥ (ऋ. १।१३१।४)

हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र! (ते अस्य वीर्यस्य उशिजः मदेषु चर्किरन्) तेरे इस वीरके कार्यकी कीर्ति का कवीने गायी है। (यत् आविथ) जब तूने इनकी सुरक्षा की (सखीयतः यत् आविथ) मित्रता चाहनेवालोंकी जब तुमने सुरक्षा की थी। (पृतनासु प्रवन्तवे) सम्पर्मोंमें जीतनेके लिये (एभ्यः कारं चकर्थ) इनके हितके लिये पुरुषार्थ किया। (ते अन्यां अन्यां नद्यं सनिष्णत) उन्होंने अन्य अन्य नदीप्रवाहको प्राप्त किया (श्रवस्यन्तः सनिष्णत) यश चाहनेवालोंने प्राप्त किया ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१३१।५)

(सूक्त ७६)

(यस्य इत्) जिसके विषयमें (नृणां नर्यः) मानवोंमें मुख्य नेता (नृतमः) वीरोंमें मुख्य (क्षपावान्) पृथिवीका अधिपति (पुरुदिनेषु होता इन्द्रः) बहुत दिनतक हवन करनेवाला इन्द्र याद रखता है वह (शुचिः वां स्तोमः) यह शुद्ध स्तोत्र है (भुरणौ) पुष्टि देनवाले आप दोनों (वां अजीगः) तुम्हारे पास गया है तुमने यह किया है। (यः वने न चाकन् न्यधायि) जिसने वनमें रख रखा होता है उसको आप वैसा पास रखा होता है ॥ १ ॥ (ऋ. १०।२९।१)

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥ २ ॥
कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३ ॥
कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४ ॥
प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५ ॥
मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६ ॥
आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७ ॥

(अस्या उषसः प्र) इस उषाके (अपरस्याः प्र) और इसकी उषाके (नृतौ) नाचनेमें (नृणां नृतमस्य स्याम) वीरोंके वीर इन्द्रके हम हों। (यः ससवान् भवत्) जो विजयी था वह (त्रिशोकः रथः) तीन आवाजवाला रथ (कुत्सेन) कुत्सके साथ (शतं नॄन् अनु आवहत्) सौ वीरोंको साथ ले आवे ॥ २ ॥ (ऋ. १।११।२)

हे इन्द्र ! (कः मदः ते रन्त्यो भूत्) कौनसा आनंद तेरे लिये रमण करने योग्य हुआ है ? तू (उग्र) बलवीर है। (दुरः गिरः अभि वि धाव) हमारे द्वारों और स्तुतियोंके पास दौड़ता आ। (मा मनीषा कद् अर्वाग् उप वाहः) कब मेरा भाव तुझे मेरी ओर लावेगा ? (अन्नैः उपमं राधः त्वा आ शक्याम्) मैं हविरन्नोंके साथ तेरे उत्तम धनदानको प्राप्त कर सकूं ॥ ३ ॥ (ऋ. १ २११।३)

हे इन्द्र ! (कद् उ द्युम्नं त्वावतः नॄन्) कब उत्तम यश तेरे जैसे वीरोंको मिलेगा ? (कया धिया करसे) किस बुद्धिसे तू कर्म करता है ? (कद् नः आगन्) कब तू हमारे पास आवेगा ? (सत्यः मित्रः न) सच्चे मित्रके समान है (उरुगाय) बड़ी कीर्तिवाले इन्द्र ! (यत् मनीषाः असन्) जो बुद्धियां हैं (भृत्या अन्ने समस्य) उनका भरणपोषण हेतु अन्नकी देता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १।११।४)

(प्रेरय) अपनेको प्रेरणा दे (सूरः पारं अर्थं न) जैसा सूर्य परे स्थित स्थानको पहुंचता है। (ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्) जो इसकी इच्छाके साथ पति-पत्नीकी तरह मिले हैं। हे (तुविजात इन्द्र) अनेक प्रकारके काम करनेवाले इन्द्र ! (ये ते) और जो ये (पूर्वीः नरः गिरः च अन्नैः प्रतिशिक्षन्ति) पूर्व वीर अपनी स्तुतियोंको अन्नोंके साथ गाते हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १।११।५)

हे इन्द्र ! (ते मात्रे नु सुमिते) तेरे बड़े दो माप अच्छे किये हुए हैं। (द्यौः पूर्वी मज्मना) द्यौ प्रकाशसे तेरे बलसे और (काव्येन पृथिवी) तेरी प्रज्ञासे पृथिवी। (घृतवन्तः सुतासः ते वराय) घीसे मिले हुए सोमरस तेरे स्वीकारके लिये हों तथा (मधूनि पीतये स्वाद्मन् भवन्तु) मधुर रस तेरे पीनेके लिये मीठे हों ॥ ६ ॥ (ऋ. १।१२।६)

(मध्वः पूर्णं अमत्रं) मधुका पूर्ण पात्र (अस्मा इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (आ असिचन्) भर कर रखा है। (सः हि सत्यराधाः) वही सच्चा दानी है। (स पृथिव्या वरिमन्ना अभि वावृधे) वह पृथिवीकी श्रेष्ठताके चारों ओरसे बढ़ा (पौंस्यैः च क्रत्वा नर्यः) बलोंसे तथा बुद्धि और प्रभाव वह मानवोंका हितकारी है ॥ ७ ॥ (ऋ. १।१।५)

स्पानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८ ॥ (५०४)

[सूक्त ७७]

(ऋषिः — १-८ वामदेवः। देवता — इन्द्रः।)

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥ १ ॥
अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २ ॥
कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात्।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३ ॥
स्वर्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४ ॥

(स्वोजाः इन्द्रः) शक्तिशाली इन्द्र (पृतनाः स्पानट्) शत्रुकी सेनाओंको जीतता है (पूर्वीः अस्मै सख्याय आ यतन्ते) बहुतसी प्रजाएं इसकी मित्रताके लिये यत्न करती हैं। (यं भद्रया सुमत्या चोदयासे) जिसको तू अपनी शुभमतिसे प्रेरित करता है (अस्मा पृतनासु रथं न आ तिष्ठ) इस पर युद्धोंमें रथपर बैठते हैं उस तरह बैठ ॥ ८ ॥ (ऋ. १।१२९।८)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ नृणां नर्यः नृतमः सपानाम्— मनुष्योंमें श्रेष्ठ मनुष्योंका हित करनेवाला पृथिवीपति इन्द्र है।

२ स सत्वान् अभवत्। त्रिलोकः रथः सार्तं मन् अनु आवहत्— वह विजयी था। तीन ज्योतिवाले रथ रखने सबको वीरोंसे लाया।

३ इन्द्र उग्राय ! यत् मनीषा भवत्, मूरया भवे भगमस्य— हे पराक्रमी वीर, जो तेरी बुद्धियां हैं उनसे हमारे सत्कर्मोंके लिये अपने प्रेरित कर।

४ धीभ्यः भग्या च भवा— बुद्धियों और कर्मोंसे वह मानवोंका हित करनेवाला है।

५ स्वोजाः इन्द्रः पृतनाः स्पानट्— शक्तिशाली इन्द्र शत्रुके सैनिकोंको परास्त करता है।

(सूक्त ७७)

(सत्यः ऋजीषी मघवान् आ यातु) सत्य सोमपान करनेवाला इन्द्र यहां आवे। (अस्य हरयः नः उप द्रवन्तु) इसके घोडे हमारे पास दौडते आ जांय। (तस्मै इत् सुदक्षं अन्धः सुषुम) इसके लिये ही उत्तम बलवर्धक सोम रस निचोडा है। (गृणानः इह अभिपित्वं करते) स्तुति करनेपर वह यहां पहुंचेगा ॥ १ ॥ (ऋ. ४।१६।१)

हे शूर ! (अव स्य) खोल दे [अपने घोडोंको] (अध्वनः अन्ते न) मानो मार्गका अन्त हुआ है (नः अद्य अस्मिन् सवने मन्दध्यै) हमारे आज इस यज्ञमें आनन्द मनानेके लिये। (उशना इव वेधाः) उशनाके तरह ज्ञानिक (उक्थं शंसाति) गीत गाता है। वह (चिकितुषे असुर्याय मन्म) ज्ञानी बलवान् इन्द्रका यह स्तोत्र है ॥ २ ॥ (ऋ. ४।१६।२)

(वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्) बलवान् जब आने सोमको पीता हुआ गाता है (कविः न निण्यं विदथानि साधन्) कवि जैसा एकान्तमें यज्ञोंको करता हुआ [गाता है]। (दिवः इत्था सप्त कारून् जीजनत्) द्युमें इस तरह उसने सात स्तोताओंको उत्पन्न किया (अह्ना चित् गृणन्तः वयुना चक्रुः) दिनभर स्तुति करते हुए उन्होंने दिनभर कर्म किये ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।१६।३)

(अर्कैः सुदृशीकं स्वः यत् वेदि) स्तोत्रपाठोंके साथ जब दर्शनीय तेज दीख पडा (यत् ह वस्तोः महि ज्योतिः रुरुचुः) जब दिनमें बडी ज्योतिको प्रकाशित

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्यु१भे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५ ॥
विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६ ॥
अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन्प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७ ॥
अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८ ॥ (५११)

किया (नृभ्यः विचक्षे) मानवोंके देखनेके लिये (अभिष्टौ नृतमः) जिसकी नेताओंमें अग्रणी (अन्धा तमांसि दुधिता चकार) घने अन्धकारको दूर किया ॥ ४ ॥ (ऋ. ४।१६।४)

(ऋजीषी इन्द्रः अमितं ववक्ष) सोमप्रिय इन्द्र अपरिमित बढ गया। (महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ) अपने महत्त्वसे उसने दोनों लोकोंको भर दिया। (अतः चित् अस्य महिमा वि रेचि) इससे इसकी महिमा बढ गयी (यः विश्वा भुवना अभि बभूव) जिसने सारे भुवनोंको पराभूत किया ॥ ५ ॥ (ऋ. ४।१६।५)

(शक्रः विश्वानि नर्याणि विद्वान्) सामर्थ्यवान् इन्द्र सब मानवोंके हितके कर्म जानता है। (निकामैः सखिभिः अपः रिरेच) अपने निष्काम मित्रों- मरुतोंके साथ जलप्रवाहोंको उसने खोल दिया। (ये वचोभिः अश्मानं चित् बिभिदुः) जिन्होंने शब्दोंसे पत्थरोंको छिन्नभिन्न किया और (उशिजः गोमन्तं व्रजं वि वव्रुः) उन इच्छा करनेवाले [मरुतोंने] गौओंवाले बाडेको खोल दिया ॥ ६ ॥ (ऋ. ४।१६।६)

(अपः वव्रिवांसं वृत्रं पराहन्) जलोंको घेरनेवाले वृत्रको मारा। (सचेताः पृथिवी ते वज्रं प्रावत्) चेतना युक्त प्रभावशाली पृथिवीने तेरे वज्रकी रक्षा की। हे (धृष्णो शूर) शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्र! (शवसा पतिः भवन्) सामर्थ्यसे पति होकर (समुद्रियाणि अर्णांसि प्र ऐनोः) समुद्रीय जलोंको प्रवाहित किया आगे चलाया ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।१६।७)

हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रार्थित इन्द्र! (यत् अपः अद्रिं दर्दः) जब जलोंके पहाडको तूमने तोडा तब (सरमा ते पूर्व्यं आविः भुवत्) सरमा तेरे सामने प्रकट हुई। (अंगिरोभिः गृणानः) अंगिरोंसे स्तुति किया हुआ (गोत्रा रुजन्) पहाडोंको तोडता हुआ (सः नः नेता) वह हमारा नेता इन्द्र (भूरिं वाजं आ दर्षि) बहुत बल दिलाता है ॥ ८ ॥ (ऋ. ४।१६।८)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण कहे हैं—

१ चिकितुषे असुर्याय मन्म— ज्ञानी सामर्थ्यवान्‌के लिये यह सूक्त है।

२ महित्वा उभे रोदसी आ पप्रौ— अपने महत्त्वसे द्यावापृथिवीको भर दिया।

३ अस्य महिमा वि रेचि— इसकी महिमा बढ गया।

४ यः विश्वा भुवना अभि बभूव— जिसने सब भुवनोंको पराभूत किया।

५ शक्रः विश्वानि नर्याणि विद्वान्— समर्थ इन्द्र मानवोंके हितके सब कार्य जानता है।

६ धृष्णो शूर! शवसा पतिः भवन्— शत्रुका पराभव करनेवाले शूर! बलसे तू स्वामी होता है।

७ गोत्रा रुजन्— पहाडोंको तोडा।

८ सः नः नेता भूरिं वाजं आ दर्षि— वह हमारा नेता बहुत सामर्थ्य बनाता है।

[सूक्त ७८]

(ऋषिः — १-३ शंयुः । देवता — इन्द्रः ।)

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ १ ॥
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद्गिरः ॥ २ ॥
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ३ ॥ (५१९)

[सूक्त ७९]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः शक्तिर्वा ।। देवता — इन्द्रः ।)

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १ ॥
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २ ॥ (५२०)

(सूक्त ७८)

(सुते) सोमरस निकालनेपर (पुरुहूताय वः सत्वने) बहुतों द्वारा बुलाये गये आपके बलवान् वीरके लिये (सचा शं तद् गाय) साथ साथ वह कल्याणप्रद या सुखदायी स्तोत्र गाओ (यद् शाकिने गवे न) जैसा शक्तिशाली बलके लिये गाया जाता है ॥ १ ॥ (ऋ ६।४५।२२)

(यत् सीं गिरः उप श्रवत्) जब वह हमारी स्तुतियोंको सुनता है तब वह (गोमतः वाजस्य दानं) गौओंवाले बलके दानको तथा (वसुः घ न नियमते) धनको नहीं रोकता ॥ २ ॥ (ऋ ६।४५।२३)

(दस्युहा) शत्रुओंको मारनेवाला इन्द्र (कुवित्सस्य गोमन्तं व्रजं) कुवित्सके गौओंवाले बाडेके पास (हि प्र गमत्) जायगा और (शचीभिः नः अप वरत्) अपनी शक्तियोंसे हमारे लिये उसे खोलेगा ॥ ३ ॥ (ऋ० ४५।२४)

१ यत् सीं गिरः उपश्रवत् गोमतः वाजस्य दानं वसुः न नि यमते— जब वह इन्द्र हमारी स्तुतियोंको सुनता है तब गौओंवाले बलके दानको अथवा धनको देना वह बन्द नहीं करेगा ।

२ दस्युहा गोमन्तं व्रजं प्र गमत् शचीभिः नः अप वरत्— शत्रुनाशक इन्द्र गौओंके बाडेके पास जाता है और अपनी शक्तियोंसे उसको हमारे लिये खोलता है ।

(सूक्त ७९)

हे इन्द्र ! (नः क्रतुं आ भर) हमारे लिए कर्तृत्वबुद्धि भर दे (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको देता है । हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित इन्द्र ! (अस्मिन् यामनि नः शिक्ष) इस कर्ममें हमें शिक्षा दे (जीवा ज्योतिः अशीमहि) जीवित रहनेपर हम ज्योतिको प्राप्त करेंगे ॥ १ ॥ (ऋ ७।३२।२६)

(अज्ञाता वृजना दुराध्यः) अज्ञात बुरा चाहनेवाले हमारे शत्रु (मा नः) हमें मत दबायें (अशिवासः मा अव क्रमुः) अशुभ शत्रु हमपर आक्रमण न करें। हे शूर ! (त्वया वय) तेरे साथ रहकर हम (शश्वतीः प्रवताः अपः) शाश्वत बहनेवाले जलप्रवाहोंको (अति तरामसि) तैर कर पार हो जाय ॥ २ ॥ (ऋ. ७।३२।२७)

१ हे इन्द्र ! नः क्रतुं आ भर— हे इन्द्र ! हमें कर्तृत्व करनेकी बुद्धि भरपूर दे । जिससे हम पुरुषार्थ प्रयत्न कर सकें ।

२ यथा पुत्रेभ्यः पिता क्रतुं— जैसा पिता पुत्रोंको कर्तृत्वशक्तिसे युक्त करता है । पिताका यह कर्तव्य है कि वह अपने पुत्रोंको कर्तृत्वशक्तिसे युक्त करे ।

३ अस्मिन् यामनि नः शिक्ष— शत्रुपर हमला करनेके मार्गके विषयमें हमें योग्य और आवश्यक ज्ञान दे जिससे हम आक्रमण करके शत्रुको पराजित कर सकें ।

४ जीवा ज्योतिः अशीमहि— जीवित रहेंगे तो तेजस्विता प्राप्त करेंगे ।

५ अज्ञाता वृजना दुराध्यः अशिवासः मा अव क्रमुः— कोई अज्ञात दुष्ट दुर्जन शत्रु हमपर आक्रमण न करें ।

६ त्वया वयं शश्वतीः प्रवतः अपः अति तरामसि— तुम्हारे साथ रहकर हम शाश्वत वेगसे बहनेवाले जलप्रवाहोंको तैर कर पार कर देंगे ।

[[illegible]]

([illegible])

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥

[[illegible]]

([illegible])

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥

[illegible]

[सूक्त ८२]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ १ ॥
शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन ॥ २ ॥ (५२३)

[सूक्त ८३]

(ऋषिः — १-२ शंयुः। देवता — इन्द्रः।)

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥ १ ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ २ ॥ (५२५)

---

१ हे इन्द्र ! शतं द्यावः शतं भूमीः सहस्रं सूर्याः त्वा अनु न अष्ट— हे इन्द्र ! सौ भी द्यौ हों या सौ भूमियां हों या सहस्र सूर्य हों तेरे प्रकट होनेपर तेरी बराबरी कोई कर नहीं सकता। ऐसा तेरा सामर्थ्य बडा विशाल है।

२ हे वृषन् शविष्ठ मघवन् वज्रिन्! विश्वा शवसा वृष्ण्या महिना आ पप्राथ— हे बलवान् सामर्थ्य शाली धनवान् वज्रधारी इन्द्र! तू अपनी सामर्थ्ययुक्त महिमासे सबको भरपूर भर दिया है।

३ गोमति व्रजे चित्राभिः ऊतिभिः अस्मान् अव- गौओंवाले बाडेमें हम रहें और वहां हमारी सुरक्षा तू अपने विलक्षण सुरक्षाके साधनोंसे कर। हमें गौ मिलें और हमारा संरक्षण भी हो।

(सूक्त ८२)

हे इन्द्र! (यत् यावतः त्वं) जितनेका तू (एतावत् अहं ईशीय) उतनेका मैं स्वामी होऊंगा तो (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तुति करनेवालेको मैं आश्रय देऊं, हे (रदावसो) धनके दाता इन्द्र! (पापत्वाय न रासीय) पाप करनेके लिये नहीं दाऊंगा ॥ १ ॥ (ऋ. ७।३२।१८)

(दिवे दिवे महयते) प्रतिदिन स्तुति करनेवालेको मैं (रायः आ शिक्षेयं इत्) धन देऊंगा ही (कुह चित् विदे) कहीं भी वह हो। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (त्वत् अन्यत् आप्यं नहि) तेरे सिवाय दूसरा बन्धु नहीं है (वस्यो) धनवान् (पिता चन न अस्ति) पिता भी तुझसे बढकर नहीं है ॥ २ ॥ (ऋ. ७।३२।१९)

(सूक्त ८३)

हे इन्द्र! (त्रिधातु त्रिवरूथं) तीन धातुओंवाले तीन आवरणोंवाला (स्वस्तिमत् शरणं) कल्याण करनेवाला आश्रय स्थान (छर्दिः) घर (मघवद्भ्यः च मह्यं च) धनी लोगोंके लिये और मुझे (यच्छ) दे दो। (एभ्यः दिद्युं यावय) इनसे शस्त्र दूर कर दे ॥ १ ॥ (ऋ. ६।४६।९)

(ये गव्यता मनसा) जो गौओंको चाहते हुए मनसे (शत्रुं आ दभुः) शत्रुको मारते हैं और (धृष्णुया अभि प्रघ्नन्ति) धैर्यसे प्रहार करते हैं हे (मघवन् गिर्वणः इन्द्र) धनवान् स्तुतिसे प्रशंसनीय इन्द्र! (अध स्म नः अन्तमः तनूपाः भव स्म) हमारे शरीरोंका तू समीप स्थित रक्षक हो ॥ २ ॥ (ऋ. ६।४६।१०)

१ त्रिधातु त्रिवरूथं स्वस्तिमत् शरणं छर्दिः मह्यं मघवद्भ्यः यच्छ— तीन धातुओंका जिसमें किया है तीन बडे आवरणस्थान जिसमें हैं आरामदायक ऐसा जो स्थान है वह रहनेका घर मुझ और धनिकोंको दे दो।

२ गव्यता मनसा शत्रुं आ दभुः— गौवें प्राप्त करने वाली बुद्धिसे जो शत्रुको दबाते हैं धृष्णुया अभि प्रघ्नन्ति - धैर्यसे शत्रुपर जो प्रहार करते हैं ... अन्तमः तनूपाः भव - हमारे शरीरका समीप रहकर रक्षण करनेवाला तू हो।

[सूक्त ८४]

(ऋषिः — १-३ मधुच्छन्दाः। देवता — इन्द्रः।)

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ १ ॥
इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ २ ॥
इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ३ ॥ (५१८)

[सूक्त ८५]

(ऋषिः — १-३ प्रगाथः १ ४ मेध्यातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥ ३ ॥
वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥ (५१९)

(सूक्त ८४)

(चित्रभानो इन्द्र) हे आश्चर्यकारक तेजस्वी इन्द्र! (आ याहि) आ। (इमे सुता त्वायवः) ये सोमरस तेरे लिये निकाले (अण्वीभिः तना पूतासः) और अंगुलियोंसे छान कर पवित्र किये हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।३।४)

हे इन्द्र! (धिया इषितः) बुद्धिसे प्रेरित हुआ (विप्रजूतः) ब्राह्मणोंसे उत्तेजित हुआ (सुतावतः वाघतः ब्रह्माणि) सोमरस निकालनेवाले स्तोताके स्तोत्रोंके (उप आ याहि) पास आ ॥ २ ॥ (ऋ. १।३।५)

हे (हरिवः इन्द्र) घोडोंवाले इन्द्र! (तूतुजानः) त्वरा करता हुआ (ब्रह्माणि उप आ याहि) स्तोत्रोंके पास आ। (नः सुते चनः दधिष्व) हमारे सोमरसमें आनंद मान ॥ ३ ॥ (ऋ. १।३।६)

(सूक्त ८५)

हे (सखायः) मित्रो! (अन्यत् चित् मा वि शंसत) किसी अन्यकी प्रशंसा न करो। (मा रिषण्यत) मत दुःखी होओ। (सुते) सोमरस निकाल कर (सचा) साथ बैठकर (वृषणं इन्द्रं इत् स्तोत) सामर्थ्यवान् इन्द्रकी ही स्तुति करो। (मुहुः उक्था च शंसत) बारबार उसके ही स्तोत्र गाओ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१।१)

(अवक्रक्षिणं) शत्रुको नीचे फेंकनेवाले (वृषभं) बलवान्, (अजुरं) वृद्ध न होनेवाले (गां न यथा) गौ जैसे उत्तम अन्न देनेवाले (चर्षणीसहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले (विद्वेषणं) दुष्टोंका द्वेष करनेवाले (संवननं- उभयंकरं) भक्तोंकी सहायता करनेवाले ये दोनों काम करनेवाले (मंहिष्ठं) बडे श्रेष्ठ (उभयाविनं) दोनोंको मिलानेवाले इन्द्रके स्तोत्र गाओ ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१।२)

(इमे नाना जनाः) ये नाना प्रकारके लोग (ऊतये) सुरक्षाके लिये (यत् चित् हि त्वा हवन्त) जो तुझे ही प्रार्थना करते हैं। हे इन्द्र! (अस्माकं इदं ब्रह्म) हमारा यह स्तोत्र (अह ते विश्वा च वर्धनं भूतु) यहाँ तेरा महत्त्व बढानेवाला हो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१।३)

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (जनानां विपश्चितः विपः अर्यः) लोगोंके बीचमें जो ज्ञानी भक्त (वि

[सूक्त ८६]

(ऋषिः — १ विश्वामित्रः। देवता — इन्द्रः।)

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन्प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥ १ ॥ (५११)

[सूक्त ८७]

(ऋषिः — १-७ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥ १ ॥

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥ २ ॥

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

यद्योधया महतो मन्यमानान्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४ ॥

तर्दयन्ते) विशेष स्तुति गाते हैं। उनके (उप क्रमस्व) पास जा। (ऊतये) उनके संरक्षणके लिए (मेदिष्ठं पुरु रूपं वाजं) पासवाला अनेक रूपोंमें मिलनेवाला [illegible] अन्न (आ भर) भरपूर भर दे ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।१।१४)

इस सूक्तमें द्वितीय मंत्र इन्द्रके गुणोंका वर्णन करता है।

(सूक्त ८६)

(ब्रह्मणा) ज्ञानसे (ब्रह्मयुजा सखाया ते हरी) ज्ञानसे जुडनेवाले मित्र रूप तेरे घोडे (आशू) शीघ्र जानेवाले (सधमादे युनज्मि) आनंद देनेवाले रथमें जोतता हूं। हे इन्द्र! (स्थिरं सुखं रथं) सुदृढ सुखकारी रथपर (अधितिष्ठन्) बैठकर (प्रजानन् विद्वान्) जानता हुआ ज्ञानी तू (सोमं उप याहि) सोमके समीप आ ॥ १ ॥ (ऋ. ३।३५।४)

(सूक्त ८७)

हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युगण! (क्षितीनां वृषभाय) सब मनुष्योंके मुख्य इन्द्रके लिए (दुग्धं अरुणं अंशुं) दोहे हुए लाल रसका (जुहोतन) हवन करो। (गौरात् अवपानं वेदीयान्) गौर मृगसे अधिक जलकी तरह अपने पीनेके स्थानको जाननेवाला इन्द्र (सुतसोमं इच्छन्) सोम रस निचोडनेवालेकी इच्छा करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) प्रतिदिन उसके पास जाता है ॥ १ ॥ (ऋ. ७।९८।१)

(प्रदिवि यत् चारु अन्नं दधिषे) प्रतिदिन जिस सुन्दर अन्नकी इच्छा तू रखता है और (दिवे दिवे अस्य पीतिं इत् वक्षि) प्रतिदिन इसके पान करनेकी इच्छा करता है। हे इन्द्र! (उत हृदा उत मनसा जुषाणः) हृदय और मनसे प्रीति करता हुआ और (उशन्) इच्छा करता हुआ तू (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) रखे हुए सोमरसोंको पी ॥ २ ॥ (ऋ. ७।९८।२)

(जज्ञानः सोमं सहसे प्र पपाथ) जन्मते ही सोमको बलके लिए पीता था। (माता ते महिमानं उवाच) तेरी माता- अदितिने तेरी महिमाका वर्णन किया था। हे इन्द्र! (उरु अन्तरिक्षं आ पप्राथ) विस्तीर्ण अन्तरिक्षको तूने भर दिया और (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) युद्धसे देवोंके लिये ऐश्वर्य प्राप्त कर दिया ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।९८।३)

(यत् महतः मन्यमानान् योधय) जब तूने अपनेको बडा माननेवालोंको युद्धमें प्रवृत्त किया (तान् शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम) उन घमंड माननेवालोंको हम अपने बाहुओंसे पराभूत करेंगे। (यत् वा) जिस हे इन्द्र! (नृभिः वृतः अभियुध्याः) वीरोंसे घिरा हुआ तू युद्ध करता है (तं आजिं त्वया सौश्रवसं जयेम) उस युद्धको हम तेरे साथ रहकर यशस्वी होकर जीतेंगे ॥ ४ ॥ (ऋ. ७।९८।४)

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥
तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ (५४०)

[सूक्त ८८]

(ऋषिः — १-६ वामदेवः । देवता — बृहस्पतिः ।)

यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १ ॥
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २ ॥

(इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि) इन्द्रके पहिले किये हुए कर्मोंका (प्र वोचं) मैं वर्णन करता हूं (मघवा नूतना या प्र चकार) और इन्द्रने जो नवीन कर्म किये हैं। (यदा अदेवीः मायाः इत् असहिष्ट) जब असुरोंके कपटोंका पराभव किया (अथ अस्य केवलः सोमः अभवत्) तब केवल इसीका सोम हुआ ॥ ५ ॥ (ऋ. ७।९८।५)

(इदं विश्वं पशव्यं अभितः तव) तेरा यह सब पशुधन चारों ओर है। (यत् सूर्यस्य चक्षसा पश्यासि) जो तू सूर्यकी आंखसे देखता है (इन्द्र ! गवां एकः गोपतिः असि) हे इन्द्र ! तू गौओंका अकेला पालक है (ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि) तेरे दिये धनका हम भोग करें ॥ ६ ॥ (ऋ. ७।९८।६)

देखो अथर्व २०।१७।१२। (ऋ. ७।९८।७)

इस सूक्तमें इन्द्रका विशेष वर्णन यह है—

१ यत् महतो मन्यमानान् योधय ताम् दास बाहुभिः साक्षाम— जब बडे बलवाले वीरोंसे युद्ध हुआ तब उनको बाहुओंसे हमने पराभूत किया।

२ भूमिः वृता अभियुध्या त आजिं त्वया सीम वयं जयेम— जब तू वीरोंके साथ युद्ध करने जाता तब हम युद्धमें तेरे साथ रहकर हम सबको जीतनेमें विजयी होंगे।

३ इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि प्र वोचं— इन्द्रके पहिले पराक्रमोंका वर्णन मैंने किया।

४ मघवा नूतना या प्र चकार— इन्द्रने नये पराक्रम किये उनका भी वर्णन किया।

५ यदा अदेवीः माया असहिष्ट— असुरोंकी कपट नीतिका जब इसने पराभव किया।

६ इन्द्र ! गवां एकः गोपतिः असि ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि— हे इन्द्र ! तू गौओंका एक स्वामी है तेरे दिये धनका हम भोग करेंगे।

(सूक्त ८८)

(त्रिषधस्थः बृहस्पतिः) तीन स्थानोंमें रहनेवाले बृहस्पतिने (ज्मः अन्तान्) पृथिवीके अन्तोंको (रवेण सहसा वि तस्तम्भ) गर्जनाके बलसे स्थिर किया। (तं मन्द्रजिह्वं) उस आनंदित भाषण करनेवाले बृहस्पतिको (प्रत्नासः दीध्यानाः विप्राः ऋषयः) प्राचीन ध्यान करनेवाले विशेष ज्ञानी ऋषियोंने (पुरः दधिरे) सामने स्थापन किया ॥ १ ॥ (ऋ. ४।५०।१)

हे बृहस्पते ! (धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तः) गतिमान् शुभ चिन्होंसे आनंदित होनेवाले (ये नः अभि ततस्रे) जिन्होंने हमपर दबाव डाला है उनसे (पृषन्तं) सिंचन करनेवाले (सृप्रं अदब्धं ऊर्वं) गतिमान् अहिंसित और विस्तीर्ण (अस्य योनिं) ऐसे इसके उत्पत्तिस्थानकी हे बृहस्पते ! (रक्षतात्) सुरक्षा कर ॥ २ ॥ (ऋ. ४।५०।२)

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३ ॥
बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४ ॥
स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥ ५ ॥
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६ ॥ (५४१)

[सूक्त ८९]

(ऋषिः — १-११ कृष्णः । देवता — इन्द्रः ।)

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १ ॥
दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २ ॥

हे बृहस्पते ! (याः परमाः) जो दूर स्थान हैं (ते ऋतस्पृशः) वे सत्यको स्पर्श करनेवाले (परावत् अतः आ निषेदुः) उस दूर स्थानसे आकर यहां बैठे हैं । (तुभ्यं खाताः अवताः) तेरे लिये खोदे कूपोंके समान (अद्रिदुग्धाः) पत्थरोंसे कूटकर निकाली (मध्वः विरप्शं अभितः श्चोतन्ति) मधुर रसकी नदियें चारों ओर बह रही हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।५०।३)

बृहस्पति (प्रथमं) पहिले (महो ज्योतिषः परमे व्योमन्) बडी ज्योतिसे परम आकाशमें (जायमानः) उत्पन्न हुआ । (सप्त आस्यः) सात मुखोंवाला (तुवि जातः) बहुतोंमें प्रकट हुआ वह (सप्तरश्मिः) सात किरणोंवालेने (रवेण तमांसि अधमत्) बडे शब्दसे अन्धकारको दूर किया ॥ ४ ॥ (ऋ. ४।५०।४)

(स सुष्टुभा) उसने उत्तम स्तुतिसे (स ऋक्वता गणेन) उसने स्तोत्रोंके गणोंके (रवेण फलिगं वलं रुरोज) शब्दसे युक्त बलको तोड दिया । (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (हव्यसूदः उस्रियाः) हव्यको देनेवाली गौओंको (वावशतीः कनिक्रदत् उदाजत्) शब्द करनेवाली गौओंको गर्जना करते हुए हांक दिया ॥ ५ ॥ (ऋ. ४।५०।५)

(एवा वृष्णे पित्रे विश्वदेवाय) इस तरह बलवान् पिता विश्वदेवका (यज्ञैः नमसा हविर्भिः विधेम) यज्ञ नमस्कार और हविसे सत्कार करें । हे बृहस्पते ! (सुप्रजाः वीरवन्तः वयं स्याम) उत्तम प्रजा और पुत्रपौत्रोंसे युक्त हम हों तथा हम (रयीणां पतयः) धनोंके स्वामी बनेंगे ॥ ६ ॥ (ऋ. ४।५०।६)

(सूक्त ८९)

(अस्ता इव लायं प्रतरं सु अस्यन्) जैसा बाण फेंकनेवाला बाणको दूर फेंकता है और किसीको जैसा (भूषन् इव) सुभूषित करता है उस तरह (अस्मै स्तोमं प्र भर) इस इन्द्रके लिये स्तोत्र अर्पण करो । हे (विप्राः) ज्ञानियो ! (वाचा अर्यः वाचं तरत) अपनी वाणियोंसे शत्रुकी दुष्ट वाणीको तैर कर पार जाओ । हे (जरितः) स्तुति करनेवाले ! (इन्द्रं सोमे नि रामय) इन्द्रको सोममें रममाण करो ॥ १ ॥ (ऋ. १०।४२।१)

(दोहेन गां) दोहनके समयमें जैसे गौको बुलाते हैं उस तरह (सखायं उप शिक्ष) मित्र इन्द्रको अपने पास बुलाओ । हे (जरितः) स्तोता ! (जारं इन्द्रं प्र बोधय) प्यार करनेवाले इन्द्रको जगाओ । (पूर्णं कोशं न) धनसे

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३ ॥
त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४ ॥
धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥ ५ ॥
यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६ ॥
आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७ ॥
प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८ ॥

से भरे थैलेके समान (बहुला स्पन्द्रं धनं) धनके बोझके ... इन्द्रकी (मघवेद्याय भा ध्यावय) धन ... के लिये दिया हो ॥ २ ॥ (ऋ. १०।४२।२)

हे (अंग मघवन्) प्रिय धनवान् इन्द्र ! (किं त्वा भोजं आहुः) क्या तुझे उदार दाता कहते हैं ? (मा शिशीहि) मुझे तीक्ष्ण कर। (त्वा शिशयं शृणोमि) तुझे तीक्ष्ण बनानेवाला करके सुनता हूं। हे (शक्र) समर्थ इन्द्र ! (मम धीः अप्नस्वती अस्तु) मेरी बुद्धि कर्मके विषयमें प्रेम रखनेवाली हो। हे इन्द्र ! (वसुविदं भगं नः आ भर) धन देनेवाला भाग्य हमारे लिये ला दे ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।४२।३)

हे इन्द्र ! (जनाः ममसत्येषु संतस्थानाः) लोग युद्धोंमें खडे रहे (समीके त्वां विह्वयन्ते) युद्धमें तुझे बुलाते हैं। (अत्र यः हविष्मान्) यहां जो हविष्यान्नका दान करता है (युजं कृणुते) वह इन्द्र उसको मित्र बनाता है (असुन्वता सख्यं शूरः न वष्टि) सोम रस न निकालनेवालेके साथ शूर इन्द्र मित्रता नहीं करना चाहता ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।४२।४)

(यः प्रयस्वान्) जो प्रयत्न करनेवाला (बहुलं स्पन्द्रं धनं न) बडे रसयुक्त धनकी तरह (तीव्रान् सोमान् आसुनोति) तीव्र सोमरस निकालता है (तस्मै अह्नः प्रातः) उसके लिये दिनके सवेरेके समय (सुतुकान् स्वष्ट्रान् शत्रून् नि युवति) उत्तम संतानवाले और उत्तम शस्त्रवाले शत्रुओंको भी वह इन्द्र दूर करता है और (वृत्रं हन्ति) घेरनेवाले शत्रुको मारता है ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।४२।५)

(यस्मिन् इन्द्रे वयं शंसं दधिम) जिस इन्द्रमें हम अपना स्तोत्र धरते या गाते हैं (यः मघवा अस्मे कामं शिश्राय) जो इन्द्र हमारे विषयमें प्रेम रखता है (अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयतां) इसका शत्रु दूरसे भी डरता रहे (अस्मै जन्या द्युम्ना नि नमन्तां) इसके सामने मानवोंके वैभवके सारे तेज विनम्र होकर रहें ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।४२।६)

(शत्रुं आरात् दूरं) शत्रुको दूरसे दूर कर हे (पुरुहूत) बहुतोंसे द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! (यः उग्रः शम्बः तेन) जो तुम्हारा उग्र वज्र है उससे (अप बाधस्व) मार कर हटा दे। हे इन्द्र ! (अस्मे यवमत् गोमत् धेहि) हमें जौ और गौओंके साथ रहनेवाला धन दे। (जरित्रे वाजरत्नां धियं कृधि) स्तोताके लिये बलकी बुद्धि अन्न और रत्नोंसे युक्त कर ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।४२।७)

(वृषसवासः यं अग्मन्) बलवान् इन्द्रके अन्दर (तीव्राः सोमाः बहुलान्तासः) तीव्र रस बहुत प्रकारके

उत प्रहामतिदीव्या जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित्तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन वा क्षुधं पुरुहूत विश्वे ।
वयं राजसु प्रथमा धनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ ११ ॥ (५९७)

[सूक्त ९०]

(ऋषिः — १-३ भरद्वाजः । देवता — बृहस्पतिः ।)

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १ ॥

(प्र अगमन्) गये। (मघवा दामानं न आह विपसत्) धनवान् इन्द्र अपने दानको नहीं रोकता (सुन्वते भूरि वामं नि यच्छति) सोमरस निकालनेवालेके लिये बहुत धन देता है ॥ ८ ॥ (ऋ. १।४२।८)

—१ देखो अथर्व ७।५ (५२) । ६-७;

११ देखो अथर्व ७।५१ (५३) १ ।

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण दिखाये हैं—

१ वसुना नूनं भूरि मघवद्भ्याय आप्यायय— धन लाकर इन्द्रको धन देनेके लिये प्रेरित कर।

२ त्वा शिक्षयं शृणोमि— तू तीक्ष्ण करनेवाला है ऐसा मैं सुनता हूं।

३ वसुविदं भगं नः आ भर— धनसे परिपूर्ण भाग्य हमें ला दे।

४ समत्स्वेषु संयाना जना समीके त्वां वि ह्वयन्त— युद्धोंमें जाते हुए लोग युद्धके समय तुम्हें सहायतार्थ बुलाते हैं।

५ युजं कृणुते— वह मित्र करता है।

६ अनुकामं तृप्राम् (सु अध्वान) शत्रुम् नि जुवति— उत्तम कर कमानेवाले और उत्तम बलवाले शत्रुको भी वह दूर करता है।

७ वृत्रं हन्ति— इन्द्र मारता है घेरनेवाले शत्रुको मारता है।

८ अस्य शत्रुः आरात् चित् सन् भयते— इन्द्रके शत्रु दूरसे भी इससे डरते हैं।

९ अस्मै सुम्ना जन्या नि नमन्ता— इसके सामने मानवोंके सारे तेजस्वी बलवान नम्र होते हैं।

१० हे पुरुहूत ! यः उग्रः शम्यः तेन आरात् शत्रुं दूरे अप बाधय— हे मनुष्यों द्वारा बुलाये जानेवाले इन्द्र ! जो तुम्हारा उग्र वज्र है उससे दूरसे ही शत्रुको पराभूत कर।

११ अस्मै यवमत् गोमत् धेहि— हमें जौ और गौ युक्त धन दे।

१२ जरित्रे धियं वाजरत्नां कृधि— स्तोताकी बुद्धिको अन्न और रत्नोंसे युक्त कर।

१३ मघवा दामानं न नि धंसत्— इन्द्र दानको रोकता नहीं।

१४ सुन्वते भूरि वामं नि यच्छति— सोमयाग करनेवालेको उत्तम धन देता है।

(सूक्त ९०)

(यः अद्रिभित्) जो पहाडी किलोंको तोडनेवाला (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न (ऋतावा) सत्यतासे युक्त, (हविष्मान्) हविसे युक्त (आङ्गिरसः बृहस्पतिः) अंगिरसकुल युक्त बृहस्पति (द्विबर्हज्मा) दो स्थानोंवाला (घर्मसत्) प्रकाशमें रहनेवाला (नः पिता) हमारा पिता (वृषभः) बलवान् (रोदसी आ रोरवीति) द्यौ और पृथ्वीको शब्दसे भर देता है ॥ १ ॥
(ऋ. ६।७३।१)

जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥ २ ॥
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान्गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३ ॥ (५६०)

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥ ७ ॥

[सूक्त ९१]

(ऋषिः — १-१२ अयास्यः । देवता — बृहस्पतिः ।)

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १ ॥
ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २ ॥

(यः बृहस्पतिः ईवते जनाय चित् लोकं उ) जो बृहस्पति उत्तम लोगोंके लिये सुख स्थान (देवहूतौ चकार) देवोंके आवाहन करनेके यज्ञमें करता है। (वृत्राणि घ्नन्) शत्रुओंको मारता है (पुरः वि दर्दरीति) शत्रुके किलोंको तोड़ता है (शत्रून् जयन्) शत्रुओंको जीतता है और (अमित्रान् पृत्सु साहन्) संग्रामोंमें अमित्रोंको पराभूत करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ६।७३।२)

(बृहस्पतिः वसूनि समजयत्) बृहस्पतिने धनोंको जीत लिया। (एष देवः महः गोमतः व्रजान्) इस देवने बड़े गौओंवाले बाड़ोंको जीता। (अपः सिषासन्) जलोंको प्राप्त करना चाहा और (स्वः) प्रकाशको प्राप्त करना चाहा (अप्रतीतः बृहस्पतिः) पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिने (अर्कैः अमित्रं हन्ति) स्तोत्रोंसे-तेजोंसे-शत्रुको मारा ॥ ३ ॥ (ऋ. ६।७३।३)

बृहस्पतिके ये गुण इस सूक्तमें कहे हैं—

१ अद्रिभित् ऋतावा धर्मसद् हविष्मान् वृषभः त्रिषधस्था प्रथमजाः— शत्रुके किलोंको तोड़ता है सत्य मार्गसे जानेवाला यज्ञमें बैठनेवाला हविसे युक्त बलवान्, तीनों मार्गोंसे जानेवाला प्रथम उत्पन्न बृहस्पति है। त्रिषधस्था— तीन स्थानमें वा मार्गोंसे जानेवाला।

२ वृत्राणि घ्नन्— शत्रुओंको मारता है।

३ पुरः दर्दरीति— शत्रुके किलोंको तोड़ता है।

४ शत्रून् जयन्— शत्रुओंको जीतता है।

५ अमित्रान् पृत्सु साहन्— शत्रुको युद्धोंमें पराभूत करता है।

६ बृहस्पतिः वसूनि समजयत्— बृहस्पति धनोंको जीतता है।

७ एष देवः महो गोमतः व्रजान् समजयत्— इस देवने बड़े गौओंवाले बाड़ोंको जीता।

८ अप्रतीतः बृहस्पतिः अर्कैः अमित्रं हन्ति— पीछे न हटनेवाला बृहस्पति अपने तेजस्वी साधनोंसे शत्रुको मारता है। अर्क- किरण तेजस्वी शस्त्र।

॥ यहां सप्तम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ९१)

(नः पिता) हमारे पिताने (इमां सप्तशीर्ष्णीं ऋतप्रजातां बृहतीं धियं) इस सात सिरोंवाली अर्थात् सत्यसे उत्पन्न हुई बड़ी स्तुतिको (अविन्दत्) प्राप्त किया। (अयास्यः इन्द्राय उक्थं शंसन्) अयास्यने इन्द्रके लिये स्तुति करनेके समय (विश्वजन्यः) सब मानवोंका हित करनेवाले इसने (तुरीयं स्वित् जनयत्) चतुर्थको निर्माण किया ॥ १ ॥ (ऋ. १०।६७।१)

(ऋतं शंसन्तः) सत्यको कहनेवाले (ऋजु दीध्यानाः) सरल रीतिसे सोचनेवाले (असुरस्य वीराः) बलवानके वीर (दिवस्पुत्रासः) द्युके पुत्र (विप्रं पदं दधानाः

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३ ॥
अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४ ॥
विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५ ॥
इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६ ॥
स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७ ॥
ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८ ॥

अंगिरसः) विप्रका पद धारण करनेवाले अंगिरसोंने (यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त) यज्ञके विषय प्रथम मनन किये अच्छा माने ॥ २ ॥ (ऋ. १०।६७।२)

(हंसैः इव) हंसोंके समान (वावदद्भिः सखिभिः) बोलनेवाले मित्रोंके साथ [मरुतोंके साथ] (अश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्) पत्थरोंके बन्धनोंको खोलकर (बृहस्पतिः गाः अभिकनिक्रदत्) बृहस्पतिने गौओंकी ओर गर्जना की (उत प्रास्तौत्) और स्तुति की (विद्वान् उच्च अगायत्) ज्ञानी हुए उन्होंने उच्च स्वरसे गायन किया ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।६७।३)

(अवः द्वाभ्यां) नीचे दोनोंके साथ (परः एकया) और पर एकके साथ (गुहा तिष्ठन्तीः अनृतस्य सेतौ) गुहामें अनृतके सेतुमें रहनेवाली (तिस्रः गाः) तीन गौओंको (बृहस्पतिः तमसि ज्योतिः इच्छन्) बृहस्पतिने अन्धकारमें तेजकी इच्छा करके (आकः वि आवः) प्रकट किया ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।६७।४)

(अपाचीं पुरं विभिद्य) पश्चिमी किलेको तोडकर (शयथ) साथ रहकर (साकं त्रीणि उदधेः अकृन्तत्) साथ साथ तीन को समुद्रसे निकाला । (द्यौः इव स्तनयन्) मेघ गर्जना करता हुआ [बृहस्पति] बृहस्पतिने (उषसं सूर्यं गां) उषा सूर्य गौ और (अर्कं विवेद) विद्युत्को प्राप्त किया ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।६७।५)

(इन्द्रः दुघानां रक्षितारं वलं) इन्द्रने गौओंके रक्षण करनेवाले वलको (करेण इव रवेण वि चकर्त) हाथसे तथा गर्जनासे काटा । (स्वेदाञ्जिभिः आशिरं इच्छमानः) पसीनेवाले मरुतोंके साथ दुग्धपानकी इच्छा करनेवाले इन्द्रने (गाः अमुष्णात्) गौओंको छीन लिया और (पणिं अरोदयत्) पणिको रुलाया ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।६७।६)

(सः ईं) उसने (सत्येभिः शुचद्भिः धनसैः सखिभिः) सत्य शुचि धनके दान करनेवाले मित्रों [मरुतों] के साथ रहकर (गो-धायसं वि अदर्दः) गौओंको पकड कर रखनेवाले [वल] का नाश किया । (ब्रह्मणस्पतिः घर्मस्वेदेभिः वराहैः वृषभिः) ब्रह्मणस्पतिने घर्मसे जिनका पसीना आता है ऐसे बलवान् श्रेष्ठ [मरुतों] के द्वारा (द्रविणं व्यानट्) धनको प्राप्त किया ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।६७।७)

(ते गाः इयानासः) वे गौओंके पास जाते हुए (सत्येन मनसा) सच्चे मनसे (धीभिः गोपतिं इषणयन्त) और बुद्धिसे गौओंके पतिकी इच्छा करते हुए (बृहस्पतिः अवद्यपेभिः स्वयुग्भिः) बृहस्पतिने निर्दोष कर्म करनेवाले मित्रोंके साथ (उस्रियाः असृजत) गौओंको मुक्त किया ॥ ८ ॥ (ऋ. १०।६७।८)

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९ ॥
यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १० ॥
सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११ ॥
इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२ ॥ (५७०)

(सधस्थे सिंह नानदतं इव) [illegible] (शिवाभिः मतिभिः तं वर्धयन्तः) [illegible] (वृषणं जिष्णुं बृहस्पतिं) [illegible] (भरे भरे शूरसातौ अनु मदेम) [illegible] ॥ (ऋ. १ [illegible])

(यदा विश्वरूपं वाजं असनत्) [illegible] (उत्तराणि सद्म द्यां अरुक्षत्) [illegible] (वृषणं बृहस्पतिं वर्धयन्तः) [illegible] (आसा ज्योतिः बिभ्रतः नाना सन्तः) [illegible] ॥ (ऋ. १ [illegible])

(आशिषं सत्यां कृणुत) [illegible] (वयोधै कीरिं चित् हि अवथ) [illegible] (विश्वाः मृधः पश्चा अप भवन्तु) [illegible] (विश्वं इन्वे रोदसी) [illegible] (शृणुतं) [illegible] ॥ ११ ॥ (ऋ. १ [illegible])

(इन्द्रः मह्ना) [illegible] (महतः अर्णवस्य) [illegible] (अर्बुदस्य मूर्धानं वि अभिनत्) [illegible] (अहिं अहन्) [illegible] (सप्त सिन्धून् अरिणात्) [illegible] (द्यावापृथिवी देवैः) [illegible] (नः प्रावतं) [illegible] ॥ (ऋ. १ [illegible])

इस सूक्तमें [illegible] —

१ [illegible] पिता [illegible] [illegible] बृहती धियं अविन्दत् — [illegible] पिता—बृहस्पति— [illegible] बुद्धि [illegible] । [illegible] [illegible] बुद्धि [illegible] । [illegible] ।

[illegible] आङ्गिरसः [illegible] ।

[illegible] [illegible] —

[illegible] —

[illegible]

[सूक्त ९२]

(ऋषिः — १-१२ प्रियमेधाः, १३-२१ पुरुहन्मा । देवता — इन्द्रः ।)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि । मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

बृहस्पतिने गर्जना करके गौओंको बुलाया । अर्थात् असुरोंने गौओंको चुराकर पत्थरोंसे बने किलोंमें रखी थी । बृहस्पतिने मरुतोंके द्वारा वे किले तोडे और गौओंको बुलाया ।

५ अवः द्वाभ्यां पर एकया गुहा तिष्ठन्तीः अनृतस्य सेतौ तिस्रः गाः बृहस्पतिः ज्योतिः इच्छन् आवः वि आकः — दो नीचे एक परे ऐसी अवस्थामें गुहामें रहनेवाली असत्यकारी दुष्टके अधिकारमें तीन गौवें थीं बृहस्पतिने ज्योतिकी इच्छा की और उन गौओंको बाहर निकाला ।

यहां प्रकाश किरणें गौवें प्रतीत हो रहीं हैं । प्रभातके पूर्व अन्धकार रहता है और प्रकाश किरण रूपी गौवें अन्धकारके कारण छिपी रहती हैं । उषःकाल होते ही अन्धकारका किला टूट जाता है और प्रकाशकी किरणें बाहर आती हैं । यह आलंकारिक वर्णन यहां है ऐसा प्रतीत हो रहा है ।

६ बृहस्पतिः उषसं सूर्यं गां अर्कं विवेद — बृहस्पतिने उषा सूर्य गौ (किरण) और विद्युत्को प्राप्त किया । इससे प्रकाश किरणें गौवें हैं ऐसा प्रतीत होता है ।

७ इन्द्रः वलं वि चकर्त गां अमुष्णात्, पणिं आरोदयत् — इन्द्रने वलको मारा गौओंको छुडाया पणिको रुलाया ।

वल और पणि ये गौओंको चुरानेवाले हैं इन्द्रने वलको मारा गौवें प्राप्त कीं और पणिको रुलाया । गौवें इन्द्रने प्राप्त कीं इसलिये पणि रोने लगे ।

८ सः सखिभिः गो व्यायत्तं वि अवर्दः — उस इन्द्रने अपने मित्रों-मरुतोंके द्वारा गौओंको पकडकर रखनेवालेको मार दिया ।

९ वृषभिः प्रविदत् व्याजद् — बलवान् मरुतोंके द्वारा शत्रुसे इन्द्र प्राप्त किया । वल और पणि ये शत्रु हैं इनको पराभूत करके उनका धन इन्द्रने या बृहस्पतिने अपने अधीन किया । शत्रुका धन छीनना यह युद्धनीतिका नियम ही है ।

१० वृषणं जिष्णुं बृहस्पतिं भरे भरे शूरसातौ अनु मदेम — बलवान् जीतनेवाले बृहस्पतिका प्रत्येक युद्धमें जहां शूर पुरुषोंका ही काम होता है उस युद्धमें हम अनुमोदन करें ।

११ वृषभं बृहस्पतिं वर्धयन्तः — बलवान् बृहस्पति की हम स्तुति करके उसकी महिमाको बढाते हैं ।

१२ इन्द्र महा अर्बुदस्य मूर्धानं वि अभिनत् — इन्द्रने अपनी महा शक्तिसे अर्बुदके सिरको काटा ।

१३ अहिं अहन् — अहिको मारा ।

१४ सप्त सिन्धून् अरिणात् — सात नदियोंको बहाया ।

शत्रुको मारा और नदियोंको बहाया । इन वर्णनोंसे ये शत्रु मेघ या पहाडपर रहनेवाला बर्फ है ऐसा प्रतीत होता है ।

(सूक्त ९२)

१-३ देखो अथर्व २० ।२२।४-६ (ऋ. ८।६९।४-६)

(यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहं) जब चमकनेवाले सूर्यके ऊंचे स्थानपर (इन्द्रः च) इन्द्र और मैं (उद् गन्वहि) चढे (मध्वः पीत्वा) मधुर सोमरस पीकर (सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) हम दोनों सखाके स्थानपर तीन वार सात २१ वार इकट्ठे हुए ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।६९।७)

(अर्चत प्रार्चत) उपासना करो खूब उपासना करो । (प्रियमेधासः अर्चत) हे प्रिय मेधो उपासना करो (उत पुत्रकाः अर्चन्तु) छोटे बच्चे भी उपासना करें । (धृष्णु पुरं न अर्चत) पुर जैसा अजेय किला है ऐसा मानकर उपासना करो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६९।८)

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्। पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ६ ॥
आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥ ७ ॥
अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ८ ॥
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥ ९ ॥
यो व्यतीँरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १० ॥
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः। भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ ११ ॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्। स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १२ ॥
आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १३ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते। अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १४ ॥

(गर्गरः अव स्वराति) वीणा बज रही है (गोधा परि सनिष्वणत्) तंबूरेने स्वर मिलाया है (पिंगा परि चनिष्कदत्) मधुर स्वरवालेने आलाप मिलाये हैं (इन्द्राय ब्रह्म उद्यतम्) इन्द्रके लिये स्तोत्र गाये जा रहे हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. ८।६९।९)

(यत् एन्यः सुदुघाः अनपस्फुरः) जब रंगीवाली दूध देनेवाली न हिलनेवाली (अनपस्फुरः आ पतन्ति) शान्त न होनेवाली गौएँ आकर दूध मिलाती हैं (इन्द्राय पातवे सोमं गृभायत) इन्द्रके पीनेके लिये सोमका ग्रहण करो ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।६९।१०)

(इन्द्रः अपात्) इन्द्रने पीया है (अग्निः अपात्) अग्निने पीया है (विश्वे देवाः अमत्सत) सब देवोंको आनन्द हुआ है। (वरुणः इत् इह क्षयत्) वरुण तो यहां रहता है। (आपः तं अभ्यनूषत) जल शब्द करते हुए उसके समीप पहुंचा है (संशिश्वरीः वत्सं इव) जैसे गौएं बछडेके पास जाती हैं ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।६९।११)

हे (वरुण! सुदेवः असि) वरुण! तू उत्तम देव है। (सप्त सिन्धवः यस्य ते काकुदं अनुक्षरन्ति) सात नदियां जिसकी तालुकी ओर बहती हैं (सूर्म्यं सुषिरां इव) जैसी वह एक पोली नलीको होती है ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।६९।१२)

(यः दाशुषे उप) जो दाताके पास (सुयुक्तान् व्यतीन् अफाणयत्) उत्तम जोते हुए दौडनेवाले घोडोंको चलाता है, (तक्वः नेता) वह वेगवान नेता है (तत् इत् वपुः उपमा) वह एक उपमा देने योग्य वीरका शरीर है (यः अमुच्यत) जो दुष्टोंके द्वारा छोडा जाता है। दुष्ट उसको पकड नहीं सकते ॥ १० ॥ (ऋ. ८।६९।१३)

(शक्रः इन्द्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्र (विश्वाः द्विषः) सब शत्रुओंको (अति इत् अति ओहते) दूर करता है। (कनीनः) छोटे होते हुए उस इन्द्रने (गिरा पच्यमानं ओदनं परः भिनत्) शब्दसे पकनेवाला ओदन-मेघ-को तोड दिया ॥ ११ ॥ (ऋ. ८।६९।१४)

(अर्भकः कुमारकः न नवं रथं अधि तिष्ठन्) बहुत छोटा बालक होनेपर भी वह नये रथपर चढा। (सः) उसने (पित्रे मात्रे) अपने पिता और माताके लिये (विभुक्रतुं महिषं मृगं) बडी शक्तिवाले मेघ जैसे मृगको (पक्षत्) पकाया [अपने मेघको तैयार किया] ॥ १२ ॥ (ऋ. ८।६९।१५)

हे (सुशिप्र) उत्तम हनुवाले इन्द्र! हे (दम्पते) स्वामिन्! (हिरण्ययं रथं आ तिष्ठ) सुवर्णमय रथपर चढ (अध) और पश्चात् हम (द्युक्षं सहस्रपादं अरुषं) तेजस्वी हजारों किरणोंवाले लाल (स्वस्तिगां अनेहसं सचेवहि) कल्याणकारक निष्पाप [सूर्य]से मिलेंगे ॥ १३ ॥ (ऋ. ८।६९।१६)

(तं स्वराजं घ ईं इत्था उप आसते) उस स्वराट् देवकी उपासना करते हैं (नमस्विनः) अन्नवाले नमस्कार

[सूक्त ९२]

(ऋषिः — १-१२ प्रियमेधः । १३-२१ पुरुहन्मा । देवता — इन्द्रः ।)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ १ ॥
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि संनवामहे ॥ २ ॥
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ३ ॥
उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि । मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ४ ॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ५ ॥

बृहस्पतिने गर्जना करके गौओंको बुलाया। अर्थात् असुरोंने गौओंको चुराकर पत्थरोंके बने किलेमें रखी थी। बृहस्पतिने मरुतोंके द्वारा वे किले तोडे और गौओंको बुलाया।

५ अवः द्वाभ्यां पर एकया गुहा तिष्ठन्तीः अनृतस्य सेतौ तिस्रः गाः बृहस्पतिः ज्योतिः इच्छन् आवः वि आकः — दो नीचे एक परे ऐसी अवस्थामें गुहामें रहने वाली असत्यवादी शत्रुके अधिकारमें तीन गौएं थीं बृहस्पतिने ज्योतीकी इच्छा की और उन गौओंको बाहर निकाला।

यहां प्रकाश किरणें गौवें प्रतीत हो रही हैं। इसके पूर्व अन्धकार रहता है और प्रकाश किरण उसी घोर अन्धकारके कारण छिपी रहती है। उषःकाल होते ही अन्धकारका किला टूट जाता है और प्रकाशकी किरणें बाहर आती हैं। यह आलंकारिक वर्णन यहां है ऐसा प्रतीत हो रहा है।

६ बृहस्पतिः उषसं सूर्यं गां अर्कं विवेद — बृहस्पतिने उषा, सूर्य गौ (किरण) और विद्युत्को प्राप्त किया। इससे प्रकाश किरणें गौवें हैं ऐसा प्रतीत होता है।

७ इन्द्रः वलं वि अभिनत् गाः अमुष्णात्, पणिं आरोदयत् — इन्द्रने वलको मारा गौओंको छुडाया पणिको रुलाया।

वल और पणि ये गौओंको चुरानेवाले हैं इन्द्रने वलको मारा गौवें प्राप्त की और पणिको रुलाया। गौवें इन्द्रने प्राप्त की इसलिये पणि रोने लगे।

८ सः सखिभिः गोधायसं वि अदर्दः — उस इन्द्रने अपने मित्रों-मरुतोंके द्वारा गौओंको पकडकर रखने वालेको मार दिया।

९ वृषभिः द्रविणं व्यानट् — बलवान् मरुतोंके द्वारा शत्रुसे इन्द्रने धन प्राप्त किया। वल और पणि ये शत्रु हैं इनको पराभूत करके इनका धन इन्द्रने या बृहस्पतिने अपने अधीन किया। शत्रुका धन छीनना यह युद्धनीतिका नियम ही है।

१० वृषणं जिष्णुं बृहस्पतिं भरे भरे शूरसातौ अनु मदेम — बलवान् जीतनेवाले बृहस्पतिका प्रत्येक युद्धमें जहां शूर पुरुषोंका ही काम होता है उस युद्धमें हम अनुमोदन करें।

११ वृषणं बृहस्पतिं वर्धयन्तः — बलवान् बृहस्पतिकी हम स्तुति करके उसकी महिमाको बढाते हैं।

१२ इन्द्रः मह्ना अर्बुदस्य मूर्धानं वि अभिनत् — इन्द्रने अपनी महा शक्तिसे अर्बुदके सिरको काटा।

१२ अहिं अहन् — अहिको मारा।

१२ सप्त सिन्धून् अरिणात् — सात नदियोंको बहाया।

शत्रुको मारा और नदियोंको बहाया। इन वर्णनोंसे ये शत्रु मेघ या पहाडपर रहनेवाला सर्प है ऐसा प्रतीत होता है।

(सूक्त ९२)

१-३ देखो अथर्व २०।२२।४-६ (ऋ. ८।६९।४-६)

(यत् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहं) जब चमकनेवाले सूर्यके ऊंचे स्थानपर (इन्द्रः च) इन्द्र और मैं (उत् गन्वहि) चढे (मध्वः पीत्वा) मधुर सोमरस पीकर (सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) हम दोनों सखाके स्थानपर तीन वार सात- २१ बार इकट्ठे हुए ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।६९।७)

(अर्चत प्रार्चत) उपासना करो खूब उपासना करो। (प्रियमेधासः अर्चत) हे प्रिय मेधो उपासना करो (उत पुत्रकाः अर्चन्तु) छोटे बच्चे भी उपासना करें। (धृष्णु पुरं न अर्चत) यह अभेद्य किला है ऐसा मानकर उपासना करो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।६९।८)

गायनमें स्वरके साथ

३ गायत् वाणः अनुस्वराति— वीणा स्वर दे रही है गानेवालेके स्वरके साथ वीणाका स्वर मिलता रहे।

४ गोधा परि सनिष्वणत्— तंबूरा चारों ओरसे स्वर देता रहे। चर्मवाद्य स्वरसे स्वर मिलावे।

५ पिंगा परि चनिष्कदत्— मधुर स्वरवाला आलाप मिलके और स्वरमें स्वर मिलावे।

६ इन्द्राय ब्रह्म उद्यतं— इन्द्रके लिये स्तोत्र गाये जांय। इस समय वीणा तंबूरा मृदंग (चर्मवाद्य) आलाप देनेवाला इनके साथ हो। स्तोत्र ऐसे गाये जांय।

७ गौओंका दूध सोमरसके साथ मिलाया जाय और पश्चात् वह पिया जाय। इन्द्राय पातवे सोमं दुदुह्राः आपः उस्रियाः – इन्द्रके पीनेके लिये सोमरसमें गौवें आती हैं, और दूध देती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है।

८ इन्द्र अग्नि सब देव वरुण इन सबने सोमरस पिया है।

(मं० ८)

९ वरुणः सुदेवः — वरुण उत्तम देव है। सप्त सिन्धवः अस्य काकुदं अनुक्षरन्ति – सात नदियां जिसके तालुतक पहुंचती हैं। सात नदियोंका जल सोमरसमें मिलाया जाता है। वह रस पिया जाता है उसके साथ नदीजल भी तालुको स्पर्श करता है।

१० सुयुक्तान् अश्वान् अपाप्रयत्, तक्वा नेता वहुः वपुष्मा अमुञ्चत— उत्तम शिक्षित घोडोंको जोता हुआ इन्द्र आता है वह बलवान् नेता है उसका शरीर सुंदर है सब दुष्ट शत्रु उससे डरते रहते हैं कोई शत्रु उसके सामने नहीं ठहरता।

११ शाक्मा इन्द्रः विश्वाः द्विषः अति भोजते— सामर्थ्यवान् इन्द्र सब शत्रुओंको दूर करता है।

१२ कनीनः शिशुः पक्वमार्न ओदनं पचा मिमत्— इन्द्र छोटा होता हुआ भी शत्रुके पकाये अभिलाषायुक्त पूर्ण रीतिसे विनाश करता है। पकाया अन्न सूखता है। या मनको विनाश करता है। पच्यमानं ओदनं- पकनेवाला अन्न। मेघ विनाश दूर होनेवाली हो।

१३ अर्भकः सन् रथं अधि तिष्ठन्— बालक होते हुए भी वह रथपर उत्तम रीतिसे चढकर बैठता है। बचपनसे ही वह वीर है।

१४ सुशिप्र— उत्तम हनुवाला उत्तम नाकवाला इन्द्र।

१५ हिरण्ययं रथं आ तिष्ठ— सुवर्णके रथपर बैठ।

१६ पुरु सहस्रपादं अरुषं स्वस्तिगां अनेहसं सचेमहि— पुरुओंमें रहनेवाले हजारों किरणोंवाले कान्तिमान देनेवाली जिसकी गति है निष्पाप सूर्यको प्राप्त करेंगे।

१७ स्वराजं उप आसते— सब तेजस्वीको उपासना करते हैं। स्वराट्की उपासना करते हैं।

१८ अस्य सुचितं अर्धं रायसे आवतयन्ति— इसके उत्तम रीतिसे प्राप्त किये धनका दान करनेके लिये उसको प्रेरित करते हैं। धन उत्तम रीतिसे प्राप्त किया जाय और उसका विनियोग उत्तम दानमें हो।

१९ वृक्तबर्हिषः हितप्रयसः प्रियमेधासः प्रत्नस्य ओकस अनु पूर्वां प्रसितिं अनु आशत— आसन फैलाकर यज्ञकी तैयारी करनेवाले प्रियमेधाने- जिनको यज्ञ करना प्रिय है उन्होंने पुराने घरकी पुरानी रीतिके अनुसार कर्म करना प्रारंभ किया। पूर्व पद्धतिके अनुसार यज्ञ करना शुरू किया।

२० यः चर्षणीनां राजा अभिप्रगुः रथेभिः याता विश्वासां पृतनानां तरुता ज्येष्ठः वृत्रहा गृणे— लोगोंका राजा प्रगति करनेवाला रथमें बैठकर जानेवाला सब शत्रुओंका पराभव करनेवाला सबसे श्रेष्ठ और वृत्रको मारनेवाला इन्द्र है। उसकी स्तुति हो रही है।

२१ अपसे तं इन्द्रं शुम्भ— अपनी सुरक्षाके लिये उस इन्द्रकी स्तुति कर।

२२ यस्य द्विबर्हसि द्विता— जिसके धारण करनेमें दो गुण हैं। शत्रुको दूर करना और अपना संरक्षण करना।

२३ वृषा तं वज्रः हस्ताय प्रति धायि— सुन्दर वज्र वह हाथमें लिया है।

२४ सदावृधं विश्ववृतं सुरूपरस पृथ्वु ओजस अभूदं तं इन्द्रं कर्मणा न हि मशत्— सदा बढनेवाले सर्वदा सुरक्षित और कर्म करनेवाले शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य जिसमें है ऐसा जिसको सब दुष्ट शत्रु भी अपने वशमें कर नहीं सकता।

२५ अपाळ्हं उग्रं पृतनासु सासहिं मही उरु जयाः— अजेय उग्र युद्धमें शत्रुका पराभव करनेवाले इन्द्रकी बडी स्तुतियां हो रही हैं।

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम् । पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आशत ॥१५॥
यो रा॒जा च॑र्षणी॒नां याता॒ रथे॑भि॒रध्रि॑गुः । विश्वा॑सां तरु॒ता पृत॑नानां॒ ज्येष्ठो॒ यो वृ॑त्र॒हा गृ॒णे ॥१६॥

इन्द्रं॒ तं शु॑म्भ पुरुहन्म॒न्नव॑से॒ यस्य॑ द्वि॒ता वि॑ध॒र्तरि॑ ।
हस्ता॑य॒ वज्रः॒ प्रति॑ धायि दर्श॒तो म॒हो दि॒वे न सूर्यः॑ ॥ १७ ॥
नकि॒ष्टं कर्म॑णा नश॒द्यश्च॒कार॑ स॒दावृ॑धम् ।
इन्द्रं॒ न य॒ज्ञैर्वि॒श्वगू॑र्त॒मृभ्व॑स॒मधृ॑ष्टं धृ॒ष्ण्वोज॑सम् ॥ १८ ॥
अषा॑ळ्हमु॒ग्रं पृत॑नासु सास॒हिं यस्मि॑न्म॒हीरु॑रु॒ज्रयः॑ ।
सं धे॒नवो॒ जाय॑माने अनोनवु॒र्द्यावः॒ क्षामो॑ अनोनवुः ॥ १९ ॥
यद्द्याव॑ इन्द्र ते श॒तं श॒तं भूमी॑रु॒त स्युः ।
न त्वा॑ वज्रिन्त्स॒हस्रं॒ सूर्या॒ अनु॒ न जा॒तम॑ष्ट॒ रोद॑सी ॥ २० ॥
आ प॑प्राथ महि॒ना वृष्ण्या॑ वृष॒न्विश्वा॑ शविष्ठ॒ शव॑सा ।
अ॒स्माँ अ॑व मघव॒न्गोम॑ति व्र॒जे वज्रि॑ञ्चि॒त्राभि॑रू॒तिभिः॑ ॥ २१ ॥ (५ १)

करते हैं जिससे (अस्य सुषितं मर्यं चित् धतवे) इनके शुभ अर्थको प्राप्त करनेके लिये और (दाशुषे आवर्तं यन्ति) दान देनेके लिये बछड़ा इधर प्रेरित करते हैं ॥ १४ ॥

(ऋ. ८।६९।१७)

(वृक्तबर्हिषः) जिन्होंने आसन फैलाये हैं (हित-प्रयसः) हविको जिन्होंने स्थापन किया है अथवा हितकर प्रयत्न जिनके हैं ऐसे (प्रियमेधासः) प्रियमेधोंने (एषां प्रत्नस्य ओकसः अनु) इनके पुरातन घरके अनुकूल (पूर्वां प्रयतिं अनु आशत) पूर्व पद्धतिका प्राप्त किया ॥ १५ ॥

(ऋ. ८।६९।१८)

(यः चर्षणीनां राजा) जो मनुष्योंका राजा है (अध्रिगुः) जो आगे बढता है, (रथेभिः याता) रथोंसे जो जाता है (विश्वासां पृतनानां तरुता) सारी शत्रुसेनाको जीतनेवाला (यः वृत्रहा ज्येष्ठः गृणे) जो शत्रुको मारनेवाला श्रेष्ठ है उसकी स्तुति की जाती है ॥ १६ ॥

(ऋ. ८।७०।१)

हे पुरुहन्मन् ! (अवसे तं इन्द्रं शुम्भ) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रकी स्तुति कर । (यस्य विधर्तरि द्विता) जिसकी धारक शक्तिमें दोनों प्रकारकी व्यवस्था है (दिवे महः सूर्यः न) जैसा द्युलोकमें सूर्य है उस तरह (दर्शतः वज्रः) दर्शनीय वज्र (हस्ताय प्रति धायि) जिसने हाथमें लिया है ॥ १७ ॥

(ऋ. ८।७०।२)

(यः चकार) जिसने यह किया है, उस (सदावृधं) सदा वृद्धि करनेवाले (विश्वगूर्तं) सबसे प्रशंसित (ऋभ्वसं) बडा कार्य करनेवाले (धृष्णु ओजसं) जिसकी पराक्रम करनेवाले (अधृष्टं) निडर, (तं इन्द्रं) उस इन्द्रको (यज्ञैः कर्मणा) यज्ञोंसे अथवा कर्मसे (न किः नशत्) कोई भी नाश नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

(ऋ. ८।७०।३)

(अ-षाळ्हं उग्रं) अजेय उग्र (पृतनासु सासहिं) युद्धोंमें जीतनेवाला (यस्मिन् महीः उरुज्रयः) जिसमें बडी बडी स्तुतियां की जाती हैं (जायमाने) जिसके जन्मके समय (धेनवः सं अनोनवुः) अनेकोंकी वाणियोंने स्तुतियां की हैं (द्यावः क्षामाः अनोनवुः) द्यौ और भूमिने जिसकी स्तुति की ॥ १९ ॥

(ऋ. ८।७०।४)

१ -२१ देखो अथर्व २०।९२।१-२ (ऋ. ८।७०।५-६)

इस सूक्तमें नीचे लिखे वर्णन विशेष मननीय हैं—

१ अयतं प्रार्चत धृष्णु पुरं च अर्चत— उपासना करो स्तुति करो जिसकी अभेद्य किलेके समान बल जिसकी उसकी स्तुति करो ।

२ पुत्रकाः अर्चन्तु— छोटे बालक भी अर्चना करें ।

[सूक्त ९४]

(ऋषिः — १-११ कृष्णः। देवता — इन्द्रः।)

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १ ॥
सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २ ॥
एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३ ॥
एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४ ॥

---

७ हे इन्द्र! त्वं बलात् सहसः ओजसः अधि जातः— हे इन्द्र! तू बल सामर्थ्य और साहसके कर्म करनेके लिये उत्पन्न हुआ है।

८ वृषन्! त्वं वृषा असि— हे बलवान् इन्द्र! तू बलवान् है।

९ त्वं वृत्र हा असि— तू वृत्रको मारनेवाला है।

१० अन्तरिक्षं वि अतिरः। ओजसा द्यां उत् अस्कभाः— तूने अन्तरिक्ष फैलाया है और द्युको ऊपर स्थिर किया है।

११ हे इन्द्र! त्वं वज्रं ओजसा शिशान सखा एवं मर्क बाहोः बिभर्षि— हे इन्द्र! तूने अपने वज्रको बलसे तीक्ष्ण किया और अपने मित्र सूर्यके समान तेजस्वी वज्रको बाहुओंसे धारण किया है।

१२ हे इन्द्र! त्वं विश्वा जातानि ओजसा अभि भूः— हे इन्द्र! तू सब उत्पन्न हुए प्राणियोंका पराभव अपने सामर्थ्यसे करता है।

१३ विश्वाः धुवः आभव — तू सब स्थानोंको घेर कर रहता है।

(सूक्त ९४)

(स्वपतिः इन्द्रः) धनका स्वामी इन्द्र (मदाय आ यातु) आनन्द प्राप्त करनेके लिये यहां आवे। (यः धर्मणा तूतुजानः तुविष्मान्) जो धर्मानुसार त्वरासे कर्म करनेवाला और बलवान् है। (अपारेण महता वृष्ण्येन) अपार बल बलसे (विश्वा सहांसि) सब सामर्थ्योंको वह (अति प्रत्वक्षाणः) बहुत तीक्ष्ण बना देता है ॥ १ ॥ (ऋ. १०।४४।१)

हे (नृपते) मनुष्योंके स्वामी! (ते रथः सु-स्थामा) तेरा रथ उत्तम दृढ है। (ते हरी सुयमा) तेरे घोडे उत्तम स्वाधीन रहनेवाले हैं। (गभस्तौ वज्रः मिम्यक्ष) तेरे हाथमें वज्र रहता है। हे राजन्! (सुपथा शीभं अर्वाङ् याहि) उत्तम मार्गसे सत्वर हमारे पास इधर आ। (पपुषः ते वृष्ण्यानि वर्धाम) पीनेकी इच्छा करनेवाले तेरे वीर भावका हम वर्धन करेंगे ॥ २ ॥ (ऋ. १०।४४।२)

(उग्रासः तविषासः इन्द्रवाहः) उग्र शक्तिशाली इन्द्रको ले जानेवाले (सधमादः) साथ रहनेसे हर्षसे भरे घोडे (एनं नृपतिं उग्रं वज्रबाहुं) इस मनुष्योंके पालक उग्र वज्रके समान बाहुवाले (प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्मं) तीक्ष्ण बलवान् सच्चे बलवाले (ईं अस्मत्रा आ वहन्तु) इस इन्द्रको हमारे पास ले आवें ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।४४।३)

(द्रोणसाचं सचेतसं) पात्रमें रहनेवाले बुद्धिवर्धक (ऊर्जः स्कंभं पतिं) बलके आधारस्तंभ जैसे सबके पालक सोमरसके पास (धरुणे एवा आ वृषायसे) सबके आधार स्थानमें तू वेगसे जाता है (ओजः कृष्व) बल धारण कर (त्वे सं गृभाय) तुझमें सबका ग्रहण कर (यथा केनिपानां इनः वृधे अभि असः) जिस तरह बुद्धिमानोंका राजा उनके संवर्धनके लिये यत्न करता है ॥ ४ ॥
(ऋ. १०।४४।४)

[सूक्त ९२]

(ऋषिः — १-३ प्रगाथः ४-८ देवजामयः । देवता — इन्द्रः ।)

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १ ॥
पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥
ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥ ४ ॥
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ ५ ॥
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६ ॥
त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः । वज्रं शिशान ओजसा ॥ ७ ॥
त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा । स विश्वा भुव आभवः ॥ ८ ॥ (९०७)

(सूक्त ९२)

(स्तोमाः त्वा उत् मदन्तु) हमारे स्तोत्र तुम्हें आनंदित करें। हे (अद्रि-वः) वज्रधारी इन्द्र! (राधः कृणुष्व) दान देनेका विचार कर। (ब्रह्मद्विषः अव जहि) ज्ञानका द्वेष करनेवालोंको मार डाल ॥ १ ॥ (८।६४।१)

(अराधसः पणीन् पदा नि बाधस्व) दान न देनेवाले पणियोंको पांवसे कुचल (महान् असि) तू बडा है। (कः चन त्वा प्रति नहि) कोई तेरे बराबर नहीं है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६४।२)

हे इन्द्र! (त्व सुतानां ईशिषे) तू सोमरसोंका स्वामी है और (त्वं असुतानां) तू रस न निकाले सोमका भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू प्रजाजनोंका राजा है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६४।३)

(ईङ्खयन्तीः अपस्युवः) चलनेवाली तथा प्रयत्नशील [जलधाराएं] (इन्द्रं उपासते) इन्द्रकी उपासना करती हैं। (सुवीर्यं भेजानासः) सबके उत्तम पराक्रममें भाग लेती हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१५३।१)

हे इन्द्र! (त्व बलात् सहसः ओजसः अधि जातः) तू बल साहस और सामर्थ्यके लिये उत्पन्न हुआ है। हे (वृषन्) बलवान् इन्द्र! (त्वं वृषा इत् असि) तू निःसंदेह बलवान् है ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।१५३।२)

हे इन्द्र! (त्वं वृत्रहा असि) तू वृत्रको मारनेवाला है। (अन्तरिक्षं वि अतिरः) तूने अन्तरिक्षको फैलाया है। (ओजसा द्यां उत् अस्तभ्नाः) सामर्थ्यसे द्युलोकको स्थिर किया है ॥ ६ ॥ (ऋ. १०।१५३।३)

हे इन्द्र! (त्वं) तू (ओजसा वज्रं शिशानः) बलसे वज्रको तीक्ष्ण करता है (सजोषसं अर्कं बाह्वोः बिभर्षि) और अपने प्रिय तेजस्वी वज्रको बाहुओंसे धारण करता है ॥ ७ ॥ (ऋ. १०।१५३।४)

हे इन्द्र! (त्वं विश्वा जातानि ओजसा अभिभूः असि) तू सब जन्मधारी प्राणियोंका अपनी शक्तिसे पराभव करनेवाला है, (सः विश्वाः भुवः आभवः) वह तू सब स्थानोंमें घेर कर रहा है ॥ ८ ॥ (ऋ. १०।१५३।५)

इस सूक्तमें नीचे दिये वर्णन मनन करने योग्य हैं—

१ हे अद्रिवः! राधः कृणुष्व— हे वज्रधारी! दान देनेका विचार कर।

२ ब्रह्मद्विषः अव जहि— ज्ञानसे द्वेष करनेवालोंको मार।

३ अराधसः पणीन् पदा नि बाधस्व— दान न देनेवाले कंजूस पणियोंको पांवसे कुचल डाल।

४ महान् असि। कः चन त्वा प्रति नहि— तू बडा है। कोई भी तेरे समान नहीं है।

५ त्वं जनानां राजा— तू लोगोंका स्वामी है।

६ ईङ्खयन्तीः अपस्युवः इन्द्रं उपासते सुवीर्यं भेजानासः— गतिमान प्रयत्नशील लोग इन्द्रकी उपासना करते हैं और इससे वे उत्तम वीर्य प्राप्त करते हैं।

[सूक्त ९५]

(ऋषिः — १ गृत्समदः २-४ सुदाः पैजवन ।। देवता — इन्द्रः ।)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

---

¹ यः सत्पतिः इन्द्रः अमत्या तूतुजानः तुविष्मान्— जो सर्व पालक अपने स्वभावसे त्वरासे कार्य करने वाला और बलवान् है।

² अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा सहांसि अति अस्थात्— अपार बडे सामर्थ्यसे सब बलोंको अतिक्रमण करता है।

³ हे नृपते ! ते रथः सुस्थामा ते हरी सुयमा— हे मानवोंके पालक ! तेरा रथ सुदृढ और तेरे घोडे हमारे वशमें हो जानेवाले हैं।

⁴ गभस्तौ वज्रः हिरण्ययः— तेरे हाथमें वज्र है।

⁵ उग्रासः तविषास सधमादः इन्द्रवाहः वाम वाजाः नृपतिं मत्स्युम वृषभ सत्यशुष्मं अस्मभ्यं आ वहन्तु— उग्र बलवान् साथ आनन्दमें रहनेवाले इन्द्रके घोडे सम्पूर्ण शक्तियुक्त मनुष्य पालक तीक्ष्ण बलवान् सच्चे साहस वाले इन्द्रको हमारे पास ले आवें।

⁶ अपूर्वि अस्मे आ गमत्— अब हमारे पास आ जावे।

⁷ त्वं ईशिषे— तू स्वामी है।

⁸ आशिषं सु धासिष— आशीर्वाद उत्तम आशीर्वाद दी।

⁹ अवस्यामि सुपरा अकृण्वत— बल देनेवाले सुन्दर कर्म किये थे।

¹⁰ ये पार्थिवाः नार्यं आवहन् न घोषुः तं कपयाः ईर्मा स्थविरमन्त— जो बडकी बोझपर चढ नहीं सकते- और चल नहीं सकते- वे पानी अपने ही रहते हैं।

¹¹ ये दावने स्नितेस् ते पुरूणि भोजना वसुनामि सन्ति— जो दान देते हैं उनको बहुत उपभोग मिलनेके लिये प्राप्त होते हैं। दान देनेवाले उपभोग प्राप्त करते हैं।

¹² अज्रान् रेजमान् गिरीन् अधारयत्— हिलने हिलनेवाले पर्वत और मैदान स्थिर किये। पहले भूचाल होते थे। पीछेसे भूमि शान्त हुई और पर्वत भी स्थिर हुए।

¹³ द्यौ अकम्पत् । अन्तरिक्षाणि कोपयत् । क्षमा चीने चिदभ्ये विस्कम्भायति— इसके गर्जना करता था अन्तरिक्ष कुपित हुए थे। जिसे द्यावा पृथिवीका स्तम्भ किया गया। पहिले यह सब अस्थिर थे पश्चात् स्थिर हुए।

¹⁴ शापकस्तः अस्कमासि— दुःख देनेवालोंको तू दुःख देता है।

(सूक्त ९५)

(तुविशुष्मः महिषः) बडे सामर्थ्यवाले महापराक्रमी इन्द्र ने (यवाशिरं सोमं) जौके आटेसे मिलाया सोम (त्रिकद्रुकेषु अपिबत् तृपत्) तीन पात्रोंमेसे पिया और वह तृप्त हुआ (विष्णुना यथा अवशत्) जो विष्णुने अपनी इच्छानुसार (सुतं) निचोडा था। (महि कर्म कर्तवे) बडा काम करनेके लिये (सः ईं ममाद) वह इन्द्र आनन्दित हुआ। (महां उरुं एनं सत्यं देवं इन्द्रं) बडे महिमा-वाले इस सत्य इन्द्र देवको (सत्यः इन्दुः देवः सश्चत्) सच्चा सोम देव प्राप्त हुआ ॥ १ ॥　　　(ऋ. २।२२।१)

(अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (पुरोरथं शूषं प्र सु अर्चत उ) सबके रथको आगे बढानेवाला बलवर्धक स्तोत्र गाओ। (अभीके संगे लोककृत् चित् उ) समीपके युद्धमें स्थान बनानेवाला (समत्सु वृत्रहा) युद्धोंमें शत्रुका मारनेवाला (अस्माकं चोदिता बोधि) इन्द्र हमारा प्रेरक हो। (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां) अन्य शत्रुओंकी धनुष्योंकी डोरियां टूट जाय ॥ २ ॥
(ऋ. १०।१३३।१)

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५ ॥
पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६ ॥
एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७ ॥
गिरींरज्रान्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८ ॥
इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥ ९ ॥
गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥ १० ॥
बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥ ११ ॥ (११९)

(वसूनि अस्मे आ गमन् हि) धन हमारे पास आ जाय। (आशिषं सु शंसिषं) यह आशीर्वाद मैं उत्तम रीतिसे मांगता हूं। (सोमिनः भरं आ याहि) सोमयाग करनेवालेके यज्ञमें आओ। (त्वं ईशिषे) तू स्वामी है। (सः अस्मिन् बर्हिषि आ सत्सि) वह तू इस आसनपर बैठ। (धर्मणा तव पात्राणि अनाधृष्या) नियमसे तेरे पात्र दूसरा कोई ले नहीं सकता ॥ ५ ॥ (ऋ. १ ।४४।५)

(प्रथमा देवहूतयः पृथक् प्रायन्) हमारी पहिली प्रार्थनाएं देवोंके पास पृथक् पृथक् गयी हैं। (श्रवस्यानि दुष्टरा अकृण्वत) उन्होंने यश प्राप्त करनेके लिये दुस्तर कठिन कर्म किये थे। (ये यज्ञियां नावं आरुहं न शेकुः) जो यज्ञकी नौका पर चढनेमें समर्थ नहीं हुए (ते केपयः ईर्मा एव न्यविशन्त) वे पापी यहांके यहां ही पड़े हैं ॥ ६ ॥ (ऋ. १ ।४४।६)

(एव एव अपरे दूढ्यः अपाग् सन्तु) इसी प्रकार दूसरे दुर्बुद्धिवाले नीचे ही रहेंगे (येषां दुर्युजः अश्वाः आयुयुज्रे) जिनके कठिनतासे जोते जानेवाले घोडे जाते हैं। (इत्था ये प्राग् उपरे दावने सन्ति) इस प्रकार जो दूसरे दान करनेके लिये आगे होते हैं (यत्र पुरूणि भोजना वयुनानि सन्ति) वहां बहुत भोग प्राप्त करनेके कर्म होते हैं ॥ ७ ॥ (ऋ. १ ।४४।७)

(अज्रान् रेजमानान् गिरीन् अधारयत्) जिसने कांपते मैदानों और पर्वतोंको स्थिर किया (द्यौः क्रन्दत्) द्युलोकको रोनेवाला बनाया और (अन्तरिक्षाणि कोपयत्) अन्तरिक्षोंको प्रकम्पित किया। (समीचीने धिषणे वि स्कभायति) मिले हुए थी और द्युलोकको पृथक् स्थिर किया। (वृष्णः पीत्वा मदे उक्थानि शंसति) बलवर्धक सोम पीकर वह आनंदमें स्तोत्र कहता है ॥ ८ ॥ (ऋ. १ ।४४।८)

(इमं ते सुकृतं अङ्कुशं) यह तेरे अच्छे बनाये अंकुश स्तोत्रको (बिभर्मि) मैं धारण करता हूं। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (येन शफारुजः आरुजासि) जिससे दुःख देनेवाले दुष्टोंको तू दुःख देता है। (अस्मिन् सवने ते ओक्यं अस्तु) इस स्तोत्रमें तेरा निवास हो। हे (मघवन्) इन्द्र! (सुते इष्टौ) सोमयागमें और इष्टीमें (आभगः बोधि) ऐश्वर्य भाग जो है उसे समझ ले ॥ ९ ॥ (ऋ. १ ।४४।९)

१०—११ देखो अथर्ववेद २० ।१७।११ –११

इस सूक्तमें नीचे लिखे इन्द्रके वर्णन मननीय हैं—

[सूक्त ९५]

(ऋषिः — १ गृत्समदः २-४ सुदाः पैजवन ।। देवता — इन्द्रः ।।)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥
प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २ ॥

---

[1] यः सत्पतिः इन्द्रः चर्षण्यः गृणानः तुवि ष्मान्— जो सर्व पालक अपने स्वभावसे त्वराये कार्य करने वाला और बलवान है।

[2] अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा सहांसि अति प्रतक्षाणः— अपार बडे सामर्थ्यसे सब बलोंको अधिक प्रकट करता है।

[3] हे नृपते! ते रथः सुदामा ते हरी सुयमा— हे मानवोंके पालक! तेरा रथ सुदृढ और तेरे घोडे हमारे वशमें हुए चलनेवाले हैं।

[4] यमस्तो वज्रः मिन्यक्षु— तेरे हाथमें वज्र है।

[5] उग्रासः नविदास सखमाय इन्द्रवाहः उग्र बलवाई नृपतिं मत्स्यमसं वृषभ सत्यशुष्मं अस्समा या वहन्तु— उग्र बलवान् साथ आनेवाले रहनेवाले इन्द्रके घोडे गंभीर बलवान् मनुष्य पालक तीक्ष्ण बलवान् सच्चे साहस वाले इन्द्रको हमारे पास ले आवें।

[6] ऊतिभि अस्मे आ गमत्— वह हमारे पास आवे।

[7] त्वं ईशिषे— तू स्वामी है।

[8] आशीर्वं सु शासिष— आशीर्वाद उत्तम आशीर्वाद हों।

[9] अपमृत्याभि दुष्टरा अकृण्वत— वध करनेवाले दुस्तर धर्म उत्पन्न किये थे।

[10] ये यज्ञियां नावं आरुह न योकुः ते कुपयः ईर्मा न्यविशन्त— जो यज्ञकी नौकापर चढ नहीं सकते- वे यज्ञ नहीं कर सकते- वे पापी ऋणमें ही रहते हैं।

[11] ये दावने समित ते पुरूणि भोजना वयुनानि सन्ति— जो दान देते हैं उनको बहुत उपभोग मिलनेके धर्म प्राप्त होते हैं। दान देनेवाले उपभोग प्राप्त करते हैं।

[12] अज्ञान् एजमान् गिरीन् अधारयत्— जिसने हिलनेवाले पर्वत और मैदान स्थिर किये। पहिले भूचाल होते थे। पीछेसे भूमि शान्त हुई और पर्वत भी स्थिर हुए।

[13] द्यौ अक्रन्दत्। अन्तरिक्षाणि कोपयत्। समीचीने धिषणे चिरकमायति— युलोक गर्जना करता था अन्तरिक्ष कुपित हुए थे। मिल कर पृथिवीको स्तम्भ किया गया। पीछेसे सब स्थिर थे पश्चात् स्थिर हुए।

[14] दापारतः भारतासि— दुःख देनेवालोंको तू दुःख देता है।

(सूक्त ९)

(तुविशुष्मः महिषः) बडे सामर्थ्यवाले महाबली इन्द्रने (यवाशिरं सोमं) जौके आटेसे मिश्रित सोम (त्रिकद्रुकेषु अपिबत् तृपत्) तीन पात्रोंमेंसे पिया और वह तृप्त हुआ (विष्णुना यथा अवशत्) जो विष्णुने अपनी इच्छानुसार (सुतं) निचोडा था। (महि कर्म कर्तवे) बडा काम करनेके लिये (सः ईं ममाद) वह इन्द्र आनन्दित हुआ। (महां उरुं एनं सत्य देव इन्द्रं) बडे महिमावाले इस सच्चे इन्द्र देवको (सत्यः इन्दुः देवः सश्चत्) सच्चा सोम देव प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ (ऋ. २।२२।१)

(अस्मै इन्द्राय) इस इन्द्रके लिये (पुरोरथं शूषं प्र सु अर्चत च) उसके रथको आगे बढानेवाला बलवर्धक स्तोत्र गाओ। (अभीके संगे लोककृत् चित् उ) समीपके युद्धमें स्थान बनानेवाला (समत्सु वृत्रहा) युद्धोंमें शत्रुका मारनेवाला (अस्माकं चोदिता बोधि) इन्द्र हमारा प्रेरक हो। (अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याकाः नभन्तां) अन्य शत्रुओंकी धनुष्यपरकी डोरियां टूट जांय ॥ २ ॥

(ऋ. १०।१३३।१)

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३ ॥
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४ ॥ (१२१)

[सूक्त ९६]

(ऋषिः — १-५ पूरणः; ६-१० यक्ष्मनाशनः; ११-१६ रक्षोहा; १७-२१ विवृहा; २४ प्रचेताः। देवता - १-५ इन्द्रः; ६-१० यक्ष्मनाशनम्; ११-१६ गर्भसंस्रावः; १७-२१ यक्ष्मनाशनम्; २४ दुःस्वप्ननाशनम्।)

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १ ॥

(त्वं सिन्धून् अवासृजः) तूने नदियोंको बहाया। (अहिं अधराचः अहन्) अहिको मार कर नीचे गिराया। (इन्द्र ! अशत्रुः जज्ञिषे) हे इन्द्र ! तू शत्रुरहित उत्पन्न हुआ है। तू (विश्वं वार्यं पुष्यसि) सब स्वीकार करने योग्य धनको परिपुष्ट करता है। (तं त्वा परि ष्वजामहे) उस तुझको हम आलिंगन देते हैं। शत्रुओंकी धनुष्योंकी डोरियां टूट जाय ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१३३।२)

(नः विश्वाः अरातयः) हमारे सब शत्रुओं (अर्यः धियः वि षु नशन्त) और शत्रुकी बुद्धियोंका नाश कर। (शत्रवे वधं अस्ता असि) शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाला तू है, हे इन्द्र ! (यः नः जिघांसति) जो हमें मारना चाहता है (या ते रातिः वसु ददिः) जो तेरा दान है वह धन देता है। शत्रुओंके धनुष्योंकी डोरियां टूट जाय ॥ ४ ॥ (ऋ. १।१३३।१)

इस सूक्तमें इन्द्रके ये वर्णन मननीय हैं—

१ महि कर्म कर्तवे स हि ममाद— बडे कर्म करनेके लिये वह आनंदित होता है।

२ अस्मै इन्द्राय पुरोरथं सुष्टुतिं प्र अर्चत— इस इन्द्रके लिये रथ आगे बढे ऐसा स्तोत्र गाओ।

३ समीके संगे लोककृत्— समीपके युद्धमें वह हमारे लिये स्थान बना देता है।

४ समत्सु वृत्रहा— युद्धोंमें शत्रुका वध करता है।

५ अस्माकं बोधिता— हमारा वह प्रेरक है, अच्छे कर्मकी प्रेरणा वह देता है।

६ अन्यकेषां धन्वसु अधि ज्याका नभन्तां— शत्रुओंके धनुष्योंपरकी डोरियां टूट जाय।

७ अहिं अधराचः अहन्— शत्रुको नीचे गिराकर मारा।

८ इन्द्रः अशत्रुः जज्ञिषे— इन्द्र शत्रुरहित हुआ है।

९ विश्वं वार्यं पुष्यसि— सब स्वीकारने योग्य धनको बढाता है।

१० नः विश्वा अरातयः अर्यः धियः वि षु नशन्त— हमारे सब शत्रु तथा शत्रुता करनेवाली सब बुद्धियां विनष्ट हो जाय।

११ शत्रवे वधं अस्ता असि— शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाले हो।

१२ यः नः जिघांसति— जो हमें मारता है उसका नाश कर।

१३ ते रातिः वसु ददिः— तेरा दान धन देता है।

(सूक्त ९६)

(तीव्रस्य अभिवयसः अस्य पाहि) इस तीव्र रसको पी। (सर्वरथा हरी इह वि मुञ्च) सारे रथोंके घोडे यहां खोल। हे इन्द्र ! (अन्ये यजमानासः त्वा मा नि रीरमन्) दूसरे यजमान तुझे न रमावें और (इमे सुतासः तुभ्यं) ये रस तेरे लिये हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १०।१६०।१)

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २ ॥
य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३ ॥
अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४ ॥
अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५ ॥
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६ ॥
यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ ७ ॥
सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥ ८ ॥
शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ॥ ९ ॥
आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव । सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १० ॥

(तुभ्यं सुताः) तेरे लिये ये सोमरस तैयार किये हैं (तुभ्यं उ सोत्वासः) तेरे लिये ही आगे रस निकलने हैं। (श्वात्र्याः गिरः त्वां आ ह्वयन्ति) शीघ्रता करने वाली हमारी स्तुतियां तुझे बुलाती हैं। हे इन्द्र! (इदं अद्य सवनं जुषाणः) इस सवनको स्वीकार करता हुआ (विश्वस्य विद्वान्) सबका ज्ञानी तू (इह सोमं पाहि) यहां सोम पी ॥ २ ॥ (ऋ. १०।१६०।२)

(यः देवकामः) जो देवभक्त (उशता मनसा सर्वहृदा) अभिलाषायुक्त मनसे और सब हृदयके भावसे (अस्मै सोमं सुनोति) इस इन्द्रके लिये सोमरस निकालता है, (इन्द्रः तस्य गाः न परा ददाति) इन्द्र उसकी गौवोंको दूर नहीं करता और (अस्मै प्रशस्तं चारुं इत् कृणोति) इसके लिये सब कुछ उत्तम प्रशंसनीय और सुन्दर बनाता है ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।१६०।३)

(एषः अस्य अनुस्पष्टः भवति) वह इस इन्द्रके लिये अनुकूल हो जाता है (यः अस्मै रेवान् न सोमं सुनोति) जो इसके लिये धनवानके समान सोमरस निकालता है। (मघवा अरत्नौ तं निः दधाति) इन्द्र अपने हाथोंमें उसको धारण करता है। वह (अनानुदिष्टः ब्रह्मद्विषः हन्ति) आज्ञाके बिना ही ब्रह्मद्वेषियोंको मारता है ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१६०।४)

(अश्वायन्तः गव्यन्तः) घोडोंको और गौवोंको चाहनेवाले और (वाजयन्तः) बल चाहनेवाले हम (त्वा उपगन्तवै उ हवामहे) तेरे पास जानेके लिये तुझे बुलाते हैं। (ते नवायां सुमतौ आभूषन्तः) तेरी नयी उत्तम मतिमें सुभूषित होते हुए, हे इन्द्र! (त्वा शुनं हुवेम) तुझ सुखके बुलाते हैं ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।१६०।५)

६-९ देखो अथर्व ३।११।१-४ (ऋ. १०।१६१।१-४)
१० देखो अथर्व ८।१।२ (ऋ. १०।१६१।५)

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः । अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११ ॥
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये । अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२ ॥
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् । जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३ ॥
यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये । योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥ १४ ॥
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १५ ॥
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते । प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १६ ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥ १७ ॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥ १८ ॥

हृदयात्ते परि क्लोम्नो हलीक्ष्णात्पार्श्वाभ्याम् ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां प्लीह्नो यक्नस्ते वि वृहामसि ॥ १९ ॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोरुदरादधि ।
यक्ष्मं कुक्षिभ्यां प्लाशेर्नाभ्या वि वृहामि ते ॥ २० ॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं भसद्यं श्रोणिभ्यां भासदं भंससो वि वृहामि ते ॥ २१ ॥

अस्थिभ्यस्ते मज्जभ्यः स्नावभ्यो धमनिभ्यः ।
यक्ष्मं पाणिभ्यामङ्गुलिभ्यो नखेभ्यो वि वृहामि ते ॥ २२ ॥

(रक्षोहा अग्निः) राक्षसोंको मारनेवाला अग्नि (ब्रह्मणा संविदानः) हमारे स्तोत्रसे मिलकर (यः अमीवा दुर्णामा ते गर्भं योनिं आशये) जो दुर्णामा रोग तेरे गर्भ और स्थानमें है (इतः बाधतां) यहांसे उसको विनाश करें ॥ ११ ॥ (ऋ. १० ।१६२।१)

(यः दुर्णामा अमीवा) जो दुष्ट नामवाला रोग (गर्भं योनिं आशये) गर्भमें तथा योनिमें रहता है (अग्निः ब्रह्मणा सह) अग्नि स्तोत्रके साथ मिलकर (क्रव्यादं तं अनीनशत्) उस मांसभक्षक रोगको दूर करे ॥ १२ ॥ (ऋ. १० ।१६२।२)

(यः ते पतयन्तं हन्ति) जो तेरे स्पंदन करते हुए गर्भको मारता है (यः निषत्स्नुं सरीसृपं) जो स्थिर रहनेवाले को हिलते हुएको (जातं यः ते जिघांसति) जो तेरे उत्पन्न हुएको मारता है (तं इतः नाशयामसि) उसको यहांसे नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ (ऋ. १० ।१६२।३)

(यः ते ऊरू विहरति) जो तेरे ऊरुओंको अलग अलग करता है (दम्पती अन्तरा शये) दम्पतीके मध्यमें सोता है (योनिं यः अन्तरा आरेळ्हि) योनिको अन्दरसे चाटता है । (तं इतो नाशयामसि) उसको यहांसे नाश करते हैं ॥ १४ ॥ (ऋ. १० ।१६२।४)

(यः त्वा भ्राता पतिः भूत्वा) जो तुझे भाई या पति होकर (जारः भूत्वा निपद्यते) या जार बनकर प्राप्त होता है (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजाको मारना चाहता है (तं इतो नाशयामसि) उसको यहांसे विनष्ट करते हैं ॥ १५ ॥ (ऋ. १० ।१६२।५)

अङ्गेअङ्गे लोम्निलोम्नि यस्ते पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं त्वचस्यं ते वयं कश्यपस्य वीबर्हेण विष्वञ्चं वि वृहामसि ॥ २३ ॥
अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर । परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४ ॥ (१४०)

॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥८॥

[सूक्त ९७]

(ऋषिः — १-३ कलिः । देवता — इन्द्रः ।)

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ १ ॥
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।
सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ॥ २ ॥
कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ३ ॥ (१४१)

[सूक्त ९८]

(ऋषिः — १-२ शंयुः । देवता — इन्द्रः ।)

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ १ ॥

(यः त्वा तमसा स्वप्नेन मोहयित्वा) जो तुझे स्वप्न रूप अन्धेरेसे मोहित करके (निपद्यते) प्राप्त होता है (यः ते प्रजां जिघांसति) जो तेरी प्रजाको मारना चाहता है (तं इतः नाशयामसि) उसको यहांसे विनष्ट करते हैं ॥ १६ ॥ (ऋ. १०।१६२।६)

१७-२१ देखो अथर्व २।३३।१-७ (ऋ. १०।१६३।१-६)

हे (मनसः पते अपेहि) हे मनके स्वामी परे दूर जा (अपक्राम परः चर) वापस जा दूर चला जा (परः निर्ऋत्याः आचक्ष्व) दूर जाकर निर्ऋतिसे कह कि (जीवतः मनः बहुधा) जीते हुएका मन बहुत प्रकारका है ॥ २४ ॥ (ऋ. १०।१६४।१)

॥ यहां नवम अनुवाक समाप्त ॥

(सूक्त ९७)

(वयं एनं वज्रिणं) हमने इस वज्रधारी इन्द्रको (इदा ह्यः) अभी कल (इह अपीपेम) पिलाया था (तस्मै उ अद्य) उसके लिये आज (समना सुतं भर) अच्छे रस निचोड कर लाया हूं। (नूनं श्रुते भूषत) निश्चयसे स्तोत्रसे उसको भूषित करो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६६।७)

(उरा-मथिः वृकः चित्) भेडोंको मारनेवाले भेडियेके समान (अस्य वारणः) इसका निवारक भी (वयुनेषु आ भूषति) अपने मार्गोंमें अपने आपको सजाता है। हे इन्द्र! (सः नः इमं स्तोमं जुजुषाणः) वह तू हमारे इस मनका सेवन करनेकी इच्छासे (प्र आ गहि) आ ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६६।८)

(कत् उ नु अस्य इन्द्रस्य) कौनसा भला इस इन्द्रका (पौंस्यं अकृतं अस्ति) वीर कर्म किया हुआ नहीं है (केन श्रोतमेन) किस श्रवणीय स्तोत्रसे (न नु कं न शुश्रुवे) वह विख्यात नहीं हुआ है (वृत्रहा जनुषः परि) वृत्रको मारनेवाला इन्द्र जन्मसे ही विख्यात है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६६।९)

(सूक्त ९८)

(वाजस्य साता कारवः) बलके लाभके इच्छुक स्तोता-हम- (त्वां इत् हि हवामहे) तुझे बुलाते हैं। हे इन्द्र! (त्वां सत्पतिं) तुझ उत्तम स्वामीको (वृत्रेषु) घेरनेवाले

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ २ ॥ (१४५)

[सूक्त ९९]

(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः । देवता — इन्द्रः ।)

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन्रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥ १ ॥
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ २ ॥ (१४७)

[सूक्त १००]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः । देवता — इन्द्रः ।)

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान्महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥ १ ॥

शत्रुओंके होनेपर (महः त्वा) वीर पुरुष तुमको (अर्वतः काष्ठासु) घुडदौडकी सीमाओंमें बुलाते हैं ॥ १ ॥

(ऋ. ६।४६।१)

हे (चित्र वज्रहस्त) आश्चर्यमय वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र । हे (अद्रिवः) वज्र धारण करनेवाले ! (धृष्णुया महः स्तवानः) अपनी धर्षण शक्तिसे बडा स्तुति किया हुआ (सः त्वं नः) वह तू हमारे लिये (गां अश्वं रथ्यं सत्रा सं किर) गौ घोडा रथमें जोतने योग्य घोडा दे (जिग्युषे वाजं न) विजयी वीरके लिये जैसा धन मिलता है ॥ २ ॥

(६।४६।२)

१ कारवः वाजस्य सातौ — स्तोता धनकी इच्छा करनेवाले होते हैं। वाज — बल अन्न धन ऐश्वर्य।

२ वृत्रेषु त्वां सत्पतिं हवामहे — घेरनेवाले शत्रु जीतनेवाले परमेश्वर सहाय्यार्थ तुझे बुलाते हैं। क्योंकि तू उत्तम पालन करनेवाला है।

३ महः त्वां सत्पतिं अर्वतः काष्ठासु — वीर पुरुष तुम उत्तम पालकको घुडदौडकी सीमामें बुलाते हैं। क्योंकि तुम्हारे घोडे अच्छे होते हैं घुडदौडमें वे प्रथम स्थानमें आवेंगे।

४ चित्र वज्रहस्त अद्रिवः — हे विलक्षण वज्रधारी वज्र हाथमें लेनेवाले इन्द्र।

५ गां अश्वं रथ्यं सत्रा सं किर — गौ घोडा रथमें जोतने योग्य हमें दे दो।

६ जिग्युषे वाजं न — विजयी वीरको धन मिलता है। विजय होने पर शत्रुका धन लूटा जाता है वह विजयी वीरको प्राप्त होता है। वीर विजय मिलनेपर शत्रुका धन लूटा करते हैं।

(सूक्त ९९)

(आयवः पूर्वपीतये) मनुष्योंने प्रथम सोम पीनेके लिये हे इन्द्र ! (त्वा स्तोमेभिः अभि समस्वरन्) तेरी स्तुति स्तोत्रोंसे की है। (समीचीनासः ऋभवः समस्वरन्) परस्पर प्रेम रखनेवाले ऋभुओंने तेरा स्तवन किया। (रुद्राः पूर्व्यं गृणन्त) रुद्रोंने तुझ पुरातन पुरुषकी स्तुति की है ॥ १ ॥

(ऋ. ८।३।७)

(इन्द्रः) इन्द्रने (विष्णवि अस्य सुतस्य मदे) यज्ञमें इस सोमरसके हर्षमें (वृष्ण्यं शवः वावृधे इत्) अपना वीरता युक्त बल बढाया। (अद्य अस्य तं महिमानं) आज इसकी उस महिमाकी (पूर्वथा) पूर्वकी तरह (आयवः अनु ष्टुवन्ति) मनुष्य स्तुति करते हैं ॥ २ ॥

(ऋ. ८।३।८)

(सूक्त १००)

हे (गिर्वण इन्द्र) स्तुतिके योग्य इन्द्र ! (अध त्वा महः कामान्) अब तेरे पास हम अपनी बडी कामनाएं (उप ससृज्महे हि) भेजते हैं। (उदभिः यन्ता इव उदा) जैसे जलप्रवाहोंके साथ जल चलते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९८।७)

वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि। वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ २ ॥

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे। इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३ ॥ (९५०)

[सूक्त १०१]

(ऋषिः — १-३ मेध्यातिथिः। देवता — अग्निः।)

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥ (९५१)

[सूक्त १०२]

(ऋषिः — १-३ विश्वामित्रः। देवता — अग्निः।)

ईळेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः। समग्निरिध्यते वृषा ॥ १ ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः। तं हविष्मन्त ईळते ॥ २ ॥

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि। अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३ ॥ (९५२)

(यव्याभिः वाः न) जैसा नदियोंसे जलप्रवाह बढता है उस तरह हे (शूर अद्रिवः) वीर वज्रधारी इन्द्र! (वावृध्वांसं त्वा दिवेदिवे) बढनेवाले तुझे प्रतिदिन (ब्रह्माणि अभि वर्धयन्ति) हमारे स्तोत्र बढाते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९८।८)

(इषिरस्य) प्रिय इन्द्र देवके (गाथया) मन्त्रसे ही रथ (उरुयुगे रथे) चौडे जुएँवाले रथमें (वचोयुजा इन्द्रवाहा हरी) वचनसे जुडनेवाले इन्द्रके रथको खींचनेवाले दो घोडे (युञ्जन्ति) जोते जाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९८।९)

(सूक्त १०१)

(अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्) इस यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाले (विश्व-वेदसं) सब धनों-ज्ञानोंके स्वामी (होतारं दूतं) देवोंको बुलानेवाले दूत (अग्निं वृणीमहे) अग्निको हम चुनते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।१२।१)

(विश्पतिं) प्रजाओंके स्वामी (हव्यवाहं पुरुप्रियं) हव्यको ले जानेवाले बहुतोंका प्रिय (अग्निं अग्निं) अग्नीको सदा हम (हवीमभिः सदा हवन्त) स्तोत्रगानोंसे सदा बुलाते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।१२।२)

हे अग्ने! (जज्ञानः) प्रकट होते ही तू (वृक्तबर्हिषे) आसन फैलानेवाले यजमानके लिये (देवान् इह आ वह) देवोंको यहां ले आ। (नः ईड्यः होता असि) हमारा स्तुति योग्य देवोंको बुलानेवाला तू ही है ॥ ३ ॥ (ऋ. १।१२।३)

१ यज्ञस्य सुक्रतुः— यज्ञको उत्तम रीतिसे करनेवाला।

२ विश्व वेदाः— सब धनोंसे युक्त। धनी ज्ञानी।

३ विश्पतिः— प्रजाओंका पालक।

४ पुरुप्रियः— बहुतोंको प्रिय। बहुतोंको प्रिय बनना।

५ देवान् इह आ वह— देवोंको यहां ले आ। विद्वानोंको यहां ले आ। देव जनमें कुशल दिव्यगुण व्यवहारकुशल सज्जन।

(सूक्त १०२)

(ईळेन्यः) स्तुतिके योग्य (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य (तमांसि तिरः दर्शतः) अन्धकारको दूर करके स्वयं सुन्दर दीखनेवाला (वृषा) बलवान् अग्नि (इध्यते) प्रदीप्त होता है ॥ १ ॥ (ऋ. ३।२७।१३)

(वृषः अग्निः समिध्यते) बलवान् अग्नि प्रदीप्त होता है (देववाहनः अश्वः न) देवोंको ले जानेवाले घोडेकी तरह (हविष्मन्तः तं ईळते) हविवाले यजमान उसकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ३।२७।१४)

हे (वृषन् अग्ने) बलवान् अग्ने! (वृषणः वयं) बलवान् बननेवाले हम (त्वा वृषणं) तुझ बलवान्को (बृहत् दीद्यतं) और अधिक प्रकाशमानको (समिधीमहि) प्रदीप्त करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ३।२७।१५)

[सूक्त १०३]

(ऋषिः — १ सुदीतिपुरुमीळ्हौ २-३ भर्गः । देवता — अग्निः ।)

अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १ ॥
अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २ ॥
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३ ॥ (४९९)

[सूक्त १०४]

(ऋषिः — १ २ मेध्यातिथिः ३ ४ नृमेधः । देवता — इन्द्रः ।)

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १ ॥
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २ ॥

---

१ ईळान्यः नमस्यः दर्शतः तमांसि तिरः— स्तुत्य नमस्कार योग्य दर्शनीय तथा अज्ञानान्धकारको दूर करनेवाला अग्नि है । इन गुणोंसे युक्त मनुष्य बने ।

२ वृषणः वयं वृषणं त्वा वृहत् दीद्यतं समिधीमहि — बलवान बननेकी इच्छावाले हम तुझ बलवान् और बडे तेजस्वीको चमकाते हैं । बलवान् बननेकी इच्छावाले बलवान् तेजस्वीको ही अपने साथ रखें ।

(सूक्त १०३)

(अवसे) अपनी सुरक्षाके लिये (शीर-शोचिषं) तीव्र प्रकाशवाले (अग्निं) अग्निकी (गाथाभिः ईळिष्व) गाथाओंसे स्तुति कर । हे (पुरुमीळ्ह) बहुतों द्वारा स्तुति किये ! (अग्निं राये) धनके लिये अग्निकी स्तुति कर हे (नरः) मनुष्यो ! (सुदीतये श्रुतं अग्निं) उत्तम प्रकाश के लिये विख्यात अग्निकी स्तुति करो यह हमारा (छर्दिः) घर ही है ॥ १ ॥ (ऋ. ८। ७१।१४)

हे अग्ने ! (अग्निभिः आ याहि) अग्नियोंके साथ आ । (त्वा होतारं वृणीमहे) तुझे हम होता करके चुनते हैं । (त्वां यजिष्ठं) तुझ यजनकर्ताको (बर्हिः आसदे) आसनपर बैठनेके लिये (प्रयता हविष्मती) हाथ उठाकर हविवाली स्रुवा (त्वां आ अनक्तु) तुझे घीसे युक्त करे ॥ २ ॥ (ऋ. ८। ६० ।१)

हे (सहसः सूनो अंगिरः) बलके पुत्र अंगिरा ! (अध्वरे स्रुचः) यज्ञमें स्रुवाएं (त्वा अच्छा हि चरन्ति) तेरे लिये समीपसे विचरती हैं । हम (ऊर्जः नपातं) बलको न गिरानेवाले (घृतकेशं) तेजस्वी किरणवाले (यज्ञेषु पूर्व्यं) यज्ञोंमें पहिले (ईं अग्निं ईमहे) इस अग्निकी प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८। ६० ।२)

(सूक्त १०४)

हे (पुरूवसो) बहुत धनवान् इन्द्र ! (याः मम इमाः गिरः) जो मेरी ये स्तुतियां हैं वे (त्वा उ वर्धन्तु) तुझे बढावें । (पावकवर्णाः शुचयः विपश्चितः) अग्निके समान तेजस्वी शुद्ध ज्ञानियोंने (स्तोमैः अभि अनूषत) स्तोत्रोंसे तेरी स्तुति की है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।३।३)

(अयं) यह इन्द्र (ऋषिभिः सहस्रं सहस्कृतः) ऋषियोंके द्वारा सहस्रगुणा अपने बलसे बढाया गया (समुद्र इव पप्रथे) समुद्रके समान फैला है (सः अस्य महिमा सत्यः) वह इसकी महिमा सत्य है । (यज्ञेषु विप्रराज्ये शवः गृणे) यज्ञोंमें विप्रोंके राज्यमें इसकी शक्तिकी स्तुति की जाती है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।३।४)

[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible]
॥ ४ ॥ [illegible]

[[illegible] १०५]

([illegible])

[illegible] ।
[illegible] ॥ १ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ ५ ॥ [illegible]

[illegible]

[सूक्त १०६]

(ऋषिः — १-३ गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ । देवता — इन्द्रः ।)

तव॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हत्तव॒ शुष्म॑मु॒त क्रतु॑म् । वज्रं॑ शिशाति धि॒षणा॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥
तव॒ द्यौरि॑न्द्र॒ पौंस्यं॑ पृथि॒वी व॑र्धति॒ श्रवः॑ । त्वामापः॒ पर्व॑तासश्च हिन्विरे ॥ २ ॥
त्वां विष्णु॑र्बृ॒हन्क्षयो॑ मि॒त्रो गृ॑णाति॒ वरु॑णः । त्वां शर्धो॑ मद॒त्यनु॒ मारु॑तम् ॥ ३ ॥ (६७१)

[सूक्त १०७]

(ऋषि — १-३ वत्सः, ४-१२ बृहद्दिवः, १३-१५ कुत्सः । देवता — इन्द्रः ।)

सम॑स्य म॒न्यवे॒ विशो॒ विश्वा॑ नमन्त कृ॒ष्टयः॑ । स॒मु॒द्राये॑व॒ सिन्ध॑वः ॥ १ ॥
ओ॒जस्तद॑स्य तित्विष उ॒भे यत्स॒मव॑र्तयत् । इन्द्र॒श्चर्मे॑व॒ रोद॑सी ॥ २ ॥
वि चि॑द्वृ॒त्रस्य॒ दोध॑तो॒ वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा । शिरो॑ बिभेद वृ॒ष्णिना॑ ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें इन्द्रके ये गुण वर्णन किये हैं—

१ त्वं मनुष्येषु विश्वाः स्पृधः अभि असि— तू युद्धोंमें सब शत्रुओंका सामना करके उनको हराता है।

२ [illegible] विश्व [illegible]— दुष्टोंको दूर करनेवाला [illegible] सब शत्रुओंको तोडनेवाला है।

३ त्वं [illegible] तूर्वा— विनाशक शत्रुओंको काटनेवाला है।

४ द्यावापृथिवी ते [illegible] शुष्मं अनु इयातां— द्यावा पृथिवी अर्थात् [illegible] अनुकूल होकर चलते हैं।

५ ते मन्यवे विश्वाः स्पृधः नमयन्त— तेरे [illegible] सब शत्रु निर्बल बनते हैं।

६ वृत्रं तूर्वसि— घेरनेवाले शत्रुको तू मारता है।

७ यः ऊर्जी अजरं प्रहेतारं, अप्रहितं आशुं जेतारं हेतारं रथीतमं अतूर्तं तुग्र्यावृधं— [illegible]

वीरोंके ये गुण [illegible]।

(सूक्त १०६)

(तव त्यत् बृहत् इन्द्रियं) तेरा वह बडा बल तथा (तव शुष्मं उत क्रतुं) तेरा सामर्थ्य और कर्मशक्ति (वरेण्यं वज्रं) तेरे श्रेष्ठ वज्रका (धिषणा शिशाति) हमारी बुद्धि वर्णन करती है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।१५।७)

हे इन्द्र! (द्यौः तव पौंस्यं) द्यु तेरे बलको (पृथिवी श्रवः वर्धति) पृथिवी यशको बढा रही है। (आपः पर्वतासः च) जलप्रवाह और पर्वत (त्वां हिन्विरे) तुझे उत्साहित कर रहे हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१५।८)

(बृहत् क्षयः विष्णुः) बडा आश्रय दाता विष्णु मित्र और वरुण (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति गाते हैं। (मारुतं शर्धः) मरुतोंका समुदाय (त्वां अनुमदति) तेरे साथ आनन्दसे रहता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।१५।९)

(सूक्त १०७)

(अस्य मन्यवे) इसके क्रोधके सामने (विश्वाः विशः कृष्टयः) सब प्रजाजन सब कृषक (सं नमन्त) अच्छी तरह नम्र होकर रहते हैं। (सिन्धवः समुद्राय इव) नदियां समुद्रके सामने जैसी झुकती हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६।४)

(तत् अस्य ओजः तित्विषे) वह इसका सामर्थ्य प्रकट हुआ (यत् उभे रोदसी चर्म इव इन्द्रः समवर्तयत्) जब दोनों द्यावा पृथिवीको चर्मके समान इन्द्रने लपेट लिया ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।५)

(दोधतः वृत्रस्य शिरः) कांपनेवाले वृत्रका सिर (वृष्णिना शतपर्वणा वज्रेण) बलवान सौ धाराओंवाले वज्रसे (चित् वि बिभेद) तोडके टुकडे कर डाला ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।६)

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यदेनं मदन्ति विश्व ऊमाः ॥ ४ ॥
वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥ ५ ॥
त्वे क्रतुमपि पृञ्चन्ति भूरि द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥ ६ ॥
यदि चिन्नु त्वा धना जयन्तं रणेरणे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयः शुष्मिन्त्स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्दुरेवासः कशोकाः ॥ ७ ॥
त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥ ८ ॥
नि तद्दधिषेऽवरे परे च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ स्थापयत मातरं जिगत्नुमत इन्वत कर्वराणि भूरि ॥ ९ ॥
स्तुष्व वर्ष्मन्पुरुवर्त्मानं समृभ्वाणमिनतममाप्तमाप्त्यानाम् ।
आ दर्शति शवसा भूर्योजाः प्र सक्षति प्रतिमानं पृथिव्याः ॥ १० ॥
इमा ब्रह्म बृहद्दिवः कृणवदिन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजा तुरश्चिद्विश्वमर्णवत्तपस्वान् ॥ ११ ॥
एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारौ मातरिभ्वरी अरिप्रे हिन्वन्ति चैने शवसा वर्धयन्ति च ॥ १२ ॥
चित्रं देवानां केतुरनीकं ज्योतिष्मान्प्रदिशः सूर्य उद्यन् ।
दिवाकरोऽति द्युम्नैस्तमांसि विश्वातारीद्दुरितानि शुक्रः ॥ १३ ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्राद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १४ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ १५ ॥ (१८९)

---

* १४ देखो अथर्व ५।२।१ १२ १३।२।१४-१५ (ऋ. १।१२ ११ ५, ऋ १।११५।१-)

(सूर्यः) सूर्य (रोचमानां उषसं देवीं) चमकती हुई देवीके (पश्चात् अभ्येति) पीछे जाता है (मर्यः योषां न) जैसा मनुष्य स्त्रीके पीछे जाता है। (यत्र देवयन्तः नरः) जिस समय देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करने वाले मनुष्य (भद्राय भद्रं) कल्याण करनेके लिये कल्याण करनेवाले कर्म (युगानि वितन्वते) करते हैं ॥ १५ ॥ (ऋ. १।११५।२)

[सूक्त १०८]

(ऋषिः — १-३ नृमेधः । देवता — इन्द्रः ।)

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १ ॥
त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २ ॥
त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३ ॥ (९८९)

[सूक्त १०९]

(ऋषिः — १-३ गोतमः । देवता — इन्द्रः ।)

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १ ॥
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥ (९९२)

(सूक्त १०८)

हे इन्द्र ! (त्वं नः ओजः आ भर) तू हमारे लिये सामर्थ्य भर दे। हे (विचर्षणे शतक्रतो) कुशल सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र ! (नृम्णं) पौरुष भी हमारे पास भर दे। (पृतना-सहं वीरं आ भर) शत्रुओंको जीतनेवाला वीर पुत्र भी हमें दे ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९८।१०)

हे (वसो) निवासक इन्द्र ! (त्वं हि नः पिता) तू हमारा पिता है। हे शतक्रतो ! (त्वं माता बभूविथ) तू हमारी माता हुई है। (अधा ते सुम्नं ईमहे) अब हम तुझसे सुख मांगते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९८।११)

हे (शुष्मिन् पुरुहूत शतक्रतो) बलवान बहुतों द्वारा बुलाये गये सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र ! (त्वां वाजयन्तं उप ब्रुवे) तुझ बलवानके पास मेरी प्रार्थना है कि (सः नः सुवीर्यं रास्व) वह तू हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति दे ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९८।१२)

(सूक्त १०९)

(गौर्यः) गौवें (विषूवतः स्वादोः मध्वः) सेवन योग्य मधुर रस (इत्था पिबन्ति) इस तरह पीती हैं। (या वृष्णा इन्द्रेण सयावरीः) जो बलवान् इन्द्रके साथ गमन करनेवाली (शोभसे मदन्ति) तेजस्विताके लिये आनन्दित होती हैं जो (स्वराज्यं अनु वस्वीः) स्वराज्यके लिये बसती हैं ॥ १ ॥ (ऋ. १।८४।१०)

(ताः पृश्नयः) वे चितकबरी गौवें (पृशनायुवः) स्पर्श करनेकी इच्छा करती हुई (सोमं श्रीणन्ति) सोमके साथ मिलती हैं। (इन्द्रस्य प्रिया धेनवः) इन्द्रकी प्रिय गौवें (सायकं वज्रं हिन्वन्ति) शत्रुका नाश करनेवाले वज्रको प्रेरित करती हैं जो अपने स्वराज्यके लिये बसती हैं ॥ २ ॥ (ऋ. १।८४।११)

(ताः प्रचेतसः) वे ज्ञानी (नमसा सहः) नमस्कारके साथ (अस्य सपर्यन्ति) इसकी शक्तिका सत्कार करती हैं। (अस्य पुरूणि व्रतानि) इसके बहुतसे व्रतोंको (पूर्वचित्तये सश्चिरे) मुख्य ऐश्वर्यके लिये अनुसरती हैं जो अपने स्वराज्यके लिये बसती हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. १।८४।१२)

इन मंत्रोंमें आलंकारिक वर्णन है—

१ गौर्यः स्वादोः मध्वः पिबन्ति— गौवें मधुर रसको पीती हैं। सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है।

२ वृष्णा इन्द्रेण सयावरीः— बलवान् इन्द्रके साथ जाती हैं। सोमरसमें गोदुग्ध मिलने पर वह रस इन्द्र पीता

[सूक्त ११२]

(ऋषिः — १-३ सुकक्षः । देवता — इन्द्रः ।)

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १ ॥

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत्सत्यमित्तव ॥ २ ॥

ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३ ॥ (७०१)

[सूक्त ११३]

(ऋषिः — १-२ भर्गः । देवता — इन्द्रः ।)

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥ (७०३)

[सूक्त ११४]

(ऋषिः — १-२ सौभरिः । देवता — इन्द्रः ।)

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १ ॥

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ २ ॥ (७०५)

(सूक्त ११२)

(वृत्रहन्) हे शत्रुके मारनेवाले ! हे सूर्य ! (यत् अद्य कत् च अभि उद् अगाः) जो आज तू किसी तरह उदय हुआ है हे इन्द्र ! (तत् सर्वं ते वशे) वह सब तेरे वशमें है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९३।४)

(यद् वा) अथवा (प्रवृद्ध सत्पते) हे बडे सज्जनोंके पालक ! (न मरै इति मन्यसे) मैं नहीं मरूंगा ऐसा मानता है (उतो ह तत् तव सत्यं इत्) निःसंदेह वह तेरा सत्य मानना है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९३।५)

(ये सोमासः परावति) जो सोमरस दूर है (ये अर्वावति सुन्विरे) जो निकट निचोडे हैं। हे इन्द्र ! (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सबके पास तू जाता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९३।६)

(सूक्त ११३)

(उभयं) दोनों बातें (इन्द्रः अर्वाक् इदं नः वचः शृणवत् च) एक तो इन्द्र पास आकर यह हमारे वचनको सुनेगा और दूसरा (सत्राच्या धिया) मिलकर की बुद्धिसे (शविष्ठः मघवा) बलवान् इन्द्र (सोमपीतये आ गमत्) सोमरस पीनेके लिये आवेगा ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६१।१)

(धिषणे) द्यौ और पृथिवीने (तं वृषभं स्वराजं) उस बलवान् स्वतंत्र राजाको (तं ओजसे) उसको बल धारणके लिये उस इन्द्रको (निष्टतक्षतुः) बनाया। (उत उपमानां प्रथमः) तू उपमा देने योग्योंमें पहिला होकर (नि षीदसि) बैठता है (ते मनः सोमकामं हि) तेरा मन सोमकी इच्छा करनेवाला है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६१।२)

(सूक्त ११४)

(अ-भ्रातृव्यः) न तेरा कोई शत्रु है (अ-ना:) न कोई नेता है हे इन्द्र ! (त्वं अनापिः) तेरा कोई मित्र भी नहीं (जनुषा सनाद् असि) जन्मसे तू सदा ऐसा ही है (युधा इत् आपित्वं इच्छसे) युद्धसे तू मित्रत्व चाहता है। जो तुझे युद्धसे ही बलाता तू मित्र होता है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।२१।१३)

(रेवन्तं सख्याय नकि विन्दसे) धनवान्को मित्रताके लिये तू नहीं प्राप्त करता (ते सुराश्वः) तेरे सुरा पीनेवाले लोग (पीयन्ति) निन्दा होते हैं, (यदा नदनुं

[सूक्त ११५]

(ऋषिः — १-३ वत्सः। देवता — इन्द्रः।)

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १ ॥
अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ २ ॥
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३ ॥ (७०८)

[सूक्त ११६]

(ऋषिः — १-२ मेध्यातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव । वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १ ॥
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् । सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥२॥ (७१०)

[सूक्त ११७]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः । सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥ १ ॥
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि । स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥ २ ॥

हयसि) जब तू शब्द करता है तब (भ्रातृ इव सम् [illegible]) भाईके समान [illegible] जाता है तब (पिता इव हूयसे) पिताके समान बुलाया जाता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।२१।१४)

(सूक्त ११५)

(अहं इत् हि) मैंने निश्चयसे (पितुः परि) पिताके (ऋतस्य मेधां जग्रभ) सत्यनिष्ठ बुद्धिका ग्रहण किया है। (अहं सूर्य इव अजनि) और मैं सूर्यके समान प्रकट हुआ हूं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६।१०)

(अहं प्रत्नेन मन्मना) मैं पुराने विचारके अनुसार (कण्ववत् गिरः शुम्भामि) कण्वके समान अपनी वाणीको सुशोभित करता हूं। (येन इन्द्रः शुष्मं इत् दधे) जिससे इन्द्र बलका धारण करता है ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।११)

हे इन्द्र ! (ये त्वां न तुष्टुवुः) जिन ऋषियोंने तेरी स्तुति नहीं की (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) और जिन ऋषियोंने स्तुति की है (मम सुष्टुतः इत् वर्धस्व) मुझसे स्तुति किया हुआ तू बढता रह ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।१२)

(सूक्त ११६)

(निष्ट्या इव) कञ्जूसीके समान (त्वत् अरण्या इव) और तुझसे दूर होनेवाले शत्रुके समान हे इन्द्र ! (मा भूम) हम न हों। हे (अद्रिवः) वज्रधारी इन्द्र ! (प्रजहितानि वनानि न) छोडे हुए वनकी तरह (दुरोषासः अमन्महि) दुःख न जलानेवालेकी तरह हम न हों ऐसा हम अपनेको समझते हैं ॥ १ ॥ (८।१।१३)

हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले ! (अनाशवः अनुग्रासः च) स्फूर्तिसे कार्य न करनेवाले और न उग्र ऐसे (अमन्महि इत्) हम अपनेको समझते हैं। हे (शूर) वीर इन्द्र ! (ते महता राधसा) तेरे बडे धनसे (सकृत्) एक बार ही (स्तोमं) तेरे स्तोत्रको (अनु मुदीमहि) अनुकूल रहकर हम आनंद मान रहे हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।१।१४)

(सूक्त ११७)

हे इन्द्र ! (सोमं पिब) सोम पी। (त्वा मन्दतु) तुझे वह आनंदित करे। हे (हर्यश्व) भूरे रंगके घोडोंवाले इन्द्र ! (यं ते अद्रिः सुषाव) जिस रसको तेरे लिये पत्थर ने कूट कर निकाला है। (सुयतः अर्वा न) बांधे हुए घोडेकी तरह (सोतुः बाहुभ्यां) रस [illegible] करनेवालेके बाहुओंसे यह सोम रस निकला है ॥ १ ॥ (ऋ. [illegible])

(यः ते मदः युज्यः चारुः अस्ति) जो तेरा [illegible] सुन्दर मद है, हे (हर्यश्व) भूरे रंगके घोडोंवाले इन्द्र ! (येन वृत्राणि हंसि) जिससे तू शत्रुओंको मारता है। हे (प्रभूवसो इन्द्र) हे बहुत धनवाले इन्द्र ! (सः त्वां ममत्तु) वह मद तुझे आनंदित करे ॥ २ ॥ (ऋ. [illegible])

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ३ ॥ (७११)

[सूक्त ११८]

(ऋषिः — १-२ भर्गः ३-४ मेध्यातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

शग्ध्यू॒३षु श॑चीपत॒ इन्द्र॒ विश्वा॑भिरू॒तिभिः॑।
भगं॒ न हि त्वा॑ य॒शसं॑ वसु॒विद॒मनु॑ शूर॒ चरा॑मसि ॥ १ ॥
पौ॒रो अश्व॑स्य पुरु॒कृद्गवा॑मस्युत्सो॑ देव हिर॒ण्ययः॑।
न॒किर्हि दानं॑ परि॒मर्धि॑ष॒त्त्वे यद्य॒द्यामि॒ तदा भ॑र ॥ २ ॥
इन्द्र॒मिद्दे॒वता॑तय॒ इन्द्रं॑ प्रय॒त्य॑ध्व॒रे।
इन्द्रं॑ समी॒के व॒निनो॑ हवामह॒ इन्द्रं॒ धन॑स्य सा॒तये॑ ॥ ३ ॥
इन्द्रो॑ म॒ह्ना रोद॑सी पप्रथ॒च्छव॒ इन्द्रः॒ सूर्य॑मरोचयत्।
इन्द्रे॑ ह॒ विश्वा॒ भुव॑नानि येमिर॒ इन्द्रे॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वः ॥ ४ ॥ (७१७)

[सूक्त ११९]

(ऋषिः — १ आयुः २ श्रुष्टिगुः। देवता — इन्द्रः।)

अस्ता॑वि॒ मन्म॑ पू॒र्व्यं ब्रह्मेन्द्रा॑य वोचत। पू॒र्वीर्ऋ॒तस्य॑ बृह॒तीर॑नूषत स्तो॒तुर्मे॒धा अ॑सृक्षत ॥ १ ॥

हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (इमां मे वाचं) मेरी इस स्तुतिको (सु बोध) उत्तम रीतिसे जान। (यां प्रशस्तिं ते वसिष्ठः अर्चति) जिस तेरी प्रशंसाको वसिष्ठ उच्चारता है (इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व) इन स्तोत्रोंको साथ बैठकर आनंद करनेके समय सेवन कर ॥ ३ ॥ (ऋ. ७।२२।३)

(सूक्त ११८)

हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिके स्वामी इन्द्र! (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब संरक्षक शक्तियोंसे (सु शग्धि) हमें समर्थ बनाओ (भगं न) भाग्यके पीछे जैसे जाते हैं (शूर) वीर इन्द्र! (त्वा यशसं वसुविदं) तुझ यशस्वी और धनदाताके (हि अनु चरामसि) अनुसार ही हम चलते हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६१।५)

(अश्वस्य पौरः) तू घोडोंको बहुत संख्यामें रखनेवाला (गवां पुरुकृत्) गौओंको बहुत संख्यामें रखनेवाला है हे देव! तू (हिरण्ययः उत्सः असि) सोनेका स्रोत है। (न किः त्वे दानं परिमर्धिषत्) तेरे दानको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। (यत् यत् यामि) जो जो मैं मांगता हूं (तत् आ भर) वह मुझे भर दे ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६१।६)

(देवतातये इन्द्रं इत्) यज्ञके लिये इन्द्रको (अध्वरे प्रयति इन्द्रं) यज्ञ प्रारंभ होनेपर इन्द्रको (समीके) युद्धमें (इन्द्रं हवामहे) इन्द्रको हम बुलाते हैं। (धनस्य सातये इन्द्रं) धनके दानके लिये इन्द्रको हम (वनिनः हवामहे) स्तोतागण बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।३।५)

(इन्द्रः मह्ना शवः रोदसी पप्रथत्) इन्द्रने अपनी महिमासे और शक्तिसे द्यौ और पृथिवीको फैलाया है। (इन्द्रः सूर्यं अरोचयत्) इन्द्रने सूर्यको प्रकाशित किया। (इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे) इन्द्रने सब भुवनोंको नियममें रखा है (इन्द्रे सुवानास इन्दवः) इन्द्रमें सोमरस पहुंचते हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।३।६)

(सूक्त ११९)

(पूर्व्यं मन्म अस्तावि) पुराना स्तोत्र पढा गया (इन्द्राय ब्रह्म वोचत) इन्द्रके लिये स्तोत्र पढो। (ऋतस्य पूर्वीः बृहतीः अनूषत) यज्ञकी प्राचीन स्तुतियां गायी गयी हैं। (स्तोतुः मेधाः असृक्षत) स्तोताकी बुद्धियोंसे स्तोत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ (ऋ. ८।५२।९)

शुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥ २ ॥ (७१९)

[सूक्त १२०]

(ऋषिः — १-२ मेधातिथिः। देवता — इन्द्रः।)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥ (७२१)

[सूक्त १२१]

(ऋषिः — १-२ वसिष्ठः। देवता — इन्द्रः।)

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १ ॥
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ २ ॥ (७२३)

(शुरण्यवः विप्रासः) [illegible] (घृतश्चुतं अर्कं आनृचुः) घी चूनेवाला स्तोत्र पढ़ा है। (अस्मे रयिः पप्रथे) हमारे लिये धन फैला (अस्मे वृष्ण्यं शवः) हमारे लिये वीरता युक्त बल फैला है (अस्मे सुवानासः इन्दवः) हमसे निचोड़े हुए सोमरस हैं ॥ २ ॥

(ऋ. ८।५।११)

[1] घृतश्चुतं अर्कं आनृचुः — घी चूनेवाला स्तोत्र पढ़ा [illegible] स्तोत्र पढ़ा गया है।

(सूक्त १२०)

हे इन्द्र! (यत् नृभिः) जब मनुष्यों द्वारा (प्राक् [illegible]) [illegible] बुलाया [illegible] (सीमा प्रशर्ध) [illegible] (नृषूतः) [illegible] (असि तुर्वशे) [illegible] (असि) [illegible] ॥ १ ॥

(ऋ. ८।४।१)

(यद् वा) [illegible] (सचा मादयसे) साथ रहकर आनन्द मानता है सम्भवतः हे इन्द्र! (स्तोमवाहसः कण्वासः) स्तोत्र धारक कण्व (ब्रह्मभिः आ यच्छन्ति) [illegible] तुमे खींचते हैं अतः (आ गहि) [illegible] ॥ २ ॥

(ऋ. ८।४।[illegible])

(सूक्त १२१)

हे शूर इन्द्र! (अदुग्धाः धेनवः इव) [illegible] (अस्य जगतः ईशानं) [illegible] (स्वर्दृशं ईशानं) [illegible] (तस्थुषः) [illegible] (त्वा अभि नोनुमः) [illegible] ॥ १ ॥ (ऋ. ७।३२।२२)

(त्वावान् अन्यः न) [illegible] (न दिव्यः न पार्थिवः) [illegible] (न जातः न जनिष्यते) [illegible] हे इन्द्र! (मघवन्) [illegible] (अश्वायन्तः गव्यन्तः) [illegible] (वाजिनः) [illegible] हवामहे [illegible] ॥ २ ॥

(ऋ. [illegible])

[सूक्त १२२]

(ऋषिः — १-३ शुनःशेपः । देवता — इन्द्रः ।)

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ॥
आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २ ॥
आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ ३ ॥ (७१७)

[सूक्त १२३]

(ऋषिः — १-२ कुत्सः । देवता — सूर्यः ।)

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ १ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २ ॥ (७१८)

[सूक्त १२४]

(ऋषिः — १-३ वामदेवः, ४-६ भुवनः । देवता — इन्द्रः ।)

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥

(सूक्त १२२)

(सधमादे) साथ रहनेवाले (तुवि वाजाः) बहुत बलवाली (नः रेवतीः इन्द्रे) हमारी धनयुक्त स्तुतियां इन्द्रके विषयमें हों (क्षुमन्तः) वे हमें अन्न देनेवाली हों और (याभिः मदेम) जिनसे हमें आनन्द हो ॥ १ ॥

(ऋ. १।३०।१३)

हे (धृष्णो) शत्रुका धर्षण करनेवाले इन्द्र ! (त्वा वान्) तेरे जैसा (त्मना आप्तः) स्वयं मित्र बनकर (स्तोतृभ्यः इयानः) स्तोताओंके पास जानेवाला (चक्र्योः अक्षं न) चक्रोंके अक्षके समान धन (आ ऋणोः) देता है ॥ २ ॥

(ऋ. १।३०।१४)

हे (शतक्रतो) सैकडों कार्य करनेवाले इन्द्र ! (जरितॄणां कामं दुवः) स्तोताओंकी कामनाओं और सेवाओंको (यत् आ ऋण्वः) तू पूर्ण करता है (शचीभिः अक्षं न) शक्तियोंके साथ चक्रमें अक्ष जैसा स्थिर रहता है ॥ ३ ॥

(ऋ. १।३०।१५)

(सूक्त १२३)

(सूर्यस्य तत् देवत्वं) सूर्यका यह देवत्व है (तत् महित्वं) और यह उसका महत्त्व है कि जो (कर्तोः मध्या) कार्यके मध्यमें (विततं सं जभार) फैले हुए किरणजालको समेट लेता है । (यदा इत् सधस्थात् हरितः अयुक्त) जब वह अपने स्थानसे घोडोंको जोडता है (रात्री वासः सिमस्मै आ तनुते) तब रात्री सबके लिये एक वस्त्र फैला देती है ॥ १ ॥ (ऋ. १।११५।४)

(मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे) मित्र और वरुणके देखनेके लिये (सूर्यः द्योः उपस्थे तत् रूपं कृणुते) सूर्य द्युके समीप रूप बनाता है । (अस्य रुशत् पाजः अनन्तं अन्यत्) इसका प्रकाशमय अनन्त रूप एक है और (अन्यत् कृष्णं) दूसरा रूप अन्धकार है जो (हरितः सं भरन्ति) किरणें अर्थात् इसके घोडे भर देते हैं ॥ २ ॥

(ऋ. १।११५।५)

(सूक्त १२४)

(चित्रः ऊती सदावृधः सखा) यह विलक्षण रक्षण करनेवाला सदा बढनेवाला मित्र इन्द्र (कया नः आ भुवत्) किस शक्तिके साथ हमारे समीप आ जायगा ! (कया शचिष्ठया वृता) किस सामर्थ्यसे युक्त होकर हमारे समीप आ जायगा ॥ १ ॥ (ऋ. ४।३१।१)

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ४ ॥
पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५ ॥
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ६ ॥
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ७ ॥ (७७१)

[सूक्त १२६]

(ऋषिः — १-२३ वृषाकपिरिन्द्राणी च। देवता — इन्द्रः।)

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १ ॥
परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २ ॥
किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ३ ॥

हे (शुभस्पती अश्विना) शुभ कर्म करनेवाले अश्वि देवो ! (युवं सुरामं सचा विपिपाना) तुम दोनोंने उत्तम आनंद देनेवाले सोमरसको पीकर (आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आवतम्) असुर पुत्र नमुचिके मारनेके कर्ममें इन्द्रकी सहायता की ॥ ४ ॥ (ऋ. १०।१३१।४)

(पितरौ पुत्रं इव) मातापिता जैसे पुत्रकी रक्षा करते (उभा अश्विना) दोनों अश्विदेव (काव्यैः दंसनाभिः इन्द्रं आवथुः) बुद्धियों और कर्मोंसे इन्द्रकी रक्षा करते हैं। (यत् सुरामं शचीभिः व्यपिबः) जब उत्तम आनंद देनेवाला रस अपनी शक्तियोंसे पिया। तब हे (मघवन्) इन्द्र ! (सरस्वती त्वा अभिष्णक्) सरस्वतीने तेरी सेवा की ॥ ५ ॥ (ऋ. १०।१३१।५)

६-७ इनको अथर्व ७।९१।१; ९२।१

(सूक्त १२६)

इन्द्राणीने (सोतोः वि असृक्षत हि) सोमका रस निकालना छोड दिया। (इन्द्रं देवं न अमंसत) इन्द्रको देव भी नहीं माना। (यत्र वृषाकपिः अमदत्) जहां वृषाकपिने आनंद प्राप्त किया। (यः पुष्टेषु मत्सखा) जो पुष्टोंमें मेरा स्वामी सखा है वह (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ १ ॥ (ऋ. १०।८६।१)

हे इन्द्र ! (परा हि धावसि) तू दूर भागता है। (अति व्यथिः वृषाकपेः) अति व्यथित होकर वृषाकपिके पास तू जाता है। (अन्यत्र सोमपीतये) दूसरे स्थानपर सोम पीनेके लिये (नो अह प्र विन्दसि) नहीं मिलता। (विश्वस्मात् उत्तरः इन्द्रः) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ (ऋ. १०।८६।२)

(अयं हरितः मृगः वृषाकपिः) इस हरे पशु जैसे वृषाकपिने (किं त्वां चकार) तुझे क्या किया है (यस्मै अर्यः वा) जिसके लिये श्रेष्ठके समान (पुष्टिमत् वसु इरस्यसि इत् उ) पुष्ट करनेवाला धन तू देता है। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ (ऋ. १०।८६।३)

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ४ ॥
प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ५ ॥
न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ६ ॥
उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ७ ॥
किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८ ॥
अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९ ॥
संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १० ॥

हे इन्द्र! (त्वं) तू (यं इमं वृषाकपिं) जिस इस वृषाकपि को (प्रियं अभिरक्षसि) प्रिय मानकर सुरक्षित रखता है। (वराहयुः श्वा) सूअरको चाहनेवाला कुत्ता (अस्य कर्णे जम्भिषत्) इसके कानको पकडे। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥
(ऋ. १०।८६।४)

(मे प्रिया तष्टानि) मेरे प्रिय करके तैयार किये पदार्थ (व्यक्ता व्यदूदुषत्) इस वृषाकपिने स्पष्ट रीतिसे बिगाड दिये (अस्य शिरः नु राविषं) इसका सिर मैं काटूंगी, (दुष्कृते सुगं न भुवं) दुराचारीको सुख करनेवाली नहीं बनूंगी। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥
(ऋ. १०।८६।५)

(न स्त्री मत् सुभसत्तरा) कोई स्त्री मुझसे अधिक सौभाग्यवती नहीं है (न सुयाशुतरा भुवत्) न अधिक सुख देनेवाली है (न मत् प्रति च्यवीयसी) न मुझसे बढकर ... (न सक्थी उद्यमीयसी) न कोई अधिक ... है। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥
(ऋ. १०।८६।६)

(उवे अम्ब सुलाभिके) हे माता हे उत्तम लाभवाली! (यथा इव अंग भविष्यति) जिस तरह से सिद्ध होगा। हे (अम्ब) हे माता! (मे भसत्) मेरा ... (मे सक्थि मे शिरः) मेरी जंघा और मेरा सिर (वि हृष्यति इव) ... हो रहा है। (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥
(ऋ. १०।८६।७)

हे (सुबाहो) उत्तम बाहुवाली (स्वंगुरे) उत्तम अंगुलियोंवाली उत्तम हाथवाली (पृथुष्टो) विशाल केशोंवाली (पृथुजाघने) पृथु जंघावाली (शूरपत्नि) वीरकी पत्नी! (नः वृषाकपिं किं अभ्यमीषि) हमारे वृषाकपि पर तू क्या क्रोध करती है? (वि०) सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥
(ऋ. १०।८६।८)

(अयं शरारुः) यह घातपात करनेवाला वृषाकपि (मां अवीरां इव अभिमन्यते) मुझे अवीरा करके मानता है (उत अहं वीरिणी) पर मैं वीर पुत्रोंवाली (इन्द्रपत्नी) इन्द्रकी पत्नी (मरुत्सखा) मरुतोंके साथ रहती हूं। (वि०) इन्द्र ही सबसे अधिक श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥
(ऋ. १०।८६।९)

(नारी पुरा) स्त्री पुराने समयसे (संहोत्रं समनं वाव गच्छति स्म) ... जाती है। (ऋतस्य वेधा) यज्ञका विधान करनेवाली (वीरिणी इन्द्रपत्नी महीयते) वीर पुत्रोंको जन्म देनेवाली

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ११ ॥
नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १२ ॥
वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १३ ॥
उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४ ॥
वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत्।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १५ ॥
न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत्।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १६ ॥
न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १७ ॥

वाली इन्द्रपत्नीकी प्रशंसा की जाती है। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ (ऋ. १०।८६।१०)

(इन्द्राणीं आसु नारिषु) इन्द्राणीको इन स्त्रियोंमें (अहं सुभगां अश्रवं) मैंने सौभाग्यवती करके सुना है। (अस्याः अपरं चन) इसका विशेष यह है कि (अस्याः पतिः जरसा न मरते) इसका पति बुढापेसे मरता नहीं। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ (ऋ. १०।८६।११)

हे (इन्द्राणि) इन्द्राणि! (अहं वृषाकपेः सख्युः ऋते) मैं मित्र वृषाकपिके बिना (न रारण) रमता नहीं। (यस्य इदं प्रियं अप्यं हविः देवेषु गच्छति) जिसकी यह प्रिय और पवित्र हवि देवोंमें जाती है। (वि०) सबसे अधिक श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १२ ॥ (ऋ. १०।८६।१२)

(रेवति सुपुत्रे आत् उ सुस्नुषे) हे धनवाली उत्तम पुत्रोंवाली उत्तम स्नुषावाली (वृषाकपायि) वृषाकपिकी पत्नी! (इन्द्रः काचित्करं उक्षणः प्रियं ते हविः घसत्) इन्द्र सुखकारी बैलोंके प्रिय ऐसे तेरे हविको खावे। (वि०) सबसे अधिक श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १३ ॥ (ऋ. १०।८६।१३)

(पंचदश) पंद्रह पकानेवाले (उक्ष्णः विंशतिं साकं मे पचन्ति) बीस सोमके बैलोंको एक साथ मेरे लिये पकाते हैं। (उत अहं अद्मि) और मैं उनको खाता हूं, (पीव इत्) स्थूल पुष्ट बनता हूं (मे उभा कुक्षी पृणन्ति) मेरी दोनों कोखें भरती हैं। (वि०) सबसे अधिक श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १४ ॥ (ऋ. १०।८६।१४)

(तीक्ष्णः शृंगः वृषभः न) तीखे सींगोंवाला बैल जैसे (यूथेषु अन्तः रोरुवत्) यूथोंमें गर्जना करता है वैसे हे इन्द्र! (मन्थः ते हृदे शं) सोमरस तेरे हृदयको आनन्द देवे (यं ते भावयुः सुनोति) जिसको तेरे लिये उपासक भावनायुक्त रस निकालता है। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ (ऋ. १०।८६।१५)

(यस्य सक्थ्या अन्तरा) जिसका जंघाओंके मध्यमें (कपृत् रम्बते) लिंग लटकता रहता है (स न ईशे) वह सामर्थ्यवान् नहीं होता (स इत् ईशे) वही समर्थ होता है (यस्य निषेदुषः रोमशं विजृम्भते) जिसके सोनेपर रोमोंवाला लिंग बडा होता है। (वि०) सबसे इन्द्र अधिक श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥ (ऋ. १०।८६।१६)

(न स ईशे) वह समर्थ नहीं होता (यस्य निषेदुषः रोमशं विजृम्भते) जिसके सोनेपर रोमवाला बडा है (स

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १८ ॥
अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १९ ॥
धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २० ॥
पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २१ ॥
यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २२ ॥
पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ २३ ॥ (७१४)

[illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १७ ॥

१८। (अयं वृषाकपिः) यह वृषाकपि (परस्वन्तं हतं विदत्) [illegible] (असिं सूनां नवं चरुं आदेधस्य आचितं) [illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १८ ॥

(दासं आर्यं विचिन्वन्) [illegible] (विचाकशत् अयं एमि) [illegible] (पाकसुत्वनः अभि पिबामि) [illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ १९ ॥

(धन्व च यत् कृन्तत्रं च) [illegible] (कति स्वित् ता वि योजना) [illegible] (नेदीयसः गृहान्) [illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ २० ॥

हे (वृषाकपे) [illegible] (पुनः एहि) पुनः आ। (सुविता कल्पयावहै) [illegible] (यः एषः स्वप्ननंशनः) [illegible] (पथा पुनः अस्तं एषि) [illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ २१ ॥

हे वृषाकपे! हे इन्द्र! (यत् उदञ्चः) [illegible] (गृहं आजगन्तन) [illegible] (क्व स्यः पुल्वघः मृगः) [illegible] (कं अगन् जनयोपनः) [illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ २२ ॥

(पर्शुः ह नाम मानवी) [illegible] (साकं विंशतिं ससूव) [illegible] (भद्रं भल त्यस्याः अभूत्) [illegible] (यस्याः उदरं आमयत्) [illegible] (विश्व०) सबसे श्रेष्ठ इन्द्र है ॥ २३ ॥

[illegible]

॥ अथ कुन्तापसूक्तानि ॥

[सूक्त १२७]

(खिलानि)

इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते । षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥ १

उष्ट्रा यस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश । वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः ॥ २

एष इषाय मामहे शतं निष्कान्दश स्रजः । त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ॥ ३

वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः । ओष्ठे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव ॥ ४

प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते । अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते ॥ ५

प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम् । देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम् ॥ ६

राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति । वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः ॥ ७

परिच्छिन्नः क्षेममकरोत्तम आसनमाचरन् । कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया ॥ ८

कतरत्त आ हराणि दधि मन्थां परि श्रुतम् । जायाः पतिं वि पृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ ९

(सूक्त १२७)

हे (जनाः) लोगो ! (इदं उप श्रुत) यह सुनो ! (नराशंस स्तविष्यते) मनुष्यका स्तोत्र गाया जायगा । हे कौरम ! (रुशमेषु) रुशमोंमें (षष्टिं सहस्रा नवतिं च) साठ हजार और नब्बे (आ दद्महे) हमने लिये हैं ॥ १ ॥

(यस्य द्विर्दश प्रवाहण वधूमन्तः) जिसके बीस ऊंट वधुओंसमेत रथके चलानेवाले हैं (रथस्य वर्ष्माः) रथकी चोटियां (दिव उपस्पृशः ईषमाणाः) द्युको स्पर्श करनेकी इच्छा करती हुई (नि जिहीडते) चलती हैं ॥ २ ॥

(एषः) इसने (मामहे इषाय) मामह ऋषिको (शतं निष्कान्) सौ निष्क (दश स्रजः) दस मालाएं (त्रीणि शतानि अर्वतां) तीनसौ घोडे (गोनां दश सहस्रा) दस हजार गौवें दी ॥ ३ ॥

हे (रेभ) स्तुति करनेवाले ! (वच्यस्व वच्यस्व) बोल बोल । (पक्व वृक्ष शकुन न) जैसा पके हुए वृक्षपर पक्षी बोलता है । (ओष्ठे जिह्वा चर्चरीति) होठोंमें जिह्वा चलती चलती चलती है (भुरिजो इव क्षुरः न) जैसे दोनोंमें उस्तरा चलता है ॥ ४ ॥

(वृषा गाव इव) बैल और गौओंकी तरह (रेभासः मनीषा प्र इरते) स्तोतागण स्तुतिको प्रेरित करते हैं । (पुत्रका अमा उत एषां) इनके पुत्र घरमें (गाः इव आसते) गौवें घरमें रहनेके समान रहते हैं ॥ ५ ॥

हे (रेभ) स्तोता ! (वसुविदं गोविदं) धन देनेवाले और गौवें देनेवाले (धियं प्र भरस्व) स्तोत्रको तैयार कर (इमां वाचं देवत्रा श्रीणीहि) इस स्तोत्रको देवताओं पास गायन कर । (अस्ता वीरः इषु न) बाण फेंकनेवाला वीर जैसा बाण फेंकता है ॥ ६ ॥

(विश्वजनीनस्य वैश्वानरस्य) सब लोगोंका हित करनेवाले, सब मनोंके चालक (परिक्षितः राज्ञः) सुरक्षित राजाकी (सुष्टुतिं आ सुनोत) उत्तम स्तुतिको सुनो (यः देवः मर्त्यान् अति) जो देवकी तरह मानवोंमें श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

(परिक्षित् उत्तमं आसनं आचरन्) परिक्षित उत्तम राजसिंहासन पर बैठकर (नः क्षेमं अकरोत्) हमारा कल्याण किया । (कौरव्यः कुलायं कृण्वन्) कौरव्य अपना घर बनाता हुआ (पतिः जायया वदति) पति अपनी स्त्रीसे कहता है ॥ ८ ॥

(कतरत् ते आ हराणि) क्या वस्तु तेरे लिये लाऊं (दधि मन्थं परि श्रुतं) दही मट्ठा या रस (परिक्षितः राज्ञः राष्ट्रे) परिक्षित राजाके राष्ट्रमें (जायाः पतिं वि पृच्छति) स्त्री पतिसे पूछती है ॥ ९ ॥

अभीवस्वः प्र जिहीते यवः पक्वः पथो बिलम्। जनः स भद्रमेधति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः ॥ १० ॥
इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ वि चरा जनम्। ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत्ते पृणादरिः ॥ ११ ॥
इह गावः प्र जायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा नि षीदति ॥ १२ ॥
नेमा इन्द्र गावो रिषन्मो आसां गोप रीरिषत्। मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत ॥ १३ ॥
उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम्।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ॥ १४ ॥ (७१८)

[सूक्त १२८]

यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः। सूर्यं चामू रिशादसस्तद्देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १ ॥
यो जाम्या अप्रथयस्तद्यत्सखायं दुधूर्षति। ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २ ॥
यद्भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः। तद्विप्रो अब्रवीदु तद्गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३ ॥
यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः। धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४ ॥

(यव पक्व बिल पथः) पका हुआ जौ जो बिल पर [illegible] (अभीवस्वः प्र जिहीते) अर्थात् वह प्रजा [illegible] ओर जाता है। (परिक्षितः राज्ञः राष्ट्रे) परिक्षित राजा के राष्ट्र में (स जनः भद्रं एधते) वह मनुष्य [illegible] ॥ १० ॥

(इन्द्रः कारुं अबूबुधत्) [illegible] (उत्तिष्ठ जनं वि चर) [illegible] (मम उग्रस्य इत् चर्कृधि) [illegible] (सर्वः अरिः इत् ते पृणात्) [illegible] ॥ ११ ॥

(इह गावः प्रजायध्वं) यहां गायें बढ़ें (इह अश्वाः) यहां घोड़े [illegible] (इह पूरुषाः) यहां पुरुष बढ़ें। (इह सहस्रदक्षिणः पूषा अपि नि षीदति) यहां हमारे [illegible] पूषा भी बैठा है ॥ १२ ॥

हे इन्द्र! (इमाः गावः मा रिषन्) ये गौएं नाश न [illegible] (आसां गोपतिः मा उ रिषत्) [illegible] (आसां अमित्रयुः जनः) [illegible] (स्तेनः मा ईशत) [illegible] ॥ १३ ॥

(सूक्तेन वचसा वयं नो उप रमसि) [illegible] (भद्रेण वचसा) [illegible] (वनात् अधिध्वनः गिरः) [illegible] हमारा स्तुतियें सुननेवाले तू इच्छा कर (कदाचन न रिष्येम) हमारा नाश कभी न हो ॥ १४ ॥

(सूक्त १०८)

(यः सभेयो विदथ्यः) जो सभा के योग्य और [illegible] (अथ सुत्वा यज्वा पूरुषः) [illegible] (अमुं रिशादसं सूर्यं) [illegible] (तत् देवाः प्राक् अकल्पयन्) देवोंने आगे [illegible] ॥ १ ॥

(यः जाम्या अप्रथयत्) जो [illegible] (तत् यत् सखायं दुधूर्षति) [illegible] (यत् ज्येष्ठः अप्रचेताः) [illegible] (तत् अधराक् इति आहुः) [illegible] ॥ २ ॥

(यत् भद्रस्य पुरुषस्य दाधृषिः पुत्रः भवति) [illegible] (तत् तद्विप्रः अब्रवीत्) [illegible] (तत् गन्धर्वः काम्यं वचः) [illegible] ॥ ३ ॥

(यः च पणिः रघुजिष्ठ्यः) [illegible] (यः च देवान् अदाशुरिः) [illegible] (धीराणां शश्वतां अहं तत् अपाक् इति शुश्रुम) [illegible] ॥ ४ ॥

ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवानो वि रप्शते ॥ ५ ॥
योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः । अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ६ ॥
य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः । सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ॥ ७ ॥
अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः । अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ८ ॥
सुप्रपाणा च वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः । सुयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ९ ॥
परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ १० ॥
वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः । श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ११ ॥
यदिन्द्रादो दाशराज्ञे मानुषं वि गाहथाः । विरूपः सर्वस्मा आसीत्सह यक्षाय कल्पते ॥ १२ ॥
त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरा रविम् । त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३ ॥

(ये च देवा अयजन्त) जो देवोंका यजन करते हैं । और (ये च पराददिः) जो दान देते हैं । (सूर्यः दिवं इव गत्वाय) वे सूर्य द्युलोकमें जाकर (मघवानः वि रप्शते) धनवान होकर बडे होते हैं ॥ ५ ॥

(यः अनाक्ताक्षः) जिसके आंखमें अंजन लगाया नहीं है (अनभ्यक्तः) अंगपर जिसने उबटना लगाया नहीं (अमणिः अहिरण्यवान्) जिसके शरीरपर रत्न नहीं है शरीरपर सोना भी नहीं (अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रः) जो ब्राह्मणका पुत्र होनेपर भी ज्ञानी नहीं है (ताः तोता) वे सब (कल्पेषु संमिता) कर्मोंमें समान रीतिसे हलकेपन- माने गये हैं ॥ ६ ॥

(यः आक्ताक्षः) जिसके आंखमें अंजन है (सुअभ्यक्तः) जिसके शरीरपर उत्तम उबटना लगा है (सुमणिः) जिसके शरीरपर रत्न है (सुहिरण्यवान्) जिसके शरीरपर सोना है (ब्रह्मणः पुत्रः सुब्रह्मा) ब्राह्मणका पुत्र होनेपर जो उत्तम ब्रह्म हुआ है (ताः ह ताः कल्पेषु संमिताः) वे सारे कर्मोंमें उत्तम- श्रेष्ठ मानी गयी हैं ॥ ७ ॥

(वेशन्ताः अप्रपाणाः) तालाब जिनमें पीनेका पानी नहीं है (रेवान् अप्रतिदिश्ययः) धनवान होनेपर भी जो दाता नहीं है (कल्याणी कन्या अयभ्या) सुन्दर भी कन्या अगम्य है (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) वे सारे कर्मोंमें समान मानी गयी हैं ॥ ८ ॥

(वेशन्ताः सुप्रपाणाः) तालाब पाने योग्य पानीसे भरे हैं (रेवान् सुप्रतिदिश्ययः) धनवान होनेपर जो उत्तम दान देता है (कल्याणी कन्या सुयभ्या) सुन्दर कन्या होनेपर जो सुगम्य है (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) वे सब कर्मोंमें समान मानी हैं ॥ ९ ॥

(महिषी परिवृक्ता) जो पटरानी त्यागी हुई है (स्वस्त्या च अयुधिंगमः) स्वस्थ होनेपर भी जो युद्धमें जाता नहीं (अनाशुः अश्वः अयामी) जो तेज घोडा नहीं या चलने वाला नहीं (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) वे कर्मोंमें समान माने हैं ॥ १० ॥

(वावाता च महिषी) प्रिय पटरानी (स्वस्त्या च युधिंगमः) स्वस्थ होनेपर जो युद्धमें जाता है (आशुः अश्वः सुयामी) उत्तम चलनेवाला घोडा (ताः ह ताः कल्पेषु संमिता) ये सब कर्मोंमें समान हैं ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! (यत् अदः दाशराज्ञे वि गाहथाः) जो तू दाशराज्ञ युद्धमें घुस गया था वह (मानुषं) वह मानुष कर्म तूने किया था । (सर्वस्मै विरूप आसीत्) सबके लिये वह आदरणीय था । (सः ह यक्षाय कल्पते) वह पूज्य होनेके लिये समर्थ होता है ॥ १२ ॥

(त्वं वृषाक्षुं) तू बलवान विजय कमाता है । हे (मघवन्) इन्द्र ! (मर्य) मानवोंका हित करनेवाले ! (रविं नम्रं अकरः) तूने रविको नम्र बनाया (त्वं रौहिणं व्यास्यः) तूने रोहिणके टुकडे किये (वृत्रस्य शिरः वि अभिनत्) तूने वृत्रका सिर काटा ॥ १३ ॥

यः पर्वतान्व्यदधायो अपो व्यगाहथाः । इन्द्रो यो वृत्रहा महान् तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥१४॥
पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन् । स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५ ॥
ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वतम् स देवानां बिभ्रदिन्द्रं महीयते ॥ १६ ॥ (७१४)

[सूक्त १२९]

एता अश्वा आ प्लवन्ते ॥ १ ॥ प्रतीपं प्रातिसुत्वनम् ॥ २ ॥
तासामेका हरिक्निका ॥ ३ ॥ हरिक्निके किमिच्छसि ॥ ४ ॥
साधुं पुत्रं हिरण्ययम् ॥ ५ ॥ क्वाहतं परास्यः ॥ ६ ॥
यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः ॥ ७ ॥ परित्रयः ॥ ८ ॥
पृदाकवः ॥ ९ ॥ शृङ्गं धमन्त आसते ॥ १० ॥
अयन्महा ते अर्वाहः ॥ ११ ॥ स इच्छकं सघाघते ॥ १२ ॥
गोमयाद् गोगतिरिव ॥ १३ ॥ पुमां कुस्ते किमिच्छसि ॥ १४ ॥
पल्पौ ब्रीहियवा इति ॥ १५ ॥ ब्रीहियवा अघा इति ॥ १६ ॥
अजागार केविका ॥ १७ ॥ अश्वस्य वारो गोशफस्य ते ॥ १८ ॥
श्येनपर्णी सा ॥ १९ ॥ अनामयोपजिह्विका ॥ २० ॥ (८१४)

(यः पर्वतान् व्यदधात्) जिसने पर्वतोंको बनाया (यः अपः व्यगाहथाः) जो जलप्रवाहोंमें घुस गया। (इन्द्रः यः महान् वृत्रहा) इन्द्र जो बडा वृत्रको मारने वाला है हे इन्द्र ! (तस्मात् ते नमः अस्तु) इसलिये तुझे नमस्कार है ॥ १४ ॥

(हर्योः पृष्ठं धावन्तं) दौडते दोनों घोडोंके आगे दौडने वाले (उच्चैःश्रवसं अब्रुवन्) उच्चैःश्रवासे कहा है (स्वस्ति अश्व) कल्याणकारी अश्व ! (जैत्राय सुस्रजं इन्द्रं आ वह) विजयके लिये माला पहने इन्द्रको ले आ ॥ १५ ॥

(श्वेता युक्त्वा) श्वेत घोडियोंको जोतकर (हर्योः दक्षिणं) दो घोडोंके दक्षिण भागमें (उच्चैःश्रवसं युञ्जन्ति) उच्चैःश्रवाको जोतते हैं। (देवानां पूर्वतमं इन्द्रं बिभ्रत् सः) देवोंमें श्रेष्ठ इन्द्रको धारण करके वह (महीयते) बडा कहा जाता है ॥ १६ ॥

(सूक्त १२९)

(एताः अश्वाः) ये घोडियां (प्रतीपं प्राति-सुत्वनं) प्रतीप प्रातिसुत्वनकी ओर (आ प्लवन्ते) दौडती हैं ॥ १-२ ॥

(तासां एका हरिक्निका) उनमेंसे एक कम भूरी है हे हरिक्निके ! (किं इच्छसि) तू क्या चाहती है ? ॥ ३-४ ॥

(साधुं हिरण्ययं पुत्रं) उत्तम सुनहरी पुत्रको। (क आहतं परास्यः) कहां उसको तूने फेंक दिया ? ॥ ५-६ ॥

(यत्र अमूः तिस्रः शिंशपाः) जहां वे तीन शीशमके वृक्ष हैं (परि त्रयः) तीनोंके पास ? ॥ ७-८ ॥

(पृदाकवः) सांप (शृङ्गं धमन्तः आसते) सींग फूंकते रहते हैं ॥ ९-१० ॥

(अयं अर्वा इह आगतः) यह घोडा यहां आया है (स इत् छका संघाघते) वह गोबरसे जाना जाता है ॥ ११-१२ ॥

(गोमयात् गोगतिः इव) गोबरसे गौका मार्ग जैसा जाना जाता है (पुंसां कुस्ते किं इच्छसि) मनुष्योंके कुलमें रहकर तू क्या करना चाहता है ? ॥ १३-१४ ॥

(पल्पौ ब्रीहियवौ इति) पके हैं चावल और जौ। (ब्रीहियवा अघा इति) चावल और जौ का ॥ १५-१६ ॥

(अजागार। केविका इव) अजगर जैसा मेढकोंको। (अश्वस्य वार ते गोशफा च) घोडेका बाल और गौका खुर तेरा है ॥ १७-१८ ॥

(श्येनपर्णी सा) वह बाज पक्षीके पंखोंवाली है

[सूक्त १३०]

को अर्यावहुलिमा इषूणि ॥ १ ॥ को असिद्यन्याः पयः ॥ २ ॥
को अर्जुन्याः पयः ॥ ३ ॥ कः कार्ष्ण्याः पयः ॥ ४ ॥
एतं पृच्छ कुहं पृच्छ ॥ ५ ॥ कुहाकं पक्वकं पृच्छ ॥ ६ ॥
यवा नोपं तिष्ठन्ति कुक्षिम् ॥ ७ ॥ अकुप्यन्तः कुपायकुः ॥ ८ ॥
आमणिका मणित्सकः ॥ ९ ॥ देव त्वा प्रति सूर्यम् ॥ १० ॥
एनी हरिक्लिका हरिः ॥ ११ ॥ प्रदुद्रुदो मघा प्रति ॥ १२ ॥
शृंग उत्पन्ने ॥ १३ ॥ मा त्वाभि सखा नो विदन् ॥ १४ ॥
वशायाः पुत्रमा यन्ति ॥ १५ ॥ इरा वेदुमयं दत ॥ १६ ॥
अथो इयन्नियन्निति ॥ १७ ॥ अथो इयन्निति ॥ १८ ॥
अथोऽश्वा अस्थूरि नौ भवन् ॥ १९ ॥ उयविका शलाकका ॥ २० ॥ (८१४)

[सूक्त १३१]

आ मिनोति वि मियते ॥ १ ॥ तस्य वर्तं निमञ्जनम् ॥ २ ॥
वरुणो याति वसुभिः ॥ ३ ॥ शतं वायोरमीशवः ॥ ४ ॥

(अलामयोपजिह्विका) यह जीवोंमिताको आनेवाली है ॥ १९-२ ॥

(सूक्त १३०)

(इमा इषूणि का अपावहत्) कौन इन इषुके भेदोंको ले गया? (कः अर्यः बहुलिमा इषूणि) किस आर्यने बहुत इषु धारण किये? (का असिद्यन्याः पयः) कौन काली गायके दूधको ले गया ॥ १-२ ॥

(कः अर्जुन्याः पयः) कौन सफेद गायके दूधको और (कः कार्ष्ण्याः पयः) कौन काली गायके दूधको ले गया? ॥ ३-४ ॥

(एतं पृच्छ) इसको पूछ। (कुहं पृच्छ) कहां पूछ। (कुहाकं पक्वकं पृच्छ) कहां किस चतुरको पूछ ॥ ५-६ ॥

(यथा कुक्षिं न उपतिष्ठन्ति) जो पेटमें नहीं जाते। (कुपायकुः अकुप्यन्तः) बुरे रक्षक क्रुद्ध होते हैं ॥ ७-८ ॥

(आमणिका मणित्सका) मणिसे रहित और मणिसे सहित (देव त्वा प्रति सूर्य) सूर्यके सामने देवत्व ॥ ९-१ ॥

(एनी हरिक्लिका हरिः) चितकबरी हरीतिमा और भूरे रंगवाली। (प्रदुद्रुदु मघा प्रति) उत्तम हविके पास दौडे ॥ ११-१२ ॥

(शृंगे उत्पन्ने) सींग उत्पन्न होने पर (मा त्वा अपि मा सखा विदत्) तुझे मत हमारा मित्र जाने ॥ १३-१४ ॥

(वशायाः पुत्रं आ यन्ति) गौके पुत्रके प्रति आते हैं (इरा वर्ष अवदत्) अन्नने देवको दिया ॥ १५-१६ ॥

(अथो इयं इयं इति) यह यह है ऐसा कहा (अथो इय) और यह यह ॥ १७-१८ ॥

(अथो अश्वा अस्थूरि न भवन्) तब हमारे घोडे दुर्बल नहीं हुए, (शलाकका उयविका) शलाका इतनी ही है ॥ १९-२ ॥

(सूक्त १३१)

(आमिनोति वि मियते) जो फेंकता है, वध करते हैं (तस्य वर्तं निमञ्जनम्) उसका नाश करो ॥ १-२ ॥

(वरुणः याति वसुभिः) वरुण वसुओंके साथ जाता है। (वायोः शतं अमीशवः) वायुकी सौ रश्मियाँ हैं ॥ ३-४ ॥

सुतमर्या हिरण्ययाः	॥ ५ ॥	सुत रथा हिरण्ययाः	॥ ६ ॥
सुत कुथा हिरण्ययाः	॥ ७ ॥	सुत निष्का हिरण्ययाः	॥ ८ ॥
अर्हन् पुर्वशर्वक	॥ ९ ॥	सुफे न पीर्व ओदन	॥ १० ॥
आपर्वनन तदुनी	॥ ११ ॥	मुनिर्घो नार्व सुमन	॥ १२ ॥
इद मर्य मण्हारिफ	॥ १३ ॥	ते वृक्षाः सह तिष्ठन्ति	॥ १४ ॥
पाकबलिः	॥ १५ ॥	शर्कबलि	॥ १६ ॥
अश्वपः रोहितो युवा	॥ १७ ॥	अरंदुपणः	॥ १८ ॥
अर्थ इत इव	॥ १९ ॥	व्याप्तिः पूर्णाः	॥ २० ॥
अहृदमित् पीयूषम्	॥ २१ ॥	अश्वेभुव परस्वतः	॥ २२ ॥
दौ वे हस्तिनौ दृती	॥ २३ ॥		

(८५४)

[सूक्त १३०]

यादुन्तापुरुषमकम्	॥ १ ॥	अन्नापुरु निरालकम्	॥ २ ॥
पुरंजितो निरालक	॥ ३ ॥	यदु पातः उन्मंपायति	॥ ४ ॥
कुन्नाय कणवादिति	॥ ५ ॥	उप वनिपदानीतम्	॥ ६ ॥
न वनिपदनातम्	॥ ७ ॥	क एषां ककुरि ज्ञितम्	॥ ८ ॥
क एषां दुन्दुभि हनत्	॥ ९ ॥	यदि हनत् कथं हनत्	॥ १० ॥

दुवी हनत् कुह हनत्	॥ ११ ॥	पर्यागारं पुनः पुनः	॥ १२ ॥
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि	॥ १३ ॥	हिरण्यमित्येकमब्रवीत्	॥ १४ ॥
द्वे वा यशः शर्वः	॥ १५ ॥	नीलं शिखण्डा या हनत्	॥ १६ ॥ ८००

[सूक्त १३३]

विततौ किरणौ द्वौ तावा पिनष्टि पूरुषः । दुन्दुभिमा हननाभ्याम् ।
न वै कुमारि तत्तथा यथा कुमारि मन्यसे ॥ १ ॥
मातुष्टे किरणौ द्वौ निवृतः पुरुषात् दृतिः । कोशबिले । न वै० ॥ २ ॥
निगृह्य कर्णकौ द्वौ निरायच्छसि मध्यमे । रज्जुनि ग्रन्थेर्दानम् । न वै० ॥ ३ ॥
उत्तानायै शयानायै तिष्ठन्तमव गूहसि । उपानहि पादम् । न वै० ॥ ४ ॥
श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां श्लक्ष्णमेवाव गूहसि । उत्तराञ्जनीमार्धन्याम् । न वै० ॥ ५ ॥
अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशदन्तर्लोममति ह्रदे । उत्तराञ्जनी वर्त्मन्याम् । न वै० ॥ ६ ॥ (८०१)

[सूक्त १३४]

इहेत्या प्रागपागुदगधरागास्ता उदमिर्यथा । अलाबूनि ॥ १ ॥
इहेत्या प्रागपागुदगधरागास्ता उदमिर्यथा । वत्साः पुषन्त आसते । पृषातकानि ॥ २ ॥

(देवी हनत् कुह हनत्) देवीने बजाया कहां बजाया (परि-आगारं पुनः पुनः) पुनः पुनः घरके चारों ओर ॥ ११-१२ ॥

(त्रीणि उष्ट्रस्य नामानि) ऊंटके तीन नाम हैं, (हिरण्यं इति एक अब्रवीत्) सोना एक है ऐसा एकने कहा ॥ १३-१४ ॥

(द्वे वा यशः शर्वः) दो यश और बल ये हैं, (नील शिखण्डः वा हनत्) नीले चूडेवाला बजावेगा ॥ १५-१६ ॥

(सूक्त १३३)

(तौ द्वौ किरणौ विततौ) ये दो किरण फैले हैं (पुरुषः तौ आ पिनष्टि) पुरुष उनको पीसता है (दुन्दुभि आ हननाभ्यां) दोनोंसे बजानेसे हे कुमारि! (न वै तत् तथा) वह वैसा नहीं है कुमारि! (यथा मन्यसे) जैसा तू मानती है ॥ १ ॥

(ते मातुः द्वौ किरणौ) तेरी माताके दो किरण चलते हैं (पुरुषात् दृतिः निवृत्तः) पुरुषसे चाम चला गया है। (कोशबिले) बजाना और बिल ॥ २ ॥

(निगृह्य द्वौ कर्णकौ) दोनों कानोंको पकड कर (मध्यमे निरायच्छसि) मध्यमें निश्चेष्ट देता है। (रज्जुनि ग्रन्थेः दानं) रस्सीमें गांठ देना ॥ ३ ॥

(उत्तानायां शयानायां) उठे या सोनेके लिये (तिष्ठन्ती अव गूहसि) ठहरती है या गुप्त रहती है। (उपानहि पादं) जूतेमें पांव ॥ ४ ॥

(श्लक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायां) प्रेमवाली, स्नेह करनेवालीमें (श्लक्ष्णं एव अव गूहसि) प्रेम ही गुप्त रखती है। (उत्तराञ्जनीं आर्धन्यां) ॥ ५ ॥

(अवश्लक्ष्णं इव भ्रंशत्) गुप्त प्रेमके समान भ्रष्ट होता है (ह्रदे अन्तः लोम अति) ह्रदमें अन्दर लोम होनेके समान। (उत्तराञ्जनी वर्त्मन्यां) ॥ ६ ॥

(सूक्त १३४)

(इह इत्था) यहां इस तरह (प्राक् अपाक् उदक् अधराक्) पूर्व पश्चिम उत्तर और दक्षिणमें (आसताः) बैठे हैं (यथा उदमिः) जैसे पानीके साथ (अलाबूनि) तूंबियें ॥ १ ॥

(वत्साः पुषन्त आसते) बच्चे पुष्ट और मोटे (पृषातकानि) छिडकते हुए बैठते हैं ॥ २ ॥

इहेत्था प्रागपागुदगधरागारास्था उदमिर्यथा । स्थालीपाको विलीयते । अश्वत्थपलाशम् ॥ ३ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधरागारास्था उदमिर्यथा । सा वै स्पृष्टा विलीयते । त्रिपुद् ॥ ४ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधरागारास्था उदमिर्यथा । उष्णे स्नाहे न लीप्सेयाः । चमसः ॥ ५ ॥
इहेत्था प्रागपागुदगधराग श्लिश्लिसु शिश्लिषते । पिपीलिकाग्रटः ॥ ६ ॥ (८०)

[सूक्त १३५]

भुगित्यभिगतः । श्वा ॥ १ ॥ शलित्यपक्रान्तः । पर्णश्रदः ॥२॥ फलिरुपमिष्ठितः । गाशफः ॥३॥
वीइमे देवा अक्रमताध्वर्यो क्षिप्र प्रचर । सुसत्यमिद् गवामस्ति प्र खुद ॥ ४ ॥
पत्नी यदृश्यते पत्नी यक्ष्यमाणा जरितरोथामो दैव । होता विष्टीमेन जरितरोथामो दैव ॥ ५ ॥

आदित्या ह जरितराङ्गिरोभ्यो दक्षिणामनयन् ।
तां ह जरितर्न प्रत्यायंस्तामु ह जरितर्न प्रत्यगृभ्णन् ॥ ६ ॥
तां ह जरितर्न प्रत्यायन् तामु ह जरितः प्रत्यगृभ्णन् ।
अहा नत सर्वविचेतनानि जज्ञा नत सघपुरोगवासः ॥ ७ ॥
उत श्वेत आशुपत्वा उतो पद्याभिर्यविष्ठः । उतेमाशु मानं पिपर्ति ॥ ८ ॥
आदित्या रुद्रा वसवस्त्वेलते इदं राधः प्रति गृभ्णीह्यङ्गिरः ।
इदं राधो विभु प्रभु इदं राधो बृहत् पृथु ॥ ९ ॥
देवा ददत्वासुरं तद् वो अस्तु सुचेतनम् । युष्माँ अस्तु दिवेदिवे प्रत्येव गृभायत ॥ १० ॥
त्वमिन्द्र शर्म रिणा हव्यं पारावतेभ्यः । विप्राय स्तुवते वसुवनिं दुरश्रवसे वह ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र कपोताय च्छिन्नपक्षाय वञ्चते । श्यामाकं पक्वं पीलु च वारस्मा अकृणोर्बहु ॥ १२ ॥
अरंगरो वावदीति त्रेधा बद्धो वरत्रया । इरामह प्रशंसत्यनिरामप सेधति ॥ १३ ॥ (८१)

[सूक्त १३६]

यदस्या अंहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ १ ॥
यदा स्थूलेन पससाणौ मुष्का उपावधीत् । विष्वञ्चा वस्या वर्धतः सिकतास्विव गर्दभौ ॥ २ ॥
यदल्पिकास्वल्पिका कर्कन्धुकेव पद्यते । वासन्तिकमिव तेजनं यन्त्यवाताय वित्पति ॥ ३ ॥
यद् देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सकुला देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा ॥ ४ ॥

(स्थालीपाको विलीयते) [illegible] है (अश्वत्थ-पलाशम्) [illegible] ॥ ३ ॥

(सा वै स्पृष्टा लीयते) [illegible] है (त्रिपुद्) [illegible] ॥ ४ ॥

(उष्णे स्नाहे न लीप्सेयाः) [illegible] (चमसः) [illegible] ॥ ५ ॥

(श्लिश्लिसु शिश्लिषते पिपीलिकाग्रटः) [illegible] ॥ ६ ॥

महानग्न्यतृपद् विमुक्तः क्रदुदस्था नासरन् । शाकिं कनीना स्वद मश्कम सक्तुपद्यम् ॥ ५ ॥
महानग्न्युलूखलमतिक्रामन्त्यब्रवीत् । यथा तव वनस्पते निघ्नन्ति तथैवेति ॥ ६ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथैव ते वनस्पते पिप्पन्ति तथैवेति ॥ ७ ॥
महानग्न्युप ब्रूते भ्रष्टोऽथाप्यभूभुवः । यथा वयो विदाह्यस्वर्गानि मर्म दसन्ते ॥ ८ ॥
महानग्न्युप ब्रूते स्वस्त्यावेशित पसः । इत्थ फलस्य वृक्षस्य शूर्पे शूर्प भजेमहि ॥ ९ ॥
महानग्नी कृकवाकं शम्यया परि धावति । अयं न विद्म यो मृगः शीर्ष्णा हरति धाणिकाम् ॥१०॥
महानग्नी महानग्नं धावन्तमनु धावति । इमास्तदस्य गा रक्ष यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ ११ ॥
सुदेवस्त्वा महानग्नीर्बबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुसितं पीवरी नशद् यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १२ ॥
वशा दग्धा विनाङ्गुरिं प्रसृजत वनंकरम् । महान् वै भद्रो बिल्वो यभ मामद्ध्यौदनम् ॥ १३ ॥
विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते महतः साधु खोदनम् ।
कुमारिका पिङ्गलिका कार्दि कुस्था प्र धावति ॥ १४ ॥
महान् वै भद्रो बिल्वो महान् भद्र उदुम्बरः । महाँ अभिक्त बाधते महतः साधु खोदनम् ॥ १५ ॥
यः कुमारी पिङ्गलिका कसितं पीवरी लभेत् । तैलकुण्डमिमाङ्गुष्ठं रदन्तं शुदमुद्धरेत् ॥१६॥ (१११)

॥ इति कुन्तापसूक्तानि ॥

[सूक्त १३७]

(ऋषिः — १ शिरिम्बिठिः २ बुधः; ३ वामदेवः; ४-६ ययातिः; ७-११ तिरश्चीराङ्गिरसः। द्युतानो वा १२-१४ सुकक्षः । देवता — १ अलक्ष्मीनाशनम्, २ इन्द्रः, ३ दधिक्राः। ४-६ सोमः पवमानः; ७-१४ इन्द्रश्च ।)

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः । हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ १ ॥
कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥ २ ॥

(सूक्त ११७-१३६)

[सूचना — ये सूक्त अत्यंत संदिग्ध और क्लिष्ट हैं। अतः इनका अर्थ यहां देना अशक्य है। जो विद्वान् इनको अच्छी तरह समझ सकते हैं। वे इनका अर्थ स्पष्टीकरणके साथ लिखकर भेजेंगे तो बडी कृपा होगी।]

॥ यहां कुन्तापसूक्तानि समाप्त ॥

(सूक्त १३७)

(मण्डूरधाणिकी) पेंसे धारण करनेवाली (यत् ह अरा प्राचीः अजगन्त) जब शिक्षवके तौर आगे गयी (बुद्बुदयाशवः सर्वे इन्द्रस्य शत्रवः हताः) बुद्बुदोंके समान इन्द्रके सब शत्रु मारे गये ॥ १ ॥

(ऋ. १०।१५५।४)

हे (नरः) मनुष्यो ! (कपृत्) इस सुखके पूर्ण है। (वाजसातये) अन्नके दानके लिये (कपृथं उद्दधातन) सुखदाता इसको उठाओ (चोदयत) प्रेरित करो, (खुदत) आनंदित करो (निष्टिग्र्यः पुत्रं) अदितिके पुत्रको (ऊतये) सुरक्षाके लिये (आच्यावय) नीचे लाओ

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३ ॥
सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः । पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदाः ॥ ४ ॥
इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन् । वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५ ॥
सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः । सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६ ॥

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७ ॥
द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ८ ॥
अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९ ॥
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूळ्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १० ॥

(सखायः) साथी कर्म करनेवालोंसे सुखोंके लिये (इह इन्द्रं सोमपीतये) यहां इन्द्रको सोम पीनेके लिये ले आओ ॥ २ ॥ (ऋ. १।१।१२)

(जिष्णोः वाजिनः दधिक्राव्णः अश्वस्य) विजयी बलवान् वेगसे दौड़नेवाले घोड़ेकी स्तुति (अकारिषं) की। (नः मुखा सुरभि करत्) हमारे मुखोंको सुवासित करे (नः आयूंषि प्रतारिषत्) हमारी आयुओंको बढावे ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।३९।६)

(मधुमत्तमाः सोमाः) मीठे सोमरस (मन्दिनः इन्द्राय सुतासः) व आनन्द देनेवाले रस इन्द्रके लिये निचोड़े हैं। वे (पवित्रवन्तः अक्षरन्) छाननीसे छाने गये (वः मदाः देवान् गच्छन्तु) तुम्हारे ये आनंद देनेवाले रस देवोंको पहुंचें ॥ ४ ॥ (ऋ. ९।१०१।४)

(इन्दुः इन्द्राय पवते) सोम इन्द्रके लिये छाना जाता है (इति देवासः अब्रुवन्) ऐसा देवोंने कहा है। (वाचस्पतिः सर्वस्य ईशानः) वाणीका पति सबका स्वामी (ओजसा) अपनी शक्तिसे (मखस्यते) यज्ञको पूर्ण करता है ॥ ५ ॥ (ऋ. ९।१०१।५)

(सहस्रधारः समुद्रः) सहस्र धाराओंवाला समुद्र (वाचं ईङ्खयः) वाणीका प्रेरक (रयीणां पतिः) धनोंका स्वामी (सोमः) सोमरस (इन्द्रस्य सखा) इन्द्रका मित्र (दिवे दिवे पवते) प्रतिदिन पवित्र किया जाता है ॥ ६ ॥ (ऋ. ९।१०१।६)

(दशभिः सहस्रैः) दस हजारों वीरोंके साथ (इयानः कृष्णः) जानेवाला काला (द्रप्सः) सोमरस (अंशुमतीं अवातिष्ठत्) तेजस्विनीमें जा ठहरा। (शच्या धमन्तं) शक्तिके साथ धौंकनेवाले उसकी (आवत्) रक्षा की। (नृमणाः) वीर मनवाले इन्द्रने (स्नेहितीः अप अधत्त) शत्रुओंको परे किया ॥ ७ ॥ (ऋ. ८।९६।१३)

(अंशुमत्याः नद्यः) अंशुमती नदीके (उपह्वरे विषुणे चरन्तं) तटपर विषम मार्गमें चलनेवाले (द्रप्सं अपश्यं) सोमको मैंने देखा। (नभः न कृष्णं) काले मेघकी तरह (अवतस्थिवांसं) नीचे रहनेवालेको है। (वृषणः) बलवान् वीरो! (आजौ युध्यत) आप युद्धमें युद्ध करो (वः इष्यामि) ऐसा आपके विषयमें मैं चाहता हूं ॥ ८ ॥ (ऋ. ८।९६।१४)

(अध) अनंतर (द्रप्सः) सोमरसने (तित्विषाणः) तेजस्वी होकर (अंशुमत्याः उपस्थे) अंशुमतीके समीप (तन्वं अधारयत्) अपने रूपको धारण किया। (इन्द्रः) इन्द्रने (बृहस्पतिना युजा) बृहस्पतिके साथ रहकर (अभि आचरन्तीः अदेवीः विशः) युद्ध करनेवाली आसुरी प्रजाओंका (ससाहे) पराभव किया ॥ ९ ॥ (ऋ. ८।९६।१५)

हे इन्द्र! (त्वं जायमानः) तू प्रकट होते ही (त्यत् सप्तभ्यः अशत्रुभ्यः) उन सात जिनका शत्रु नहीं ऐसे शत्रुओंके लिये (शत्रुः अभवः) शत्रु हुआ। (गूळ्हे

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥ ११ ॥
तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२ ॥
इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ १३ ॥
गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४ ॥ (१२५)

[सूक्त १३८]

(ऋषिः — १-३ वत्सः । देवता — इन्द्रः ।)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १ ॥
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥ (१२८)

[सूक्त १३९]

(ऋषिः — १-५ शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे । प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥

द्यावापृथिवी अन्वविन्दः) तुमने द्यावा पृथ्वीको तुमने प्राप्त किया। (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः रणं धाः) व्यापक भुवनोंको आनंद दिया ॥ १० ॥ (ऋ. ८।९६।१६)

हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र! (त्वं ह त्यत् अप्रतिमानं ओजः) तूने उस अप्रतिम शक्तिको प्रकट किया जिस समय (धृषितः वज्रेण जघन्थ) धर्षक होकर वज्रसे शत्रुको मारा। (त्वं शुष्णस्य वधत्रैः अवातिरः) तूने शस्त्रोंसे शुष्णको मारा। (त्वं शच्या इन्द्र गाः अविन्दः) तूने अपनी शक्तिसे गौओंको प्राप्त किया ॥ ११ ॥ (ऋ. ८।९६।१७)

(महे वृत्राय हन्तवे) बडे वृत्रको मारनेके लिये (तं इन्द्रं वाजयामसि) उस इन्द्रको हम सामर्थ्यवाला बनाते हैं। (स वृषा वृषभः भुवत्) वह बलवान् इन्द्र अधिक बलवान् बने ॥ १२ ॥ (ऋ. ८।९३।७)

(सः इन्द्रः दामने कृतः) वह इन्द्र दानके लिये तैयार किया है। (ओजिष्ठः स मदे हितः) वह शक्तिमान आनंद में रखा है (द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः) वह तेजस्वी स्तुत्य और सोमके योग्य है ॥ १३ ॥ (ऋ. ८।९३।८)

(गिरा वज्रः न संभृतः) स्तुतिसे वह वज्रके समान तैयार हुआ है (सबलः अनपच्युतः) वह बलवान और कभी पराजित न होनेवाला है (ऋष्वः अस्तृतः ववक्ष) महान् और न हारनेवाला भार उठाता है ॥ १४ ॥ (ऋ. ८।९३।९)

(सूक्त १३८)

(यः इन्द्रः ओजसा महान्) जो इन्द्र अपनी शक्तिसे महान् है, (वृष्टिमान् पर्जन्य इव) वृष्टि करनेवाले मेघके समान वह है (वत्सस्य स्तोमैः वावृधे) वत्सके स्तोत्रोंसे वह बढा हुआ है ॥ १ ॥ (ऋ. ८।६।१)

(ऋतस्य पिप्रतः प्रजां) यज्ञके संतान इन्द्रको (विप्राः ऋतस्य वाहसा) विप्र यज्ञके स्तोत्रके साथ (यत् वह्नयः प्र भरन्त) जब ऋत्विज– अग्निके समान तेजस्वी हवि देते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ८।६।२)

(कण्वाः इन्द्रं) कण्व इन्द्रको (स्तोमैः यज्ञस्य साधनं यत् अक्रत) स्तोत्रोंसे यज्ञका पूर्ण करनेवाला बनाता है (आयुधं जामि ब्रुवत) शस्त्रको व मित्र कहते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।६।३)

(सूक्त १३९)

हे (अश्विना) अश्विनो! (युवं वत्सस्य अवसे) तुम वत्सकी रक्षाके लिये (नूनं आ गन्तं) निश्चय आओ। (अस्मै) इसके लिये (अवृकं पृथु छर्दिः) हिंसकोंसे रहित बडा घर (प्र यच्छतं) दे दो। (याः अरातयः युयुतं) जो शत्रु हों उनको दूर हटाओ ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९।१)

यदुन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २ ॥
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते । अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥
यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ (११३)

[सूक्त १४०]

(ऋषिः — १- शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ १ ॥
आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमं चिकेत वामया । आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ २ ॥
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना । आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ३ ॥
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि । यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ४ ॥
यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५ ॥ (११८)

हे अश्विदेवो ! (यत् अन्तरिक्षे) जो अन्तरिक्षमें (यत् दिवि) जो द्युलोकमें (यत् पञ्च मानवान् अनु) जो पांचों मानवोंमें है (तत् नृम्णं धत्तं) वह वीरता कर्म हममें रखो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।२)

हे अश्विदेवो ! (ये विप्रासः) जो ज्ञानी (वां दंसांसि) आपके कर्मोंका (परिमामृशुः) ध्यानमें करते हैं (एव इत्) वैसा ही (काण्वस्य आ बोधत) कण्वका स्मरण रखो ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।३)

हे अश्विदेवो ! (वां अयं घर्मः) आपका यह यज्ञ (स्तोमेन परि षिच्यते) स्तोत्रसे सींचा गया है हे (वाजिनीवसू) बलके स्वामी ! (अयं मधुमान् सोमः) यह मीठा सोम है (येन वृत्रं चिकेतथः) जिससे वृत्रको पहचानते हो ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।४)

हे (पुरुदंससा अश्विना) अद्भुत कर्म करनेवाले अश्विदेवो ! (यत् अप्सु) जो जलोंमें (यत् वनस्पतौ) जो वनस्पतिमें (यत् ओषधिषु) जो औषधियोंमें (कृतं) किया (तेन मा अविष्टं) उसके द्वारा मेरी रक्षा करो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।५)

(सूक्त १४०)

हे (नासत्या) अश्विदेवो ! (यत् भुरण्यथः) जो तुम पुष्टि करते हो (यत् वा देव भिषज्यथः) अथवा जिससे हे देवो ! तुम चिकित्सा करते हो (अयं वत्सः) यह वत्स (मतिभिः वां न विन्धते) स्तोत्रोंसे आपको नहीं प्राप्त करता क्योंकि (हविष्मन्तं हि गच्छथः) हवि देनेवालेके पास ही तुम जाते हो ॥ १ ॥ (ऋ. ८।९।६)

(ऋषिः अश्विनोः स्तोमं) ऋषिने अश्विनोंका स्तोत्र (वामया नूनं आ चिकेत) इस बुद्धिसे निश्चयपूर्वक जान लिया है । (मधुमत्तमं घर्मं सोमं) अत्यंत मीठे यज्ञीय सोमको (अथर्वणि आ सिञ्चात्) अथर्वापर सिंचन करो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।७)

हे अश्विदेवो ! (रघुवर्तनिं रथं) शीघ्र चलनेवाले रथ पर (नूनं आ तिष्ठाथः) निश्चयपूर्वक बैठो (नभः न) मेघोंके समान (मम इमे स्तोमाः) मेरे ये स्तोत्र (वां आ चुच्यवीरत) आपको इधर लावें ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।८)

हे (नासत्या अश्विना) नासत्य अश्विदेवो ! (यत् अद्य वां उक्थैः आचुच्युवीमहि) जो आज हम तुम्हें स्तोत्रोंसे इधर लाते हैं (यत् वा वाणीभिः) अथवा जो वाणियोंसे (एव इत् काण्वस्य बोधतं) वैसा ही कण्वको जानो ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।९)

(यत् वां कक्षीवान्) जैसे तुम्हें कक्षीवान्ने (उत यत् व्यश्वः ऋषिः) अथवा जैसे व्यश्व ऋषिने (यत् वां दीर्घतमा जुहाव) जैसे आपको दीर्घतमाने बुलाया था (यत् वां पृथी वैन्यः) जैसे आपको पृथी वैन्यने (सादनेषु एव इत्) यज्ञोंमें बुलाया था हे अश्विदेवो ! (अतः

[सूक्त १४१]

(ऋषिः — १-५ शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा । वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ १ ॥

यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २ ॥

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३ ॥

आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता । इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ ४ ॥

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ ५ ॥ (९११)

[सूक्त १४२]

(ऋषिः — १-६ शशकर्णः । देवता — अश्विनौ ।)

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १ ॥

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि । प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

वत्सयेथां) वैसे ही यहां आनेके लिये चलो ॥ ५ ॥
(ऋ. ८।९।१)

(सूक्त १४१)

(छर्दिष्पा) घरोंके (उत नः परस्पा) अथवा हमारे शत्रुओंसे रक्षण करनेवाले (जगत्पा उत नः तनूपा) पशुओंके रक्षक और हमारे शरीरोंके रक्षक बनकर (आ यात) आओ। (तोकाय तनयाय) पुत्र-पौत्रोंके रक्षणके लिये (वर्तिः आ यात) हमारे घर आओ ॥ १ ॥
(ऋ. ८।९।११)

हे अश्विनो ! (यत् इन्द्रेण सरथं याथः) यदि तुम इन्द्रके साथ एक रथपर जाते हो (यत् वा वायुना समोकसा भवथः) या वायुके साथ एक घरमें रहनेवाले होते हो (यत् आदित्येभिः) यदि आदित्यों और (ऋभुभिः सजोषसा) ऋभुओंके साथ एक कार्यमें लगते हो (यत् वा विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः) किंवा विष्णुके विक्रमोंमें ठहरे हो ॥ २ ॥ (ऋ. ८।९।१२)

हे अश्विनो ! (यत् अद्य अहं) यदि आज मैं तुम्हें (वाजसातये हुवेय) शक्तिका लाभ करनेके लिये बुलाता हूं (यत् पृत्सु तुर्वणे सहः) जो युद्धोंमें विजय देनेवाला साहस है (तत् अश्विनोः अवः श्रेष्ठं) वह अश्विदेवोंका श्रेष्ठ रक्षण है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।१३)

हे अश्विनो ! (नूनं आ यातं) निश्चयसे आओ। (वां इमा हव्यानि हिता) आपके लिये हव्य रखे हैं। (इमे सोमासः) ये सोम (तुर्वशे अधि) तुर्वशमें (इमे यदौ) ये यदुमें (अथ कण्वेषु वां) और कण्वोंमें तुम्हारे लिये हैं ॥ ४ ॥
(ऋ. ८।९।१४)

हे (नासत्या) अश्विदेवो ! (यत् पराके अर्वाके भेषजं अस्ति) जो दूर या पास औषध है हे (प्रचेतसा) विशेष ज्ञानवालो ! (तेन) उससे (विमदाय वत्साय) विमद और वत्सके लिये (छर्दिः यच्छतं) घर दो ॥ ५ ॥
(ऋ. ८।९।१५)

(सूक्त १४२)

(देव्या) उस देवीके साथ (अश्विनोः वाचा साकं) अश्विदेवोंकी स्तुतिके साथ (अहं प्र अभुत्स्यु) मैं जगा हूं। (देवि) हे उषा ! (मतिं रातिं मर्त्येभ्यः) स्तुति और दान मानवोंके लिये (व्या वि आवः) तुमने खोल दिया है ॥ १ ॥
(ऋ. ८।९।१६)

हे (सूनृते महि उषः देवि) सुंदर बड़ी देवी उषा ! (अश्विना प्र प्र बोधय) अश्विदेवोंको जगा दो। हे (यज्ञहोतः) यज्ञके होता ! (मदाय आनुषक् प्र) आनंदके लिये साथ साथ जगा दो (श्रवः बृहत्) यह बड़ा यश है ॥ २ ॥
(ऋ. ८।९।१७)

यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे । आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥ ३ ॥
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः । यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥ ४ ॥
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५ ॥
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६ ॥ (१४९)

[सूक्त १४३]

(ऋषिः — १-७ पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ, ८ वामदेवः ९ मेध्यातिथिर्मेधातिथी । देवता — अश्विनौ ।)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १ ॥
युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥ २ ॥
को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३ ॥
हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४ ॥

(यत् उषः) जब हे उषा! तू (भानुना यासि) अपनी चमकके साथ जाती है (सूर्येण सं रोचसे) सूर्यके साथ चमकती है तब (अश्विनोः अयं रथः) अश्विनोंका यह रथ (नृपाय्यं वर्तिः आ याति) मनुष्योंका रक्षण करनेवाले घर पर आता है ॥ ३ ॥ (ऋ. ८।९।१८)

(यत् आपीतासः अंशवः) जब सोमरस पीते हैं (गावः ऊधभिः दुह्रे न) गौवें जैसी अपने दुग्धाशयसे दूध देती हैं (देवयन्तः अश्विना) देवोंकी मदद अश्विदेवोंकी (यत् वा वाणीः प्र अनूषत) तब वाणियाँ स्तुति करती हैं ॥ ४ ॥ (ऋ. ८।९।१९)

हे (प्रचेतसा) विशेष ज्ञानी अश्विदेवो! (द्युम्नाय प्र) यशके लिये (शवसे प्र) बलके लिये (नृषाह्याय प्र) शत्रुका पराभव करनेके लिये (शर्मणे दक्षाय प्र) सुखके लिये और चतुराईके लिये हमें सहायता दो ॥ ५ ॥ (ऋ. ८।९।१२)

हे अश्विदेवो! (यत् नूनं) जब निश्चयसे तुम (धीभिः पितुः योनौ आ निषीदथः) बुद्धियोंके साथ पिताके घरमें बैठते हो (उक्थ्या) हे स्तुतिके योग्य अश्विदेवो! (यत् वा सुम्नेभिः) जब उत्तम मनोभावनाओंके साथ रहते हो ॥ ६ ॥

(सूक्त १४३)

हे अश्विदेवो! (गोः संगतिं) किरणोंको इकट्ठा करनेवाले (पृथुज्रयं वां तं रथं) तुम्हारे विस्तृत वेगवाले रथको (वयं अद्य आ हुवेम) हम आज बुलाते हैं। (यः वन्धुरायुः सूर्यां वहति) जो रथ उसका आश्रय देनेवाला सूर्याको ले जाता है। वह रथ (गिर्-वाहसं) स्तुतियोंसे चलनेवाला (पुरुतमं वसूयुं) बड़ा और धनसे भरा रहता है ॥ १ ॥ (ऋ. ४।४४।१)

हे अश्विदेवो! (युवं देवता) तुम देवता होनेके कारण और (दिवः नपाता) द्युलोकको न गिरानेवाले होनेके कारण (शचीभिः तां श्रियं वनथः) अपनी शक्तियोंसे उस शोभाको प्राप्त करते हो। (पृक्षः युवोः वपुः अभि सचन्ते) अन्न तुम्हारे शरीरके साथ मिलता है। (यत् ककुहासः वां रथे वहन्ति) जब घोड़े तुम्हें रथमें ले जाते हैं ॥ २ ॥ (ऋ. ४।४४।२)

(कः रातहव्यः वां अद्य आ करते) कौन हवि देनेवाला आज तुम्हें इधर बुलाता है? (ऊतये वा) अपने संरक्षणके लिये (वा अर्कैः सुतपेयाय) अथवा स्तोत्रोंके द्वारा सोमरस पीनेके लिये बुलाता है? (ऋतस्य पूर्व्याय वनुषे) यज्ञके पुराने भक्तके लिये हे अश्विदेवो! (नमो येमानः आ ववर्तत्) नमस्कार करते हुए अब तुम्हें इधर बुलाते हैं ॥ ३ ॥ (ऋ. ४।४४।३)

हे (नासत्या) अश्विदेवो! (पुरुभूः) बहुत स्थानपर होनेवाले! (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णके रथसे (इमं यज्ञं

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः सं यद्दुदे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५ ॥
नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६ ॥
इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७ ॥
मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ८ ॥
पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ९ ॥ (१५८)

॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥ ॥ इति विंशं काण्डं समाप्तम् ॥ ॥ अथर्ववेदसंहिता समाप्ता ॥

मन्त्रसंख्या—
एकोनविंशतिकाण्डपर्यन्तपर्यन्तं—५०११
विंशतितमकाण्डस्य—　　९५
सर्वयोगः　५१७३

उप यातं) इस यज्ञके पास आओ। (सोम्यस्य मधुनः इव पिबाथ) मधुर सोमरस पीओ। (विधते जनाय रत्नं दधथः) भक्त जनके लिये रत्न दो ॥ ४ ॥

(ऋ. ४।४३।४)

(दिवः पृथिव्या अच्छ) द्युलोक अथवा पृथ्वीपरसे (हिरण्ययेन सुवृता रथेन) सुवर्णमय अच्छे घूमनेवाले रथसे (नः आ यातम्) हमारे पास आओ। (अन्ये देवयन्तः) अन्य देवभक्त (मा वां नियमन्) तुम्हें न रोक लें। (यत् पूर्व्या नाभिः) जब पूर्व संबंध (वां सं ददे) हमसे तुम्हारा हुआ है ॥ ५ ॥ (ऋ. ४।४४।५)

हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विनो ! (अस्मे उभयेषु) हम दोनोंमें (पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) बहुत वीर पुत्रोंसे युक्त बडा धन (नू मिमाथां) दे दो। हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (नरः यत् वां स्तोमम् आवन्) ऋत्विगगण तुम्हारी स्तुति की है। (आजमीळ्हासः सधस्तुतिं अग्मन्) आजमीळ्ह भी साथ स्तुति की है ॥ ६ ॥ (ऋ. ४।४४।६)

हे (वाजरत्ना) बलसे रत्न प्राप्त करनेवाले अश्विदेवो ! (इह इह यत् वां समना पपृक्षे) यहां जब हमने मैंने तुम्हारी स्तुति की। (सा इयं अस्मे सुमतिः) यह हमारे लिये सद्बुद्धि सिद्ध हुई है। (युवं जरितारं उरुष्यतं ह) तुम स्तोताकी रक्षा करो। हे (नासत्या) अश्विदेवो ! (कामः युवद्रिक् श्रितः) हमारी इच्छा तुम्हारे आश्रयमें रही है ॥ ७ ॥ (ऋ. ४।४४।७)

(ओषधीः द्यावः आपः मधुमतीः) औषधि द्यु और जल हमारे लिये मधुर हों। (नः अन्तरिक्षं मधुमत् भवतु) हमारे लिये अन्तरिक्ष मीठाससे भरा हो। (क्षेत्रस्य पतिः नः मधुमान् अस्तु) क्षेत्रका स्वामी हमारे लिये मधुरतासे परिपूर्ण हो। (अरिष्यन्तः एनं अनु चरेम) विनष्ट न होते हुए हम इसका अनुसरण करें ॥ ८ ॥

(ऋ. ४।४४।८)

हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (वां तत् कृतं पनाय्यं) आपका किया वह कर्म वर्णनीय है (वृषभः दिवः रजसः पृथिव्याः) बलयुक्त द्यु अन्तरिक्ष और पृथिवीके (गविष्टौ ये सहस्रं शंसाः) युद्धोंमें भी आपकी सहस्रों प्रशंसाएं हुई हैं (सर्वान् तान् पिबध्यै उप याता इत्) उन सबके पास सोमरस पीनेके लिये आओ ॥ ९ ॥ (ऋ. ४।४४।९)

॥ यहां नवम अनुवाक समाप्त ॥

॥ बीसवां काण्ड समाप्त ॥

॥ अथर्ववेद समाप्त ॥